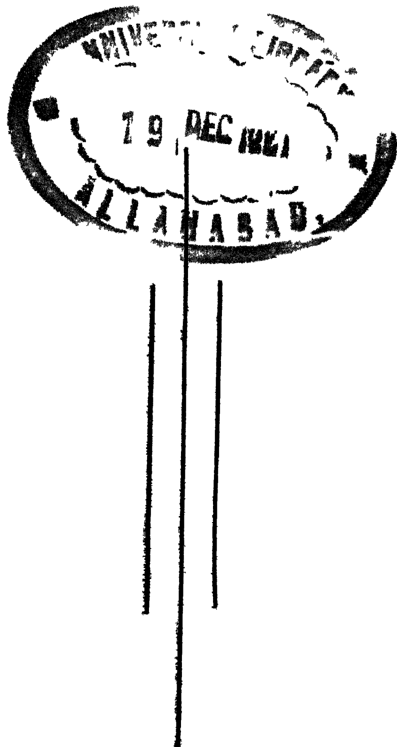
सूर-सारावली
एक अप्रामाणिक रचना



प्रेमनारायण टंडन

प्रकाशक : हिंदी साहित्य-भंडार, अमीनाबाद, लखनऊ।
मुद्रक : विद्यामंदिर प्रेस, रानीकटरा, लखनऊ।
संस्करण : प्रथम।
तिथि : २३ अगस्त, १९६१।
मूल्य : साढ़े बारह रुपये।

निकुंज-विहारी-युगल को

जिनके लिए 'रसिक विहारी' की उक्ति है—

जयति, अमित सुख-लोक तजि कत अवतरत सु-धाम।
प्रीति-तगा खैंचति बिहँसि, कीरति-सुता ललाम।



निवेदन

२३ सितंबर की तिथि मेरे जीवन की स्वर्णिम तिथि है। उसी दिन १९४६ मे मैने गुरुवर डा. दीनदयालु गुप्त के निर्देशन मे 'व्रजभाषा सूर-कोश' तैयार करना शुरू किया था, जिसे पूरे पद्रह वर्ष बाद उसी तिथि को समाप्त करने की मेरी योजना है। २३ सितबर, १९५६ को मेरा प्रबंध 'सूर की भाषा' उन्ही के निर्देशन मे पूरा हुआ था और उसी दिन १९५७ मे मेरा संपादित 'संक्षिप्त सूरसागर' प्रकाशित हुआ था। १९४६ से डा. गुप्त की, वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित 'सूरसागर' की प्रति मेरे ही पास है। 'संक्षिप्त सूरसागर' का पाठ यों तो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित प्रति का है, परंतु विशेष स्थलों पर बंबई और लखनऊ के 'सूरसागरों' से भी उसे मिलाने की आवश्यकता का अनुभव हुआ था। उसी समय पहले पहल मेरे मन में 'सारावली' के प्रकाशन का विचार आया था। वस्तुत: तब तक 'सारावली' का कोई संस्करण सुलभ नही था। बंबई और लखनऊ के 'सूरसागरों' के आरंभ मे 'सारावली' प्रकाशित है; परंतु वे अब अप्राप्य है। श्रीकृष्णानंद व्यास के 'रागकल्पद्रुम' की प्रति आदरणीय श्री भवानी शंकर जी याज्ञिक से मुझे मिल गयी थी; परंतु उसके तो अब दर्शन भी सबके लिए सुलभ नहीं हैं। अतएव बंबई के 'सूरसागर' से 'सारावली' की प्रतिलिपि कराकर मैने उसका मुद्रण प्रारंभ करा दिया था। यह बात भी २३ सितंबर, १९५७ की है।

एक सप्ताह में 'सारावली' का पाठ कम्पोज हो गया। लखनऊ के 'सूरसागर' से मिलाकर पाठांतर भी लगा दिये गये। 'रसवंती' पत्रिका का संपादन मैं करता ही था, उसी मे 'सारावली' के प्रकाशन की सूचना भी मैने छपा दी। सोचा यह था कि ५०-६० पृष्ठों की भूमिका देकर उसे प्रकाशित करा दिया जायगा। परंतु मुद्रण की अवधि मे पाठांतर आदि का मिलान करते समय तो जैसे मेरे पैरों के

नीचे से धरती ही निकल गयी; क्योंकि अष्टछापी सूरदास के नाम से प्रचारित उस काव्य में मुझे सूर की कला के कहीं दर्शन ही नहीं हुए। उक्त आयोजन के पूर्व 'सारावली' मैंने ध्यान से पढ़ी ही नहीं थी, अन्यथा प्रस्तुत पुस्तक लिखने का प्रश्न ही न होता। जब सारा पाठ छप गया, तब विवश होकर, उसको ठिकाने लगाने के लिए, अपने विचार लिखने ही पड़े। बहुधंधी आदमी हूँ और कई काम अधूरे डाल रखने की बुरी आदत भी पड़ गयी है। इसलिए लगभग तीन वर्ष तक बिखरे बिखरे नोट्स तैयार करता रहा। इस बीच ब्रजभाषा के सुधी आलोचक श्री प्रभुदयाल मीतल ने 'सारावली' का एक संस्करण प्रकाशित करा दिया। अतएव अपने भी विचार पुस्तक-रूप मे देने के लिए अन्य कार्य स्थगित कर देना ही मुझे युक्तिसंगत जान पड़ा।

पिछले वर्ष २३ सितंबर को मैंने बिखरे हुए नोटों के आधार पर प्रस्तुत पुस्तक लिखना प्रारंभ कर दिया था। उस समय मेरा ख्याल था कि सारी पुस्तक लगभग सौ पृष्ठों की होगी जिसे १९५७ की छपी हुई 'सारावली' के साथ जोड़ दिया जायगा। परंतु वह हो गयी द्रौपदी का चीर। अंत मे २३ अप्रैल को उसे समाप्त करके यह निश्चय किया कि कुछ भाग पूर्व प्रकाशित प्रति के साथ दिया जाय और संपूर्ण पुस्तक स्वतंत्र रूप मे प्रकाशित की जाय। आज, २३ अगस्त को दोनों पुस्तकें प्रकाश मे आ रही है।

प्रस्तुत पुस्तक मे 'सारावली' को अष्टछापी सूरदास की प्रामाणिक, संदिग्ध अथवा अप्रामाणिक रचना माननेवाले सभी विद्वानो के तर्कों का मुख्यांश प्रसंग-निर्देश करते हुए दो उद्देश्यों से उद्धृत कर दिया है। एक तो यह कि ब्रजभाषा-साहित्य का सामान्य रूप से और सूर-साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन करनेवाले सभी अध्येताओं को उस पर विचार करने में सुविधा हो और दूसरे, उन आलोचकों के प्रति भी पूरा न्याय हो सके जिनके विचारों की दूसरों ने अथवा इन पंक्तियों के लेखक ने आलोचना की है। यद्यपि सभी विद्वानों के उद्धरण इस ग्रंथ मे संक्षेप में ही दिये गये हैं, परंतु मेरा यह प्रयत्न अवश्य रहा है कि उनके मत या तर्क का मुख्यांश किसी प्रकार छूटने न पाये। इसी प्रकार 'सारावली' का मुख्यांश भी प्रस्तुत ग्रंथ मे दे दिया गया है जिससे तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने वालों को इन पंक्तियों के लेखक के निष्कर्षों पर विचार करने मे किसी प्रकार की असुविधा न हो।

'सूरसागर' की तरह ही 'श्रीमद्भागवत' से भी 'सारावली' के वर्णनों का मिलान करने की योजना आरंभ में बनायी गयी थी। परंतु एक तो वैसे उल्लेख इस अप्रामाणिक ग्रंथ में बहुत कम मिले और दूसरे, 'सूरसागर' से इसकी तुलना

करने का जो क्रम चल रहा था, उसमें भी बाधा पड़ने की आशंका थी। अतएव 'श्रीमद्भागवत' के आवश्यक उद्धरण पाद-टिप्पणी के रूप मे यथा-स्थान दिये गये हैं। आशा है, पाठको के साथ-साथ इससे अध्येताओं और आलोचकों को भी संतोष होगा।

'सारावली' के अधिकाश छंद मैंने स्व-संपादित संस्करण से दिये हैं, यद्यपि कहीं-कहीं मीतल जी के संस्करण से भी उन्हे ले लेने में संकोच नहीं किया है। मेरे संस्करण का पाठ, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, लखनऊ और बंबई के 'सूरसागरों' का मिलान करके दिया गया है। वर्तनी की दृष्टि से उन दोनों संस्करणों में इतना अंतर है कि एक एक पंक्ति मे उसके तीन-तीन चार-चार उदाहरण तक मिल जाते हैं। अतएव अपने पाठ मे मैने इन अंतरों की सामान्य तया उपेक्षा ही कर दी है। वर्तनी की एकरूपता भी दोनों संस्करणों मे नहीं है। अधिकांश स्थलों पर ऐसे शब्दों को मैंने एकरूप बनाने का प्रयत्न किया है, सर्वत्र नहीं। 'कह्यो'-'रह्यो' रूप कहीं-कहीं 'कहेउ'-'रहेउ' कर दिये गये हैं, कहीं वैसे ही छोड़ दिये गये है, कारण, निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि मूल लेखक को कौन रूप अभीष्ट था। शब्दारंभ के ण, य, श, ष आदि को साधारणत: न, ज, स, स से बदल दिया गया है, अस्तु

सूर-साहित्य के कुछ आलोचकों ने 'सारावली' की रचना-शैली की 'सूरसागर' से भिन्नता बताकर उसको अप्रामाणिक रचना सिद्ध किया है, तो कुछ विद्वानों ने गो० तुलसीदास, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डा० मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति कवियों के विभिन्न रचना शैली-कौशल की बात कहकर उसकी प्रामाणिकता को पुष्टि की है। इन पंक्तियो के लेखक को तो इस प्रकार के दोनों ओर के तर्क हास्यास्पद ही जान पड़ते है। गो० तुलसीदास का नाम अवश्य इस प्रसंग में उठाया जा सकता है, क्योंकि उन्होंने एक ही विषय लेकर विभिन्न शैलियों में उस पर ग्रंथ लिखे हैं; परंतु उपाध्याय जी या गुप्त जी जैसे कवियों को लेकर यह कहना कि उन्होंने सरल भाषा भी लिखी है, क्लिष्ट भी; मुहावरेदार भाषा भी लिखने मे वे समर्थ हैं, मुहावरे - रहित भी; संस्कृत छंद उन्होने अपनाये, पुरानी हिंदी के छंद भी और नये भी आदि सर्वथा निरर्थक है। मुख्य बात है भाव-व्यंजना और आदर्श या सिद्धात की। एक महाकवि किसी भी विषय को उठाये, चमका देगा; किसी भी बात को कहे, सजीव बना देगा; किसी भी दृश्य का अंकन करे, उसमें चारुता ला देगा और उसके सिद्धांतों की झलक भी सर्वत्र विद्यमान रहेगी। 'सारावली' को सूरदास की रचना सिद्ध या असिद्ध करने के लिए भी यही दृष्टिकोण अपनाना उचित

है । प्रस्तुत पुस्तक मे इन पंक्तियों के लेखक का ध्येय यही रहा है और उसे अपने प्रयत्न मे कितनी सफलता मिली है, यह देखना आलोचकों का कार्य है । मुझे उनकी निष्पक्षता पर विश्वास है ।

प्रस्तुत ग्रंथ के लिए सामग्री का संचय करते समय अकस्मात 'श्रीआचार्य महाप्रभु जी की वार्ता' मेरे हाथ लग गयी । उसमें किसी कवि 'केशव किशोर'-कृत 'आचार्य जी की वंशावली' प्रकाशित है जिसे पढते समय मुझे कुछ ऐसा लगा कि 'सारावली' का रचयिता, संभव है, यही कवि हो । अपने अनुमान के कारण मैने प्रस्तुत ग्रंथ के अंत मे दिये हैं और उक्त 'वंशावली' भी 'परिशिष्ट' मे दे दी है जिसके लिए मैं 'प्राकट्य-वार्ता' के सुयोग्य संपादक श्री द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख का हृदय से आभारी हूँ ।

कवि केशव किशोर के संबंध में विशेष विवरण इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात नहीं है; वह व्रजवासी था या अन्यत्र वासी, यह भी पता नहीं है । मैंने तो केवल उसकी और 'सारावली'-कार की प्रवृत्ति मे कुछ समानता देखकर ही उक्त अनुमान किया है । अपने इस अनुमान पर तो मैं, पुष्ट प्रमाणों के अभाव के कारण दृढ नही हूँ, परंतु यह मेरा निश्चित मत है कि 'सारावली'-कार 'वंशावली'-कार केशव किशोर के वर्ग का ही कोई कवि हो सकता है; क्योंकि मेरी सम्मति मे अष्टछापी सूरदास की तो बात बहुत दूर, अष्टछाप के सबसे कम प्रतिभावाले कवि से भी 'सारावली'-कार की प्रतिभा हीन कोटि की है ।

वस्तुतः 'सारावली' का वास्तविक रचयिता कौन है, यह प्रश्न ही गौण है । मुख्य प्रश्न यह है कि वह अष्टछापी सूरदास की रचना है या नहीं और इसी का निर्णय पहले हो जाना चाहिए । इस संबंध में इन पंक्तियों के लेखक ने अपना स्पष्ट मत व्यक्त कर दिया है कि 'सारावली' किसी भी दृष्टि से अष्टछापी सूरदास की कृति नही हो सकती । इस मत की पुष्टि में यथास्थान प्रमाण भी दिये गये हैं और उस रचना की प्रामाणिकता के पोषकों के तर्कों का खंडन भी किया गया है । हिंदी-संसार मे यह भ्रम लगभग सौ वर्षों से फैला हुआ है । अब इसको अंतिम रूप से दूर करने के लिए सूर-काव्य के विशेषज्ञ और अध्येता प्रवृत्त हों, यही मेरी कामना है ।

प्रस्तुत ग्रंथ मे सूर-साहित्य के जिन समर्थ विद्वानों के विचारों की आलोचना की गयी है, उनमे से प्रत्येक के प्रति मेरे मन में श्रद्धा सद्भाव है और उनमें से कुछ का तो अत्यंत स्नेहभाजन होने के नाते आशीर्वाद और निर्देशन

प्राप्त करने का गौरव भी मुझे रहा है। अतएव उनके मतो की आलोचना का उद्देश्य भी जिज्ञासा-मात्र है, धृष्टतापूर्ण दुराग्रह नहीं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे पूर्ववत् स्नेह-भाव बनाये रखकर ही मेरी शंकाओं का समाधान करने की कृपा करेंगे।

प्रस्तुत ग्रंथ का सबसे अधिक भाग घेर लिया है 'सारावली' और 'सूर-सागर' की तुलना ने। यह विस्तृत लेख 'वाराणसी' से प्रकाशित अर्द्धसाप्ताहिक 'संसार' मे पूरे तीन महीनो तक - १४ मई से १४ अगस्त तक—प्रकाशित होता रहा है। इस कृपा के लिए मैं उसके विद्वान संपादक श्री गंगाप्रसादसिंह अखौरी का बहुत आभारी हूँ। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन और प्रूफ-शोधन मे मुझे, लखनऊ विश्वविद्यालय की डी. लिट्. की स्कालर डा० माया टंडन से समय-समय पर सहायता मिलती रही है जिसके लिए वे मुझसे धन्यवाद नही, आशीर्वाद चाहती हैं।

—प्रे० ना० टंडन

२३ अगस्त, १९६१

विषय-सूची

सारावली
एक अप्रामाणिक
रचना

सामान्य परिचय, भ्रम और वास्तविकता

ग्रंथ का नाम—

'सारावली' का अत्यंत प्रचलित नाम है—'सूर-सारावली', परन्तु लखनऊ (नवल किशोर प्रेस) से प्रकाशित 'सूरसागर' के आरंभ मे उसका नाम मिलता है—'सूरसागर-सारावली' [1]। बंबई के संस्करण मे भी यही नाम छपा है[2]। अतएव प्रस्तुत ग्रंथ के दो नाम प्राप्त हैं—'सूर-सारावली' और 'सूरसागर-सारावली'। प्रथम का तात्पर्य है कि प्रस्तुत ग्रंथ मे समस्त सूर-काव्य की 'सारावली' है और द्वितीय का यह कि इसमे केवल 'सूरसागर' की ही 'सारावली' है। वस्तुत: प्रस्तुत ग्रंथ के लिए पहले से अधिक दूसरा नाम सार्थक है, क्योकि जिन दृष्टकूट पदो की 'सूचनिका' इसमे है, उनमे से अधिकांश 'सूरसागर' मे ही मिल जाते है, 'साहित्य-लहरी' के पदो का सार 'सारावली'-कार ने नहीं दिया है। 'सारावली' के साथ 'सूर' या 'सूरसागर' नाम से सामान्यतया यह समझा जाता है कि वह उन अष्ट-छापी सूरदास की रचना है जिन्होने 'सूर-सागर' के ढंग पर ही उसका नामकरण करके अपनी छाप उस पर लगा दी है; परंतु वास्तविकता यह है कि यह छाप उस महाकवि की लोक-प्रियता का लाभ उठाने की क्षुद्रतम मनोवृत्ति से प्रेरित होकर जोड़ी गयी है और स्पष्ट है कि तब उसका रचयिता अपनी रचना को ऐसा रूप भी देना चाहता है जिसमे उक्त नाम संगत ज्ञान पड़े। 'सूर-सागर' के शब्द, वाक्यांश, उपवाक्य आदि ज्यो के त्यो 'सारावली' मे मिलने का यही मुख्य कारण है।

१. 'सूरसागर' (नवलकिशोर प्रेस), पृ० १।
२. 'सूरसागर' (बबंई), पृ० १।

सामान्य रूप—

'सारावली' में दो दो पंक्तियों के केवल ११०७ बंद हैं। बबई की प्रति के आरंभ मे 'अथ श्री सूरदास जी रचित सूर-सागर सारावली तथा सवा लाख पदों का सूचीपत्र' लिखा है। लखनऊ की प्रति में 'रचित' के स्थान पर 'कृत' है और 'सूचीपत्र' के बाद इतना और है—'श्रीकृष्णानंद व्यास देव रागसागर संग्रह कृत तथा रागकल्पद्रुम लिख्यते'। बंबई की प्रति में 'राग कल्पद्रुम' लिखकर 'मंगलाचरण' आरंभ किया गया है। लखनऊ की प्रति के उक्त वाक्य में 'रागकल्पद्रुम' को श्रीकृष्णानंद व्यास का संग्रह बताया गया है। सभा द्वारा प्रकाशित 'सूरसागर' मे जो मंगलाचरण 'राग-बिलावल' के अन्तर्गत दिया गया है—

चरन-कमल बंदौ हरि-राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौ सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौ तिहि पाइ[1]।

लखनऊ और बंबई की प्रतियो मे उसका दूसरा और तीसरा चरण तो लगभग उक्त पद का ही है, पहले और चौथे मे कुछ अन्तर है—

बंदौ श्री हरि पद सुखदाई।
... .
सूरदास प्रभु की सरनागत बारंबार नमो ते पाई[2]।

उसके पश्चात् 'रागिनी काफी ताल जति' के साथ एक पंक्ति 'टेक' रूप में दी गई है—

खेलत यहि बिधि हरि होरी हो, हरि होरी हो, बेद-बिदित यह बात।

बंबई के संस्करण में यह पंक्ति केवल एक बार, ११०४ संख्यक छंद के पश्चात्, फिर मिलती है, परन्तु लखनऊ के संस्करण में कई बार, प्रमुख प्रसंगो की समाप्ति के पश्चात् 'खेलत यहि बिधि' या 'खेलत यहि बिधि हरि होरी' के रूप में इसे दोहराया गया है। इस प्रकार 'सारावली' बृहत् होली-गीत के रूप में लिखी गयी है। उसके रचयिता की सम्मति में

१. 'सूरसागर', पद १-१।
२. वही, पद पृ० १।

मृष्टि की रचना, उसका विस्तार, जीव का सुखमय जीवन-यापन, ईश्वर का लीला-क्रम, सब कुछ विराट होली-क्रीड़ा के रूप में होता आया है—

१. आज्ञा करी नाथ चतुरानन करो सृष्टि बिस्तार।
होरी खेलन की बिधि नीकी रचना रचे अपार।
चौदह लोक करो नाना बिधि रचि बैकुंठ पताल।
नाना रचना रची बिधाता होरी खेल रसाल[1]।

× × ×

२. यहि बिधि होरी खेलत खेलत बहुत भाँति सुख पायो।
धरि अवतार जगत मे नाना भक्तनि चरित दिखायो[2]।

३. संकरषन के बदन अनल तें उपजी अगिनि अपार।
सकल ब्रह्माड तुरत तेज सो मनो होरी दई पजार[3]।

अब 'सारावली' आरंभ होती है। पहला छंद है—

अबिगत आदि अनंत अनूपम अलख पुरुष अबिनासी।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम नित निज लोक बिलासी[4]।

इसी प्रकार के ११०७ छंद 'सारावली' में मिलते हैं और बंबई के संस्करण मे अंतिम वक्तव्य है—'इति श्री सूरदास जी कृत संवत्सर-लीला तथा सवा लाख पदों का सूचीपत्र समाप्त'। लखनऊ के संस्करण में यह उल्लेख दो स्थानों पर मिलता है—एक तो पृष्ठ ४१ पर और दूसरा पृ० ४४ पर। प्रथम उल्लेख में 'लीला के पश्चात्' 'तथा सूरसारावली' और दिया गया है एवं द्वितीय मे लिखा है—'इति श्री रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम सूरसागरस्य सूरसारावली समाप्तम्'।

रचयिता—

'सारावली' की प्रारंभिक और अंतिम पंक्तियाँ यह तो घोषित करती है कि इस ग्रंथ का संबध 'सूरसागर' अथवा सूर-काव्य से है जिसकी

१. 'सारावली', छंद १६-१७।
२. वही, छंद ३५६।
३. वही, छंद ११००।
४. वही, छंद १।

'सारावली' कवि ने दी है, परंतु यह घोषणा आदि या अंत में नहीं है कि ग्रंथ के रचयिता सूरदास ही हैं। 'अथ श्री सूरदास जी रचित सूरसागर सारावली'—इस वाक्यांश में 'सूरसागर' और 'सारावली' के बीच मे यदि 'की' समझी जाय तो 'रचित' शब्द 'सूरसागर' का ही विशेषण रह जाता है। लखनऊ की प्रति मे 'तथा सारावली' अलग देने से उक्त वाक्य-विन्यास उपयुक्त भी जान पड़ता है और वैसी स्थिति मे कहा जायगा कि सूर-काव्य के 'सारावली' नामक सूचीपत्र को किसी अन्य व्यक्ति ने तैयार कर दिया है, सूरदास ने नहीं। परंतु 'सारावली' मे 'सूरदास' को ही कर्त्ता सूचित करनेवाले कुछ वाक्य मिलते हैं। स्थूल रूप से, उनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—प्रथम वर्ग में सूर, सूरज या सूरजु और सूरदास छापों वाले छंद आते है और द्वितीय मे स्व-जीवन-संबंधी अथवा आत्मचारित्रिक उल्लेख। 'सारावली' के जिन छंदों मे उक्त 'छापे' प्रयुक्त है या जान पड़ती है वे इस प्रकार हैं—

१. तिनके नाम कहत कवि सूरज[1] निर्गुन सबके ईस[2]।
२. अट्ठाईस तत्व यह कहियत सो कवि सूरज नाम[3]।
३. सातो दीप कहे सुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर[4]।
४. कछु संक्षेप सूर अब बरनत लघुमति दुर्बल बाल[5]।
५. वाल्मीकि मुनि कही कृपा करि कछु इक सूर जो गाई[6]।

१. 'सूरज' छाप वाले दो उदाहरण डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने 'सूरदास', पृ० १०५ में उद्धृत किये है—

सूरज कोटि प्रकास अंग मे कटि मेखला बिराजै—छंद ३३४।

× × ×

आए ब्रह्म सभा मे बामन सूरज तेज बिराजै—छंद ३३६।

उक्त पंक्तियों मे 'सूरज' शब्द अपने साधारण 'सूर्य' अर्थ में प्रयुक्त है। आश्चर्य है, डा० वर्मा ने उसे कवि की छाप कैसे मान लिया।

—लेखक।

२. 'सारावली', छंद ७।
३. वही, छंद १०।
४. वही, छंद ३४।
५. वही, छंद १५७।
६. वही, छंद १६२।

६. सो सुख सूर कह्यो वह कीरति जगत करी बिस्तार[१]।
७. सूर समुद्र की बूँद भई यह कवि बरनन कह करिहै[२]।
८. सेष सहस मुख रटत निरंतर, सूर पार किमि पावै[३]।
६. सोई सूरदास ने बरने जो कहे ब्यास पुरान[४]।
१०. सेष सहस मुख पार न पावै कछु इक सूर जु गायो[५]।
११. महिमा सिंधु कहाँ लगि बरनै सूर जु कवि मतिमंद[६]।
१२. ताको सार सूर सारावलि गावत अति आनंद[७]।
१३. तब बोले जगदीस जगत गुरु सुनो सूर मम गाथ[८]।
१४. धरि जिय नेम सूर सारावलि उत्तर दच्छिन काल[९]।
१५. गरभवास बंदीखाने मे सूर बहुरि नहि आवै[१०]।

उक्त छंदो में 'सूर', 'सूरज' या 'सूरजु' और 'सूरदास' छापें आयी हैं जो 'सूरसागर' में भी मिलती हैं। इस साम्य के आधार पर 'सारावली' भी 'सूरसागर' के रचयिता सूरदास की ही कृति कही जाती है। परंतु यहाँ प्रश्न यह है कि 'सारावली' जिस क्रमबद्ध रूप में लिखी गई है, उसमें क्या कवि की छाप के लिए कोई स्थान है ? दूसरे, यदि ये छापें न होती तो क्या कोई खटकनेवाली बात होती ? वस्तुत: खटकता तो इन छापों का बीच-बीच में आ जाना ही है ; क्योंकि न तो इनका प्रयोग सूर की प्रकृति के अनुरूप है और न वह किसी नियम के अनुसार ही माना या सिद्ध किया जा सकता है।

उक्त छंदो को लेकर मीतल जी ने कहा है कि 'सारावली' में 'सूरदास' छाप एक बार (नवें उदाहरण मे) और 'सूर' छाप ग्यारह बार मिलती है।

१. 'सारावली', छंद २३२।
२. वही, छंद ३१५।
३. वही, छंद ३४५।
४. वही, छंद ३५३।
५. वही, छंद ६८१।
६. वही, छंद ६९९।
७. वही, छंद ११०३।
८. वही, छंद ११०४।
९. वही, छंद ११०५।
१०. वही, छंद ११०७।

मीतल जी के इस निष्कर्ष[1] के संबंध में दो बातें कहनी हैं। पहली बात तो यह कि बारहवें और चौदहवें उदाहरणों में 'सूर' शब्द कवि की छाप नहीं, 'सूर-सारावली' सामासिक पद का एक अंश है, जिससे प्रस्तुत ग्रंथ का नाम सूचित होता है। इस प्रकार 'सूर' छाप केवल नौ बार 'सारावली' में मिलती है, ग्यारह बार नहीं।

दूसरी बात यह है कि मीतल जी ने जिन जिन छंदो में 'सूरज' छाप का होना लिखा है, उनमे नवल किशोर प्रेस से सन् १८६४ (सवत् १९२०) में प्रकाशित 'सूरसागर-सारावली' में प्रथम दो में 'सूर जी' पाठ मिलता है और ग्यारहवें उदाहरण में 'सूरज' के स्थान पर 'सूर जु' पाठ मिलता है[2] जो 'सूर जी' अर्थ का ही स्पष्ट रूप से द्योतक है। इससे दो महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। पहला तो यह कि 'सूरज' छाप 'सारावली' में है ही नहीं और जहाँ वह शब्द मिलता है उसका तात्पर्य 'सूर जु' समझना चाहिए जिसका सामान्य अर्थ है 'सूर जी'। अतएव 'सूर' छाप 'सारावली' में बारह बार मिलती है और 'सूरज' एक बार भी नही। दूसरी बात यह है कि 'सूर जी' या 'सूर जू' का प्रयोग और सो भी ग्रंथ की प्रथम दो छापो के स्थान पर क्या स्पष्ट सूचित नहीं करता कि 'सारावली'-कार कवि 'सूर' का उल्लेख अपने ग्रंथ में 'जू' या 'जी' लगाकर आदर के साथ करना चाहता है और यो स्पष्ट सूचित कर देता है कि 'सूर सागर' का रचयिता मुझसे भिन्न कोई व्यक्ति है जिसे मै श्रद्धास्पद समझता हूँ ? इस निष्कर्ष के सर्वमान्य होने में ऊपर उद्धृत चौथे और ग्यारहवें छंद बाधक माने जा सकते हैं, क्योकि उनमें 'लघुमति दुर्बल बाल' और 'कवि मतिमंद' का प्रयोग 'सूर' छाप के साथ है। इसका समाधान आगे किया जायगा।

इसी प्रकार 'सारावली' के जो छंद कवि के आत्मचारित्रिक कथन के रूप में उसे 'सूरदास' की रचना सिद्ध करने के लिए उद्धृत किए जाते हैं, मुख्यत: वे ये हैं—

१. गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रबीन।
सिव बिधात तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन[3]।

१. 'सारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० २६-२७।
२. 'सूरसागर-सारावली' (नवल किशोर प्रेस), पृ० १।
३. 'सारावली', छंद १००२।

१. कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो।
श्री बल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला-भेद बतायो[१]।

२. ता दिन तें हरि-लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताको सार सूर सारावलि गावत अति आनंद[२]।

उक्त तीनो छंदो में से प्रथम मे कोई महत्व की बात नहीं है जिसका संबंध सूरदास की जीवनी या उनके चरित्र से हो। द्वितीय की 'श्रीबल्लभगुरु तत्व सुनायो' बात अवश्य सूरदास के जीवन की घटना मेल खाती है, परन्तु महाप्रभु वल्लभाचार्य ने केवल सूरदास को ही 'तत्व' और 'लीला-भेद' नही समझाया था; अनेक व्यक्तियो को इसका सत्पात्र समझा था। अंतिम छंद मे अवश्य 'एक लक्ष पद' की बात सूरदास के एक लाख पद बनाने की किंवदन्ती से मेल खाती है, परन्तु 'सूरसागर' की किसी प्रति में पॉच हजार से अधिक पद न पाकर सूरदास के प्राय: समस्त जीवनी-लेखकों ने 'एक लक्ष' और 'पद-बंद' के प्रचलित और सर्वमान्य अर्थ छोड़-कर, उन प्रयोगो को विशेषार्थक ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

वस्तुतः 'सारावली' है क्या—

'सूरसागर-सारावली' कहा जाय, चाहे 'सूर-सारावली', तात्पर्य दोनों का एक है कि प्रस्तुत ग्रंथ सूर-काव्य के प्रमुख अंश की सूची है और पुस्तक का नाम जिस बात की स्पष्ट सूचना देता है, उसका रचयिता अपनी बुद्धि और योग्यता भर उसके निर्वाह का यत्न भी करता है, यद्यपि उसमें वह सफल नहीं हो सका है। बहुत समय तक हिंदी के विद्वान इसे स्वी-कारते रहे; परन्तु जब 'सूरसागर' और 'सारावली' के कथा-क्रम और प्रसंग-विस्तार मे अंतरों की ओर संकेत किया गया; तब उसके सब समर्थक उसे अष्टछापी सूरदास की स्वतंत्र रचना बताकर, इस प्रकार, दोनों ग्रंथों के अंतरो का औचित्य ही सिद्ध करने लगे। हम पूछते हैं कि यदि 'सारावली' स्वतंत्र ग्रंथ है तो उसके नाम में 'सूर' या 'सूरसागर' शब्द के जोड़े जाने का तात्पर्य या उसकी सार्थकता क्या है? 'ताकौं सार सूर-सारावलि गावत अति आनंद' (११०३) में प्रयुक्त 'ताकौ सार' का तात्पर्य

१. 'साराबली', छंद ११०२।
२. वही, छंद ११०३।

यदि 'सैद्धांतिक तत्व रूप'[1] स्वीकार कर लिया जाय तब पुस्तक के 'सारावली' नाम की सार्थकता तो कुछ होनी चाहिए या नहीं ? प्राचीन संपादकों ने यदि 'सूर-सारावली' नाम स्वीकार करके कोई भूल की तो मीतल जी ने स्व-संपादित संस्करण का नाम 'सूर-सारावली' क्यों स्वीकार किया और यदि विषयानुसार यह नाम उपयुक्त नहीं था, तो तत्संबंधी कोई संकेत क्यों नहीं किया या स्पष्टीकरण विषयक कोई टिप्पणी क्यों नहीं दी ? अथवा क्या उन्होंने 'सूर-सारावली' का तात्पर्य भी सूर के सैद्धांतिक विचारों से ही मान लिया ? अपनी संपादित प्रति में उन्होंने एक स्थान पर 'अथ दृष्टकूट कथन'[2] लिखा है और दो पृष्ठों बाद 'इति दृष्टकूट सूचनिका संपूर्ण'[3] लिखकर प्रसंग की समाप्ति की सूचना दी है। यहाँ 'सूचनिका' से क्या यह तात्पर्य नहीं है कि 'सारावली'-कार सूर के दृष्टकूटों की सूची या उनका 'सार' देना चाहता है या दे रहा है ? और यदि वह सूर के अपेक्षाकृत अप्रचलित दृष्टकूट पदों का सार या सूची देना चाहता है तो 'सारावली' नाम देने से क्या उसके मस्तिष्क में सूर के अन्य पदों या उनके संकलन 'सूर-सागर' का सार या सूची देने की बात नहीं घूम रही थी ? अपने प्रयत्न में वह सफल हुआ या असफल, यह बात तो दूसरी है, परंतु सार-तत्व की दृष्टि से सर्वथा निरर्थक 'दृष्टकूट पदों की सूचनिका' का अर्थ या उस प्रयोग की सार्थकता अथवा उद्देश्य 'सारावली' को प्रामाणिक माननेवाले क्यों नहीं देते ?

हमारी सम्मति में, 'सारावली' कदापि स्वतंत्र रचना नहीं है। वह निश्चय ही रची तो गयी है 'सूरसागर' का सार देने के लिए, उसकी सूची प्रस्तुत करने के ही उद्देश्य से, परंतु वास्तव में है वह एक भ्रामक और अप्रामाणिक रचना जो उन श्रद्धालु वैष्णवों को, जिनकी 'सूरसागर' के प्रति श्रद्धा तो थी, परंतु जिनके पास उसकी प्रति नहीं थी, धोखा देकर कुछ अर्थ-लाभ की आशा से लिखी गयी थी। सूरदास की रचना काव्य-मर्मज्ञों और संगीतज्ञों में तो प्रचलित थी ही, वल्लभ-संप्रदायी भक्तों में भी इतनी लोकप्रिय थी कि उसका आधार लेकर और वैसा उल्लेख करके ग्रंथ रचे जाने लगे थे। बाबू राधाकृष्णदास ने अपने 'सूरदास' शीर्षक लेख में ऐसे ही एक प्रयत्न का उल्लेख करते हुए लिखा है—

१. 'सूर-निर्णय', पृ० १११।
२. 'सूर सारावली' (मीतल), पृ० ७५।
३. 'सूर सारावली' (मीतल), पृ० ७७।

'सूरसागर' का आश्रय लेकर संवत् १८०० मे व्रजवासीदास ने 'व्रजविलास' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ श्रीकृष्ण-चरित्र व्रज-विहार बनाया। वह ग्रंथ गोस्वामी श्री तुलसीदास जी के रामायण के अनुकरण पर बना है और कुछ कुछ उसी की तरह उसका भी प्रचार है। प्राय: कृष्णलीला इसी के आधार पर होती है। व्रजवासीदास जी ने स्वयं लिखा है—

मोने यह अति होति ढिठाई। करत विष्णुपद की चौपाई।

× × ×

श्री शुकदेव कही हरि लीला। सुनी परीक्षित सब गुण शीला।
सूरदास सोइ हरि रस सागर। गायौ बहु बिधि परम उजागर।
फैलि रह्यो सो त्रिभुवन माही। गावत सुनत सुगम हरखाहीं।
बिबिध प्रकार चरित हरि केरे। नामहु बरने सूर घनेरे।
सो वह प्रीति रीति सुखदाई। मेरे मन अतिसय करि भाई।
सो तो कथा अमित बिस्तारा। मो पै पायो जात न पारा।
तामै ब्रजबिलास सुखदाई। सो कछु कहिहौं करि चौपाई।

भाषा की भाषा करौं, छमियो कवि अपराध।
जिहि तिहिं बिधि हरि गाइये, कहत सकल श्रुति साथ[१]।

ब्रजवासीदास की मनोवृत्ति तो श्लाघ्य है, परंतु जिस व्यक्ति ने 'सारावली' की रचना की उसकी मनोवृत्ति उन कवियो की भाँति क्षुद्र थी जो अर्थलाभ के लिए 'सूर' या 'तुलसी' छाप देकर अपनी या दूसरो की भ्रामक रचनाएँ भक्तो या श्रद्धालुजनो के सामने उपस्थित करते रहते हैं।

'सारावली' की रचना का उद्देश्य—

वल्लभ-संप्रदायी जिन भक्तो को संस्कृत का ज्ञान नहीं था, उनके लिए 'सूरसागर' 'श्रीमद्भागवत्' के समकक्ष था। संभव है, कुछ भक्तो में उसका नियमित पारायण करने का भी चलन रहा हो जिस प्रकार अनेक व्यक्ति 'श्रीमद्भागवत्' का नियमित पारायण करके दैनिक चर्चा आरंभ करते हैं। मीतल जी ने 'पुरुषोतम सहस्रनाम' की रचना का हेतु

१. ना० प्र० पत्रिका में, सन् १६०० मे प्रकाशित, पृ० १४७-४८।

बताते हुए लिखा है—'वल्लभ-संप्रदाय में ऐसी अनुश्रुति प्रचलित है कि गोपीनाथ जी समग्र भागवत का पाठ करने के अनतर भोजन किया करते थे। इससे उनके भोजन में बहुत विलंब हो जाता था; प्राय: उनको एक बार ही भोजन करना पड़ता था। उनके भोजन के उपरांत प्रसाद ग्रहण करने वाली उनकी धर्मपत्नी को इससे असुविधा होती थी। इसलिए आचार्य जी ने भागवत के सार रूप से 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना कर गोपीनाथ जी को आदेश दिया कि वे इसके पाठ के अनंतर भोजन कर लिया करें'[1]। संस्कृत न जाननेवाले ऐसे ही किसी भक्त के लिए, जो उक्त अनुश्रुति के अनुसार 'सूरसागर' के कुछ अंश का पारायण करना आवश्यक समझता था, 'सारावली' की रचना की गयी होगी। 'सारावली' की अधिक प्रतियाँ न मिलने का भी यही कारण है कि वह व्यक्तिविशेष के लिए रची गयी रचना थी।

'सारावली' है किस कोटि की रचना—

सूर-साहित्य के अध्येता लगभग सौ वर्षों से 'सारावली' को अष्टछापी सूरदास की रचना बताते आ रहे हैं। यह तो संभव हो सकता है—संभव ही नहीं, सत्य भी है—कि उनमें से अधिकांश 'सूरसागर' से उसका मिलान किये बिना ही वैसा लिखते रहे हों, परंतु यह स्वीकार करने को हमारा हृदय किसी भी तरह प्रस्तुत नहीं है कि उनमें से अधिकांश —दस-पाँच की बात तो दूसरी है—'सारावली' को भी बिना पढ़े वैसा लिखते आय हों। परंतु इस प्रसंग का दूसरा पक्ष और भी विचित्र स्थिति में डालने वाला है। वस्तुत. 'सारावली' निकृष्टतम कोटि की रचना है जिसके रचयिता के पास न कवि का हृदय है, न भक्त का भाव है, न गायक का कंठ है और न है संगीत-ज्ञान का लेश। 'सूरसागर' के सुंदर पदों की बात तो जाने दीजिए, काव्य-कला की दृष्टि से उसके दशम स्कंध का जो पद सबसे निकृष्ट समझा जाय, संपूर्ण 'सारावली' उसकी तुलना में भी हीन ही सिद्ध होगी। वस्तुत: वल्लभ-सम्प्रदायी साहित्य का जो अंश सामान्यतम है, 'सारावली' उसी वर्ग की अत्यंत सामान्य रचना है। ऐसी स्थिति में क्या यह अत्यंत आश्चर्य की बात नहीं है कि जो आलोचक

१. 'सारावली' (मीतल), भूमिका, पृ. ४५।

अष्टछापी सूरदास के काव्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा करके काव्य-मर्मज्ञता का परिचय देते हैं, वे ही 'सारावली' जैसी निकृष्टतम रचना को भी उसी की कृति बनाकर अपने साथ-साथ कवि सूर की स्थिति भी कैसी हास्यास्पद बना लेते हैं ?

सारावली का रचना-स्थान—

'सारावली' मे श्रीकृष्ण के रस रूप की अपेक्षा ऐश्वर्य-रूप का वर्णन कहीं अधिक है। अष्टछाप के सभी कवियो की ही नहीं, प्राय: व्रजमंडल के अधिकांश कवियो की रुचि श्रीकृष्ण के रस-रूप की ओर ही प्रधानतया रही है, ऐश्वर्य-रूप की ओर नही। ऐश्वर्य-रूप-वर्णन की अधिकता तो मुख्यत: गुजराती वैष्णव कवियो की रचनाओ की विशेषता है। अतएव हमे तो 'सारावली' का रचयिता कोई ऐसा वल्लभानुयायी कवि जान पड़ता है जिसका अष्टछाप-काव्य से सामान्य परिचय था, जो सूरदास की रचनाओ की लोकप्रियता की बात से अवगत था और जो उनके नाम पर अर्थ-लाभ करने का लोभ संवरण करने में असमर्थ था। उसने ही व्रजमंडल के बाहर के किसी धनी भक्त के लिए 'सारावली' लिखी होगी। इस प्रकार, हमारी सम्मति में, 'सूर-सारावली' का अष्टछापी सूरदास द्वारा रचा जाना तो बहुत दूर की बात है, वह व्रजभूमि तक में जन्में और पले किसी भी कवि की रचना नहीं हो सकती। इसके प्रमाण आगे दिये जायँगे।

'सारावली' और सूर के अध्येता

'सारावली' की प्रामाणिकता के पक्ष-विपक्ष में हिंदी के जिन विद्वानो ने अपने विचार व्यक्त किये हैं, उनको, स्थूल रूप से, तीन वर्गों में रखा जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे विद्वान आते हैं जिन्होंने या तो 'सारावली' की प्रामाणिकता के संबंध में कभी कुछ सोचा ही नहीं अथवा स्पष्ट रूप से उसकी प्रामाणिकता का समर्थन किया है और उसे सूरदास की ही रचना मानकर अंत:साक्ष्य के रूप में उसकी पंक्तियों को उद्धृत किया है। इस वर्ग के लेखकों मे बाबू राधाकृष्णदास[१], लाला भगवानदीन[२], डा० बेनीप्रसाद[३], डा० जनार्दनमिश्र[४], डा० मुंशीराम शर्मा[५], डा० दीनदयालु गुप्त[६], आचार्य रामचंद्र शुक्ल[७], डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल[८], श्री द्वारकादास परीख व श्री प्रभुदयाल मीतल[९], डा० हरवंश लाल शर्मा[१०] आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त हिंदी

१. ना. प्र. पत्रिका, चौथा भाग, मे प्रकाशित 'सूरदास' शीर्षक लेख, पृ. ११३।
२. 'सूर-पंचरत्न' की भूमिका, पृ. ३४ और ३५।
३. 'संक्षिप्त सूरसागर' की भूमिका, पृ. ९।
४. 'सूरदास' (अँगरेजी), पृ. ३४।
५. 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य', पृ. ५४।
६. 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', प्रथम भाग, पृ. २८४।
७. 'सूरदास', जीवनवृत्त, पृ. ११९।
८. 'सूरदास', पृ. ३४ और ५२।
९. 'सूर-निर्णय', पृ. १४२-४३।
१०. 'सूर और उनका साहित्य', पृ. ६३।

साहित्य के कुछ इतिहास-लेखकों, यथा डा० सूर्यकांत शास्त्री[1], डा० रामकुमार वर्मा[2] आदि ने भी 'सारावली' को अष्टछापी सूरदास की ही रचना माना है। इसी वर्ग मे वे लोग भी हैं जिन्होंने 'सारावली' की प्रामाणिकता- अप्रामाणिकता के प्रश्न को तो नहीं उठाया है, परंतु प्रसंगानुसार उसके अवतरण इस प्रकार उद्धृत किये हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि वे उसे अष्टछापी सूरदास की ही रचना मानते हैं।

दूसरे वर्ग में सूर-साहित्य के वे अध्येता आते हैं, 'सारावली' की प्रामाणिकता-अप्रामाणिका के संबंध में जिनका मत या तो स्पष्ट नहीं होता या वे 'सारावली' को संदिग्ध रचना समझते हैं। उदाहरणार्थ आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने अपने ग्रंथ में 'सारावली' का 'गुरुप्रसाद होत यह दरसन' वाला प्रसिद्ध छंद कवि की आयु निश्चित करने के लिए उद्धृत किया है[3], परंतु वे प्रामाणिकता के विवाद में नहीं पड़े हैं। डा० सत्येंद्र चार स्थानों पर तो ऐसा ही करते हैं और उन्होने उक्त छंद 'तथाकथित अंत:साक्ष्यों' के अंतर्गत उद्धृत किया है[4], परंतु अन्यत्र वे यह भी कहते है।—'सूरदास ने केवल 'सूरसागर' लिखा, ऐसा विदित होता है।.......... अन्य जो रचनाएँ सूरदास-रचित मानी जाती है, उन्हें प्रामाणिक मानने के लिए अत्यंत प्रामाणिक तर्क देने पडेगे, जो इस समय उपलब्ध नही है'[5]।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का भी तत्संबंधी मत स्पष्ट नहीं है। सूरदास के बनाये ग्रंथो को जिस वाक्य मे उन्होने गिनाया है, उसका आरंभ वे 'पता चला है' शब्दों से करते है। दूसरे वाक्य में उन्होंने लिखा है—'सूरसारावली', 'सूरसागर' का ही संक्षिप्त संस्करण है। अंत में उनका निष्कर्ष है—अर्थात् 'सूरसागर' ही उनका ग्रंथ है[6]।

'सारावली' को संदिग्ध रचना माननेवालों में दो अन्य विद्वान

१. 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', पृ. ३२८।
२. 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ. ७३८।
३. 'महाकवि सूरदास', पृ. ६०।
४. 'सूर की झाँकी', पृ. ८८, १०२, १३१ और १५१।
५. 'सूर की झाँकी', पृ. १०६।
६. 'सूर-साहित्य', पृ. १५६।

है—सर्व श्री मिश्रबंधु[1] और डा० रामरतन भटनागर[2]। आगे केवल इन्ही दोनो के विचार दिये जायेंगे।

तीसरे वर्ग में केवल डा० ब्रजेश्वर वर्मा का नाम आता है जो 'सारावली' को निश्चयपूर्वक अप्रामाणिक, अर्थात् अष्टछापी कवि के अतिरिक्त किसी अन्य कवि की, रचना मानते है परंतु जिनके तर्कों का 'सारावली' के समर्थको ने खंडन कर दिया है।

हम 'सारावली' को, सर्वथा अप्रामाणिक रचना मानते हैं और हमारा स्पष्ट मत है कि वह किसी भी दृष्टि से 'सूरसागर'-कार की रचना नहीं हो सकती। अपने मत की पुष्टि के लिए तर्क उपस्थित करने के पूर्व, हम सूर-साहित्य के उक्त तीनो वर्गों के विद्वानों के मतों पर विचार कर लेना न्याय्य समझते हैं।

प्रामाणिकता-समर्थकों के मत—

क. बाबू राधाकृष्ण दास—

इस वर्ग के आलोचकों में पहला नाम बाबू राधाकृष्ण दास का है जिन्होंने सन् १९०० में नागरी प्रचारिणी पत्रिका में 'सूरदास' शीर्षक लेख प्रकाशित कराया था। 'सारावली' के संबंध में उनके उल्लेख इस प्रकार हैं[3]—

१. परंतु इस ('सूरसागर') के बनाने के पीछे 'सूरसागर सारावली' बनायी है। इस 'सूरसागर सारावली' को उन्होंने एक लाख पद बनाने के पीछे अपनी सरसठ वर्ष की अवस्था मे बनाया था जैसा कि उनके इन पदों से विदित होता है—

गुरु प्रसाद होत यह दर्शन सरसठ बरस प्रबीन।
शिव बिधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन। १००२।

१. 'हिंदी नवरत्न' (सप्तम संस्करण), पृ. १७९।
२. 'सूर-समीक्षा', पृ. ५४-५५।
३. ना. प्र. पत्रिका, १९००, में प्रकाशित 'सूरदास' शीर्षक लेख, प. ११३।

दरशन दियो कृपा करि मोहन नेग दियो बरदान।
आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान। १००७।
कर्मयोग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो।
श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो। ११०२।
ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताको सार सूरसारावलि गावत अति आनंद। ११०३।
तब बोले जगदीश जगत गुरु सुनो सूर मम गाथ।
तू कृत मम यश जो गावैगो सदा रहै मम साथ। ११०४।

२. यदि 'साहित्य लहरी' और 'सूरसागर सारावली' का समय पास ही पास माना जाय ······ । परंतु यह संभव है कि 'सूरसागर' समाप्त करने के कुछ काल पीछे 'सारावली' बनाया हो और 'साहित्यलहरी' उसके पहले ही बन चुकी हो[1]।

३. ऊपर हम ६७ वर्ष की अवस्था में 'सूरसागर सारावली' का बनाना सिद्ध कर चुके हैं[2]।

४. 'साहित्य लहरी', 'सूरसागर' और 'सूरसागर सारावली' के अतिरिक्त और कोई ग्रंथ सूरदास जी का बहुत खोज करने पर भी नहीं मिलता[3]।

५. 'सारावली' ही सूरसागर बनने के पीछे बनी है और इसकी कविता से स्पष्ट है कि यह सूरदास जी ही की रचना है[4]।

बाबू राधाकृष्ण दास ने अपने लेख में 'सारावली' के संबंध में जो कुछ लिखा है, वह उसे उन्हीं की रचना मानकर; उसकी प्रामाणिकता के संबंध में उन्हें कुछ संशय था नहीं; इसलिए उसकी पुष्टि के लिए उन्होंने कोई तर्क भी नहीं दिया। 'सारावली' नाम को लेकर एक बहुत उचित बात उन्होने कही—संभव है, 'सूरसागर' समाप्त करने के कुछ काल पीछे 'सारावली' बनाया हो और 'साहित्यलहरी' उसके पहले ही बन चुकी हो—परंतु हिंदी के अनेक आलोचकों ने इस बात की ओर

१. ना. प्र. पत्रिका, १६००, मे प्रकाशित 'सूरदास' शीर्षक लेख, पृ. ११७।
२. वही, पृ. ११७।
३. वही, पृ. १३५।
४. वही, पृ. १३८।

कोई ध्यान न देकर 'सारावली' और 'साहित्यलहरी' का रचनाकाल एक ही मानकर सूरदास के जीवन से संबंध रखनेवाली तिथियों की गणना का हास्यास्पद प्रयत्न किया है।

ख. लाला भगवानदीन—

'सूर-पंचरत्न' की भूमिका में 'सारावली' के संबंध में लाला भगवानदीन के निम्नलिखित वाक्य मिलते हैं—

१. सूरदास जी की कृतियों में से 'सूरसागर', 'सूरसारावली' और 'साहित्य'-लहरी—ये ही तीन ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध है[1]।

२. 'पदसंग्रह' आदि (ग्रंथों) के विषय में भी यही बात—(कि ये ग्रंथ 'अष्टछाप' के सूरदास के न होकर किसी अन्य सूरदास के हों—कही जा सकती है, अथवा 'सूरसारावली' की भाँति ये भी 'सूरसागर' से संग्रह किये गये होंगे[2]।

३. 'सूरसारावली' 'सूरसागर' के पश्चात् रची हुई जान पड़ती है। यह कोई पृथक् ग्रंथ नहीं है; किंतु 'सूरसागर' की सूची ही है[3]।

लाला भगवानदीन के तीनो कथनो से स्पष्ट होता है कि उन्होंने 'सारावली' को अष्टछापी सूरदास की रचना तो मान ही लिया, परंतु उसे 'सूरसागर' से संगृहीत संग्रह जैसा अथवा उसकी सूची-जैसा संकलन-मात्र माना। उनके उन कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने 'सारावली' देखी-पढ़ी ही नहीं थी, दूसरों के मतानुसार ही वैसा लिख दिया था अन्यथा उन जैसे विद्वान को 'सारावली' की रचना अवश्य खटकती।

ग. डा० बेनीप्रसाद—

'संक्षिप्त सूरसागर' की भूमिका मे डा० बेनीप्रसाद ने 'सारावली' के संबंध में लिखा है—

१. 'सूरसारावली' सूरदास ने ६७ वर्ष की अवस्था में बनाई[4]।

१. 'सूरपंचरत्न', भूमिका, पृ. ३४।
२. वही, पृ. ३५।
३. वही, पृ. ३५।
४. 'संक्षिप्त सूरसागर', भूमिका, पृ. ७।

२. इस ग्रंथ ('सूरसागर') का सार 'सूरसारावली' में है[1] ।

उक्त कथनों से स्पष्ट है कि डा० बेनीप्रसाद ने 'सारावली' को बिना पढ़े ही उसे सूरदास की प्रामाणिक रचना मान लिया था, और 'सूरसागर' से भलीभाँति मिलान किये बिना ही उसे 'सूरसागर' का 'सार' लिख दिया था ।

घ. डा० जनार्दन मिश्र—

'सूरदास' नामक अँगरेजी ग्रंथ मे डा० मिश्र ने 'सारावली' के संबंध में ये वाक्य लिखे हैं—

1. Surdas says that he began his songs after he became the disciple of Shri Vallabhacharya—Sursaravali no. 1103[2].

२. Surdas is said to have written three works only Sursagar, Sursarawali and Sahityalahri.[3]

३. After the manner of the great epics Surdas also prepared an index to his Suragar in 2214 lines and named it Sursaravali. He has mentioned it in verse no 1103 of Sursaravali.

Instead of being a separate and independent work it is more or less an appending to the Sursagar[4]

डा० जनार्दन मिश्र के उक्त कथनो मे से प्रथम दो तो सामान्य विश्वास पर आधारित हैं ही, अंतिम भी सूचित करता है कि 'सारावली' का अध्ययन उन्होने ध्यान से नहीं किया था, वे 'सूरसारावली' के ११०३ संख्यक छंद के आधार पर ही उसे 'सूरसागर' की सूची मात्र मान बैठे थे ।

च. डा० मुंशीराम शर्मा—

डा० शर्मा के दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं—'सूर-सौरभ' एवं 'भारतीय साधना

१. 'संक्षिप्त सूरसागर', भूमिका, पृ. ६ ।
२. 'सूरदास' (अँगरेजी), पृ. ३५ ।
३. वही, पृ० ३७ ।
४. वही, पृ० ३७ ।

और सूर-साहित्य, जिनमे 'सारावली' की प्रामाणिकता-संबंधी उनके तर्क मिलते है। 'सूर-सौरभ'[1] का द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण सन् १९४३ मे प्रकाशित हुआ था जिसके निम्नलिखित कथन ध्यान देने योग्य हैं—

१. अंतःसाक्षियों मे 'सूरसारावली' का एक पद .... सूर के जीवन वृत्त पर प्रकाश डालने वाला है—

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
शिव बिधान तप कर्यौ बहुत दिन तऊ पार नहि लीन[1]—११०२।

२. 'सूर-सारावली' के ऊपर उद्धृत छंद संख्या १००२ के पूर्व तथा आगे के छंद संख्या १००३, १००४, १००५ और १००६ में अपने इस दर्शन का, युगल-मूर्ति की इस लीला का, सूर ने बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है[2]।

३. इसके पश्चात् छंद संख्या १००७ में सूर ने भगवान द्वारा दिये वरदान का उल्लेख किया है जो इस ग्रंथ मे आगे उद्धृत 'साहित्यलहरी' के सूर-वंश-परिचायक पद मे वर्णित कूप-पतन और वरदान वाली घटना का समर्थन करता है[3]।

४. सूर ने अपना सागर ६७वे वर्ष मे प्रारंभ किया।

'सारावली' की हरि दर्शन संबंधी पंक्तियॉ भी इसी समय लिखी गयीं। बाद मे जब 'सारावली' होली के वृहत् गान के रूप मे लिखी गयी होगी, तब उसमे ये पंक्तियाँ भी सम्मिलित कर दी गयी होगी। सूर के सभी ग्रन्थों का संकलन बाद मे हुआ है। 'सारावली' के इस स्थल के पूर्वापर संबंध को मिलाने से भी यही मालूम होता है[4]।

५. इस ('सारावली') के आरंभ मे वही पद है जो 'सूरसागर' के प्रथम स्कंध के प्रारंभ मे पाया जाता है ... । मालूम होता है, सूर ने या अन्य किसी प्रतिलिपिकार ने यह पद मंगलाचरण के रूप मे 'सूरसागर' से निकाल कर रख दिया है[5]।

१. 'सूर-सौरभ', प्रथम भाग, पृ० ३।
२. वही, पृ० ५।
३. वही, पृ० ६।
४. वही, पृ० ६।
५. 'सूर-सौरभ', द्वितीय भाग, पृ० २४।

६. 'सारावाली' एक प्रकार से भागवत और 'सूरसागर' में वर्णित कथा की सार-सूची ही है। सूर ने स्वयं छंद संख्या ११०३ में इसे हरि-लीला का सार कहा है[१]।

७. 'सूरसागर' में जो हरि-लीला गायी गयी है, वही संक्षेप मे, 'सूर-सारावली' मे एक पृथक् शैली में लिखी गयी है। अतः 'सूर-सारावली' 'सूरसागर' से भिन्न एक स्वतंत्र ग्रन्थ है[२]।

८. 'सारावली' और '(सूर) सागर' के लेखक की शैली-समता भी प्रकट होती है और साथ ही 'सारावली' के स्वतंत्र अस्तित्व का समर्थन भी होता है। लेखक एक है, अतः दोनों ग्रंथो में पद, वाक्य, शैली, भाव आदि का साम्य है, परन्तु ग्रंथ दो हैं[३]।

९. उनमे ('साहित्यलहरी', 'सूरसारावली' और 'सूरसागर' में) शब्द, पद, अलंकार, भावाभिव्यंजन तथा विषय संबंधी अद्‌भुत समानता पायी जाती जाती है जो तीनों रचनाओं को एक ही कवि की कृति सिद्ध करती है[४]।

डा० मुंशीराम शर्मा का दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य' सन् १९५३ (संवत् २०१०) में प्रकाशित हुआ था। उसमें 'सारावली' की प्रामाणिकता-संबंधी निम्नलिखित कथन हैं—

१. 'सूर-सारावली' 'श्रीमद्‌भागवत' या 'सूरसागर' का सैद्धांतिक सार होते हुए भी एक स्वतंत्र ग्रन्थ है और एक विशिष्ट छंद मे, होली के गाने के रूप में लिखा गया है, जो हरि-लीला के ही अन्तर्गत आता है[५]।

२. 'सारावली' में कृष्णावतार की जो गाथा वर्णित है, उसका क्रम वैसा ही है, जैसा सूरसागर के अन्तर्गत है। कहीं-कहीं तो शब्द, पद तथा अलंकार दोनों ग्रन्थों मे ज्यों के त्यों, एक ही रूप तथा एक ही भाव को लिए हुए, रख दिये गये है। 'सारावली' के छंद ६७८ और ६७९ मे सूर्य, शिव और दुर्गा की पूजा का वर्णन 'सूरसागर' के दशम स्कंध में वर्णित शिव, सूर्यादि

१. 'सूर-सौरभ', द्वितीय भाग, पृ० २९।
२. वही, पृ० ३९।
३. वही, पृ० ४०।
४. वही, पृ० ४४।
५. 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य', पृ० ५४।

की पूजा के समान ही है। कथा-वस्तु और शैली से सम्बन्ध रखनेवाली ऐसी अनेक समानताएँ दोनो ग्रंथों मे दिखलाई जा सकती है जो अत्यन्त मार्मिक और तथ्यपूर्ण है। आत्म-विज्ञापन और मुखरता यदि 'सारावली' के कवि के व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखती है, तो वह 'सूरसागर' मे भी कम नही है। 'सारावली' मे कवि अपने सम्बन्ध मे मुखर है, तो 'सूरसागर' मे उसका इष्ट देव[1]।

३. यह सत्य है कि सारावली के कवि का ध्यान सिद्धान्त पक्ष की स्थापना की ओर विशेष रूप से है और वह सैद्धांतिक दृष्टिकोण को लेकर ही इसकी रचना मे प्रवृत्त हुआ है। 'चौरासी वार्ता' के अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सूरदास को 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' और 'श्रीमद्भागवत' की दशविध लीलाओ का उपदेश दिया था। 'सारावली' का निर्माण इन्ही लीलाओं का बोध कराने के लिए हुआ है[2]।

४. 'सारावली' और 'साहित्यलहरी' 'सूरसागर' के रचयिता की ही कृति है। शैली तथा कथावस्तु की भिन्नता कवि की विविधरूपा भाव-पद्धति एवं वाग्विदग्धता के कारण है[3]।

इन विचारो के अतिरिक्त, उक्त दोनो ग्रंथो मे डा. शर्मा ने अनेक स्थलो पर 'सारावली' के संबंध मे 'सूरदास' के लेखक डा. ब्रजेश्वर वर्मा और 'सूर-निर्णय' के लेखक श्री द्वारकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल के मतो के संबंध में अपने विचार भी लिखे हैं जिनका चर्चा प्रसंगानुसार की जायगी।

स्वयं डा० शर्मा ने 'सारावली' के संबंध मे जो कुछ ऊपर लिखा है, वह एक प्रकार से सामान्य परिचय अथवा निष्कर्ष-रूप मे है, प्रामाणिकता-संबंधी तर्क-रूप मे नही। इसकी पुष्टि 'सूर-सौरभ' के चौथे उद्धरण को छोड़कर उसके और 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य' के सभी अवतरणों से होती है। अधिक से अधिक उन्होंने केवल यह सिद्ध किया है कि 'सारावली' 'सूरसागर' से सर्वथा स्वतंत्र ग्रंथ है, उसका सार मात्र नहीं। उनका यह निष्कर्ष किसी भी प्रकार से 'सारावली' की प्रामाणिकता नहीं सिद्ध करता।

१. 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य', पृ० ५५।
२. वही, पृ० ५७।
३. वही, पृ० ४६०।

'सूर सौरभ' से उद्धृत चौथे कथन में अवश्य उन्होंने दो नयी बातें कहीं हैं—एक तो यह कि 'सूरसागर' का आरंभ ६७वें वर्ष में हुआ और दूसरे 'सारावली' का संपादन बाद में हुआ। प्रथम के संबंध में कुछ कहने के लिए यह स्थल उपयुक्त नहीं है और द्वितीय के संबंध मे इतना कहना ही पर्याप्त है कि सूरदास जैसे महाकवि द्वारा 'सारावली'-जैसी रचना पाँच-सात बैठको में ही रची जा सकती है; आगे-पीछे का कुछ अंश भले ही पहले या बाद मे लिखा गया हो, परंतु 'सूरसागर'-जैसा संकलन-कार्य 'सारावली'-जैसी रचना के लिए अपेक्षित ही नही हो सकता।

च. डा० दीनदयालु गुप्त—

डा० गुप्त ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ, 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय' के प्रथम भाग में 'सारावली' की प्रामाणिकता के संबंध मे निम्नलिखित तर्क दिये है—

१. यह ग्रंथ 'सूरसागर की एक प्रकार से भूमिका है। इसको हम 'सूरसागर' की केवल विषय-सूची ही नहीं कह सकते, जैसा कि कुछ विद्वानों ने कहा है। यह 'भागवत' तथा 'सूरसागर' की कथा का संक्षेप मे साराश है। ·· इसके लिखे जाने के समय तथा सूर द्वारा बनाये गये पदों की संख्या को सूचित करने वाले भी कुछ छंद इसमें आये है।···· ·· 'सूरसारावली' सूर-कृत एक प्रामाणिक रचना है[१]।

२. इस ग्रंथ ('सारावली') मे आरंभिक वंदना का पद कुछ पाठ-भेद से वही है जो 'सूरसागर' के आरंभ के वंदना के रूप मे है[२]।

३. इस ग्रंथ ('सारावली') में व्यक्त विचार वल्लभ-संप्रदायी विचारों से साम्य रखते है जिनका व्यक्तीकरण स्थान-स्थान पर 'सूरसागर' में भी हुआ है, जैसे अविगत, आदि, अनंत, अविनाशी, पूर्ण रस पुरुषोत्तम कृष्ण सदैव वृंदावन-धाम मे युगल रूप से आनंदमग्न रहता है, उसने खेल-खेल में ही अपनी लीला का विस्तार करना चाहा और उसने उसी क्षण सृष्टि रचना की आदि। वल्लभाचार्य जी ने सृष्टि-विकास मे २८ तत्व माने हैं। सत्, रज, तम, इन गुणो को उन्होंने प्रकृति के गुण न मानकर स्वतंत्र तत्व माना है। 'सारावली' मे भी २८ तत्वों का उल्लेख है[३]।

१. 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय', प्रथम भाग, पृ० २८४।
२. वही, पृ० २८५।
३. वही, पृ० २८५।

४. सूरदास ने युगल खेल की कल्पना अनेक प्रकार से व्यक्त की है—नृत्यवाद्य के साथ रास-क्रीड़ा में, यमुना की जलक्रीडा मे, श्रावण के हिंडोल-झूलन मे और होली के उन्मत रंग-रास में। 'सूर-सारावली' मे यह रस युगल की होली के रूप मे प्रकट हुआ है। होली खेलते खेलते पूर्णरस पुरुषोत्तम कृष्ण अपनी लीला का विस्तार करते है। सूरदास के वसंत और धमार के पद 'सूर-सागर' के अतिरिक्त, वल्लभ-संप्रदायी वर्षोत्सव कीर्तन तथा वसंत-धमार-संग्रहो मे बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। उनमे से अनेक पदों मे भी युगल की होली और फगुआ का वर्णन है[१]।

५. 'सूर सारावली' में वर्णित विषय बहुत संक्षेप मे व्यक्त है। इसलिए 'सूरसागर' के अनेक प्रसंगों का समावेश इसमे नहीं हुआ है।...... कुछ प्रसंग केवल 'भागवत' से साम्य रखते है, 'सूरसागर' से नहीं।...... 'सूरदास की इन दोनों रचनाओं मे प्रसंगों की कुछ विभिन्नता और भाव की घटा-बढी देख कर एक को सूर की रचना न मानना कुछ तर्क युक्त बात नहीं जँचती'' .. ..। इस प्रकार की विभिन्नता 'सारावली' को 'सूरमागर' से इतर एक स्वतंत्र रचना का रूप अवश्य देती है[२]।

६. इस ग्रंथ ('सारावली') मे भी कृष्ण की ऐश्वर्य-और रस, दोनों प्रकार की लीलाओं का संक्षेप मे वर्णन है, परंतु कृष्ण के ऐश्वर्य रूप पर बल अधिक है और 'सूरसागर' के प्राप्त पदों में कृष्ण के आनंद रूप (व्रज-रूप) पर है[३]।

७. 'सूरसागर' और 'सारावली' मे सांप्रदायिक भाव-साम्य के अतिरिक्त, कवि के आत्म विषयक कथनों में भी साम्य है। 'सारावली' मे कवि आत्मिक शांति-लाभ का भाव प्रकट करते हुए कहता है—आज मुझे गुरु के प्रसाद से इष्ट दर्शन हो रहे हैं। और मैं कर्म, योग, ज्ञान और उपासना के अनेक साधनों मे भ्रमता फिरा, परंतु मुझे शाति नहीं मिली। अ० श्री वल्लभाचार्य गुरु की कृपा से मैं आनंदमग्न हूँ और उसी आनंद मे हरि की लीला का गान करता हूँ। इसी प्रकार के गुरु-प्रसाद फल तथा आत्मिक शांति-लाभ के भाव 'सूरसागर' में भी प्रकट हुए है[४]।

१. 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', प्रथम भाग, पृ० २८५।
२. वही, पृ० २८५।
३. वही, पृ० २८५।
४. वही, पृ० २८५-८६।

८. 'सूरसारावली' मे कथा का रूप संक्षिप्त और वर्णनात्मक होने के कारण वह भावाभिव्यक्ति नहीं हुई है, जैसी 'सूरसागर' मे है। 'सूरसागर' मे भी जो लीलाएँ चौपाई छंद में गायी गयी है, उनमे भी भावपूर्ण शब्दावली का अभाव है। फिर भी 'सूरसारावली' मे भाषा का वही व्रज-रूप और लालित्य है, जो 'सूरसागर' मे है[1]।

६. 'सूरसागर' मे जो दृष्टकूट पद आये है, उनके अनुरूप भावो का दृष्टकूट शैली मे 'सूर-सारावली' में भी वर्णन है[2]।

१०. जिस प्रकार सूरदास ने 'सारावली' के गान का माहात्म्य वर्णित किया है, उसी प्रकार 'सूरसागर' मे भी कई कृष्ण-लीलाओं के तथा 'भागवत' के गान का माहात्म्य कवि ने कहा है[3]।

११. सूरदास के नाम की जो छापे जैसे सूर, सूरजदास, सूरज, सूरदास आदि 'सूरसागर' मे हैं, वे 'सूरसारावली' में भी है[4]।

१२. सूरदास के गुरु श्री वल्लभाचार्य थे, इस बात का उल्लेख भी इस ग्रंथ ('सारावली') मे स्पष्ट शब्दों मे है[5]।

१३. कुछ सज्जन यह तर्क देते है कि 'सूर सारावली' मे राधाकृष्ण, युगल-शृंगार और कवि के युगल-ध्यान का वर्णन है, वल्लभाचार्य जी ने तो उन्हें बालभाव की भक्ति सिखाई थी, इसलिए यह कृति किसी अन्य कवि सूर की है। लेखक के विचार से उनका यह तर्क भ्रान्त है। वल्लभाचार्य जी ने बाल, सख्य, दास्य और कान्ता, चारों भावों की भक्ति करने का उपदेश दिया है और उनसे सूर ने भी यही सीखा था। साधन की आरंभिक अवस्था के लिए आचार्य जी ने सूर को तथा अपने अन्य भक्तों को बालभाव की भक्ति का उपदेश दिया था। राधा कृष्ण की युगल भक्ति और ध्यान का प्रसाद भी उन्हें वल्लभाचार्य जी से ही मिला था। सम्प्रदाय मे इस भाव का उत्कर्ष श्री विट्ठल नाथ जी के समय में अवश्य बढ गया था। 'सूरसागर' मे चारों प्रकार की भक्ति और युगल-ध्यान के अनेक पद विद्यमान है[6]।

१. 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय', प्रथम भाग, पृ० २८६।
२. वही, पृ० २८८।
३. वही, पृ० २८८।
४. वही, पृ० २६०।
५. वही, पृ० २६०।
६. वही, पृ० २६०।

१४. चार-छह शब्दों को पकड़कर, जो संभवत: अब तक के छपे 'सूरसागरों' में नहीं मिलते, इस ग्रंथ ('सारावली') को सूर-कृत न कहना उचित नहीं है; प्रक्षिप्त शब्द और वाक्य सूर के सभी ग्रंथों मे हो सकते है। अतएव यह रचना ('सारावली') लेखक के विचार से सूर-कृत ही है[1]।

'सूर-सारावली' के संबंध में व्यक्त किये गये डा० गुप्त के उक्त विचारो से सबसे पहले तो यह स्पष्ट होता है कि सूर-साहित्य के विद्वानों में वे प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होने 'सारावली' का विधिवत् अध्ययन करके उसकी प्रामाणिकता के संबंध मे अपना मत व्यक्त किया था। इस दृष्टि से उनका मत सर्वथा मौलिक और प्रयास अभिनंदनीय है। उनके तर्कों में जो मुख्य बात दिखायी देती है, वह यह है कि उन्होने 'सारावली' और 'सूरसागर' के विषय और उनकी विचारधारा तथा शब्दावली की एकता का ही अधिकांशत: प्रतिपादन किया है। उनके एक, दो, चार, सात, नौ, दस, ग्यारह और बारह संख्यक तर्क इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। परंतु 'सूरसारावली' और 'सूरसागर' का यह साम्य दोनो ग्रंथों को एक ही कवि की रचना सिद्ध करने मे सहायक नहीं हो सकता। कारण यह है कि 'सूरसारावली' का रचयिता अपने काव्य के नाम को सार्थक सिद्ध करने के लिए स्वयं ही उसे ऐसा रूप देना चाहता है कि वह उस नाम की सार्थकता का निर्वाह कर सके। वस्तुत: उसका उद्देश्य है सूर के वल्लभ-सम्प्रदायी भक्तों के समक्ष सूर-साहित्य को ऐसे संक्षिप्त या सार-रूप में उपस्थित करना जिसका पाठ या पारायण वे सुविधानुसार कर सकें और प्रसन्न होकर, प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदास की एक अलभ्य रचना उसी कवि के नाम पर अथवा उसी के शब्दों में सहज ही सुलभ कर देने वाले को पर्याप्त पुरस्कार या दक्षिणा देकर संतुष्ट कर दें। इस उद्देश्य की सिद्धि 'सूरसागर' से 'सारावली' की समानता के अधिक से अधिक निर्वाह पर ही संभव हो सकती थी। यह कार्य इतने कौशल से संपन्न हुआ कि श्रद्धालु भक्तो की तो बात दूर, अनेक सुधी आलोचक तक उस लेखक का काइयाँपन भाँप न सके।

तीसरे तर्क में डा० गुप्त ने वल्लभ-संप्रदायी विचारों से 'सारावली' के विचारो की समानता बतायी है। इसका उद्देश्य भी वस्तुत: वही है।

शेष पाँच, छह, आठ और तेरह संख्यक तर्कों से डा० गुप्त ने दोनो

१. 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय', प्रथम भाग, पृ० २६०।

ग्रंथो के अंतर की ओर संकेत किया है। इन तर्कों मे विद्वान लेखक की निष्पक्ष आलोचक वृत्ति पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। पॉचवें तर्क मे बताया गया अंतर 'प्रसंगो की कुछ विभिन्नता और भाव की घटा-बढ़ी'—यो तो सामान्य बात है, जैसा कि स्वयं डा० गुप्त ने, "महात्मा तुलसीदास के 'रामचरित मानस' और 'कवितावली' अथवा 'गीतावली' के विषय एक होते हुए भी उनके विस्तार और प्रसंगो मे अनेक स्थलो पर विभिन्नता" की ओर सकेत किया है, परंतु यदि यह घटा-बढ़ी और विभिन्नता भिन्न आदर्शों और सिद्धांतो की द्यातक हो तो उसकी उपेक्षा कदापि नही की जा सकती। वस्तुत: 'सारावली' और 'सूरसागर' मे सिद्धांत और आदर्श-संबंधी ही विभिन्नता अधिकांश स्थलो पर मिलती है।

छठे तर्क मे स्वयं विद्वान लेखक ने 'सारावली'-कार को श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य-रूप का और 'सूरसागर'-कार को रस-रूप का गायक बताया है। दोनो ग्रन्थों में आदर्शों का यह अंतर भी उपेक्षणीय नही है। वल्लभ-संप्रदाय मे प्रवेश के क्षण से जीवन के अंत तक सूरदास श्रीकृष्ण के रस-रूप के उपासक रहे। उन्होने मथुरा-द्वारका-लीलाओ के ऐश्वर्य-रूप-वर्णन में अधिक रुचि नहीं ली। तब 'सारावली' में यह परिवर्तन कैसा और क्यो और वह भी सरसठ वर्ष की अवस्था मे जब प्राय निन्यानबे प्रतिशत व्यक्तियों की दृष्टि मे जीवन के इने-गिने ही दिन शेष रह जाते हैं।

तेरहवें तर्क का अंतर अवश्य सामान्य है। अब रह जाता है केवल आठवॉ तर्क जिसमें 'सारावली' में 'सूरसागर'-जैसी भावाभिव्यक्ति न मिलने का कारण उसका वर्णनात्मक होना बताया गया है। इस संबंध में आगे विस्तार से लिखा जायगा।

छ. आचार्य रामचंद्र शुक्ल—

आचार्य शुक्ल जी के नाम से 'सूरदास' नामक एक पुस्तक का प्रकाशन सन् १९४८ (संवत् २००५) मे हुआ था जिसके संपादक श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र हैं। इस पुस्तक में 'सारावली' के संबंध मे निम्न-लिखित कथन मिलते हैं—

१. तबसे वे (सूरदास) बराबर गोवर्द्धन पर्वत पर ही मंदिर की सेवा मे रहा करते थ, इसका स्पष्ट आभास उनकी 'सूरसारावली' के भीतर मौजूद है[1]।

१. 'सूरदास' (शुक्ल), पृ० ११८।

२. 'सूरसागर' समाप्त करने पर सूर ने जो 'सूरसागर-सारावली' लिखी है उसमें अपनी अवस्था ६७ वर्ष की कही है—

गुरु-परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रबीन।

तात्पर्य यह कि ६७ वर्ष के होने के कुछ पहले वे 'सूरसागर' समाप्त कर चुके थे। 'सूरसागर' समाप्त होने के थोड़ा ही पीछे उन्होने 'सारावली' लिखी होगी[1]।

शुक्ल जी के उक्त दोनो कथन 'सारावली' की प्रामाणिकता-संबंधी तर्क नहीं हैं, उसे सूरदास की प्रामाणिक रचना मानकर निकाले गये सामान्य निष्कर्ष हैं। हाँ, 'सूरसागर' की समाप्ति-संबंधी उनका मत पाठक को कितने आश्चर्य मे डालता है जब वह डा० मुंशीराम शर्मा द्वारा उस ग्रंथ का आरंभ ६७ वर्ष की अवस्था में होना पढ़ता है और आचार्य शुक्ल द्वारा उसी अवस्था में उसका समाप्त होना।

ज. डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल—

डा० बड़थ्वाल ने सूरदास की जीवन-सामग्री को लेकर एक छोटी सी पुस्तक लिखी थी जो डा० भगीरथ मिश्र के संपादकत्व मे प्रकाशित हुई है। 'सारावली' के संबध उसके निम्नलिखित वाक्य उल्लेखनीय हैं—

१. 'सूरसारावली' मे स्वयं सूरदास जी कहते है कि वल्लभाचार्य जी ने उन्हे तत्व सुनाकर लीला का भेद बताया—

श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो, लीला भेद बतायो—११०२[2]।

२. ६७ वर्ष की अवस्था में उन्होने (सूरदास ने) अपनी रचनाओं का सार खीच कर 'सूरसारावली' बनायी जिसमे उन्होंने एक लक्ष पद रचने की बात कही है—

ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष पद बंद।

.... खो जाने के डर से उन्होंने (सूरदास ने) 'सूरसारावली' नाम से उनका केवल एक संक्षेप अथवा सूचीमात्र बनायी थी[3]।

३. सूरदास के सब पदों का न मिलना भी इस बात का द्योतक है कि

१. 'सूरदास' (शुक्ल), पृ० ११६।
२. 'सूरदास' (बड़थ्वाल), पृ० ३३।
३. वही, पृ० ५२।

स्वयं सूरदास जी ने उनका संग्रह नहीं किया। इस काम को बहुत भारी समझकर ही शायद 'सूरसारावली' की रचना की गयी हो[१]।

४. 'सूरसागर' और 'सूरसारावली' मे इसके ('साहित्यलहरी' के) पदों के न मिलने से यह अनुमान न लगाना चाहिए कि इसकी रचना 'सूर-सारावली' के पीछे हुई है[२]।

५. 'सूरसारावली' की रचना सूरदास जी ने ६७ वर्ष की अवस्था मे की ··· · ········। 'सूरसारावली' को सूरदास जी ने होली-लीला के रूप मे बनाया है।··· ··· · इस ग्रंथ मे सारी सृष्टि की होली के खेल-रूप मे कल्पना की गयी है[३]।

डा० बड़थ्वाल के उक्त सभी तर्क सूचित करते हैं कि वे 'सारावली' को प्रामाणिक मानकर ही चले थे और उन्होने 'सूरसागर' और 'सारावली' से मिलान करके उसका अध्ययन नहीं किया था।

डा० बड़थ्वाल के उक्त ग्रंथ मे उसके विद्वान संपादक डा० भगीरथ मिश्र ने भी एक स्थान पर 'सारावली' के संबंध मे अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—

'सूरसारावली' रचना-शैली, भाव और विचार-पद्धति तीनों की दृष्टि से ही सूरदास की रचना है और 'सूरसागर' की भूमिका के रूप मे है। इसमे 'सूरसागर' की कथा का आधार, संक्षेप मे, अविच्छिन्न कथा-प्रवाह के साथ किया गया है। सूर ने, स्वयं अपनी रचना का संग्रह न कर सकने के कारण, उनके प्रसंगो के निर्देश एवं भाव वर्णन के सार को एक स्थान मे देने के उद्देश्य से इसकी रचना की थी। यह 'मूलरामायण', 'मूल भागवत' आदि की पद्धति पर लिखी जान पड़ती है[४]।

इस कथन के संबंध मे भी हमे तो अपना उक्त मत ही ठीक जान पड़ता है।

१. 'सूरदास' (बडथ्वाल), पृ० ५२।
२. वही, पृ० ५५।
३ वही, पृ० ५६।
४. वही, पृ० ५३ की पाद-टिप्पणी।

म. श्री द्वारकादास परीख और श्री प्रभुदयाल मीतल—

'सारावली' की प्रामाणिकता सिद्ध करने वालों में सबसे ऊँचा स्वर 'सूर-निर्णय' के उक्त दो विद्वान लेखकों का है जिन्होंने उसको अप्रामाणिक मानने वालों के तर्कों का सप्रमाण खंडन करने का प्रयत्न किया है। 'सारावली' के संबंध मे भी सबसे अधिक काम मीतल जी का है, क्योंकि उन्होंने 'सूर-निर्णय' के पश्चात् 'सारावली' का भी एक संस्करण प्रकाशित किया है। इन दोनों ग्रंथों में उसकी प्रामाणिकता को लेकर दो प्रकार के विचार उक्त लेखकों ने व्यक्त किये हैं—एक तो उसे अप्रामाणिक मानने वालों के विचारों का खंडन करने के लिए और दूसरे, उसकी प्रामाणिकता की पुष्टि के लिए। यहाँ मुख्यत: दूसरे विषय से संबंधित उनके विचार ही उद्धृत किये जा रहे हैं। 'सूर-निर्णय' के द्वितीय संस्करण में व्यक्त उक्त लेखकों के निम्नलिखित वक्तव्य उल्लेखनीय है—

१. 'सारावली' सूरदास के सवा लाख अथवा लाख पदों का सूचीपत्र नहीं है।' ·· 'अब यह प्रश्न उठता है कि जब 'सारावली' 'सूरसागर' का सूचीपत्र-रूप नहीं है तो 'ताकौ सार सूर सारावली' का अर्थ क्या हो सकता है? 'सारावली' के गंभीर और सागोपाग अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि यहाँ 'सार' का अभिप्राय 'सैद्धान्तिक तत्व रूप' से है, अर्थात् सूरदास ने जिन कथात्मक और सेवात्मक हरि-लीलाओं का वर्णन सं० १६०१ तक किया था, उन्हीं के सैद्धातिक तत्व रूप से उन्होंने 'सारावली' की रचना की है[1]।

२. 'सारावली' के कर्त्ता सूरदास थे, इस बात का ज्ञान··· ···· 'सारावली' में प्राप्त सूर, सूरज आदि उपलब्ध छापों से होता है। 'सारावली' की भाषा सूरदास के 'सूरसागर' और उनके अन्य पदों की भाषा से·· ·······मिलती है[2]।

३. (अ) सूरदास श्री वल्लभगुरु के शरण मे आने के पूर्व कर्म-ज्ञानादि मे विश्वास करते थे।

(आ) किंतु जब श्री बल्लभ गुरु ने उनको तत्व सुनाकर लीला-भेद को समझाया, तब वे अपने पूर्व विश्वास को भ्रम समझने लगे और तभी से उन्होंने उस लीला का गायन किया जिसका सार (सैद्धातिक तत्व-रूप) यह 'सारावली' है।

१. 'सूरनिर्णय', पृ० १११।
२. वही, पृ० ११२।

'सारावली' के इन कथनों की क्रमश: पुष्टि सूरदास के अंत:साक्ष्यों से ... ''होती है[1]।

४. महाप्रभु ने लीला-भेद से 'भागवत' के द्वादश स्कंधो का अर्थ 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के उपदेश के द्वारा सूरदास के हृदय मे स्थापित किया था। इसी के अनुसंधान से सूरदास ने 'श्री मद्भागवत' को दो प्रकार से गाया था। एक द्वादश स्कंधात्मक कथा रूप से, जिसको 'सूरसागर' कहते है और दूसरे उसके सिद्धातात्मक सर्गादि दशविध लीलाओं के सार-तत्व-रूप से, जिसको उन्होंने 'सारावली' नाम दिया है। । 'सारावली' 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर की गयी होने से उसमे उन लीलाओ के अनुकूल और पोषक अन्य पुराणादि की कथाओं का भी समावेश हुआ है[2]।

५. महाप्रभु ने सूरदास को 'श्रीमद्भागवत' के 'तत्व-रूप' 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' को सुनाकर 'श्री मद्भागवत' और उसकी दशविध लीलाओ के भेद को समझाया था। उसी ज्ञान के आधार पर सूरदास ने समस्त 'भागवत' और तदनुकूल अन्य पुराणान्तरों के तत्वलीला विषयक सहायक कथाओं को भी श्रीनाथ जी की पद-वंदना कर गायन किया है। ये कथाएँ महाप्रभु द्वारा 'सूर-सागर' के नाम से प्रसिद्ध हुईं और इन्हीं लीलाओं-कथाओं के सैद्धांतिक तत्व सार-रूप से उन्होंने 'सूरसारावली' को गाया था; अत: इन दोनों का मुख्य आधार 'भागवत' होते हुए भी इन दोनों की रचनाओ के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न थे[3]।

६. महाप्रभु ने 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' मे 'श्रीमद्भागवत' की स्पष्ट और अस्पष्ट सभी लीलाओं को उनके तत्व-रूप एक हजार पचहत्तर नामों से प्रकट किया है। इसलिए 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' को महाप्रभु ने 'भागवत-सार-समुच्चय' कहा है। सूरदास ने भी इसी 'सहस्रनाम' के आधार पर अपने 'सूरसागर' की लीलाओं, कथाओं के सारतत्व रूप इस 'सारावली' की रचना की है। इसलिए 'भागवत' की गूढ़ लीलायें भी, जो 'द्वादश स्कंधों के कथात्मक' 'सूर-सागर' में स्पष्ट रूप से वर्णित नही है, 'सारावली' में स्पष्ट हुई है[4]।

१. 'सूरनिर्णय', पृ० १२०।
२. वही, पृ० १२४।
३. वही, पृ० १२६।
४. वही, पृ. १२६।

७. जिस प्रकार महाप्रभु ने 'भागवत' के सार-रूप 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' को 'भागवत-सार-समुच्चय'-रूप कहा है, उसी प्रकार सूरदास ने 'सूरसागर' के सार रूप इस ग्रंथ को 'सारावली' कहा है। इस प्रकार 'सारावली' नाम भी 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के 'सार-समुच्चय' नाम पर ही आधारित है[1]।

८. इस प्रकार ३५ तुकों से श्रीकृष्ण की सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण और ऊति ऐसी पाँच लीलाओं को तत्वरूप से सूरदास ने 'सारावली' में गाया है। तत्वरूप से इसलिए कि उनमे तत्वकथाओं का विस्तार नही किया गया है। इसका कारण यह है कि ये कथाएँ विस्तार से सूरसागर मे कही जा चुकी हैं, अत: यहाँ पर उनको तत्वरूप से कहा गया है[2]।

९. महाप्रभु ने 'वाल्मीकि रामायण' और 'महाभारत' को भी शास्त्र रूप मे प्रमाण माना है, इसलिए इन दोनों ग्रंथों की विशेष कथाओं को भी 'सारावली' मे गाया गया है[3]।

१०. 'सारावली' के रचयिता अष्टछाप के सूरदास ही थे। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि महाप्रभु जी ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना सूरदास के लिए की थी; अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी के लिए नही, जैसा कि कुछ विद्वानों का मत है। 'सूरसागर' के तात्विक सार रूप होने के कारण 'सारावली' सूरदास की स्वतंत्र रचना सिद्ध होती है, क्योंकि 'सूरसागर' और 'सारावली' के दृष्टिकोण भिन्न है[4]।

११. गो० विट्ठलनाथ जी ने इस कलियुग मे कृष्णलीलाओं को सेवा-प्रणाली द्वारा साक्षात् कर दिखाया था, इसीलिए सूरदास ने गाया कि 'गुरुप्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।' अर्थात् महाप्रभु और विट्ठलनाथ जी के प्रसाद से ही आज मुझे अपनी सरसठ वर्ष की आयु में यह संपूर्ण साक्षात्कार की भावनाओं वाली सेवा की नित्य और वर्षोत्सवों की लीलाओ के दर्शन हो रहे है। इन लीलाओं के समझने मे सूरदास उस समय 'प्रवीन' हो चुके थे, अत: उन्होंने अपने लिए 'प्रवीन' शब्द का भी प्रयोग किया है। इन लीला-भावनाओं के ज्ञान मे प्रवीणता की नितान्त आवश्यकता है, क्योकि जब तक लीला-भेद नही जाना जाय, तब तक इन भावनाओं का वास्तविक

१. 'सूरनिर्णय', पृ १२६-२७।
२. वही, पृ. १३१।
३. वही, पृ. १३१।
४. वही, पृ. १३२।

ज्ञान भी नही हो सकता है। इसी महत्ता को प्रकट करने के लिए सूरदास जी ने शिव जी का दृष्टान्त भी दिया है कि अनेक विधानों से बहुत दिनों तक तप करने पर सर्वदा भक्त शिरोमणि शिव जी ने भी इस लीला का पार नहीं पाया है, अर्थात् उनको भी इसका अनुभव नहीं हुआ है। शिव जी को भी यह लीला दुर्लभ है, इस बात को सूरदास ने रामचरित्र आदि कई स्थानों पर अन्यत्र भी कहा है[१]।

१२. सूरदास की बड़ी-बड़ी सभी रचनाओं में जिस प्रकार फलश्रुति मिलती है, इसी प्रकार इसमे भी, इससे भी इसकी प्रामाणिकता की पुष्टि होती है[२]।

१३. इस रचना की विशिष्टता यह है कि 'सारावली' के प्रारंभ में जिस 'अविगत आदि अनंत अनूपम' स्वरूप और उसके नित्य अलौकिक विहार का संकेत किया गया है, उसी स्वरूप और विहार के वर्णन का अंत मे भी उसमे मिलान किया है। जैसा कि—

सदा 'एक' रस 'एक अखंडित' 'आदि', 'अनादि', 'अनूप'।
कोटि कल्प बीतत नहि जानत बिहरत जुगल स्वरूप—१०९९।

इसी प्रकार होरी के वर्णन की भी समाप्ति इस प्रकार की है—

'संकर्षन के बदन अनल तें उपजी अग्नि अपार।
सकल ब्रह्मांड तुरत तेज सो मानों होरी दई पजार—११००।

यहाँ उत्पत्ति, पालन और प्रलय करने वाले 'आश्रय' स्वरूप ब्रह्म का वर्णन समाप्त होता है।

इसी प्रकार शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का भी अंत में सूचन इस प्रकार किया गया है—

सकल तत्व ब्रह्माड देव पुनि माया सब बिधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण 'सबहि अंस' गोपाल—११०१।

इस प्रकार सारावली का प्रारंभ और अंत एक सा है। इससे कवि की काव्य-निपुणता भी प्रकट होती है। ऐसी रचना सूर के सिवाय और कोई नहीं कर सकता [३]।

१. 'सूरनिर्णय', पृ. १३९-४०।
२. वही, पृ. १४१।
३. वही, पृ. १४१-४२।

१४. सारावली में जगत् की उत्पत्ति का वर्णन होरी की लीला के रूपक से किया गया है। इसका रहस्य यह है कि होरी मे जिस प्रकार ऊँच-नीच का भेद तथाच किसी प्रकार की संकुचित भावना नही रहती है, उसी प्रकार इस सृष्टि के खेल मे सभी से सभी प्रकार का खेल ईश्वर करता है, इसमें सब एक रस खेल होता है, इसीलिए यह सारा जगत ईश्वर का होरी के खेल रूप में है।

इस प्रकार यह सारावली अष्टछाप के सूरदास की ही रचना सिद्ध होती है, और उसमे बड़ा भारी तत्व ज्ञान भरा हुआ है[1]।

'सूर-निर्णय' से उद्धृत उक्त कथनो मे सिद्ध किया गया हे कि 'सारावली' है तो वस्तुत: सूरदास की ही प्रामाणिक रचना, परंतु उसका दृष्टिकोण भिन्न है और कवि ने उसको मुख्यत: महाप्रभु के 'पुरुषोतम सहस्रनाम' के आधार पर रचा था, इस प्रकार यह सूरदास की स्वतंत्र कृति कही गयी है। अपने कथन की पुष्टि में उक्त ग्रंथ में लेखकों ने पर्याप्त उदाहरण भी दिये हैं। जहाँ तक 'सारावली' के विषय का प्रश्न है उसको संदिग्ध या अप्रामाणिक माननेवाला कोई लेखक उसे 'सूर-साहित्य' का सार या सूची नही मानता, स्वतंत्र ग्रंथ ही कहता है, उसको सूची या सार तो उन्हीं लेखको ने कहा है जो वस्तुत: 'सूर-सागर' से उसकी विषय-वस्तु का मिलान किये बिना ही 'सारावली' नाम या उसके साथ प्रकाशित प्रथम पंक्ति को सत्य मान बैठे थे। श्री परीख और मीतल जी ने 'सारावली' के आधार की सूचना देकर उनके भ्रम का निवारण कर दिया; परंतु ऐसा करके उन्होने वस्तुत: भ्रम का जो आवरण अब तक दूसरो के सामने था, अपने सामने भी खींच लिया। जो हो, उनके निष्कर्षों की कुछ बाते अवश्य विचारणीय हैं। उदाहरण के लिए ऊपर उद्धृत पहले कथन में वे 'सारावली' को संपूर्ण 'सूरसागर' का न सार मानते हैं और न सूचीपत्र; उनकी सम्मति मे 'सारावली' में सूरदास द्वारा संवत् १६०१ तक वर्णित हरि-लीलाओ का 'सैद्धांतिक तत्व-रूप' है। परंतु वास्तविकता यह है कि 'सारावली' के ११०७ छंदो मे से लगभग १००० छंदों मे जो-कुछ कहा गया है, वह सब 'सूरसागर' मे मिल जाता है, उसका केवल ग्यारहवाँ अंश ऐसा है जिसका वर्ण्य विषय 'सूरसागर' के अनुसार नहीं है। दूसरी बात यह है कि केवल १०-१५ छंदो को छोड़कर

१. 'सूरनिर्णय', —पृ. १४२।

सारी 'सारावली' मे 'सैद्धांतिक तत्व-रूप' की तो बात दूर, तत्व की भी कोई बात नहीं है। तब 'सारावली' वस्तुत: 'सूचीपत्र' नहीं तो और क्या है और 'सूचीपत्र' भी कैसा ? कच्चा और अधूरा।

दूसरे कथन में वे कहते हैं कि 'सारावली' के कर्ता सूरदास थे, इस बात का ज्ञान जिस प्रकार 'सारावली' मे प्राप्त सूर, सूरज आदि उपलब्ध-छापों से होता है, उसी प्रकार उसकी भाषा आदि से भी होता है। इस कथन की पुष्टि में 'सारावली' और 'सूरसागर' की भाषा का मिलान करते हुए सात-आठ पृष्ठो में अनेक उदाहरण दिये गये हैं जिनमें भावों की एकता की बात तो अलग, शब्द और वाक्यांश तक एक ही हैं। विचारणीय यह है कि एक ही कवि के दो स्वतंत्र ग्रंथो मे सौ से भी अधिक ऐसी पंक्तियाँ मिलना, जिनमे शब्दावली भी दोहरायी गयी हो, क्या महाकवि सूर की प्रतिभा के अनुरूप है ?

तीसरे उदाहरण मे कुछ बातो की जो पुष्टि अंत:साक्ष्यो द्वारा होने की बात कही गयी है, उससे भी 'सारावली' की प्रामाणिकता नहीं पुष्ट होती; क्योंकि उसके रचयिता का प्रयास ही वैसी बातें लिखकर अपनी कृति को विश्वास-योग्य बनाने का था; हाँ, उससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि उसे सुधी आलोचको तक को भरमाने मे पूरी सफलता मिल गयी।

इसी प्रकार चौथे उद्धरण मे वे कहते हैं कि 'सारावली' 'पुरुषोतम सहस्रनाम' के आधार पर की गयी होने से उसमे उन लीलाओं के अनुकूल और पोषक अन्य पुराणादि की कथाओ का भी समावेश हुआ है; और आगे उन्होंने कहा है कि महाप्रभु ने 'वाल्मीकि रामायण' और 'महाभारत' को भी शास्त्र रूप मे प्रमाण माना है, इसलिए इन दोनो ग्रंथों क विशेष कथाओ को भी 'सारावली' में गाया (गया)। इस संबंध में क्या यह बात विचारणीय नहीं है कि 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम', 'वाल्मीकि रामायण', 'महाभारत' आदि के सिद्धांतो का सार तो 'सारावली' मे संकलित करने योग्य था, क्योकि यह भी सैद्धातिक रचना है, परंतु उनकी दो-चार कथाओं को पद-बंद कर देने मात्र से उनके सिद्धांतो का सार 'सारावली' मे किस प्रकार संचित कर लिया गया ?

मीतल जी के पहले तर्क के उत्तर में जो कुछ ऊपर कहा गया है, उसमे उनके पाँचवें, छठे और सातवें तर्कों का भी समाधान हो जाना चाहिए। इस प्रसंग में आगे विस्तार से लिखा जायगा। आठवें उद्धरण

में 'सारावली' की कुछ कथाओं को संक्षिप्त रूप में दिये जाने का कारण बताते हुए 'सूर-निर्णय'-कार लिखते हैं कि ये कथाएँ विस्तार से 'सूरसागर' में कही जा चुकी हैं, अतः यहाँ पर (अर्थात् 'सारावली' में) उनको तत्व रूप से कहा गया है । तब जो महत्वपूर्ण और महत्वहीन कथाएँ 'सूरसागर' में विस्तृत या संक्षिप्त रूप मे मिलती हैं, उन्हीं को पुनः विस्तार से 'सारावली' मे लिखने का कारण क्या है ?

नवे तर्क मे मीतल जी ने 'वाल्मीकि रामायण' और 'महाभारत' की विशेष कथाओ को 'सारावली'-कार द्वारा अपनी कृति मे सम्मिलित कर लिये जाने की बात कही है । इस सम्बन्ध मे निवेदन है कि इन ग्रंथो की तो बात दूर, 'सारावली'-कार ने 'श्रीमद्भागवत' तक का अध्ययन नही किया था; उसको सस्कृत का कोई ज्ञान नही था । हॉ, कथा-प्रवचन उसने अवश्य सुने थे सो भी दस-पॉच ही, अधिक नहीं । उनसे जो कुछ पल्ले पड़ा वही किसी प्रकार उसने, अपनी बुद्धि और योग्यता के अनुसार छद-बद्ध कर लिया । अब कोई आलोचक 'सारावली' के ऐसे अंशो का आधार समस्त संस्कृत वाङ्मय को कहना चाहे, तो इस स्वतंत्र देश मे वह वैसा करने के लिए स्वतंत्र है । यो, हमारी सम्मति मे तो आधार की बात सोदाहरण कहनी चाहिए और उदाहरण भी वैसे हो जैसे 'सूर-निर्णय'-कारो ने सम्मिलित रूप से और मीतल जी ने स्वतंत्र रूप से 'सूरसागर' और 'सारावली' मे आश्चर्यजनक समानता दिखाने के लिए उद्धृत किये हैं । 'अवतारो' की कथा किस शास्त्र या पुराण में नहीं है ? यदि वही कथा 'सारावली' मे भी है तो समस्त शास्त्रो और पुराणों को उसका आधार बता देना क्या किसी भी दृष्टि से उपयुक्त कहा जा सकता है ?

दसवें तर्क मे 'सारावली' की प्रामाणिकता की पुष्टि करनेवाली कोई बात नही है । ग्यारहवे उद्धरण में लिखा गया है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा दिखायी गयी कृष्णलीलाओं के समझने मे सूरदास उस समय (अपनी सरसठ वर्ष की अवस्था में) 'प्रवीन' हो चुके थे, अतः उन्होने अपने लिए 'प्रवीन' शब्द का प्रयोग किया है, इन लीला-भावनाओं के ज्ञान मे प्रवीणता की नितांत आवश्यकता है, क्योंकि जब तक लीला-भेद नहीं जाना जाय, तब तक इन भावनाओं का वास्तविक ज्ञान भी नहीं हो सकता । परंतु 'प्रवीन' की यह व्याख्या लिखते समय 'सूर-निर्णय'-कारों को 'सारावली' की यह पंक्ति 'कछु संक्षेप सूर अब बरनत लघुमति

दुरबल बाल'[1] क्यो नहीं स्मरण आयी ? अथवा उन्होंने यह मान लिया है कि 'सारावली' का आरभ 'लघुमति दुरबल बाल' ने किया और अंत 'प्रबीन' ने ? अथवा एक स्थान पर 'प्रबीन' लिखने की भूल कर जाने की बात सोचकर 'प्रभु हौं सब पतितनि पतितेस' कहने वाला सूर 'लघुमति दुर्बल बाल' कहकर, अपनी विनम्रता सूचित करके, उक्त अपराध का प्रायश्चित किया चाहता है ? इसी प्रसंग मे 'सूर-निर्णय' में यह भी लिखा गया है[2] कि सूरदास अपने को अन्य स्थानो मे भी प्रवीन, चतुर, सुजान आदि कहते हैं, यथा—

ब्रज बधू बस कियौ मोहन, सूर चतुर, सुजान ।

'सूर-निर्णय' के विद्वान लेखको ने यहाँ 'चतुर' और 'सुजान' शब्द 'सूर' के विशेषण समझे है । ये विशेषण 'सूर' के है या मोहन' के ?

बारहवे उद्धरण मे कहा गया है कि सूरदास की बड़ी बड़ी सभी रचनाओ मे जिस प्रकार फलश्रुति मिलती है, उसी प्रकार 'सारावली' मे भी है। सूरदास की ये 'बड़ी-बड़ी सभी रचनाएँ' कौन सी है और कितनी है ? एक-दो रचनाओ के लिए तो इस प्रकार का वाक्य लिखना उचित नही जान पड़ता ।

तेरहवें तर्क मे बड़ी रोचक बात कही गयी है—'सारावली' का आरंभ और अंत एक सा होने से जैसी काव्य-निपुणता प्रकट होती है, वैसी रचना सूर के सिवाय और कोई नही कर सकता । इस प्रकार समस्त काव्य-प्रतिभा की बपौती एकाको सूरदास के नाम लिखी गयी है । इस अद्भुत तर्क के संबंध में कुछ न कहकर हम 'निर्णय'-कारो से इतना ही जानना चाहते है कि सारावली की २२१४ पंक्तियो का क्या ऐसा दशमांश भी वे उद्धृत कर सकते हैं जो कवि सूर की काव्य-प्रतिभा के अनुरूप हो अथवा जिससे उनकी कवि-महिमा अक्षुण्ण रहे ? हमारी सम्मति मे दशमांश की तो बात दूर, चालीसवाँ अंश भी 'सारावली' का ऐसा नहीं है जिसको महाकवि सूर के नाम पर किसी भी काव्य-मर्मज्ञ के सम्मुख उद्धृत किया जा सके ।

'सूर-निर्णय'-कारो का अंतिम तर्क 'सारावली' की प्रामाणिकता का समर्थन नही करता, यद्यपि उन्होने निष्कर्ष वही निकाल लिया है ।

१. 'सारावली', छंद ११०७ ।
२. 'सूर निर्णय', पृ. १४० ।

ञ. श्री प्रभूदयाल मीतल—

'सूर-निर्णय' के पश्चात् श्री प्रभुदयाल मीतल ने 'सूर-सारावली' का संपादन सन् १९५७ (संवत् २०१४) मे किया जिसकी भूमिका में उन्होंने इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता पर विस्तार से विचार किया है और इसके बहिरंग और अंतरंग की सूक्ष्म परीक्षा की है। 'सारावली' की भूमिका में मीतल जी ने उसकी प्रामाणिकता संबंधी जो तर्क दिये हैं वे इस प्रकार हैं—

१. 'सारावली' के १००२ और ११०२ संख्यक छंदों में सूरदास की ६७ वर्ष की आयु का उल्लेख है तथा उनके गुरु श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा उनके भ्रम का निवारण कर उन्हे तत्व सुनाने और लीला - भेद बतलाने का वर्णन है। ये उल्लेख सूरदास जी के जीवन-वृत्तान्त के अन्वेषण के लिए बडे महत्वपूर्ण समझे गये हैं। इसीलिए अधिकांश आलोचकों ने इन उल्लेखों के कारण 'सारावली' को सूरदास की प्रामाणिक रचना स्वीकार किया है। उन्होंने इनके आधार पर सूरदास के जीवन-वृत्तांत के संबंध मे कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले है[1]।

२. 'सूरसागर' की रचना उनके (सूरदास के) जीवन के अंतिम काल तक होती रही। वार्ता-साहित्य से भी इसी कथन की पुष्टि होती है। सूरदास का देहावसान सं० १६४० के लगभग हुआ था। यदि 'सारावली' को सूरदास कृत लाख-सवा लाख पदो वाले 'सूरसागर' का सारात्मक सूचीपत्र माना जावे, तब उसका रचना-काल भी सं० १६४० से पूर्व का नही हो सकता। उस समय सूरदास की आयु १०५ वर्ष के लगभग थी। वल्लभ संप्रदाय के इतिहासानुसार 'सारावली' का रचना-काल सं० १६०२ है। तब तक सूरदास-कृत लाख-सवा लाख पद-रचना का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है। ऐसी दशा में 'सारावली' को एक लाख पदों के 'सूरसागर' का सूचीपत्र बतलाना अत्यत भ्रमात्मक है[2]।

३. सेवा की इस नवीनता और अद्भुतता के कारण वल्लभ-संप्रदाय मे माधुर्य-भक्ति पूर्ण जिस निकुञ्ज भावना का समावेश हुआ, उसका विवेचन श्री विट्ठलनाथ जी ने अपने 'शृंगार-रस-मंडन' और 'निकुञ्ज-विलास' ग्रंथों में

१. 'सूर-सारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० १८।
२. वही, पृ० २०-२१।

किया है। सूरदास जिस निकुंज-लीला के दर्शनों की अभिलाषा इतने दिनों से कर रहे थे, वह गुरु-प्रसाद से उनकी ६७ वर्ष की आयु मे पूर्ण हुई थी। यहाँ पर वल्लभाचार्य जी की अपेक्षा विट्ठलनाथ जी के लिए गुरु शब्द का प्रयोग होने से कोई भ्रम नही होना चाहिए। कारण यह है कि सूरदास वल्लभाचार्य जी और विट्ठलनाथ जी मे कोई भेद नही मानते थे। वे गोसाईं जी में भी गुरु-भाव से ही श्रद्धा रखते थे, जैसा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से ज्ञात होता है।

सूरदास की ६७ वर्ष की आयु सं० १६०२ मे हुई थी, अतः यही संवत् 'सारावली' का रचनाकाल कहा जा सकता है[१]।

४. इस प्रकार कवि छापों का अनुपात भी 'सूरसागर' के विरुद्ध नही है, बल्कि इससे 'सारावली' की प्रामाणिकता ही सिद्ध होती है[२]।

५. 'सूरसागर' और कीर्तन के पदों से 'सारावली' के पाठ का मिलान करने पर भाव, भाषा और शैली संबंधी आश्चर्यजनक समानता दिखलाई देती है[३]।

६. दोनों ('सारावली' और 'सूरसागर') के कथा-प्रसंग, मार्मिक स्थल, रस-संचार और काव्यगत दृष्टिकोण में भी पर्याप्त समानता है। 'सारावली' की साम्प्रदायिक मान्यता भी 'सूरसागर' के अनुकूल है। यह लिखा जा चुका है कि 'सारावली' होली के बृहद्गान के रूप मे कथित रचना है। होली-गान का वही रूप 'सूरसागर' और कीर्तन के अनेक पदों मे भी विद्यमान है। दोनों में एक मास तक चलने वाले होली-उत्सव, 'फगुवा', होली-खेल के आवश्यक साधन और गान वाद्य की सामग्री में भी समानता है। इन सब बातों से ये रचनाएँ एक ही कवि की सिद्ध होती है[४]।

इस आश्चर्यजनक समानता से यही सिद्ध होता है कि दोनों रचनाएँ एक ही कवि की है[५]।

७. वार्ता से ज्ञात होता है, सूरदास को शरण में लेते समय आचार्य जी ने सर्वप्रथम उन्हें 'नाम' सुनाया, अर्थात् अष्टाक्षर मंत्र से दीक्षित किया; फिर

१. 'सूर-सारावली' (मीतल), पृ० २४।
२. वही, पृ० २७।
३. वही, पृ० ३१।
४. वही, पृ० ३१।
५. वही, पृ० ४३।

उनसे 'समर्पन' करवाया, अर्थात् परब्रह्म श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए संसार की अहंता-ममता का त्याग करा दीनतापूर्वक उनके चरणों मे आत्म-समर्पण कराया। इसके उपरान्त उनको 'भागवत-दशमस्कंध' की अनुक्रमणिका सुनाई। आत्मसमर्पण से सूरदास को नवधा भक्ति सिद्ध हुई। दशमस्कंध की अनुक्रमणिका से उन्हे प्रेमलक्षणा की प्राप्ति हुई। इस प्रकार नवधा भक्ति का यह 'तत्व' सूरदास को श्री वल्लभाचार्य जी से प्राप्त हुआ था।

वार्ता मे आगे लिखा गया है,—"ता पाछै श्री आचार्य जी ने सूरदास कूँ 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायौ। तब सगरे 'श्रीभागवत' की लीला सूरदास के हृदय मे स्फुरी।" वल्लभाचार्य जी ने 'श्रीमद्भागवत' के सार-रूप से 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना की है। इसमे 'भागवत्' के स्कंधानुक्रम से भगवान श्रीकृष्ण के शुद्धाद्वैत सिद्धात प्रतिपादक एक सहस्र नामो का उल्लेख है। ये नाम 'भागवत' की दशविध लीलाओ के सूचक है, अत: 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' मे समस्त 'भागवत' का सार आ गया है। इसीलिए इसे 'श्रीमद्भागवत' का 'सार-समुच्चय' कहा गया है, जैसा कि इसकी पुष्टिका से ज्ञात होना है। 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' से सूरदास को 'भागवत' की समस्त लीलाओ का ज्ञान प्राप्त हो गया। यही 'लीलाभेद' सूरदास को आचार्य जी की कृपा से प्राप्त हुआ था[1]।

८. इन १०७५ नामों द्वारा जहाँ आचार्य जी ने, पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' मे 'भागवत' की स्पष्ट और अस्पष्ट लीलाओं का तत्व बतलाया है, वहाँ उन्होंने अन्य पुराणो की लीलाओं को भी स्वीकार किया है। 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर रचित 'सारावली' मे इसलिए 'भागवत' की प्रकट लीलाओं के साथ ही साथ वे गूढ लीलाएँ भी है, जो 'भागवत' के कथात्मक रूप 'सूरसागर' में स्पष्ट रूप से नही आ सकी है। इसलिए 'सारावली' मे 'भागवत' के अतिरिक्त अन्य पुराणों का भी आधार मिलता है। सूर-साहित्य के जो विद्वान 'सारावली' को 'सूरसागर' का सूचीपत्र मानते हैं, वे सूरदास की इन दोनों रचनाओं की कतिपय असमानताओ के कारण 'सारावली' की प्रामाणिकता मे ही संदेह करने लगते हैं। इस स्पष्टीकरण से सिद्ध है, ये असमानताएँ ही 'सारावली' की विशेषता है। वास्तविक बात यह है, 'सारावली' न तो 'सूरसागर' का सार है और न इसका सूचीपत्र। यह 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर रचित सूरदास की एक स्वतंत्र रचना है। इसकी यह मौलिकता अथवा विशेषता

१. 'सूर-सारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० ४४।

इसे संदिग्ध रचना होने की अपेक्षा सूरदास की प्रामाणिक रचना ही सिद्ध करती है[1]।

६. 'सारावली' की कथा से ज्ञात होता है कि इसे होली के वृहत् गान के रूप मे रचा गया है। इसमे सर्वप्रथम सृष्टि-रचना का वर्णन है। इसके उप रान्त परब्रह्म श्रीकृष्ण के चौबीस अवतारो की कथा है। इसमे रामावतार और कृष्णावतार का विस्तार पूर्वक तथा अन्य अवतारों का संक्षिप्त रूप से कथन हुआ है। रामचरित्र का वर्णन 'वाल्मीकि रामायण' और 'ब्रह्माड पुराण' के आधार पर है[2]।

१०. वल्लभ संप्रदायी सेवा-क्रम का आरंभ जन्माष्टमी से होता है। 'सारावली' मे भी इसे जन्म-बधाई के मागलिक-प्रसंग से ही आरंभ किया गया है। इसके बाद नित्योत्सव और वर्षोत्सव की सेवा-भावना का क्रमबद्ध वर्णन है, जिसमे बालचरित्र, दान, मान, रास, बसंत, होली, डोल और बनविहार की आनंददायी लीलाओं का सरस वर्णन है। मान के प्रसंग में दृष्टकूट कथन है, जो गूढ शृंगार वर्णन की एक विशिष्ट शैली के अनुसार है। इस प्रकार यह रचना वल्लभ-संप्रदायी सेवा-भावना और सरस काव्य-कौशल की एक महत्वपूर्ण कृति है, जिसका रचयिता अष्टछापी सूरदास ही हो सकता है[3]।

ऊपर उद्धृत मीतल जी के निष्कर्ष अधिकांशत. वे ही हैं, जो 'सूर-निर्णय' मे उन्होने श्री परीख जी के साथ लिखे थे। उनके तर्क मुख्यत: यह सिद्ध करते है कि 'सारावली' 'सूरसागर' से एक स्वतंत्र रचना है जिसका उद्देश्य सैद्धांतिक सार 'गाना' है। इस संबंध में दो निवेदन हैं। पहला तो यह कि, जैसा हम पीछे लिख चुके हैं, 'सारावली' स्वतंत्र रचना है ही नहीं, फिर यदि थोड़ी देर के लिए उसे वैसा स्वीकार भी कर लिया जाय तो उसके आधार पर 'सारावली' को 'सूरसागर' के रचयिता सूरदास की कृति कदापि नहीं सिद्ध किया जा सकता, अस्तु।

अपने पहले तर्क में मीतल जी 'सारावली' को इसलिए प्रामाणिक रचना मानते है कि उसमे ऐसे उल्लेख है जो 'सूरदास के जीवन-वृत्तांत के अन्वेषण के लिए बहुत महत्वपूर्ण समझे गये हैं'। और

१. 'सूर-सारावली' (मीतल), भूमिका पृ० ४६।
२. वही, पृ० ५१।
३. वही, पृ० ५२-५३।

आलोचकों ने 'उनके आधार पर जीवन-वृत्तांत के संबंध मे कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं' ? भला यह भी कोई तर्क है ? किसी भ्रम मे यदि आलोचक किसी वस्तु का उपयोग करते आये हैं तो उसे बिना किसी आधार के सदा के लिए प्रामाणिक कैसे मान लिया जाय ? जब तक आधार की परीक्षा नहीं हो जाती, उसको लेकर निकाले गये निष्कर्षों का मूल्य ही क्या हो सकता है ?

दूसरे तर्क में वे लिखते हैं कि वल्लभ-संप्रदाय के इतिहासानुसार 'सारावली' का रचनाकाल संवत् १६०२ है। यह वल्लभ-सम्प्रदाय का इतिहास कौन बला है ? कौन है इसका लेखक और कहाँ लिखा है इसमे 'सारावली' का रचना काल संवत् १६०२ ? फिर, 'सारावली' को एक लाख पदो के 'सूरसागर' के सूचीपत्र की 'भ्रमात्मक' बात फैलायी किसने है ? 'सारावली' की प्रकाशित प्रतियो के आदि-अंत मे मुद्रित पंक्तियो ने ही न ? वस्तुत. 'सारावली', सूचीपत्र अथवा 'सूचनिका' क्या, उसका मिथ्या प्रयास मात्र है; इससे 'सूरसागर' की संख्या का कोई घनिष्ठ संबंध ही नहीं है। 'सारावली' का रचयिता सूरदास के सम्बन्ध मे प्रचलित 'एक लक्ष पद' संबंधी जनश्रुति का सीधा-सादा अर्थ लेकर अपना काम बनाता है। उसने 'सूरसागर' का पूर्ण रूप देखा ही नही था, कम से कम उसके पास 'सूरसागर' की हस्तलिखित प्रति पूर्ण रूप से थी ही नहीं, उसका कुछ अंश अवश्य रहा होगा जिसको उसने अपने ढंग से सार-रूप मे 'सारावली' में दे दिया है। स्वयं मीतल जी भी यह स्वीकारते है कि संवत् १६०२ तक सूरदास ने हरि-लीला विषयक जिन कथात्मक और सेवात्मक पदों का गायन किया था, उन्हीं के सैद्धांतिक सार-रूप मे उन्होने 'सारावली' की रचना की[1]। इस प्रसंग में क्या यह विचारणीय नही है कि जब संवत् १६०२ के पश्चात् भी सूरदास का रचना-कार्य चलता रहा तब उनकी उत्तरकालीन रचना पर 'सारावली' के विचारो की कोई छाप क्यो नहीं पड़ी और उसमे वर्णित किसी कथा को लेकर एक पद भी उन्होने क्यो नहीं रचा ?

तीसरे तर्क मे 'सारावली' के १०४२ संख्यक छंद के 'गुरु' शब्द (गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रबीन) का अर्थ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से लगाया गया है और ११०२ संख्यक छंद में तो स्पष्ट ही 'वल्लभ गुरु' पद (श्री बल्लभगुरु तत्व सुनायो, लीला-भेद बतायौ)

१. 'सारावली' (मीतल), भूमिका. पृ० ८५।

महाप्रभु वल्लभाचार्य की ओर संकेत करता बताया गया है। यदि मीतल जी के अनुसार पहले 'गुरु' से संकेत गोस्वामी विट्ठलनाथ की ओर मान लिया जाय तो क्या क्रम कुछ खटकता नही? महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा सूरदास का, वल्लभ-संप्रदाय मे दीक्षित किये जाने का समय 'सूर-निर्णय' में ही संवत् १५६५ दिया हुआ है[1]। 'सारावली' मे इसका उल्लेख तो ११०२ संख्यक छंद मे है और इसके ३७ वर्ष बाद अर्थात् संवत् १६०२ की घटना गो० विट्ठलनाथ द्वारा 'दर्शन' कराये जाने की बात पूरे १०० छंद पहले कही गयी है। इस उलट-फेर का क्या कारण हो सकता है?

चौथा तर्क सामान्य है जिससे 'सारावली'-कार की निश्चयात्मक नीति सिद्ध होती है, ग्रंथ की प्रामाणिकता नही? कवि की छाप के प्रयोग के कुछ नियम होते हैं, कुछ आवश्यकताएँ होती है और परंपरा-निर्वाह का कुछ भाव होता है। 'सारावली' मे इनमे से किसके अनुसार छापो का प्रयोग है? पहले दस छंदो मे दो बार 'सूरज', और फिर लगभग ६६० छंद तक वह छाप गायब, पहले ३५ छंदो मे एक बार 'सूर', फिर दूसरे शतक मे दो और तीसरे मे एक, और चौथे मे दो; पॉचवॉ-छठा शतक छाप-रहित, सातवें मे एक बार, तब आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें शतक छाप-हीन और अंत के पॉच छंदो मे चार बार 'सूर' छाप—वह भी कोई क्रम या व्यवस्था है? इसी संबंध मे निवेदन है कि जैसा पिछले पृष्ठो मे लिखा जा चुका है, यदि नवलकिशोर प्रेस के 'सूरसागर' की 'सूर जी' और 'सूर जू' छापो को आदरार्थक स्वीकार कर लिया जाय तो 'सारावली' से 'सूरज' छाप ही लुप्त हो जाती है।

पॉचवें और छठे तर्कों मे 'सूरसागर' और 'सारावली' मे भाव, भाषा, शैली, कथा-प्रसंग, मार्मिकस्थल, रस-संचार और काव्यगत दृष्टिकोण मे आश्चर्यजनक समानता दिखलायी पड़ने की बात कही गयी है। यह यह समानता आश्चर्यजनक क्यो है? कारण स्पष्ट है कि 'सारावली'-कार स्वतंत्र रचना नहीं रच रहा है, 'सूरसागर' की नकल अथवा उसके भाव और उसकी भाषा का अपहरण कर रहा है। इस संबंध मे विस्तार से आगे लिखा जायगा।

सातवॉ तर्क भी विचारणीय है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है,

१. सूर-निर्णय', पृ० ८३।

मीतल जी सूरदास का वल्लभ-संप्रदाय मे दीक्षित होना संवत् १५६५ मे मानते हैं। उसी समय उनको महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने 'भागवत दशम-स्कंध की अनुक्रमणिका' और 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनाया था। प्रश्न यह है कि कथात्मक रूप से तो सूरदास ने हरि-लीला का गान संवत् १५६५ से ही आरंभ कर दिया और 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' का सारा प्रभाव वे बचा-बचाकर उस रचना के लिए रखते रहे जो उनको लगभग ३७ वर्ष बाद रचनी थी? क्या यह संभव हो सकता है कि इन ३७ वर्षों के दीर्घकाल मे लिखे गये पदो पर उन सैद्धांतिक विचारो का कोई प्रभाव कवि ने न पड़ने दिया हो और तत्संबंधी सारा तत्व-ज्ञान एक मास से भी कम समय मे रची जानेवाली 'सारावली' मे उँडेलकर फिर उसको ऐसा भुला दिया कि आगे पुन: लगभग ३८ वर्षों मे की गयी रचना में, 'सूर-निर्णय' मे ही उनका निधन संवत् १६४४ प्रमाणित किया गया है[1], उसकी छाप भी न आ सकी? क्या सूरदास जैसे किसी भी कवि के लिए यह बात मान्य हो सकती है?

इसी प्रसंग मे एक बात और कही जा सकती है। 'सारावली'-कार ने पचीसों ग्रंथो के नाम अपनी रचना मे गिना दिये हैं, जिनका आधार लेने अथवा जिनमे विविध अवतारो की कथा होने की बात उसने कही है। परंतु उसने 'विष्णु-सहस्रनाम' का उल्लेख कहीं भी नहीं किया है। क्या इसका कारण यह माना जाय कि स्वतंत्र सैद्धांतिक रचना में परोक्ष रूप से सहायक ग्रंथो की नामावली दी जाती है, मूलाधार की नहीं? उधर 'सूरसागर'-कार सूरदास 'श्रीमद्भागवत' के रचयिता शुकदेव जी के वर्णनो का अनुकरण करने की बात जहाँ पचासो पदो में कहते हैं, वहीं 'सहस्रनाम' का उल्लेख करना भी नहीं भूलते—

तब सिव उमा गए ता ठौर। जहाँ नहीं द्वितीया कोउ और।
स्रनाम तहँ तिन्है सुनायौ। जातै आपु अमर पद पायौ।

—सूरसागर, पद १-२२६।

आठवाँ तर्क सातवें का पूरक कहा जा सकता है। इसमे दो बातें कही गयी हैं। एक तो यह कि 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर रचित होने के कारण 'सारावली' मे अनेक गूढ़-लीलाएँ भी आ सकीं, जो 'भागवत' के कथात्मक रूप 'सूरसागर' में स्पष्ट रूप से नहीं आ सकी थीं।

१. 'सूर-निर्णय', पृ० १०४।

इस संबंध में एक शंका तो, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह है कि सूरदास ने 'सहस्रनाम' पाया संवत् १५६५ मे और उसका आधार लेकर रचना की संवत् १६०२ मे, इस सवत् के पहले-पीछे रचे गये किसी पद पर किसी प्रकार की छाया तक नही पड़ने दी, क्या यह संभव हो सकता है ? दूसरी शंका यह है कि जो रचनाएँ 'सूरसागर' और 'सारावली', दोनो मे वर्णित है, उनमे कथात्मक अतर क्यो है ? मान लिया कि 'सारावली' का आधार भिन्न है और वह एक सर्वथा स्वतंत्र रचना है तब क्या यह स्वीकार किया जाय कि 'सूरसागर' मे वर्णित कथाओ से उसकी कथाओ मे अंतर इस कारण रखा गया कि उसका रचयिता 'सूरसागर' के अतिरिक्त भी एक स्वतंत्र रचना का रचयिता अपने को सिद्ध करना चाहता था ? अथवा यह कारण माना जाय कि 'सूरसागर' की वे कथाएँ पहले लिखी जा चुकी थीं और उनके रूप से संतुष्ट न होकर 'सारावली' में कवि ने उन्हें नयी साज-सज्जा के साथ उपस्थित किया और तब उसकी स्वतंत्रता, मौलिकता या विशेषता अक्षुण्ण रखने के लिए 'सूरसागर' के पहले लिखे गये पदो मे न परिवर्तन किया, न उस विषय को लेकर कोई नया पद ही रचा, यद्यपि 'सारावली' के बाद भी रचना वे लगभग ३८ वर्ष तक करते रहे ?

आठवें तर्क का दूसरा निष्कर्ष यह है कि 'सूरसागर' और 'सारावली' की असमानताएँ ही उसकी मौलिकता या विशेषता है जो उसे संदिग्ध नहीं, सूरदास की प्रामाणिक रचना ही सिद्ध करती है। इस संबंध मे निवेदन है कि कोई भी कवि एक रचना के पश्चात् दूसरी मौलिक या स्वतंत्र कृति तभी तो देना चाहता है जब उसके पास कोई विशेष बात कहने को हो। 'सारावली' में सैद्धांतिक लीला-सार कहा जाने पर भी तत्व की बात कितनी है ? होली का रूपक, सृष्टि के २८ तत्व तथा अन्यान्य स्वतंत्र कथाएँ 'सूरसागर' के केवल एक-एक पद मे लिखी जा सकती थी और 'सूरसागर' के अनेक पदो मे उनसे अधिक तत्व-ज्ञान की बातें मिलती भी हैं। अतएव पूछना यह है कि 'सूरसागर' और 'सारावली' की जो असमानताएँ दोनो को स्वतंत्र रचना सिद्ध करती हैं, क्या वे सभी दृष्टियो से संगत हैं ? दूसरे, दोनो में जो अंतर हैं क्या वे 'सारावली' मे, जो 'सूरसागर' के कम से कम अर्द्धांश के पश्चात् की रचना है इसमे संकलित पदों से अधिक महत्व के है ? यदि नहीं, तो क्या यह बात विचारणीय नहीं है ?

नवें तर्क में 'सारावली' के रामचरित का वर्णन 'वाल्मीकि रामायण'

और 'ब्रह्मांडपुराण' के आधार पर किये जाने की बात कही गयी है। हम पूछना चाहते हैं कि ६७ वर्ष की अवस्था मे कवि को यह आधार सूझना क्या विचित्र बात नही है ? यदि मान लिया जाय कि 'सारावली' को सैद्धांतिक सारयुक्त बनाने के लिए कवि ने वैसा किया था, तो क्या इसके पूर्व की सारी रचनाएँ सिद्धांतरहित हैं ? अथवा यह माना जाय कि 'गुरु-प्रसाद' से दर्शन होने के पूर्व तक सूरदास कवि जीवन से संतुष्ट रहे और उसके पश्चात् उन्हें उस 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के सिद्धांत-सार को लेकर 'सारावली' रचने की धुन सवार हुई जो उन्होने संप्रदाय-प्रवेश के समय, लगभग ३७ वर्ष पहले सुना था ? अथवा यह कि उस सिद्धांत-सार समझने की 'प्रवीनता' उन्हें ६७ वर्ष की अवस्था मे ही प्राप्त हो सकी, उसके पहले वे 'लघुमति दुरबल बाल' थे ?

एक प्रश्न और है। 'सारावली'-कार ने 'वाल्मीकि रामायण' और 'ब्रह्मांड पुराण' पढ़ा नही तो कम से कम सुना तो होगा ही। उसका सिद्धांत-सार तो वे 'सारावली' मे रखने का निश्चय कर चुके थे, इसलिए 'सूरसागर' के पदो मे भी उन विचारो की छाया आने देना उन्हें स्वीकार नही हुआ। पर क्या कवि सूर को उन विख्यात ग्रंथो मे कोई साहित्यिक विशेषता या चमत्कारपूर्ण उक्ति भी नही मिली जिसकी छाया लेकर 'सूरसागर' के लिए कोई पद रचने का उन्हें लोभ होता ? अथवा वैसे अनेक प्रसंग मिलने पर भी 'सारावली' की स्वतत्रता की विशेषता सुरक्षित रखने के लिए उन्होने उस लोभ का सदैव संवरण करते रहना ही उचित समझा ?

अतिम तर्क मे 'सारावली' मे वर्णित विविध लीलाओ की जिस सरसता का बात कही गयी है, उसका रसास्वादन तो हम आगे करेंगे, यहाँ मान-प्रसंग के दृष्टकूट कथन का कारण हम मीतल जी से जानना चाहते है। 'सारावली के ये दृष्टकूट स्वतंत्र हैं या सूरदास के वैसे ही पदो का सार है ? फिर उन्ही की सम्पादित 'सारावली' मे 'अथ दृष्टकूट कथन'[1] और 'इति दृष्टकूट सूचनिका संपूर्ण'[2] का क्या अर्थ और क्या उद्देश्य है ? सूरदास के अन्य दृष्टकूटो की तुलना मे 'सारावली' के दृष्टकूट कथनो मे किस विशेष सिद्धांत की चर्चा है ? क्या यह मान लिया जाय कि सैद्धांतिक रचना होने के साथ-साथ 'सारावली' मे ६७

१. 'सूर-सारावली' (मीतल), पृ० ७५।

२. वही, पृ० ७७।

वर्ष तक लिखे गए 'सूर-साहित्य' का सार भी है जिससे फलस्वरूप कुछ दृष्टकूट पदों की 'सूचनिका' उसमें आ गयी है ? वैसी स्थिति में सम्पूर्ण 'सारावली' स्वतंत्र रचना कैसे कही जा सकती है ? आज तक किसी आलोचक को दृष्टकूट पदो मे 'सरसता' नहीं मिली, तब मीतल जी 'सारावली' के दृष्टकूट कथन के बाद अगले ही वाक्य में उसको 'सरस काव्य-कौशल की एक महत्वपूर्ण कृति' किस आधार पर कहते हैं ? उन्हें दृष्टकूट कथनो में ही यह सरसता मिली है अथवा उन्होंने इनको हटाकर वैसा लिखा है ?

इस प्रसंग मे इतना और लिख देना आवश्यक है कि 'सारावली' के आरंभ मे २८ तत्वो की सूची है[1] और ग्यारवें शतक में छत्तीस रागनिया[2] के साथ साथ विविध वाद्य यंत्रों[3] का नामोल्लेख हुआ है। इन तीनों सूचियो मे किस प्रकार की सरसता का अनुभव मीतल जी को होता है और अंतिम दो मे किस सिद्धांत या वल्लभ-संप्रदायी सेवा-भावना का और सम्मिलित रूप से इन सूचियो और ऐसे ही अन्य स्थलों पर कवि के किस काव्य-कौशल के दर्शन उन्हें होते हैं ?

८ डा० हरवंश लाल शर्मा—

डा० शर्मा का प्रसिद्ध ग्रंथ है 'सूर और उनका साहित्य' जिसका द्वितीय संस्करण सन् १९५८ (सम्वत् २०१५) में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रंथ मे 'सारावली' के सम्बन्ध में डा० शर्मा के निम्नलिखित कथन ध्यान देने योग्य हैं—

१. वास्तव मे 'सूर-सारावली' सूरदास जी की ही रचना है। इसके नाम के कारण ही कुछ आलोचकों को यह भ्रान्त धारणा हो गई है कि यह 'सूरसागर' की भूमिका अथवा साराश है। यदि सूक्ष्मता से अनुशीलन किया जाय तो यह प्रतीत होगा कि 'भागवत' की कथा का निर्वाह 'सूरसागर' की अपेक्षा 'सूर-सारावली' में अधिक सावधानी के साथ हुआ है। 'सूरसागर' के तो बहुत से प्रसंगों का समावेश भी इस ग्रंथ मे नहीं है। भावात्मकता न होने के कारण 'सूरसारावली' की शैली मे 'सूरसागर' की शैली से विभिन्नता

१. 'सारावली', छंद ७ से १०।
२. वही, छंद १०१२ से १०१८।
३. वही, छंद १०७२ से ७६।

आ गई है । 'सूरसागर' को—विशेषतः द्वादश स्कन्धात्मक स्वरूप को—'श्रीमद्भागवत' के आधार पर रचित माना गया है और जिस प्रकार 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को 'भागवत-सार-समुच्चय' कहा गया है, उसी प्रकार 'सूर-सारावली' को 'सूरसागर-सार-समुच्चय' कहा जा सकता है[1] ।

२. 'सारावली' के विषय से ही यह स्पष्ट है कि यह ग्रंथ होली-गान के रूप में लिखा गया है । इसमे न तो कहीं 'सूरसागर' का ही उल्लेख है और न ही किसी ग्रंथ के साराश होने का संकेत है । यह तो एक स्वतंत्र रचना है[2]।

३. यदि हम 'सूर-सारावली' को 'सूर-सागर' की भूमिका या अनुक्रमणिका माने तो यह भी मानना पड़ेगा कि यह 'सूर-सागर' के पश्चात् लिखी गई होगी, जो हास्यापद ही प्रतीत होता है । वास्तविक बात तो यह है कि 'सूर-सारावली' सिद्धात रूप मे लिखा हुआ पृथक् शैली मे पृथक् ग्रंथ है । 'सूरसागर' की अनुक्रमणिका मानने का भ्रम 'एक लक्ष-पद-बन्द' वाले पद से भी हो जाता है; किन्तु एक लक्ष-पद-बंद से एक अथवा सवा लाख पदो की कल्पना भी निराधार ही प्रतीत होती है[3] ।

४. सूर-सारावली के विषय-वर्णन, शैली, भाव और कवि छापों को देखकर निश्चय सा हो जाता है कि इसके रचयिता हमार अष्टछापी कवि सूरदास ही हैं । कथा के वैषम्य, शैली की विभिन्नता और विषयान्तरता को देखकर अन्य कवि की कल्पना युक्ति-संगत नहीं जान पड़ती । 'श्रीमद्भागवत' में भी सृष्टि-क्रम कई प्रकार से बताया गया है और स्थान-स्थान पर विषयान्तरता भी दृष्टिगोचर होती है । पर 'श्रीमद्भागवत' निश्चय रूप से एक ही व्यक्ति की रचना है। यों तो यदि हम 'सूरसागर' के प्रामाणिक पदों को भी तर्क-पूर्ण आलोचना की कसौटी पर कसने लगे तो पक्ष और विपक्ष मे बहुत कुछ कहा-सुना जा सकता है। अतएव 'सूरसारावली' को सूर-रचित ही मानना न्यायसंगत होगा। सूरदास के पदों की रचना का क्रम उनके जीवन के अंतिम क्षणों तक चलता रहा। संभव है, ६७ वर्ष की अवस्था तक उन्होंने जितने पदों की रचना की हो, उनके साररूप मे 'सूर-सारावली' की रचना हुई हो। कुछ आलोचक 'सूरसागर' के अंत मे युगल-उपासना के पदो को देखकर

१. 'सूर और उनका साहित्य', पृ० ४१ ।
२. वही, पृ० ४१ ।
३. वही, पृ० ४१ ।

कहते है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने युगल-रूप की उपासना का विशेष प्रचार नही किया था, इसलिए यह ग्रंथ सूर-कृत नहीं हो सकता; किंतु यह युक्ति भी असंगत है; क्योकि प्रथम तो यह कहना ही अयुक्त है कि वल्लभाचार्य जी युगल-मूर्ति के उपासक नही थे। दूसरे, यदि इस युक्ति को स्वीकार कर भी लिया जाय तो 'सूर-सारावली' की रचना तो उनकी (आचार्य वल्लभ की) मृत्यु से लगभग १५ वर्ष पश्चात् हुई थी, जबकि पुष्टि-संप्रदाय मे सेवा के मण्डान की पूर्ण-प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी। इसलिए 'सूर-सारावली' की प्रामाणिकता मे सन्देह के लिए कोई स्थान है ही नहीं[1]।

५. वास्तव मे इन छंदों ('सारावली' के १००२ और ११०७ संख्यक छंदों) का अपना विशेष महत्व है। एक ओर तो ये सूर की जन्म-तिथि के निश्चय करने मे सहायक होते है और दूसरी ओर साम्प्रदायिक-विवेचन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। हम पहले कह आये है कि अष्टछाप की स्थापना गोस्वामी विट्ठलनाथ जी द्वारा संवत् १६०२ मे हुई थी। इसी वर्ष गोस्वामी जी ने संप्रदाय की सेवा-प्रणाली को व्यवस्थित एवं विस्तृत रूप दिया था। श्री वल्लभाचार्य जी के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ जी के निधन के उपरान्त विट्ठलनाथ जी ने ब्रज-यात्रा प्रारंभ की और संवत् १६०२ मे उन्होंने अष्ट-छाप की नीव डाली। वार्ता-साहित्य से ज्ञात होता है कि सूरदास जी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को श्रीकृष्ण का ही स्वरूप मानते थे और उनके प्रति वैसी ही निष्ठा, भक्ति एवं श्रद्धा रखते थे। अपने अंत समय मे 'भरोसो दृढ इन चरनन केरो' वाले पद मे सूर ने गो० विट्ठलनाथ जी के प्रति अपनी परम भक्ति को प्रकट किया है। हो सकता है कि ६७ वर्ष की अवस्था में सं० १६०२ मे जो दर्शन वाली बात उन्होने कही थी, वह भी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रति हो। इस बात की पुष्टि उनके सेवा फलवाले 'सेवा की यह अद्भुत रीति, श्री विट्ठलेश सों राखै प्रीति' वाले पद से भी हो जाती है[2]।

डा० शर्मा ने अपने उक्त वक्तव्यों में जो कुछ कहा है, वह उनके शब्दो में प्राय: वही है जो 'सारावली' की प्रामाणिकता के समर्थक पहले कह चुके हैं। उन्होंने कोई ऐसा नवीन तर्क नहीं दिया है जिससे 'सारावली' की प्रामाणिकता का पक्ष सबल होता। जिन स्थलों पर उन्होंने श्रीद्वारका-दास परीख और श्री प्रभुदयाल मीतल के 'सूर-निर्णय' एवं डा. मुंशीराम

१. 'सूर और उनका साहित्य', पृ० ४२।
२. वही, पृ० ४३।

शर्मा के 'सूर-सौरभ' मे व्यक्त विचारो का खंडन किया है, वहाँ भी 'सारावली' की प्रामाणिकता के समर्थन मे कोई नयी बात उन्होने नहीं कही है। अतएव 'सूर-निर्णय' और 'सूरसारावली' की भूमिका से उद्धृत मतो के संबंध मे हमने जो कुछ ऊपर लिखा है, डा. हरवंशलाल शर्मा के 'सारावली' की प्रामाणिकता विषयक तर्कों के उत्तर मे वही पर्य्याप्त है।

डा० सूर्यकान्त शास्त्री—

डा० शास्त्री का 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' सन् १६३१ मे छपा था। उस समय तक सम्भवत: 'सारावली' की अप्रामाणिकता का प्रश्न सूर-साहित्य के अध्येताओ और हिंदी-साहित्य के इतिहास लेखकों के सामने नहीं आया था। इसलिए डा० शास्त्री भी उसे प्रामाणिक मानते हुए लिखते हैं—

'सारावली' एक प्रकार से 'सूरसागर' की सूची है। फलत: यह 'सूरसागर' के पश्चात् रची गयी होगी। इसकी रचना के समय सूर की अवस्था ६७ वर्ष की थी। उस समय अनुमानत: संवत् १६०८ रहा होगा[1]।

डा० शास्त्री का सूची वाला मत 'सारावली' के समर्थकों की दृष्टि में 'भ्रम' है; यद्यपि जैसा हमने पीछे कहा है, 'सारावली' वस्तुत: 'सूचिनका' के रूप में ही लिखी गयी थी। उनके दूसरे मत, सूरदास की ६७ वर्ष की अवस्था वाले निष्कर्ष पर, उसी की पंक्ति पर आधारित होने के कारण, कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, अनुमानत: जिस संवत् १६०८ की ओर उन्होने संकेत किया है, वह 'सारावली' को प्रामाणिक माननेवालों की दृष्टि में संवत् १६०२ होना चाहिए।

डा० रामकुमार वर्मा—

डा. वर्मा के 'हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक' इतिहास का द्वितीय संस्करण १६४७ में छपा था। उसमें 'सारावली' के संबंध में निम्नलिखित कथन मिलते हैं—

१. 'सूरसारावली' भी 'सूरसागर' के पीछे बनी होगी; क्योंकि 'सारावली' 'सूरसागर' की विषय-सूची ही है और ग्रंथ संपूर्ण होने के बाद ही उसकी कथा का संकेत दिया जा सकता है[2]।

१. 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', पृ० ३२८।

२. 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ० ७३८-३६।

२. 'सूरसारावली' लिखते समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। यदि हम 'सूरसारावली' और 'साहित्य-लहरी' का रचना काल एक ही मानें (जैसा कि बहुत संभव है, क्योंकि दोनों पुस्तके 'सूरसागर' के बाद ही बनीं) तो संवत् १६०७ मे सूरदास की आयु ६७ वर्ष की रही होगी[1] ।

३. 'सूरसारावली' की रचना देखने से ज्ञात होता है कि सूरदास के जीवन-काल ही में 'सूरसागर' की समाप्ति हो गयी थी[2] ।

डा० वर्मा के उक्त कथनो में प्रामाणिकता की पुष्टि का कोई तर्क नहीं है और वे 'सारावली' को 'सूरसागर' की विषय-सूची मानकर ही उसकी चर्चा करते हैं। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित होने तक 'सारावली' की अप्रामाणिकता की चर्चा होने लगी थी; फिर भी आश्चर्य है कि उन्होने इस संबंध में अपने विचार क्यो नही व्यक्त किये।

२. संदिग्ध माननेवाले विद्वान—

इस वर्ग में मुख्यत: दो विद्वान आते हैं—श्री मिश्रबंधु[3] और डा. रामरतन भटनागर[4] । नीचे उनके विचार दिये जाते हैं।

क. श्री मिश्रबंधु—

यों तो मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबंधु-विनोद' और 'हिंदी-साहित्य के इतिहास' में भी 'सारावली' की चर्चा की है, परंतु उनके उन सब विचारों का समावेश 'हिंदी-नवरत्न' में हो गया है। अतएव, स्थानाभाव से, यहाँ उनके केवल 'हिंदी-नवरत्न' में प्रकाशित 'सारावली'-संबंधी विचार दिये जा रहे हैं। इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण सन् १९१० (संवत् १९६७) मे छपा था और छठा सन् १९४० (संवत् १९९७) में जिसका संशोधन भी वे कर सके थे। 'सारावली' के संबंध में 'हिंदी नवरत्न' के सातवें संस्करण मे निम्नलिखित विचार मिलते हैं—

१. 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ० ७३९
२. वही, पृ० ७५६ ।
३. 'हिंदी-नवरत्न', सप्तम संस्करण, पृ० १७९ ।
४. 'सूर-समीक्षा', प्रथम संस्करण, पृ० ५४-५५ ।

१. 'सूर-मारावली' के विषय मे सूरदास ने स्वयं उसी ग्रंथ का १००२ नंबर का छंद यों लिखा है—

गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठि बरस प्रबीन;
सिव-विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहि लीन।

'सूर-सारावली' एक प्रकार से 'सूरसागर' की सूची कही जा सकती है, और यह भी जान पड़ता है कि 'सूरसागर' के कुछ ही दिन पश्चात् बनाई गयी होगी, कारण, ग्रन्थ बनाने पर उसकी सूची लिखने की आवश्यकता शीघ्र ही होती है। यह भी विचार है कि इसका प्रयोजन यह है कि सं० १५६७ मे सूर को दर्शन हुआ, अर्थात् महाप्रभु के शिष्यत्व मे लीला का दर्शन हुआ, तथा उससे पूर्व आप बहुत दिन शैव विधान से तपस्या करते रहे थे[१]।

२. सूरदास लिखते हैं, उनके गुरु श्री बल्लभाचार्य महाप्रभु थे, और श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ ने उनको अष्टछाप मे रक्खा। यथा—

श्री बल्लभ गुरु-तत्व सुनायो, लीला-भेद बतायो।
थापि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप।
—(सूर-सारावली नं० ११०२)[२]।

३. 'सूरसारावली' में 'सूरसागर' की सूची सी है। इसमें ११०७ पद है, परन्तु मूल ग्रन्थ मे एक हीं छंद होने के कारण इसे पढना उतना रुचिकर नही है, जितना इन महाकवि के अन्य ग्रन्थों का। अब यह ग्रंथ संदिग्ध दिखता है[३]।

मिश्रबंधुओं के प्रथम दो उद्धरण सूचित करते हैं कि वे 'सारावली' को सूरदास की प्रामाणिक रचना मानते हैं, परंतु अंतिम में उन्होने बिना कोई कारण बताये उसे 'संदिग्ध रचना' कह दिया है। प्रथम कथन में वे 'सारावली' को, एक प्रकार से 'सूरसागर' को सूची मानते हैं और सूची लिखने की आवश्यकता भी बताते हैं। दूसरे में उन्होंने 'सारावली' के ११०२ छंद के दूसरे चरण को पहला समझ कर दूसरे चरण के रूप में

१. हिंदी-नवरत्न', पृ० १७२-७३।
२. वही, पृ. १७६।
३. वही, पृ. १७६।

'साहित्य लहरी' के ११८ संख्यक संदिग्ध पद की एक पंक्ति[1] जोड़ दी है। यह भूल संभवत: छपाई की है। यदि मिश्रबंधुओ ने 'सारावली' को संदिग्ध रचना मानने के कारणो पर कुछ प्रकाश डाला होता तो निश्चय ही सूरदास के आलोचको को एक बड़े भ्रम में पड़ने से बचा लिया होता।

ख. डा० रामरतन भटनागर—

मिश्रबंधुओ की अपेक्षा डा० भटनागर ने 'सारावली' के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से लिखा है। उनके 'सूर-समीक्षा' नामक ग्रंथ में तद्विषयक ये वाक्य मिलते हैं—

१. इसमे संदेह नहीं कि यह रचना ('सारावली') काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से शिथिल है और उसमे 'सूरसागर' के पद-साहित्य की सूचनिका नहीं मिलती है। इसमे जिस सामग्री का सकेत है वह 'भागवत' की ओर ही इंगित करती है। 'सूरसागर' के प्रणेता सूर यदि सूचनिका के रूप में इस रचना को उपस्थित कर रहे हैं तो उसमे मौलिक प्रसगों का निर्देश अवश्य होना चाहिए[2]।

२. 'सूरसारावली' की ओर विद्वानों का आग्रह इसलिए भी है कि उसमे ६७ वर्ष तक शिव-विधान से तप करने की बात है और तदुपरान्त वल्लभाचार्य की कृपा से 'दरसन' करने का उल्लेख है। यदि वह उल्लेख ठीक है तो इससे 'सूरसारावलि' का समय भी निश्चित हो जाता है और हम यह भी कह सकते है कि इस आयु तक 'सूरसागर' के सारे या लगभग सारे पदों की रचना वे कर चुके होगे और अंत मे उन्होंने इस वृहद् मामग्री को 'भागवत' के रूप में रखने की चेष्टा की होगी। इसमे संदेह नही कि यह आकर्षण बहुत बड़ा है, परंतु सूर-साहित्य से इसकी पुष्टि संभव नहीं है[3]।

३. 'शिव-विधान' वाले पद के आग्रह से डा० मुंशीराम शर्मा और डा० ब्रजेश्वर वर्मा 'सूरस्वामी' को शैव-सिद्ध करने का प्रयत्न करते है, परंतु 'सूरसागर' में 'हरि-हर' के दो पदों के अतिरिक्त इस विचार की पुष्टि मे और कुछ नहीं मिलता और 'हरि-हर' के पद विद्यापति और तुलसी में भी लगभग उसी रूप में मिल जाते है। वस्तुत' वैष्णवों ने अत्यंत उदार भावना

१. 'साहित्य-लहरी', पृ० १३८, पद ११८, अंत से तीसरी पंक्ति।
२. 'सूर-समीक्षा', पृ० ५४।
३. वही, पृ० ५४-५५।

से शैवों को समेट लेने का प्रयत्न किया था और ये 'हरि-हर' पद इसी समन्वय-सिद्धि के द्योतक है। सूर ने विनय के पदों में 'राम' को अनेक बार संबंधित किया है और 'सूरसागर' के नवम स्कंध के अंतर्गत राम की कथा भी अत्यंत मार्मिकता से कही है। फिर हम यह क्यों नहीं माने कि वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित होने से पहले सूर किसी राम-संप्रदाय की दास्य भावना के अनुयायी थे। फलत: 'सूरसारावली' के ये उल्लेख सूर के जीवन वृत्त में भी सहायक नहीं होते[1]।

४. अनेक तर्कवाद के बाद भी यह रचना अष्टछापी सूर की भावधारा का पूर्णतया प्रतिनिधित्व नहीं करती। उसमे 'सूरत्व' का कुछ भी अंश नहीं आ पाया है और इसलिए यह उचित ही होगा कि हम उसे प्रामाणिक नहीं तो संदिग्ध-रचना अवश्य माने। सूर के काव्य और व्यक्तित्व के आगे यह रचना स्वत: छोटी पड़ जाती है[2]।

डा० भटनागर के उक्त तर्कों का उत्तर 'सारावली' की प्रामाणिकता के पोषको ने नहीं दिया है। पहले और चौथे तर्कों मे जो खरी बात उन्होने कही है कि 'सारावली' काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से शिथिल है, और उसमे 'सूरत्व' का कुछ भी अंश नहीं आ पाया है, उसका समाधान मोहपूर्ण दुराग्रह छोड़कर ही किया जा सकता है, 'सारावली' को 'सैद्धांतिक सार-पूर्ण' कहकर नही बतलाया जा सकता।

अप्रामाणिक माननेवाले विद्वान—

इस वर्ग में, जैसा पीछे कहा जा चुका है, केवल डा० ब्रजेश्वर वर्मा है। उन्होने अपने 'सूरदास' नामक ग्रंथ में, जिसका दूसरा संस्करण सन् १९५० में छपा था, 'सारावली' को अप्रामाणिक सिद्ध करते हुए २६-२७ तर्क दिये थे जिनके उत्तर देने की बात कहकर भी उस ग्रंथ की प्रामाणिकता के पोषको ने उनकी एक प्रकार से उपेक्षा ही कर दी। इसका मुख्य कारण यह है कि डा० वर्मा ने मुख्यत: यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि 'सारावली' सूरसागर के पदो का सूचीपत्र नहीं है। "यह एक स्वतंत्र रचना है, जिसके वर्ण्य विषय में 'सूरसागर' की वस्तु से

१. 'सूर-समीक्षा', पृ० ५५।
२. वही, पृ० ५५।

साम्य होते हुए भी, उसे 'सूरसागर' का संक्षेप भी नहीं कर सकते[१]।" जिस बात को वर्मा जी सिद्ध करने जा रहे हैं 'सारावली' और 'सूरसागर' की कथा का मिलान करने पर वस्तुत: वह स्वत: सिद्ध हो जाती है, यद्यपि 'सारावली' का रचयिता ऐसा नहीं चाहता और उसका प्रचार वह 'सूर-काव्य' के सार-रूप में ही देखना चाहता था। सूर-साहित्य के अन्य विद्वानों का ध्यान पहले इस ओर इसलिए नहीं गया कि 'सारावली' के जिन दो-चार छंदों में कवि के जीवन-वृत्त-संबंधी उल्लेख मिलते हैं, उन्हीं को प्रत्येक लेखक अपनाता रहा और 'सारावली' के आदि-अंत के उल्लेखों के अनुसार उसे 'सूर-सगार' की सूची स्वीकारता रहा; किसी ने दोनों ग्रंथों के मिलान करने की बात ही कभी नहीं सोची। डा० वर्मा ने अपने उक्त निष्कर्ष पर, जो स्वत: सिद्ध ही था, इतना जोर दिया कि प्रामाणिकता के पोषकों ने उसी के खंडन-मंडन पर सब कुछ निर्भर समझ लिया। तभी तो 'सूर-निर्णय'-कारों ने लिखा—'यदि हम 'सारावली' को सवा लाख पदों का सूचीपत्र मानें, जैसा प्राय: सभी विद्वान मानते आये हैं, तो निस्संदेह डा० वर्मा के स्थापित किये हुए उक्त २७ अंतर बड़े महत्वपूर्ण और विचारणीय कहे जा सकते हैं'[२]। आगे चलकर उन्होंने डा० वर्मा द्वारा बताये गये 'सारावली' और 'सूरसागर' के अंतर को स्वीकार करके लिखा—'इस दृष्टि से ही हम डा० ब्रजेश्वर वर्मा के उन २७ अंतरों से सहमत हो सकते हैं और उन्हीं के शब्दों में कहेंगे कि 'सारावली' 'सूरसागर' के पदों का सूचीपत्र नहीं है। यह एक स्वतंत्र रचना है, जिसकी कथा-वस्तु में 'सूरसागर' की कथावस्तु से घनिष्ठ साम्य होते हुए भी उसे निश्चित 'सूरसागर' का संक्षेप भी नहीं कह सकते[३]।' इस प्रकार डा० वर्मा द्वारा एक सामान्य और स्वत:सिद्ध बात पर बल दिये जाने का परिणाम यह हुआ कि 'सारावली' के पोषक उनके सब तर्कों को सहज ही 'हजम' करके अपने कर्त्तव्य या दायित्व की इतिश्री समझ बैठे, अस्तु।

यहाँ हम डा० ब्रजेश्वर वर्मा के सभी तर्कों को ले रहे हैं जिनका घनिष्ठ संबंध उनके उक्त मत से है और जिनका खंडन सहज ही या स्वत: ही हो गया है। वे तर्क इस प्रकार हैं—

१. 'सूरदास', पृ० ६० ।
२. 'सूर-निर्णय', पृ० १०८ ।
१. वही, पृ० १११ ।

१. 'सारावली' की कथावस्तु एक विशिष्ट प्रस्तावना स आरंभ होती है, जिसमें प्रकृति-पुरुष-रूप पुरुषोत्तम परब्रह्म के सृष्टि-विस्तार के बहाने होली खेलने का उल्लेख किया गया है। होली खेलने और 'फगुवा' देने की कल्पना अन्त तक बार-बार दुहराई जाती है। अत: 'सारावली' वास्तव में पूर्णब्रह्म की होली खेलने का वर्णन करती है। 'सूरसागर' में भी यत्र-तत्र 'भागवत' के अनुसार सृष्टि-रचना की कथा देने का यत्न किया गया है, यद्यपि कदाचित् इस विषय मे कवि की अरुचि होने के कारण उसका प्रयत्न असफल ही कहा जायगा। परंतु 'सूरसागर' के कवि ने न तो ग्रंथ के आरंभ में इस प्रकार की प्रस्तावना दी और न ग्रंथ मे किसी दूसरे स्थान पर ही—होली और फाग के वर्णन में भी—सृष्टि-रचना के लिए होली की कल्पना की है। अत: 'सारावली' के वर्ण्य विषय की रूप-कल्पना ही विलक्षण और 'सूरसागर' से भिन्न है[1]।

२. 'सारावली' के कवि ने उसकी वस्तु को दो पृथक् भागों मे बाँटा है, यद्यपि इस विभाजन का स्पष्ट संकेत नही किया गया। पहले भाग में 'भागवत' के अनुसार सृष्टि-रचना और उसके विस्तार के क्रम मे भगवान् के अवतारों की कथा है और दूसरे भाग मे कृष्ण की उन लीलाओं का वर्णन किया गया है जो 'सूरसागर' मे तो वर्णित है, पर 'भागवत' मे नहीं। 'सूरसागर' मे कथा-वस्तु का इस प्रकार का विभाजन नहीं किया गया[2]।

३. अवतारों की कथा दोनों रचनाओं मे साधारणतया 'भागवत' का अनुसरण करती है, परंतु 'सारावली' ने राम और कृष्ण की कथा को छोड़ कर शेष कथाओं के लिए विशेष रूप से 'भागवत' के द्वितीय स्कंध के सप्तम अध्याय का अवलंब लिया है; 'सूरसागर' का नहीं। कदाचित् 'सूरसागर' मे बिखरी हुई अस्पष्ट रूप से वर्णित कथाओ की अपेक्षा समस्त अवतारों के एक स्थान पर दिये हुए विवरण का अनुसरण अधिक सुविधाजनक था। पर इसका फल यह हुआ है कि उन अवतारों का भी उल्लेख 'सारावली' में पहले आ गया है, जिनका वर्णन 'सूरसागर' के ग्यारहवें और बारहवें स्कंधों में हुआ है तथा विभु, विष्वक्सेन, धर्म-सेतु, शेष, सुधर्म, योगीश्वर, बृहद्भानु आदि अवतारों का उल्लेख आ गया है, जिनका 'सूरसागर' मे नाम भी नही लिया

१. 'सूरदास', पृ० ६०।
२. वही, पृ० ६०।

गया। साथ ही, मूल रचना की अपेक्षा इसी का सार कही जाने वाली रचना से इन कथाओं को अधिक सरलता से समझा जा सकता है[१]।

४. 'सारावली' मे रामावतार की कथा का जैसा सांगोपाग, व्यवस्थित और संपूर्ण वर्णन मिलता है, वैसा 'सूरसागर' मे नहीं। 'सूरसागर' के कवि ने तो केवल रामावतार की कथा से सबधित प्रधानतया भावपूर्ण और मार्मिक स्थलो पर स्फुट पद रचना की है, जिन्हें कथा का क्रम देकर पूर्ण कथा की एक अधूरी रूपरेखा कठिनता से बनाई जा सकती है। साथ ही जिन स्थलों पर 'सूरसागर' के कवि ने विशेष ध्यान दिया है, यह आवश्यक नहीं है कि 'सारावली' मे उन पर तनिक भी बल दिया गया हो। 'सारावली' मे 'रामावतार' की कथा को कृष्णावतार के समकक्ष एक निश्चित रूप देने का उपक्रम किया गया है, जो 'सूरसागर' ही नही 'भागवत' के नवम स्कंध की राम-कथा की अपेक्षा भी अधिक विस्तृत है[२]।

५. दोनों रचनाओं मे कृष्णावतार की कथा के संबंध मे अनेक अंतर हैं। 'सारावली' मे कंस की समस्या को आरंभ से अंत तक जितनी प्रधानता दी गई है, उतनी 'सूरसागर' मे नहीं। 'सूरसागर' मे कंस के द्वारा भेजे हुए राक्षसों के उत्पात कृष्ण की सुख-क्रीड़ाओं मे प्राय: आकस्मिक विघ्नो के रूप में वर्णित है, जब कि 'सारावली' मे कृष्ण की उद्धार और संहार-लीला को महत्व देने के लिए कंस के व्यक्तित्व को भी अधिक प्रकाश में लाया गया है[३]।

६. 'सूरसागर' के ढाढी-प्रसंग के संबंध में कहा जा चुका है कि उसमें सूरदास की अपने उपास्य के प्रति व्यक्तिगत भक्ति-भावना विशेष रूप से प्रकट हुई है। परंतु 'सूरसागर' के ढाढी की कृष्ण-दर्शन-याचना का 'सारावली' में उल्लेख भी नही है तथा इसी प्रसंग में उपनंद, धरानंद, ध्रुवनंद, सुरसुरानंद और धर्माकर्मानंद के ढाढी को ब्रजरानी के ढाढिन को दान देने की बात 'सूरसारावली' की मौलिक उद्भावना है। 'सूरसागर' में उपनंद का तो अन्य प्रसंगों मे उल्लेख भी है, अन्य नंदों का तो कहीं नाम भी नहीं मिलता[४]।

७. 'सारावली' में नंद को जो गौरव प्रदान किया गया है, वह

१. 'सूरदास', पृ० ६१।
२. वही, पृ० ६१।
३. वही, पृ० ६१।
४. वही, पृ० ६१-६२।

'सूरसागर' मे वर्णित उनके ग्रामीण गौरव से भिन्न है। 'सारावली' के नंद अपने पुत्र के लिए नानाविधि रत्नों के बहुमूल्य खिलौने लेने मथुरा जाते हैं। इसी बीच ब्रज में पूतना आ जाती है। पूतना के उत्पात का समाचार पाकर नंद तुरंत लौट आते हैं और विप्र को बुलाकर वेद-ध्वनि, आरती, मंगलगान आदि के द्वारा अनिष्ट-प्रभाव दूर किया जाता है। एक दिन कृष्ण के करवट लेने पर भी ये ही उपचार होते है। 'सूरसागर' मे इंद्र-पूजा और तदनंतर गोवर्द्धन-पूजा के विस्तृत विवरणों मे भी इस शास्त्रीय पूजोपचार और नंद की सेवा मे विप्रों के पौरोहित्य की योजना नहीं है[1]।

८. पूतना के आयासहीन प्रसंग-प्राप्त जैसे वध का उल्लेख करके 'सूर-सागर' का कवि व्रजनारियों और यशोदा की भावनाओं के चित्रण मे लीन हो जाता है; परन्तु इसके विपरीत 'सारावली' ग्वाल-बालों के द्वारा पूतना के काष्ठतन को फूँकने का उल्लेख करके अपनी आधारभूत होली की कल्पना में लगे हाथ लोक-प्रचलित होली सम्बन्धी प्रवाद की ओर भी संकेत कर देता है[2]।

९. 'सूरसागर' मे बलराम के जन्म का स्पष्ट उल्लेख तक नही आया, परन्तु 'सारावली' में उनके जन्म, जन्मतिथि, शेषावतारी होकर वर्ष दिवस पहले ही महावपु धारण करके प्रकट होने आदि के विवरण दिये गए हैं[3]।

१०. कृष्ण-बलराम के नामकरण संस्कार के विवरणों मे पुन: 'सारा-वली' का कवि नंद-नगर-गौरव का चित्रण करता है। साथ ही यह भी बताता है कि गर्ग मुनि को वसुदेव ने ही इस कार्य के लिए नंद-धाम भेजा था। 'सूर-सागर' के नामकरण का प्रसंग इससे भिन्न रूप मे है[4]।

११. कृष्ण के चंद्रमा के लिए हठ करने का प्रसंग 'सूरसागर' में बड़ी स्वाभाविकता और सरलता से परिपूर्ण मिलता है, पर उसमें 'साराबली' में उल्लिखित 'बूढे बाबू' के कृष्ण-दर्शन के लिए आने और लालमणि देकर उन्हें मना लेने का कोई उल्लेख नहीं है[5]।

१. 'सूरदास', पृ० ९२।
२. वही, पृ० ९२।
३. वही, पृ० ९२।
४. वही, पृ० ९२।
५. वही, पृ० ९२।

१२. 'सारावली' मे माखनचोरी, कालियदमन, रास, गोवर्धनधारण आदि लीलाओ का 'सूरसागर' की उक्त लीलाओ का संक्षेप सानुपातिक दृष्टि से अत्यंत संक्षेप मे तो है ही, साथ ही उनके क्रम मे भी विभिन्नता है[1]।

१३. 'सूरसागर' में व्रज की लीलाओ का विस्तार और मथुरादि इतर लीलाओं का अत्यन्त सक्षेप है, परंतु 'सारावली' मे केवल कंस-बध का ही 'सूरसागर' की अपेक्षा कही अधिक विस्तार है। 'सारावली' मे कंस-वध की तिथि, वार, नक्षत्र आदि के विवरण दिये गये हैं तथा कंस के केश पकड़ कर यमुना तक घसीटने का वर्णन किया गया है। इस संबंध मे नारद का ब्रज जाकर मधुर बीन बजाने का उल्लेख भी 'सारावली' की अपनी कल्पना है[2]।

१४. 'सूरसागर' मे कृष्ण के मथुरा-गमन और तज्जन्य व्रजवासियों की वियोग-व्यथा के नाना विधि मार्मिक चित्र मिलते है, परंतु 'सारावली' का कवि व्रजवासियों के भाव-लोक की ओर झाँकता तक नहीं[3]।

१५. ़सी प्रकार 'साराव्ली' के नंद आदि गोप कृष्ण से विदा होकर मथुरा से चुपचाप चले आते है। कृष्ण भी उन्हें हिलमिल कर प्रसन्नतापूर्वक विदा करते हैं। 'सारावली' के कवि की हृदय-हीनता 'सूरसागर' के पाठक सहज ही देख सकते है[4]।

१६. 'सूरसागर' के केवल छोटे से पद मे कृष्ण के विद्याध्ययन और गुरु-दक्षिणा देने का प्रसग-पूर्त्यर्थ उल्लेख मात्र किया गया है, परंतु 'सारावली' मे उनके राजनीति पढने, गुरु-सेवा करने तथा गुरु-दक्षिणा चुकाने के लिए यमपुर जाकर गुरु के मृत पुत्रो को लाने के विस्तृत उल्लेख हैं[5]।

१७. 'सूरसागर' मे श्रीकृष्ण का अक्रूर-गृह गमन का उल्लेख भ्रमरगीत के बाद आया है, परंतु 'सारावली' मे उसके पहले ही[6]।

१८. 'सूरसागर' के कृष्ण ने भी 'सारावली' की भाँति उद्धव को इसी

१. 'सूरदास', पृ० ६२-६३।
२. वही, पृ० ६३।
३. वही, पृ० ६३।
४. वही, पृ० ६३।
५. वही, पृ० ६३।
६. वही, पृ० ६३।

उद्देश्य से ब्रज भेजा था कि वे वहाँ जाकर गोपियों की प्रेम-भक्ति का महत्व समझें, किन्तु उन्होंने यह उद्देश्य उद्धव को बताया नहीं। 'सारावली' ने 'सूरसागर' के इस प्रसग के गूढ व्यंग्य को न समझ कर कृष्ण द्वारा उनके उद्देश्य का स्पष्टीकरण करा दिया। वस्तुत: उद्धव को व्रज भेजने, उनके ब्रज पहुँचने, नद के यहाँ उनके आदर-सत्कार, भोजन शयन और गोपी-उद्धव सवाद— भ्रमरगीत का संपूर्ण प्रकरण 'सारावली' मे 'सूरसागर' से भिन्न रूप में ग्रहण किया गया है। दोनो रचनाओं का यह अंतर अनेक दृष्टियों से अत्यंत महत्व-पूर्ण है[1]।

१९. दशम-स्कंध उत्तरार्ध की कथा, हम पीछे देख चुके है, 'सूरसागर' मे अत्यंत गौण और कथा-पूर्त्यर्थ रूप मे वर्णित है। इसीलिए उसमे प्रेम-भक्ति प्रकाशन के अवसरों को छोड़कर शिथिलता, अस्पष्टता और अरोचकता है। परन्तु 'सारावली' मे यह कथा-खंड अपेक्षाकृत अधिक सुगठित और क्रम-व्यवस्थित है। 'सारावली' का कवि उसके प्रति तनिक भी उदासीनता दिखाता नही जान पड़ता, बल्कि व्रज-लीला के अनेक सरस-प्रसंगों से अधिक तन्ययता के साथ उसका वर्णन करता है[2]।

२०. उद्धव के साथ बल-मोहन का मथुरा से व्रज लौटना और गोपियों की चरण-रज से रस-भीने गुल्फ मे वास देना वर्णित करके 'सारावली' ने अपनी अद्भुत एवं स्वतंत्र उद्भावना प्रदर्शित की है। 'सूरसागर' मे गोपी-कृष्ण और राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग कृष्ण-कथा के सर्वाधिक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण अंश है, किंतु 'सारावली' में उन्हे पृथक् करके प्रधान कृष्ण-कथा के प्रासंगिक अंश के रूप में उपस्थित किया गया है[3]।

२१. कृष्ण के प्रति गोपियों की माधुर्य-भक्ति के विकास में दानलीला का एक विशिष्ट स्थान है। इस लीला मे 'सूरसागर' की अनन्य भावयुक्त गोपियाँ कृष्ण के ब्रह्मत्व और गौरव का स्पष्ट प्रत्याख्यान करती हुई दिखायी गई हैं। इसके विपरीत, 'सारावली' की दानलीला मे कृष्ण के ब्रह्मत्व का प्रयत्न पूर्वक प्रतिपादन किया गया है[4]।

१. 'सूरसागर', पृ० ६३।
२. वही, पृ० ६४।
३. वही, पृ० ६४।
४. वही, पृ० ६४।

२२. राधा-कृष्ण की रस-केलि के बीच बीच राधा और गोपियों के प्रेम-विषयक विवाद-उपालंभ के स्थान पर 'सारावली' मे यशोदा द्वारा कृष्ण को भोजन आदि की परिचर्या के वर्णन किये गए है जो 'सूरसागर' से भिन्न एवं माधुर्य-भक्ति और शृङ्गारिक वातावरण मे सर्वथा असंगत है[१]।

२३. राधा कृष्ण के सुरति-वर्णन मे 'सारावली' मे 'सूरसागर' के ग्रामीण वातावरण के स्थान पर रस केलि-विलासी राधा-कृष्ण की ललिता द्वारा परिचर्या, विभिन्न रागो का गायन, कपूर मिलाकर गर्म दूध पिलाना, जालरंध्र से सखियों का देखना आदि वर्णन करके एक संपन्न गौरवशाली नागरिक वातावरण की रचना की गई है। साथ ही, कृष्ण के ब्रह्मत्व-परक विशेषण एवं तत्संबंधी व्याख्याएँ भी 'सारावली' की अपनी विशेषताएँ है[२]।

२४. फाग और होली का वर्णन 'सारावली' मे 'सूरसागर' से भिन्न है, इस संबंध मे यशोदा का योग विशेष रूप से द्रष्टव्य है[३]।

२५. बृंदावन-धाम की क्रीडा का वेद से लेकर 'भागवत' तक का इतिहास देकर 'सारावली' के कवि ने वेद-शास्त्र के प्रति अपनी निष्ठा घोषित की है। 'सूरसागर' मे इस प्रकार का वर्णन और विचार कहीं नही मिलता[४]।

२६. 'सारावली' मे राधा के कृष्ण को मथुरा जाने से रोकने और संकर्षण के मुख की अग्नि से सकल ब्रह्मांड के होली की तरह जलने का वर्णन है। पर इन बातों का 'सूरसागर' मे संकेत भी नही है[५]।

२७. इसमे संदेह नही कि 'सूरदास' श्रीवल्लभाचार्य के संप्रदाय में थे। अतः उनकी रचनाओं मे साप्रदायिक सिद्धातों की व्यावहारिक व्याख्या मिलनी चाहिए। 'सूरसागर' मे भी, जैसा कि आगामी अध्यायों मे विवेचन किया गया है, सैद्धांतिक बातों का प्रचुर मात्रा मे विशदीकरण मिलता है। परंतु 'सूरसागर' के कवि का जो व्यक्तिगत दृष्टिकोण है, वह 'सारावली' से भिन्न है। 'सारावली' मे प्रत्यक्ष रूप में सैद्धातिक व्याख्या के साथ घटनाओं का शास्त्रीय प्रमाणों से, सिद्धान्तों की पुष्टि के अनुकूल विशदीकरण किया गया है। इसके अतिरिक्त राम

१. 'सूरसागर', पृ० ६४।
२. वही, पृ० ६४।
३. वही, पृ० ६४।
४. वही, पृ० ६४।
५. वही, पृ० ६५।

और कृष्ण के प्रति दोनों के दृष्टिकोण में महान् अंतर है, कृष्ण के व्यक्तित्व के जिन गुणों के प्रति 'सूरसागर' मे उपेक्षा प्रदर्शित की गई है, उन्हीं को 'सारावली' मे महत्व दिया गया है, तथा उन गुणों के उचित मूल्यांकन मे 'सारावली' का कवि असफल सा दिखाई देता है, जिनको 'सूरसागर' मे सर्वाधिक महत्व दिया गया है। संक्षेप मे, जहाँ 'सूरसागर' मे नंदनंदन, गोपाल, गोपी-वल्लभ, राधा-वल्लभ-कृष्ण का गुणगान है, वहाँ 'सारावली' मे असुर-संहारक, भक्त-उद्धारक, महाराज द्वारकाधीश श्रीकृष्णचंद्र के यश-विस्तार की कथा है। अन्य चरित्रों पर भी इस विभिन्न दृष्टिकोण का अनिवार्य प्रभाव पड़ा है। विप्र, वेद, शास्त्र आदि के विषय मे 'सारावली' के कवि का दृष्टिकोण 'सूरसागर' से सर्वथा भिन्न है[1]।

२८. 'सूरसागर' के रचयिता सूरदास अपने विषय मे इतने मुखर और आत्मविज्ञापक कहीं नही हुए जितना 'सूरसागर-सारावली' का कवि दिखाई देता है। वह बहुत दिनों तक अपने 'शिव-विधान-तप' करके असफल होने, तथा कर्म-योग, ज्ञान और उपासना के भ्रम मे भटकने का ही उल्लेख नही करता, वरन् यह भी कहता है कि उसे 'सरसठ वर्ष प्रबीन' में गुरु के प्रसाद से परब्रह्म की उस लीला का दर्शन हुआ जो वे राधा-कृष्ण के रूप मे वृंदावन के निकुंजों में करते है। यही नहीं, वह 'एक लक्ष' पदो की रचना की भी घोषणा कर देता है तथा 'श्रीनाथ के वरदान' के रूप मे वह स्व-रचित 'सारावली' का माहात्म्य बता कर उसे मुक्ति का सरल उपाय घोषित करता है[2]।

'सूरसागर' और 'सूरसारावली' की कथावस्तु के संबंध में डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा बताए गए सभी तर्क और अंत मे उनके निष्कर्ष पूर्ण रूप से उन्हीं के शब्दो मे इस उद्देश्य से दे दिये हैं कि पाठक डा० वर्मा के गंभीर अध्ययन को देखने-समझने के साथ साथ यह भी जान लें कि उनका उत्तर देने वालो ने किस टाल-टूल नीति का सहारा लेकर 'सारावली' को सूरदास की प्रामाणिक कृति सिद्ध करने का कैसा उपहासास्पद प्रयत्न किया है।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा के उक्त तर्कों पर विचार करनेवालो मे प्रमुख हैं 'सूर-निर्णय'-कार श्री द्वारकादास परीख और श्री प्रभुदयाल मीतल, एवं गौण हैं डा० मुंशीराम शर्मा तथा डा० हरवंशलाल शर्मा। 'सूर-निर्णय'-कारों ने समझा कि ड० वर्मा के सारे तर्क 'सारावली' को 'सूरसागर' के सवा

१. 'सूरसागर', पृ० ६५।

२. वही, पृ० ६६।

के विस्तार के संबंध में जो कुछ उन्होने लिखा है, उसको भी सिद्धांत-सार के नाम पर टाल देना क्या उचित है ? चौदहवें और पंद्रहवें तर्क में ब्रजवासियों और नंद आदि गोपो की हृदय-हीनता का चित्रण करके 'सारावली'-कार ने किस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है ?

डा० वर्मा के सोलहवें और सत्रहवें तर्क की यदि उपेक्षा भी कर दी जाय तो अठारहवें में उनके द्वारा निर्देशित अंतर का क्या उत्तर दिया जायगा ? जिन ब्रजवासियर्यों ने श्रीकृष्ण के मथुरा-प्रवास के समय किसी प्रकार की विरह-व्यथा का अनुभव ही नहीं किया उनको समझाने-बुझाने की या उनसे प्रेम-भक्ति समझने की बात 'सारावली' में कहा जाना कहाँ तक उचित है ?

डा० वर्मा के उन्नीसवें तर्क मे डा० गुप्त की वह बात दोहरायी गयी है, जिसके संबंध मे पीछे विस्तार से लिखा जा चुका है। अष्टछापी सूरदास की भक्ति श्रीकृष्ण के रस-रूप के प्रति जितनी है, उतनी उनके ऐश्वर्य रूप के प्रति नही। 'सूरसागर' मे इसी कारण दशम स्कंध उत्तरार्द्ध की लीलाएँ अत्यंत संक्षेप मे वर्णित है। 'सारावली'-कार उनका चित्रण इतने विस्तार से करता है कि उसकी प्रामाणिकता के समर्थक डा० गुप्त को भी, जैसा पीछे उद्धृत किया जा चुका है, लिखना पड़ता है—'इस ग्रंथ ('सारावली') में भी कृष्ण की ऐश्वर्य और रस, दोनों प्रकार की लीलाओं का संक्षेप मे वर्णन है, परंतु कृष्ण के ऐश्वर्य रूप पर बल अधिक है और 'सूरसागर' के प्राप्त पदो में कृष्ण के आनंद रूप (ब्रजरूप) पर है'[१]। इस प्रकार के चित्रण द्वारा, सर्वथा भिन्नादर्श अपनाकर, 'सारावली'-कार ने किस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है ?

डा० वर्मा के शेष तर्क मुख्यतः 'सारावली' के भाषा-रूप से संबंध रखते हैं। उन तर्कों में से अधिकांश से हम सहमत हैं, अतएव उनको यहाँ न उद्धृत करके, आवश्यकता होने पर यथास्थान देना ही उचित जान पड़ता है। यहाँ तो उन तर्कों के आधार पर डा० वर्मा द्वारा निकाले गये निष्कर्ष देना ही पर्याप्त है, जो इस प्रकार हैं—

१. 'सारावली' का कवि अपना शास्त्रोक्त ज्ञान और पांडित्य प्रदर्शित करने के लिए उसी के अनुकूल ब्रजभाषा का ऐसा पंडिताऊ रूप उपस्थित

१. 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', प्रथम भाग, पृ० २८५।

करता है जिसमें कथावाचकों की ब्रज और खड़ीबोली की तत्सम-प्रधान मिश्रित-शैली का व्यवहार हुआ है। 'सूरसागर' में भी तत्सम-प्रधान भाषा का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया गया है, परंतु ऐसा तभी हुआ जब कवि को अपनी कल्पना-सृष्टि मे मोहक सौंदर्य-विधान का अवसर मिला। विशेषतया रूप के चित्रणों में तत्सम-प्रधान शैली की प्रचुरता है। 'सारावली' तो एक संक्षिप्त वर्णन की रचना है। ऐसे स्थलों पर जिस प्रकार की शैली का व्यवहार 'सूरसागर' में मिलता है, उससे 'सारावली' की शैली में अत्यधिक भिन्नता है[१]।

२. ('सारावली' के) उपयुक्त उद्धरणों में ध्यान से देखने पर ऐसी अनेक पंक्तिया मिलेंगी जिनमे सुंदर और मधुर शब्द-संचय तो है पर उनके अनुरूप न तो अर्थ का सौंदर्य है और न उच्च कल्पनाओं की सृष्टि[२]।

३. 'सारावली' से ऐसे शब्दों की एक लम्बी सूची बनाई जा सकती है जिनका व्यवहार उन्ही रूपों मे 'सूरसागर' के बृहद् आकार में ढूँढने से भी मिलना कठिन है। उदाहरण के लिए 'सारावली' में 'रामचंद्र' और कृष्णचंद्र' का जितनी बार प्रयोग किया गया है वहीं 'सूरसागर' के राम, रघुबर, रघुनाथ, रघुपत्ति, कृष्ण, कान्ह, हरि, श्याम आदि की तुलना 'सारावली' को किसी अन्य कवि की रचना सूचित करती है[३]।

'सारावली' की बंबइया प्रति में 'ब्रजभाषा शब्दों के संस्कृत-करण' को मीतल जी ने 'वेंकटेश्वर प्रेस के संस्कृतज्ञ प्रूफ-शोधकों की ही कृपा का फल बताया है[४]।' क्या डा० वर्मा द्वारा संकेतित तत्सम और मिश्रित-शैली तथा अन्य प्रयोगो के संबंध में, मीतल जी के उक्त निष्कर्ष के आधार पर, 'साराबली' की प्रामाणिकता के पोषक भाषा-संबंधी उक्त सारे अंतरो को भी प्रूफ-शोधको की कृपा का ही फल कहना चाहेंगे ?

प्रामाणिकता-पोषकों के निष्कर्ष—

सूर-साहित्य के आलोचको के जिन तीन वर्गों की चर्चा ऊपर की गयी है उनमें से अंतिम का तो हम समर्थन ही कर रहे हैं और

१. 'सूरदास', पृ० १०२-३।
२. वही, पृ० १०३।
३. वही, पृ० १०३।
४. 'सारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० १४।

द्वितीय वर्ग एक प्रकार से तटस्थ है, कम से कम वह 'सारावली' की प्रामाणिकता का समर्थन करनेवालो के साथ नही है। अब रह जाता है केवल प्रथम वर्ग जो उसे सूरदास की स्वतंत्र, मौलिक और प्रामाणिक कृति मानता है। इस वर्ग मे मुख्यत: चार विद्वान आते है—डा० दीनदयालु गुप्त, डा० मुंशीराम शर्मा, 'सूर-निर्णय'-कार श्री द्वारकादास परीख और श्री प्रभुदयाल मीतल तथा डा० हरवंशलाल शर्मा। डा० गुप्त ने अनेक तर्क देकर, जो ऊपर उद्धृत किये जा चुके हैं, 'सारावली' को सूर-कृत कहकर ही प्रसंग समाप्त कर दिया है[१]। डा० मुंशीराम शर्मा ने लिखा है—'पर क्या ये अंतर, ('सूरसागर' और 'सारावली' मे दिखाये गये डा० वर्मा के सत्ताइस अंतर) जिनमें कुछ शैली संबंधी हैं और कुछ कथावस्तु से संबंध रखते है ऐसे सुदृढ़ हैं जिनके आधार पर दोनो ग्रंथों को दो भिन्न-भिन्न सूरदासो की रचना समझा जाय[२]? और अंत मे अपना मत दिया—'हमारी सम्मति मे 'सारावली' और 'साहित्य-लहरी' 'सूरसागर' के रचयिता की ही कृति हैं। शैली तथा कथावस्तु की भिन्नता कवि की विविधरूपा भाव-पद्धति एवं वाग्विदग्धता के कारण है[३]। डा० हरवंशलाल ने दो-तीन स्थलो पर इस प्रकार के वाक्य लिखकर—जैसे १. डा० व्रजेश्वर वर्मा ने अपने निष्कर्ष के विषय में अनेक युक्तियाँ प्रस्तुत की है[४], २. हम 'सारावली' की प्रामाणिकता के संबंध मे आचार्य मुंशीराम शर्मा के मत से सहमत है[५]—अंत में कहा है कि इसलिए 'सूर-सारावली' की प्रामाणिकता मे संदेह के लिए कोई स्थान नही है[६]।

केवल 'सूर-निर्णय-कारों ने 'सारावली' की प्रामाणिकता पर अपेक्षाकृत विस्तार से विचार किया है और ये निष्कर्ष निकाले हैं—

१. कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से यह 'सारावली' निःसंदेह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसमे प्राप्त आत्मकथन और कवि-छापों से भी इसकी पुष्टि होती है।

१. 'अष्टछाप और बल्लभ-संप्रदाय', पहला भाग, पृ० २६०।
२. 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य', पृ० ४१५।
३. वही, पृ० ४६०।
४. 'सूर और उनका साहित्य', पृ० ४१।
५. वही, पृ० ४१।
६. वही, पृ० ४२।

२. 'सारावली' की रचना वि० सं० १६०२ मे हुई है।

३. 'सारावली' का आधार 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' है।

४. 'सारावली' का दृष्टिकोण सैद्धांतिक रहा है।

५. वि० सं० १६०२ पर्यंत सूरदास ने 'श्रीमद्भागवत' के द्वादश-स्कंध के अतिरिक्त वल्लभ संप्रदाय की नित्य और वर्षोत्सव की सेवा के जिन पदो को गाया था, उन्ही का यह सूचीपत्र अथवा सिद्धांतात्मक सार है। सृष्टि-रचना के लिए उसकी प्रारंभिक 'विशिष्ट प्रस्तावना' और 'होरी खेल की कल्पना' इस सिद्धातात्मक दृष्टि की पुष्टि करती है।

६. द्वादशस्कंधात्मक 'भागवत' के सार-रूप से इसमे प्रधानत: २४ अवतारों का वर्णन और नित्य एवं उत्सव की सेवाओ के पदों के सार-रूप मे 'सरस वसंत्सर लीला' की भावनाओं का वर्णन है। इस प्रकार 'सारावली' मे कथावस्तु को दो भागो मे पृथक्-पृथक् बाँटना भी 'ताकौ सार सूरसारावली' वाले कथन की पुष्टि करता है।

इस प्रकार 'सारावली' सूरदास की एक स्वतंत्र सैद्धातिक रचना है[१]।

आगे के पृष्ठों में 'सारावली' और 'सूरसागर' का तुलनात्मक अध्ययन करके हमें दिखाना है कि 'सूर-निर्णय'-कारों के उक्त निष्कर्ष कहाँ तक ठीक है। 'सूर-निर्णय'-कारों के प्रथम निष्कर्ष में 'सारावली' मे प्राप्त आत्मकथनो की चर्चा है। अतएव उन्हीं से हम आगे का विषय प्रारंभ करते है।

---

१. 'सूर-निर्णय', पृ० १४२-४३।

'सारावली' में कवि के आत्मकथन

किसी रचना के ऐसे वाक्य जो किसी भी प्रकार से उससे रचयिता के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने सहायक होते हैं, 'आत्मकथन' कहलाते हैं। ऐसे कथन, स्थूल रूप से, दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो कवि की जीवनी विषयक तथ्यों की प्रामाणिक जानकारी कराते है और दूसरे वे जो कवि के स्वभाव या उसके विविध आदर्शों पर प्रत्यक्ष प्रकाश डालने मे सहायक होते हैं। 'सारावली' मे दोनों प्रकार के आत्मकथन मिलते है।

क. जीवन-चरित् संबंधी आत्मकथन—

'सारावली' मे ऐसे कथनों की संख्या तीन हैं जो इस प्रकार हैं—

१. कछु संक्षेप 'सूर' अब बरनत लघुमति दुरबल बाल[1]।

२. महिमा सिंधु कहाँ लगि बरनै 'सूरज' कवि मतिमंद[2]।

३. गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रबीन।
सिव-बिधात तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहि लीन[3]।

प्रत्येक कवि की जीवनी के लिए हमारे आलोचक सबसे पहले अंत:साक्ष्यों की खोज करते है। सूरदास का जीवन-चरित्र लिखते समय भी उनके अध्येता इनका आधार लेते हैं। ऊपर के तीनों उद्धरण 'सारावली' के ही है, परंतु इनमें से प्रथम दो को कदाचित् किसी भी आलोचक

१. 'सारावली', छंद १५७।
२. वही, छंद ६६६।
३. वही, छंद १००२।

ने उद्धृत नहीं किया है। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि इनमें कवि की जीवनी-विषयक कोई प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है और दूसरे, 'लघुमति' और 'मतिमंद' को कवि की विनय-भावना के अंतर्गत समझ लिया गया है। परंतु तीसरे उदाहरण के 'प्रबीन' शब्द की व्याख्या मे 'सूर-निर्णय' कार जब यह लिखते हैं—इन लीलाओ के समझने मे सूरदास उस समय 'प्रवीन' हो चुके थे, अत: उन्होने अपने लिए 'प्रबीन' शब्द का भी प्रयोग किया है। इन लीला भावनाओ के ज्ञान में प्रवीणता की नितांत आवश्यकता है, क्योंकि जब तक लीला-भेद नहीं जाना जाय, तब तक इन भावनाओ का वास्तविक ज्ञान भी नहीं हो सकता[1]; तब स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि जो कवि 'सरसठ बरस प्रबीन' होने की बात कह रहा है वही अपने लिए 'लघुमति दुरबल बाल' क्यों कहता है और आगे चलकर 'कवि मतिमंद' कहकर उसकी पुष्टि क्यो करता है? इतना तो निश्चित है कि 'सारावली'-कार अपने को कवि समझता है जैसा कि उसके निम्नलिखित कथनो से भी स्पष्ट है—

१. अस कला अवतार स्याम के कवि पै कहत न आवै[2]।
२. रति अरु काम प्रगट ता दिन तैं, कवि मिलि कीरति गाई[3]।

यदि दूसरे छंद में प्रयुक्त 'कवि मिलि' का तात्पर्य अन्य कवियों से भी मान लें, तब भी प्रथम उदाहरण का 'कवि' शब्द स्पष्ट सूचित करता है कि 'सारावली' का रचयिता अपने को कवि मानता है, तब वह एक स्थान पर अपने को 'लघुमति' और 'मतिमंद' तथा दूसरे स्थान 'प्रबीन' क्यों कह रहा है? यह तो संभव नहीं है कि 'दरसन' की चर्चा के पूर्व का अंश पहले की अवस्था का है और 'दरसन' होते ही उसे प्रवीणता प्राप्त हो जाती है। तब क्या उक्त विरोधी प्रयोग कवि की असावधानी नहीं सिद्ध करते जिससे 'सूर-निर्णय'-कारो की 'प्रबीन' की व्याख्या ही विवाद का विषय बन जाती है?

'सूरसागर' मे भी अनेक स्थानो पर सूरदास ने अपने लिए 'क ; शब्द का प्रयोग किया है; यथा—

१. 'सूर-निर्णय', पृ० १४०।
२. 'सारावली', छंद ३५४।
३. वही, छंद ६६८।

१. तौ जानिहौं जौ मोहि तारिहौ सूर कूर कवि ढोट[१] ।
२. कवि उपमा बरनै कछु छोटी[२] ।
३. बारबार जमुहात सूर प्रभु इहि उपमा कवि कहै कहा री[३] ।
४. दामिनि घन पटतर दीजै क्यो सकुचत कवि लिए नामा[४] ।
५. कनक जटित जराइ बीरे कवि जु उपमा पाइ[५] ।
६. बन-बिलास ब्रज बास रास-सुख देखि देखि सुख पावत ।
सूरदास बहुरो बियोग गति कुकवि निलज ह्वै गावत[६] ।
७. कूर कुटिल कपटी चित अंतर, सूरदास कवि गावत[७] ।

उक्त वाक्यो में प्रयुक्त 'कवि' शब्द का संकेत निश्चय ही 'सूरसागर' के रचयिता की ओर है। केवल छठे वाक्य मे सूरदास ने अपने लिए 'कुकवि' का प्रयोग किया है। उसका तात्पर्य तो यह है कि श्रीकृष्ण के ब्रज-विलास की अनेक सुखद लीलाओ का चित्रण करने के पश्चात् अब उनके मथुरा चले पर, उनके प्रिय संबंधियों और प्रेमिकाओं के वियोग-दुख का वर्णन जिसको करना पड़े, निस्संदेह वह कवि 'अभागा' ही है। अतएव उक्त वाक्यों मे 'कवि' शब्द के प्रयोग द्वारा वह अपने को स्पष्ट रूप से 'कवि' स्वीकार करता और एक बड़े दायित्व के निर्वाह की प्रतिज्ञा मे बद्ध होता है। इसी तरह के कुछ और भी वाक्य 'सूरसागर' में मिलते है जिनमे प्रयुक्त 'कवि' शब्द का संकेत निश्चयपूर्वक दूसरों की ओर है; जैसे—

१. लाल गोपाल बाल-छबि बरनत करिहै कवि-कुल हास री[८] ।
२. लोचन आँजि स्रवन-तरिवन छबि को कवि कहै निवारि[९] ।
३. सूरदास प्रभु-प्यारी की छबि प्रिय गावत नित,
पावत कवि उपमा जे ते सभागे[१०] ।

१. 'सूरसागर' पद, १-१३२ ।
२. वही, पद १०-१६५ ।
३. वही, पद १०-२८८ ।
४. वही, पद २१८१ ।
५. वही, पद २८६१ ।
६. वही, पद ४०२६ ।
७. वही, पद ३८८८ ।
८. वही, पद १०-१३६ ।
९. वही, पद २०२७ ।
१०. वही, पद २१७१ ।

४. तुम अँग अँग छबि की पटतर कौं कविअनि बुद्धि नची[1] ।

५. सूरस्याम उर-करज कौं को बरनि सकै कवि[2] ।

उक्त वाक्यों मे प्रयुक्त 'कवि' शब्द प्रत्यक्ष रूप से सूरदास की ओर भले ही सकेत न करता हो, परंतु उससे यह ध्वनि तो निकलती ही है कि वह अपने को कवि-वर्ग मे ही समझता है।

परंतु उक्त उदाहरणो मे कहीं 'प्रवीन' या उसी अर्थ के किसी शब्द का प्रयोग कवि ने अपने लिए नहीं किया है। ऐसी स्थिति मे 'सूर-निर्णय'-कारो की 'प्रवीण' शब्द की व्याख्या क्या ठीक है और क्या पूर्व-कथनो से उस अर्थ की संगति बैठती है ?

दूसरी शंका यह है कि पहले उदाहरण मे 'सारावली'-कार ने अपने लिए 'बाल' शब्द का प्रयोग किया है और तीसरे मे 'सरसठ बरस' की अवस्था का उल्लेख मिलता है ? इन स्पष्ट विरोधी कथनों के संबंध मे प्रामाणिकता के पोषको का क्या मत है ?

डा० ब्रजेश्वर ने 'सूरज कवि' नाम को लेकर अनुमान किया है—यह सूरज कवि वह ब्रजवासी बालक अनुमान से जान पड़ता है जो नागरीदास जी के अनुसार ब्रज मे 'द्वै तुकिया होरी के भड़ौआ' गाता फिरता था और जिसे गोस्वामी जी ने 'भगवत् जस' वर्णन करने का उपदेश दिया था। संभल है, गोस्वामी जी का उपदेश मानकर कालंतर में उसी ने 'सारावली' के नाम से होली का वृहद् गान रच दिया हो[3]। डा० वर्मा ने स्पष्ट तो नही लिखा है, परंतु जान पड़ता है, 'सारावली' के उक्त 'बाल' शब्द और 'होली' के रूपक से ही उनका ध्यान नागरीदास के उक्त कथन की ओर गया होगा। जो हो, 'सूर-निर्णय' में तो नही, 'सारावली' की भूमिका मे मीतल जी नागरीदास का उल्लेख करते हैं[4] और अंत मे उन्होने कहा है—इससे सिद्ध होता है, नागरीदास-कृत 'पद-प्रसंग-माल' के होली-गायन मे जिस 'ब्रजवासी बालक' का उल्लेख है, वह अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त कोई अन्य 'सूरज कवि' नहीं है[5]। इस प्रकार डा०

१. 'सूरसागर', पद २४४८।

२. वही, पद २७३१।

३. 'सूरदास', पृ० १०५।

४. 'सारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० २८।

५. वही, पृ० ३०।

वर्मा के 'अनुमान' का निराकरण मीतल जी ने कर दिया है।

हमारी सम्मति में, 'लघुमति' और 'मतिमंद' का प्रयोग सामान्य शालीनता या विनम्रता दर्शाने के लिए हुआ है, और 'प्रबीन' असमर्थ प्रयोग है जो केवल तुक-निर्वाह के लिए लिखा गया है और जिसका 'परिपक्व' अर्थ, 'सरसठ वर्षीय' अवस्था से जोड़ा जा सकता है, जैसा कि डा० मुंशी राम शर्मा का भी मत है[1]। कवि ने उस शब्द के द्वारा अपनी 'प्रवीणता' की ओर किसी प्रकार का संकेत नहीं किया है। इसी प्रकार 'लघुमति दुरबल बाल' 'सूरसागर' के 'सूर कूर कवि ढोट' का असमर्थ सा अनुवाद है; और 'ढोट' या 'ढोटा' का अर्थ 'बाल' या 'बालक' होता भी है। इसी प्रकार 'सारावली' का 'मतिमंद' शब्द 'सूरसागर' के 'कुकवि' का अनुवाद ही सकता है।

अब उक्त कथनो के अर्थों पर विचार कीजिए। प्रथम दो कथन तो किसी आलोचक ने उद्धृत ही नही किये है, इसलिए उनके अर्थों मे मतभेद होने का प्रश्न ही नहीं उठता; यो भी उनके अर्थ स्पष्ट ही हैं। तीसरे छंद को, 'सूरदास' के संबंध में कुछ भी लिखनेवाले प्राय: प्रत्येक लेखक ने उद्धृब किया है और इसी के अर्थ के संबंध में उनमे मतभेद भी है।

तीसरा छंद श्रीकृष्ण की निकुंज-लीला-प्रसंग का है जिसमें कवि ने आराध्य और आराध्या के वे 'दर्शन' 'सरसठ' वर्ष की अवस्था मे करने की बात कही है जो शिव और विधाता तक बहुत दिन तप करने पर भी प्राप्त नहीं कर सके थे। इस छंद के प्रथम चरण के पाठ के संबंध मे तो सभी आलोचक एकमत हैं; परंतु उसके अर्थ 'कवि को गुरु-प्रसाद से सरसठ वर्ष की अवस्था में (निकुंज-लीला के) दर्शन हुए', से सब सहमत नहीं हैं। असहमति के कारण चार शब्द हैं—१. गुरु, २. दर्शन, ३. 'सरसठ बरस' और ४. 'प्रबीन'। इनमे से अंतिम शब्द 'प्रबीन' की चर्चा तो ऊपर की जा चुकी है. प्रथम तीनो के संबंध मे यहाँ विचार करना है।

'गुरु' शब्द का संकेत डा० मुंशी राम शर्मा ने 'वल्लभाचार्य जी से माना है,[2] परंतु 'सूर-निर्णय'-कारों की दृष्टि में उसका स्पष्ट संकेत गो० विट्ठलनाथ जी की ओर है, क्योंकि सूरदास महाप्रभु वल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी में कोई भेद नहीं समझते थे[3]। अपने कथन की पुष्टि

१. 'सूर-सौरभ', प्रथम भाग, पृ० ४।
२. वही, पृ० ६।
३. 'सूर-निर्णय', पृ० १५०।

में उन्होंने 'पादटिप्पणी' रूप मे सूरदास के अंतिम पद के प्रथम चरण—'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरौं'—को उद्धृत किया है। हमारी सम्मति मे, इस पद के संबंध मे डा० मुंशी राम शर्मा का ही मत ठीक है कि अपनी मृत्यु के समय उन्होने गो० विट्ठलनाथ का नही, महाप्रभु वल्लभाचार्य का ही गुण-गान किया था[1]। उस पद के दूसरे चरण मे महाप्रभु का स्पष्ट नाम भी है—'श्री वल्लभ-नख-चंद-छटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो'। यह दूसरी बात है कि गो० विट्ठलनाथ के प्रति सूरदास मे श्रद्धा-भाव रहा हो; परंतु उनका 'गुरु'-भाव महाप्रभु के प्रति ही था और 'सारावली' के उक्त छंद का 'गुरु-प्रसाद' भी 'महाप्रभु की दया से' ही अर्थ देता है। इस अर्थ का संबंध दूसरी बातो से बैठता है या नहीं, यह विचारणीय नहीं है; क्योंकि किसी प्रयोग का वही अर्थ निकालना जिससे स्वनिर्णीत अन्य बातों का भी समर्थन हो जाय, शुद्ध अनुसंधान-वृत्ति नही है। पहले उचित अर्थ का निर्णय करना और तब उसके आधार पर निष्कर्ष निकालना, हमारी समझ में तो, 'निर्णय-कार' के लिए यही उचित रीति है; अस्तु।

'दरसन' शब्द भी विवाद का कारण है। इसका अर्थ तो स्पष्ट है, परंतु 'दर्शन' के प्रसंगार्थ के संबंध मे मतभेत है। डा० मुंशी राम शर्मा के अनुसार, 'महाप्रभु' के दर्शन के उपरांत सूर को जो सिद्धि उपलब्ध हुई, जो दर्शन हुआ, वह भगवान की शाश्वत रास-लीला का ही दर्शन था[2]। 'सूर-निर्णय-कारों का मत है कि श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने जिस माधुर्य-भक्ति को अपने ग्रंथो मे व्यक्त किया था, उसी को श्री विट्ठलनाथ जी ने सेवा मे क्रियात्मक रूप से उपस्थित किया, जिसके फलस्वरूप संप्रदाय में निकुंज-भावना तादृश हुई।... ... जिन निकुंजो के दर्शनों की 'सूरदास' अभिलाषा करते थे, वे उनको अपनी ६७ वर्ष की अवस्था में तादृश हुए थे[3]। प्रथम मत के कारण 'सूरदास' को दर्शन कराने का श्रेय 'महाप्रभु वल्लभाचार्य' को मिलता है और तब वे हरि-लीला-गान में प्रवृत्त होते हैं तो दूसरे के समर्थक 'गुरु-प्रसाद' का संबंध गो० विट्ठलनाथ से मानते हैं जिसके फलस्वरूप 'सूर-साहित्य' का अधिकांश भाग रच जाने के पश्चात्, 'सूरदास' को 'निकुंज-लीला' के अभीप्सित दर्शन होते हैं। हमारी सम्मति में, 'सारावली'

१. 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य', पृ० ४४६।
२. 'सूर-सौरभ', प्रथम भाग पृ० ५।
३. 'सूर-निर्णय', पृ० ११०।

के उक्त छंद के पूर्व के प्रसंग के अनुसार 'दरसन' से कवि का तात्पर्य 'निकुंज-लीला-दर्शन' से ही है, यद्यपि, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'गुरु' से उनका संकेत महाप्रभु की ओर ही है।

'सरसठ बरस' पद का अर्थ तो स्पष्ट है, परंतु मतभेद इस बात मे है कि ६७ वर्ष की अवस्था में कवि को 'दर्शन' हुए या उसने 'सारावली' की रचना की। डा० मुंशी राम शर्मा का मत इस संबंध मे सबसे अधिक चौंकानेवाला है—'महाप्रभु वल्लभाचार्य के दर्शन के उपरांत अपने जीवन के ६७वें वर्ष में वे (सूरदास) सिद्धि प्राप्त कर सके। वल्लभाचार्य जी से भेंट करने के समय 'सूरदास जी' अवश्य ही अधिक आयु के थे . . .. । अतः उस समय सूर ६७ वर्ष के हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं।.... ६७ वर्ष की आयु में भगवान की लीला के दर्शन करना संतो के लिए विस्मयावह नहीं है। सूर का संयत हृदय और मन, बुद्धि एवं आत्मा पहले से ही किसी वस्तु के ग्रहण करने की पूरी तैयारी किये बैठे थे—भूमि तैयार थी, केवल बीज पड़ने की देर थी। यह बीज सूर को वल्लभ के अध्यात्म-शक्ति-गर्भित उपदेशो में सुलभ हो गया। 'सूरसागर' की प्रौढ़ रचना भी उसके प्रौढ़ आयु में लिखे जाने का समर्थन करती है। तुलसी ने राम-चरितमानस' ७७ वर्ष की आयु में लिखा था। सूर ने अपना 'सागर ६७वें वर्ष मे प्रारंभ किया'[१]।

दूसरा मत 'सूर-निर्णय'-कारों का है जो 'दरसन' और 'सारावली' की रचना, दोनों के समय सूरदास की आयु ६७ वर्ष की मानते हैं और उनके जन्म-संवत् १५३५ में उसे जोड़कर संवत् १६०२ में 'सारावली' की रचना होना कहते हैं। उनके अनुसार, इस संवत् तक सूरदास ने 'श्रीमद्-भागवत' के द्वादश स्कंध के अतिरिक्त वल्लभ-संप्रदाय की नित्य और वर्षोत्सव की सेवा के जिन पदों को गाया था, उन्हीं का यह ('सारावली') सूचीपत्र अथवा सिद्धांतक सार है[२]।

हम डा. मुंशीराम शर्मा के इस कथन से पूर्णतया सहमत हैं कि 'सारावली' में उपलब्ध ६७ वर्ष का संकेत उसके रचना-काल का नहीं, वरन सूरदास के हरि-लीला-दर्शन का सूचक है[३]; परंतु इस बात से सहमत नहीं

१. 'सूर-सौरभ', प्रथम भाग, पृ० ६।
२. 'सूर-निर्णय', पृ० १४२।
३. 'सूर-सौरभ', पृ० ४।

हैं कि वह समय उनके संप्रदाय-प्रवेश का ही हो सकता है। इसी प्रकार मीतल जी की, उक्त कथन के संबंध मे, यह टिप्पणी भी हमें मान्य नहीं है कि इस मत के मानने पर या तो सूरदास का जन्म-संवत् १५३५ से पूर्व मानना होगा, अथवा उनका संप्रदाय-प्रवेश सं० १५६७ के पश्चात्; ये दोनों संवत् अब निर्विवाद रूप मे निश्चित हो चुके हैं[१]। अत: सूरदास की ६७ वर्ष की आयु में ही 'सूर-सारावली' की रचना मानना उचित होगा[२]। मीतल जी के इस कथन से हमारा मतभेद इस कारण है कि हरि-लीला-दर्शन का स्पष्ट संकेत ६७ वर्ष की अवस्था मे होने पर भी, स्व-निर्णीत अन्य संवतों से केवल उसका मेल बैठाने के लिए उक्त अवस्था में 'सारावली' की रचना भी हो जाने का जबरदस्ती निश्चय वे क्यो कर लेते है? छंद का 'यह' सार्व-नामिक विशेषण भी 'दरसन' की ओर संकेत करता है, उसके रचना-काल की ओर नही। अतएव सूरदास संबंधी अन्य संवतो से मेल खाता हो या नही, हमे छंद का स्पष्ट अर्थ ही लेना चाहिए। 'सारावली' का रचयिता जिस 'सरसठ' वर्ष की अवस्था मे (लीला-) दर्शन की बात कह रहा है, वह यदि 'सूरसागर' के प्रसिद्ध रचयिता सूरदास के जीवन-क्रम से मेल नहीं खाती तो हमें स्पष्ट रूप से स्वीकार करना चाहिए कि 'सारावली' के जिस रचयिता ने 'सरसठ' वर्ष की अवस्था मे लीला-दर्शन किये थे, वह कोई अन्य कवि होगा, प्रसिद्ध कवि सूरदास नहीं हो सकता जिसके जन्म और संप्रदाय-प्रवेश के संवत्, मीतल जी के ही अनुसार, निर्विवाद रूप से निश्चित हो चुके हैं।

यहाँ हमे डा० मुंशीराम शर्मा का दूसरा कथन मान्य नहीं है। उन्होंने सूरदास का जन्म-संवत् १५१५ माना है और वल्लभ-संप्रदाय में प्रवेश ६७ वर्ष की अवस्था मे। जन्म-संवत् मे ६७ वर्ष जोड़कर संवत् १५८२ आता है। उधर, 'वार्ता' से ज्ञात होता है कि आचार्य महाप्रभु के समय से सूरदास 'सागर' विख्यात हो गये थे[३], जिसका स्पष्ट तात्पर्य यह

१. 'अष्टछाप-परिचय', पृ० १२७-२८।
२. सूरसारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० २४।
३. 'और सूरदास जी सो श्री आचार्य जी महाप्रभु आप 'सागर' कहते। सो सागर काहे ते कहियत है? जामे सब पदारथ होइ ताको 'सागर' कहिए। सो सूरदास जी ने लक्षावधि पद किए, सो सब जगत मे प्रसिद्ध भए।
—'प्राचीन वार्ता-रहस्य', द्वितीय भाग, पृ० ४४।

है कि 'सूरसागर' का अधिकांश तो उन्होने लिख ही लिया था। डा. दीनदयालु गुप्त के अनुसार महाप्रभु का देहावसान संवत् १५८७ में हुआ था[1] इन पाँच वर्षों में 'सूरसागर' का लिखा जाना, उसकी प्रसिद्धि हो जाना और महाप्रभु द्वारा इस प्रकार प्रशंसा भी प्राप्त कर लेना किसी तरह संभव नहीं हो सकता। यह तो ठीक है कि ६७ वर्ष का जितना निकट संबंध 'दरसन' से है, उतना 'सारावली' के रचना-काल से नही, परंतु उसके तत्काल पश्चात् 'सारावली' का रचा जाना भी संभव हो सकना है। इस प्रकार 'सारावली' के उक्त छंद के प्रथम चरण का सीधा-सादा अर्थ यही लेना उचित जान पड़ता है कि 'सारावली' के रचयिता को सरसठ वर्ष की (लंबो और परिपक्व) अवस्था मे, गुरु के (परम) प्रसाद से (ही निकुंज-लीला के परम काम्य) दर्शन हुए, हो सके या हो रहे हैं।

अब दूसरा चरण लीजिए—'सिव-बिधात तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन'। इस चरण के आदि मे प्रयुक्त 'सिव-बिधात' शब्द की ओर हमारे आलोचको ने ध्यान नही दिया है, उन्होने 'सिव-बिधान' पाठ लेकर पूरे चरण के भिन्न अर्थ निकाले है। सन् १८६४ (संवत् १६२०) में लखनऊ के 'सूरसागर' के साथ मुद्रित 'सारावली' में उक्त छंद का यही पाठ दिया हुआ है[2], परंतु लखनऊ के 'सूरसागर' से मिलान करने की बात कहकर भी मीतल जी ने स्व-संपादित 'सारावली' में 'सिव-बिधान' पाठ ही दिया है[3]। इसके अंतर के दो कारण हो सकते है—या तो उन्होंने लखनऊ के 'सूरसागर' से पाठ का मिलान किया ही नही है अथवा उसके किसी परवर्ती संस्करण से किया है। मीतल जी जैसे अनुसंधान-प्रेमी से प्रथम बात की आशा कोई नहीं कर सकता, अतएव हमे दूसरा कारण ही ठीक जान पड़ता है कि जिस संस्करण से उन्होने पाठ का मिलान किया है, उसमें 'सिव-बिधान' ही पाठ होगा; क्योंकि लखनऊ के संस्करण के पाठ को लेकर पाठांतर-सम्बंधी कोई संकेत भी उस छंद के पाठ के सम्बन्ध मे मीतल जी द्वारा संपादित 'सारावली' मे नहीं है। 'सारावली' के उस छंद को लेकर 'रागकल्पद्रुम' के आधार पर उन्होंने यह पाठ-भेद अवश्य दिया है—'बिधाता तप

१. 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', प्रथम भाग, पृ० ७३।
२. 'सूरसागर', सन् १८६४ का संस्करण, पृ० ३७।
३. 'सारावली' (मीतल), पृ० ८०।

करयो बहु दिन, ताहु पार न लीन्ह[१]। 'सित्र' शब्द न होने पर भी यह पाठांतर सर्वथा उपेक्षणीय नही था, क्योकि इसका भी अर्थ मीतल जी द्वारा गृहीत पाठ, 'सिव बिधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन' के अर्थ से सर्वथा भिन्न है।

'सिव-विधान'पाठ के अनुसार हिंदी के आलोचको ने कई विचित्र बातें लिखी है। डा. मुंशीराम शर्मा के अनुसार, 'द्वितीय पंक्ति में सूर लिखते हैं कि मै शैव संप्रदाय के विधानो के अनुसार बहुत दिन तक तप करता रहा, फिर भी पार न पा सका, प्रभु का दर्शन न कर सका। इस पंक्ति से प्रतीत होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य के दर्शनो से पूर्व अपने जीवन के प्रारंभिक भाग मे सूरदास शिव की पूजा किया करते थे। .... । सूर शिवाराधन मे तप करते हुए अनेक वर्ष व्यतीत कर चुके थे, फिर भी उन्हें पूर्ण तृप्ति नहीं हुई थी। वे (सूरदास) शिव के उपासक रह चुके थे— इस बात का भी समर्थन, जैसा हम आगे चलकर लिखेंगे, भविष्य पुराणांतर्गत[३] आये हुए श्लोक के 'शंभु' शब्द से हो जाता है[२]। डा० व्रजेश्वर वर्मा ने भी यही अर्थ स्वीकारते हुए उक्त चरण का अर्थ लिखा है—बहुत दिन शिव-विधान से तप किया, तो भी पार नहीं पाया[४]। यही अर्थ उन्होंने आगे भी एक स्थान पर किया है[५]।

मीतल जी 'सारावली' के उक्त छंद के द्वितीय चरण के डा० शर्मा और डा० वर्मा के अर्थों से सहमत नहीं हैं। उन्होंने लिखा है—

१. 'सारावली' (मीतल), पृ० ८०, दूसरा पाठातर।
२. 'सूर-सौरभ', पृ० ३-४-५।
३. 'सूर सौरभ', पृ० ४३ पर उद्धृत वह श्लोक और उसका अर्थ इस प्रकार दिया गया है—

सूरदास इतिज्ञेय: कृष्णलीलाकर: कवि:।
शम्भुर्वैचन्द्र भट्टस्य कुले जातो हरिप्रिय:।

—'भविष्यपुराण', प्रतिसर्ग पर्व, तीसरा भाग, अध्याय २२, श्लोक ३०। सूरदास चंद्रभट्ट के कुल मे उत्पन्न हुए थे। वे प्रथम 'शंभु' अर्थात् शैवधर्मावलंबी थे, बाद में हरि-प्रिय अर्थात् भगवद्भक्त बने।

४. 'सूरदास', पृ० ८८।
५. वही, पृ० ६६।

सूरदास के आरंभिक जीवन से संबंधित यह भ्रमात्मक कल्पना उक्त पंक्ति का गलत अर्थ करने से की जाती है। वास्तव मे इसका अर्थ इस प्रकार होना चाहिए,—'गुरु प्रसाद से यह दर्शन सरसठ वर्ष की प्रवीण (अवस्था में) हो रहा है। (इस दर्शन के लिए) शिव जी ने विधानपूर्वक बहुत दिनो तक तप किया, तब भी पार नहीं पाया।' इस प्रकार अर्थ करने से सूरदास द्वारा शिव जी की तपस्या करने और उसमें असफल होने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता है। इस अर्थ की संगति 'सारावली' के पूर्वापर क्रम से भी होती है; जब कि उक्त विद्वानों का अभिप्राय असंगत ज्ञात होता है। इसके लिए उक्त प्रसंग के पूर्वापर छंदों पर विचार करना आवश्यक है[1]।

उक्त तर्कों के उत्तर-प्रत्युत्तर भी दिये गये हैं। यदि ध्यान से देखा जाय तो प्रचलित पाठ का वही अर्थ अधिक संगत और उपयुक्त है जो डा० शर्मा ने समझा है और जिसका समर्थन डा० वर्मा ने किया है। परंतु जब छंद का पाठ ही बदला हुआ है, तब उसका अर्थ स्वभावत. बदल गया है और वह ऐसा है जिससे किसी का मतभेद नही हो सकता। इस नये पाठ का सीधा-सादा अर्थ है—शिव और विधाता भी जिस दर्शन की कामना से बहुत दिन तप करके भी सफल-मनोरथ न हो सके, (वही आज गुरु-प्रसाद से मुझे हो रहे हैं)। इस प्रकार का अर्थ प्रसंग की दृष्टि से भी सर्वथा संगत प्रतीत होता है।

ख. स्वभाव-प्रकाशक आत्म-कथन—

'सारावली' मे ऐसे आत्मकथन केवल दो छंदो मे मिलते हैं जो इस प्रकार हैं—

१. करम, जोग पुनि ज्ञान-उपासन सब ही भ्रम भरमायो।
श्रीबल्लभ-गुरु तत्व सुनायौ, लीला-भेद बतायो[2]।

२. ता दिन तैं हरि-लीला गाई, एक लन्छ पद-बंद।
ताकौ सार सूर-सारावलि, गावत अति आनंद[3]।

उक्त दोनो छंदो का पाठ, सामान्य वर्तनी-भेद के साथ 'सारावली'

१. 'सूरसारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० ४७।
२. 'सारावली', छंद ११०२।
३. वही, छंद ११०३।

की सभी प्रतियो में मिलता है। मीतल जी ने स्व-संपादित 'सारावली' में चतुर्थ पंक्ति के 'सूर' शब्द को इसी प्रकार (इनवर्टेडकामाज़ में) लिखकर उसे कवि की छाप बना दिया है[1] जिसका संकेत यह हुआ कि यह सब कवि सूरदास का कथन है जब कि होना चाहिए 'सूर-सारावलि' सामासिक पद जिसका संकेत प्रस्तुत ग्रंथ के नाम से है, कवि सूर और उसकी कृति से अलग-अलग नहीं। यही भूल मीतल जी ने 'सारावली' के ११०५ संख्यक छंद में की है[2]। वहाँ भी 'सूर' और 'सारावलि' न होकर 'सूर-सारावलि' होना चाहिए।

उक्त पंक्तियों का भावार्थ सूर-साहित्य के प्रायः सभी आलोचकों ने इस प्रकार किया है—कर्म, योग, और ज्ञान की उपासना या साधना, सभी भ्रम कवि सूरदास को भरमाते रहे अथवा सभी भ्रमों में कवि सूरदास भ्रमता फिरा; श्रीवल्लभ-गुरु ने उसको तत्व सुनाया और लीला-भेद बताया। उस दिन से कवि सूर ने एक लक्ष पद-बंदों में हरि-लीला गायी जिसका सार 'सूर-सारावली' के रूप में (कवि) बड़े आनंद से गाता है। यह भावार्थ यद्यपि किसी आलोचक ने इन शब्दों में अपनी किसी कृति मे नहीं दिया है, तथापि उक्त छंदो का यही तात्पर्य लेकर उन्होने अपने-अपने कथनों की पुष्टि की है। उनका मतभेद केवल दो पदो के संबंध मे है—पहला है 'एक लक्ष पद-बंद' और दूसरा, 'ताको सार'।

पहले अर्थात् 'एक लक्ष पद-बंद' का सीधा-सादा अर्थ 'एक लाख पद' हिंदी के अधिकांश विद्वानों ने किया है; परंतु जब उन्हें सूरदास के 'एक लाख' या उसके लगभग पद नहीं मिले, तब दो प्रकार के अर्थ किये गये। किसी ने सूरदास के पदों की संख्या रचना-दिवसों का हिसाब लगाकर एक लाख के आसपास पहुँचाने का प्रयन किया और 'सूर-निर्णय' कारों ने उनकी संख्या ६३३२० तक पहुँचा कर[3] लिखा—

अब रह जाते हैं सूरदास के सागरोक्त लीला, सिद्धांत और अनुवादात्मक पद। उन्होंने 'श्री भागवत' की तृणावर्त-अघासुर-वध, माटी-भक्षण, कालीयदमन आदि लीलाओ मे से प्रत्येक के अनेक पद रचे हैं, जिनका

१. 'सारावली' (मीतल), पृ० ८७।
२. वही, पृ० ८८।
३. 'सूर-निर्णय', पृ० १७३।

हिसाब लगाना भी कठिन है। यदि इन पदों को पूर्व संख्या में जोड़ा जाय तो सूरदास द्वारा रचे हुए लाख-सवा लाख पदों की बात प्रमाणित हो जाती है। इसमें सूरदास के पदों की जो आनुमानिक गणना की है, वह कम से कम है और प्रामाणिक आधार पर है, अत: उसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं है[१]।

डा० हरवंशलाल शर्मा भी उनसे सहमत हो गये और उन्होंने लिख दिया—सूर ने अवश्य सवा लाख के लगभग पदों की रचना की होगी[२]।

और किसी ने 'बंद' शब्द का नया अर्थ सुझाया। यह सूझ भी डा० हरवंशलाल शर्मा की है जो लिखते हैं—

इस पद के पूर्वापर सम्बन्ध से लक्ष शब्द संख्या-वाचक ही प्रतीत होता है, अतएव हमारी समझ में इस पद का निर्वाह दो प्रकार से हो सकता है।

१—'लक्ष-पद-बन्द' मे 'लक्ष' शब्द तो संख्यावाचक है ही, परंतु 'बन्द' शब्द प्रत्येक पंक्ति का सूचक है। इस प्रकार एक लाख पंक्तियाँ सहस्र पदों से भी कम में आ सकती हैं और ६७ वर्ष की अवस्था तक उन्होने अवश्य इतने पदों की रचना कर ली होगी। कवि की भावी पद-निर्माण-योजना का भी यह सूचक हो सकता है।

२—सम्भव है, यह पद प्रक्षिप्त हो और बाद में ही किसी ने जोड़ दिया हो[३]।

उधर मीतल जी ने पूरे सामासिक पद 'एक लच्छ पद-बंद' का ही अर्थ बदल दिया। उन्होंने बताया कि 'एक लच्छ' या 'एक लक्ष' के दो अर्थ हैं—पहला है 'उद्देश्य' और दूसरा, 'भगवान श्रीकृष्ण'। प्रथम के अनुसार पूरे चरण का अर्थ होगा—(अपने गुरु वल्लभाचार्य जी से तत्व और लीला-भेद का रहस्य जान कर उन्होंने उसी) एक लक्ष्य से पदबद्ध हरि-लीला का गायन किया[४]। और द्वितीय के अनुसार अर्थ होगा—(श्री वल्लभ गुरु ने सूरदास को भगवान श्रीकृष्ण की इन लीलाओं का तत्व सुनाकर उनका भेद बतलाया था।) उसी दिन से उन्होंने 'एक

१. 'सूर-निर्णय', पृ० १७३-७४।
२. 'सूर और उनका साहित्य', पृ० ३७।
३. वही, पृ० ४२।
४. 'सूर सारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० २१।

लक्ष' भगवान श्रीकृष्ण के पदों की वंदना कर जो लीलाएँ गाना प्रारंभ किया, उनका सार उन्होंने 'सारावली' में आनंदपूर्वक गाया है[1]।

हमारी सम्मति मे, ये सब खींचतान की बातें हैं। वस्तुत: 'सारावली' के रचयिता ने अन्वेषक की दृष्टि से छानबीन करके नहीं, 'वार्ता' आदि के उल्लेख—'सो तब सूरदास जी मन में बिचारे जो मैं तो अपने मन मे सवा लाख कीर्तन प्रकट करिबे को संकल्प कियो है, सो तामें तें लाख कीर्तन तो प्रगट भए हैं, सो भगवद् इच्छा तें पचीस हजार कीर्तन और प्रकट करने[2]—और जनश्रुति की प्रसिद्धि को स्वीकार करके सूरदास द्वारा एक लाख 'पद' ('बंद' नहीं) रचे जाने की बात कही है और 'बंद' से उसका तात्पर्य 'राग' के नियमों के निर्वाह से है जिससे 'पद-बंद' का सीधा-सादा अर्थ हुआ—'पदबद्ध' अथवा 'गेय पद': अस्तु।

जहाँ तक 'सारावली' की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का प्रश्न है, 'एक लच्छ पद बंद' के उक्त चारों अर्थों—१. एक लाख गेय पद, २. एक लाख पद-बंद, ३. एक लक्ष्य या उद्देश्य से पदबद्ध (हरि-लीला-गान) और ४. एक 'लक्ष्य' भगवान श्रीकृष्ण के पदो की वंदना — में से कोई भी लिया जा सकता है; क्योंकि 'सारावली' के उक्त पदों का जो वास्तविक तात्पर्य है, उसमे इन चारो से विशेष अंतर नहीं आता जैसा कि आगे दिये गये उनके अर्थों से स्पष्ट हो जायगा।

मतभेद का दूसरा कारण रहा है 'ताको सार' पद। अनेक आलोचक इसका अर्थ 'एक लाख पदों का सार' मानते रहे हैं और जब उन्हें उपलब्ध 'सूरसागरों' की अनेक कथाएँ 'सारावली' मे नहीं मिलतीं, तब वे, इसी आधार पर इस कृति को अप्रामाणिक बताने लगते हैं। इस मतभेद को दूर करने के लिए 'ताको सार' का तात्पर्य 'हरि-लीला-सार' से लिया जाने लगा है और वही उचित भी है।

इस प्रकार, हमारी सम्मति में, 'सारावली' के उक्त दोनों छंदों का अर्थ इस प्रकार है—कर्म, योग, ज्ञान-उपासना या साधना आदि सभी भ्रम जिस कवि सूरदास को (पर्याप्त समय तक) भरमाते रहे, उसी को श्री वल्लभाचार्य जी ने तत्व और लीला-रहस्य बताया-समझाया (जिसको हृद-

१. 'सूर-सारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० २१।
२. 'अष्टसखान की वार्ता', कौंकरोली, पृ० ६५।

यंगम करके कवि सूर ने) उसी दिन से एक लाख पदों या पद-बंदों में अथवा एक लक्ष्य से पदबद्ध होकर अथवा 'एक लक्ष्य' भगवान श्रीकृष्ण के पदों की वंदना करके हरि-लीला-गान किया। (कविवर सूरदास के) उस लीला-गान का सार 'सूर-सारावली' के नाम से (मैं अर्थात् 'सूर-सारावली' का रचयिता) बड़े आनंद से गाता (लिखता) हूँ।

उक्त अर्थ में किसी प्रकार की खीचतान नहीं की गयी है। इसकी जिस विशेषता की ओर सूर-साहित्य के समस्त आलोचकों का ध्यान हम आकृष्ट करना चाहते है, वह यह है कि उक्त चारो चरणों में से प्रथम तीन का सम्बन्ध अष्टछापी कवि सूरदास से है और चौथी पंक्ति की 'गावत' क्रिया का लुप्त कर्त्ता 'हौं' (या 'मैं') उस कवि की ओर संकेत करता है जिसने कविवर सूरदास के लीला - गान का सार 'सूर-सारावली' के नाम से लिखा है। इससे स्पष्ट रूप से सूचित होता है कि 'सारावली' का रचयिता सूरदास से भिन्न कोई व्यक्ति है जो कभी अपने को 'मंदमति' या 'लघुमति दुरबल बाल' लिखता है और कभी 'सरसठ बरस प्रबीन' लिखकर उसी का खंडन करता है। और 'सरसठ बरस' का सम्बन्ध अष्ठछापी कवि सूर से न होने के कारण उनके सम्बन्ध मे निर्णीत संवतों से उसकी कोई असंगति बताने या उसके हटाने का प्रश्न ही नहीं उठता। 'सरसठ बरस प्रवीन' वाला पद 'सारावली' मे १००२ सख्यक है और 'सार गावत' वाला ११०३ संख्यक। दोनो उल्लेखो के बीच १०० छंदों का व्यवधान भी उक्त निष्कर्ष की पुष्टि ही करता है।

'सारावली' की रचना में वह व्यक्ति क्यों प्रवृत्त हुआ, इसके दो अनुमान हो सकते हैं। पहला अनुमान विस्तार से इस प्रकार है—सरसठ वर्ष की लंबी आयु में वह व्यक्ति महाप्रभु वल्लभाचार्य के संपर्क में आया और उनकी प्रेरणा या कृपा से उसे 'निकुंज-लीला' के दर्शन हुए। अवस्था में वृद्ध, उक्त व्यक्ति की भक्ति-भावना से संतुष्ट होकर महाप्रभु ने उसको अपने संप्रदाय के सबसे बड़े गायक के काव्य का पाठ या अनुशीलन करने की सलाह दी। स्वयं वह व्यक्ति कुछ कविता करता था अथवा सूरदास के प्राप्त काव्य से उसमें तत्सम्बन्धी रुचि जाग्रत हो गयी। ये दोनों ही बातें सम्भव हैं। 'सारावली' से उसके कुछ शिक्षित होने का भी प्रमाण मिलता है। अतएव उसने सूरदास के प्राप्त काव्य का सार लेकर एक ऐसे ग्रंथ की रचना की जिसमे कहीं-कहीं सूरदास की शब्दावली भी अपना लेने मे उसने कोई संकोच नहीं किया। अनेक ऐसे सांप्रदायिक प्रसंग भी उसने

'सारावली' में पदबद्ध कर दिये जिनको सूरदास ने सम्भवत: काव्योचित सरसता का अभाव देखकर अथवा वैसे ही अन्य किसी कारण से छोड़ दिया दिया था।

दूसरा अनुमान यह होता है कि सरसठ वर्ष की अवस्था में महाप्रभु अथवा उनके किसी उत्तराधिकारी के प्रसाद से निकुंज-लीला का दर्शन करने के पश्चात् वह व्यक्ति संप्रदाय में सम्मान की दृष्टि से देखे जानेवाले 'सूर-काव्य' से परिचित हुआ। दर्शन के पश्चात् भी उसमे अर्थ-लोलुपता शेष रही। अतएव वल्लभ-संप्रदाय के किसी धनी-मानी व्यक्ति के लिए उसने 'सूर-काव्य' का एक ऐसा 'सार' प्रस्तुत करके प्रचुर अर्थ प्राप्त किया जिसका सामान्य रूप से नैत्यिक पारायण किया जा सके।

उद्देश्य दोनों व्यक्तियों का एक ही था और वह यह कि सूर-काव्य में वर्णित हरि-लीला-सार तैयार हो, परंतु प्रथम ने जहाँ स्वयं के लिए उस कार्य को हाथ में लिया, वहाँ दूसरे ने धनी भक्तो को ठगने के लिए। कवि प्रतिभा भी उसमें बहुत साधारण थी। यही कारण है कि 'सारावली' में सूर-काव्य' की शब्दावली तक ज्यो की त्यो अपना ली गयी है और एक ही शब्द या वाक्यांश की अनेक अरुचिकर आवृत्तियाँ उसमें मिलती हैं। इस प्रकार 'सारावली' से 'सूर-काव्य' का तो सम्बन्ध है, परंतु सूर-दास का नहीं और वह एक सर्वथा अप्रामाणिक रचना है।

'सारावली' का आधार

'सारावली' को हरि-लीला-सार स्वीकार करने के साथ-साथ अनेक आलोचकों ने उसमें 'सूरसागर' के उस अंश का भी सार होने की बात कही है जा सूरदास ने ६७ वर्ष की अवस्था तक लिख डाला था। 'सारावली' की जो कथाएँ या प्रसंग 'सूरसागर' से भिन्न हैं, उनके लिए अन्य आधारों की खोज भी की गयी है। इस खोज की प्रेरणा, संभव है, 'सारावली' की निम्नलिखित पंक्तियों के उल्लेखों से मिली हो—

१. सातों दीप कहे सुक मुनि नैं, सोई कहत अब 'सूर'[1]।
२. बासुदेव, यौं कहत वेद मै, हैं पूरन अवतार[2]।
३. सो ब्रह्मांड पुरान ब्यास मुनि कियो बदन उच्चार[3]।
४. सकल बेद अरु सास्त्र कह्यौ है, रामचंद्र जस-सार[4]।
५. बालमीकि मुनि कही कृपा कर, कछु एक 'सूर' जो गाई[5]।
६. ब्याह-केलि सुख बरनन कीन्हौं, मुनि बालमीकि अपार।
सो रुख सूर कह्यौ वह कीरत, जगत करी बिस्तार[6]।
७. राम-बिहार कह्यौ नाना बिधि, बालमीकि मुनि गाये।
बरनत चरित्र बिस्तार कोटि सत तऊ पार नहि पाये।

१. 'सरावली', छंद ३४।
२. वही, छंद १४६।
३. वही, छंद १५२।
४. वही, छंद १५६।
५. वही, छंद १६२।
६. वही, छंद २३२।

'सूर' समुद्र की बूँद भई यह कवि बरनन कहा करिहै[१] ।
८. ऐसे अनेक अवतार कृष्न के, को कवि सकै बखान ।
सोई 'सूरदास' ने बरने, जो कहे ब्यास पुरान[२] ।
९. बेद-पुरान रटत जस जाकौ, तऊ न पावत पार[३] ।
१०. बेद-पुरान-तंत्र-भारत मैं, कही बहुत बिधि भाखी[४] ।
११. सेस सहस मुख पार न पावत, निगम नेति कहि गाई[५] ।
१२. साख्य तत्व गीता हरि कीन्ही, गुन के भेद करायो[६] ।
१३. या निकुंज कौ बरनन करिबे, बेद रहे पचि हारि[७] ।
१४. ब्यास पुरान प्रगट यह भाख्यो तंत्र ज्योतिषिन जान्यो[८] ।
१५. ताते सुनिकै ब्यास भागवत नृप सुकदेव जतायो[९] ।

'सारावली' के उक्त अवतरणों मे 'श्रीमद्भागवत', 'बेद', 'शास्त्र', 'वाल्मीकि रामायण', 'पुराण', 'तंत्र', 'भारत' या 'महाभारत', 'गीता' आदि ग्रंथो का उल्लेख हुआ है—'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' का उसमे कहीं नाम नहीं है । परंतु 'श्रीमद्भागवत्' को छोड़कर शेष ग्रंथो का जिस रूप में उल्लेख है, उससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि 'सारावली'-कार ने आधार-रूप मे उनका उपयोग किया था । वस्तुत: उसका मुख्य आधार सूर-काव्य है और कही-कहीं ही उसने 'श्रीमद्भागवत' का सहारा लिया है । अन्य ग्रंथ उसने देखे तक नहीं है, यह दूसरी बात है कि कभी उनकी कथा-वार्ता मे वह अकस्मात पहुँच गया हो, परंतु नियमित रूप से उसने यह भी नहीं किया होगा ।

मीतल जी ने 'सारावली' को महाप्रभु वल्लभाचार्य-कृत 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर रचित 'सूरदास' की एक स्वतंत्र रचना कहा

१. 'सारावली', छंद ३१४-१५ ।
२. वही, छंद ३५३ ।
३. वही, छंद ६१३ ।
४. वही, छंद ७७० ।
५. वही, छंद ८१९ ।
६. वही, छंद ८४५ ।
७. वही, छंद १००६ ।
८. वही, छंद १०९१ ।
९. वही, छंद १०९३ ।

है[1]। उनका यह तर्क तब ठीक हो सकता था जब 'सारावली' में वर्णित प्रसंग 'सूरसागर' और 'श्रीमद्भागवत' मे न मिलकर 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' में ही मिलते। दूसरी बात यह कि 'सारावली' का आधार 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' या 'श्रीमद्भागवत' कहाँ तक है—यह प्रश्न हमारे लिए कोई महत्व नही रखता और न दूसरे आधार पर उसकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता को ही सिद्ध किया जा सकता है, अस्तु।

'सारावली' और 'सूरसागर' में कथा-प्रसंग-साम्य—

'सारावली' के आधार की खोज प्रायः सभी ने की है। जैसा ऊपर कहा गया है, मीतल जी एक स्थान पर तो 'सारावली' को 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर रचित सूर की स्वतंत्र रचना कहते हैं, दूसरे स्थान पर वे यह भी लिखते हैं कि संवत् १६०२ तक सूरदास ने हरि-लीला-विषयक जिन कथात्मक और सेवात्मक पदों का गायन किया था, उन्हीं के सैद्धांतिक सार-रूप उन्होंने 'सारावली' की रचना की[2]। संभव है, इससे उनका तात्पर्य यह हो कि 'सारावली' के जो अंश 'सूरसागर' में भी हैं, वे तो उसी के आधार पर है, परंतु जो 'सूरसागर' में नहीं हैं, वे 'सहस्रनाम' के आधार पर रचे गये होगे। अतएव यहाँ 'सारावली' और 'सूरसागर' में वर्णित कथा-प्रसंगों की ही तुलना यह दिखाने के लिए की जाती है कि वस्तुतः वह ग्रंथ सूर-काव्य के ही आधार पर रचा गया है और उसका 'सूरसागर-सारावली' नाम सर्वथा सार्थक है।

'सारावली' के प्रथम चार छंदों में ब्रह्म का अनेक नामों से स्मरण करके वृंदावन में, कालिंदी के तट पर गोपियों के साथ नित्य विहार का उल्लेख किया गया है। प्रथम छंद इस प्रकार है—

अबिगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोतम नित निज लोकबिलासी[3] ॥

उक्त छंद में ब्रह्म को जिन नामो से स्मरण किया गया है, वे सब 'सूरसागर' में भी बिखरे मिलते हैं; जैसे—

१. 'सारावली', (मीतल), भूमिका, पृ० ४६।
२. वही, पृ० २५।
३. 'सारावली', छंद १।

क. अविगत आदि पुरुष पुरुषोत्तम[१] ।

ख. आदि सनातन, हरि अविनासी, सदा निरंतर घट-घट बासी ।
पूरन ब्रह्म पुरान बखानै ... ... [२] ।

ग. अलख रूप कछु कह्यो न जाई[३] ।

घ. आदि सनातन परब्रह्म प्रभु घट-घट अंतरजामी[४] ।

ङ. गुन-अतीत, अविगत अबिनासी, सोई ब्रज मैं खेलत सुखरासी[५] ।

च. अछर अच्युत अविकार है, निराकार है जोइ ।
आदि अंत नहिं जानियत आदि अंत प्रभु सोइ[६] ।

छ. अलख निरंजन निराकार अच्युत अविनासी[७] ।

ज. तुम परब्रह्म जगत करतार[८] ।

'सारावली' के दूसरे छंद में वृंदावन के कुंज-लता-गृहों में प्रिया और प्रियतम के 'बिहरने' की बात इस प्रकार कही गयी है—

जहँ बृन्दाबन आदि अजिर जहँ कुंजलता बिस्तार ।
तहँ बिहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार[९] ।।

'सूरसागर' में भी 'सारावली' के उक्त छंद के वर्ण्य विषय को लेकर अनेक पंक्तियाँ मिलती हैं । उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत हैं—

क. बंसीबट, बृंदावन, जमुना तजि बैकुंठ न जावै[१०] ।

ख. चरावत बृंदाबन हरि धेनु ।

... .
त्रिबिधि पवन जहँ बहत निसादिन सुभग कुंज घन ऐनु ।
सूर स्याम निज धाम बिसारत, आवत यह सुख लैनु[११] ।

१. 'सूरसागर', पद १-२६६ ।
२. वही, पद १०-३ ।
३. वही, पद १०-४३०० ।
४. वही, पद १०-८६ ।
५. वही, पद १०-६८४ ।
६. वही, पद १०-११७५ ।
७. वही, पद १०-४२१० ।
८. वही, पद ४२६८ ।
९. 'सारावली', छंद २ ।
१०. 'सूरसागर', पद २-६ ।
११ वही, पद १०-४८८ ।

ग. बृंदाबन मोकौं अति भावत।

....

कामधेनु सुरतरु सुख जितने रमा सहित बैकुंठ भुलावत।

इहि बृंदाबन, इहिं जमुना-तट, ये सुरभी अति सुखद चरावत[१]।

घ. ब्रज तैं तुमहि कहूँ नहिं टारौं, यहै पाइ मैं हूँ ब्रज आवत।

यह सुख नहि कहूँ भुवन चतुर्दस, इहिं ब्रज यह अवतार बतावत[२]।

ङ. धन्य-धन्य बृंदाबन के तरु, जहँ बिहरत त्रिभुवन के राइ[३]।

च. धनि यह बृंदाबन की रेनु।

नंदकिसोर चरावत गैयाँ सुखहिं बजावत बेनु[४]।

छ. धनि ब्रज धनि गोकुल बृंदाबन। धनि जमुना धनि लता कुंज घन[५]।

ज. नित्य धाम बृंदाबन स्याम। नित्य रूप राधा ब्रज बाम।

नित्य रास जल नित्य बिहार। .. . .

नित्य कुंज-सुख नित्य हिंडोर। नित्यहि त्रिबिध समीर झकोर[६]।

'सारावली' के तीसरे छंद में मनोरम कालिंदी-तट का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

रतन जटिल कालिंदी के तट अति पुनीत जहँ नीर।

सारस हंस चकोर मोर खग कूजत कोकिल कीर[७]॥

'सूरसागर' में भी कालिंदी के तट का वर्णन लगभग उसी प्रकार मिलता है और उसके तटवर्ती पक्षी भी प्रायः वे ही हैं जो 'सारावली' मे बताये गये हैं—

क. बृंदाबन कालिंदी कैं तट हरित सोभित भूमि।

....` ....

हंस चक्व चकोर चातक कीर कोकिल पुंज[८]।

१. 'सूरसागर', पद ४४९।

२. वही, पद १०-४३०।

३. वही, पद १०-४६६।

४. वही, पद १०-४९१।

५. वही, पद १०-६५०।

६. वही, पद १०-२८४३।

७. 'सारावली', छंद ३।

८. 'सूरसागर', परिशिष्ट, पद १०६।

ख. हंस मोर चकोर चातक कोकिला अलि कीर[१] ।

ग. कोकिल कूजत कल हंस मोर[२] ।

घ. कूजत कोकिल कल हंस मोर[३] ।

'सारावली' के चौथे छंद मे 'सघन कंदरा' वाले 'मनिमय' गोवर्द्धन पर्वत का उल्लेख है जिसके मध्य मे गोपियो के बीच श्याम निशिदिन बिहार करते हैं—

जहँ गोबर्धन पर्वत मनिमय सघन कंदरा सार।
गोपिनमंडल मध्य बिराजत निसि दिन करत बिहार[४] ॥

'सूरसागर' के अनेक पदों में गोपियों के साथ श्रीकृष्ण के बिहार की बात इस प्रकार कही गयी है—

क. नित बिहार गोपाललाल सँग बृंदाबन रजधानी[५] ।

ख. दोऊ राजत स्यामा स्याम ।
ब्रज-जुवती-मंडली बिराजति . . .[६] ।

ग. राधा-मोहन मध्य बिराजै[७] ।

घ. बिराजत मोहन मंडल रास[८] ।

ङ. रास-रसिक गोपाल लाल, ब्रज बाल-संग बिहरत बृंदाबन[९] ।

'सूरसागर' के उक्त उद्धरणों में गोवर्द्धन पर्वत की चर्चा नहीं है। परंतु एक अन्य पद में उसका भी उल्लेख मिलता है। यही नहीं, 'सारावली' के उक्त चारों छंदो का आधार वही पद जान पड़ता है—

बृंदाबन निज धाम, कृपा करि तहाँ दिखायौ।
सब दिन जहाँ बसंत, कल्पबृच्छनि सों छायौ।

१. 'सूरसागर', पद १०-२८३३ ।
२. वही, पद १०-२८४७ ।
३. वही, पद १०-२८५६ ।
४. 'सारावली', छंद ४ ।
५. 'सूरसागर', पद १०-१०५५ ।
६. वही, पद १०-१०७८ ।
७. वही, पद १०-१०८४ ।
८. वही, पद १०-११३६ ।
९. वही, पद १०-११३७ ।

कुंज अतिहि रमनीक तहँ बेलि सुभग रहीं छाइ।
गिरि गोबर्धन धातुमय, झरना झरत सुभाइ।
कालिंदी जल अमृत, प्रफुलित कमल सुहाए।
नगनि जटित दोउ कूल हंस सारस तहँ छाए।
क्रीड़त स्याम किसोर तहँ लिए गोपिका साथ[1]।

'सूरसागर' से जैसे उद्धरण ऊपर दिये गये हैं, वैसे ही और भी बहुत से पदांश उसमें मिल सकते हैं, परंतु हमारे कथन को स्पष्ट करने के लिए इतने ही पर्याप्त हैं। उक्त उद्धरणों से प्रत्यक्ष है कि 'सारावली' के प्रथम चार पदों में कोई ऐसी बात नहीं कही गयी है जो 'सूरसागर' से अधिक हो और न किसी ऐसे सिद्धांत या तत्व का ही उनमे सार है जो 'सूरसागर'-कार से कुछ विशेषता रखता हो। वस्तुतः 'सारावली' मे 'सूरसागर' के ही विचारो का सार है; 'श्रीमद्भागवत', 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' या अन्य किसी ग्रंथ को उक्त पंक्तियों के लिए कवि ने पलटने का प्रयत्न नहीं किया है।

'सारावली' के अगले छह छंदों में सृष्टि के विस्तार की बात कही गयी है और उसके लिए अट्ठाइस तत्व भी गिनाये गये हैं:—

खेलत खेलत चित में आई सृष्टि करन बिस्तार।
अपन आप करि प्रगट कियो है हरी पुरुष अवतार॥

माया कियो छोभ बहु बिधि करि काल पुरुष के अंग।
राजस तामस सात्विक त्रयगुन प्रकृति पुरुष को संग॥

कीन्हे तत्व प्रगट तेही छिन सबै अष्ट अरु बीस।
तिनके नाम कहत कवि सूरज निर्गुन सब के ईस॥

पृथिवी अप तेज वायु नभ संज्ञा सब्द परस अरु गन्ध।
रस अरु रूप और मन बुधि चित अहंकार मति अन्ध॥

पान अपान ब्यान उद्दान अरु कहियत प्रान समान।
तछक धनंजय देवदत्त अरु पौंड्रक संख द्युमान॥

राजस तामस सात्विक तीनों जीव ब्रह्म सुख-धाम।
अट्ठाईस तत्त्व यह कहियत सो कवि सूरज नाम[2]॥

१. 'सूरसागर', पद १०-११७५।
२. 'सारावली', छंद ५ से १०।

'सूरसागर' में भी इस विषय की चर्चा यत्र-तत्र मिलती है; उदाहरणार्थ निम्नलिखित पदांश दिये जाते हैं—

क. आदि निरंजन निराकार कोउ हुतौ न दूसर।
रचौं सृष्टि-बिस्तार भई इच्छा इक औसर।
त्रिगुन प्रकृति तैं महतत्व, महतत्व तैं अहंकार।
मन-इंद्री-सब्दादि-पंच तातैं कियौ बिस्तार।
सब्दादिक तैं पंचभूत सुंदर प्रगटाए।
पुनि सबको रचि अंड आपु मैं आपु समाए।
तीनि लोक निज देह मैं, राखे करि बिस्तार।
आदि पुरुष सोई भयौ जो प्रभु अगम अपार[1]।

ख. माया कौं त्रिगुनात्मक जानौ। सत-रज-तम ताके गुन मानौ।
तिन प्रथमहि महतत्व उपायौ। तातैं अहंकार प्रगटायौ।
अहंकार कियौ तीन प्रकार। सत तैं मन सुर सातऽरु चार।
रजगुन तैं इंद्रिय-विस्तारी। तमगुन तैं तन्मात्रा सारी।
तिनतैं पंचतत्व उपजायौ। इन सबको इक अंड बनायौ।
अंड सो जड चेतन नहि होइ। तब हरि-पद-छाया मन पोइ।
ऐसी बिधि बिनती अनुसारी। महाराज, बिन सक्ति तुम्हारी।
यह अंडा चेतन नहि होइ। करहु कृपा सो चेतन होइ।
तामै सक्ति आपनी धरी। चच्छुवादिक इंद्री बिस्तरी।
चौदह लोक भए ता माहि। ज्ञानी ताहि बिराट कहाहिं[2]।

'सारावली'-कार ने पाँचवें छंद मे जिस प्रकार आदि पुरुष की इच्छा से सृष्टि-रचना और विस्तार होने की बात लिखी है, वही 'सूरसागर' में भी है—'रचौं सृष्टि-बिस्तार भई इच्छा इक औसर'। छठे मे प्रकृति के त्रिगुणात्मक रूप और आठवें मे गिनाये गये चौदह तत्व भी 'सूरसागर' में मिल जाते है। 'श्रीमद्भागवत' मे भी भगवान को लोक-निर्माण की इच्छा होने और उसके साथ ही महत्तत्व आदि से निष्पन्न पुरुष-रूप धारण करने का उल्लेख इसी प्रकार हुआ है[3]। 'सारावली' के नवें छंद मे गिनाये

१. 'सूरसागर', पद २-३६।

२. वही, पद ३-१३।

३. जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया।
—'श्रीमद्भागवत', तृतीय अध्याय, श्लोक १।

गये शेष ११ तत्व स्पष्ट रूप में 'सूरसागर' में नहीं हैं और न कुल 'अट्ठाइस' तत्वों का उल्लेख हुआ है। परंतु इन सबका समावेश 'प्राण' मे हो जाता है जिसके दस प्रकार माने गये है—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूम, कृकिल, देवदत्त और धनंजय[1]। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'सूरसागर' मे सृष्टि-विस्तार का जो वर्णन मिलता है, उसी की रूपरेखा या उसका ही सार 'सारावली' में है। केवल उन तत्वों का जोड़ 'अट्ठाइस' 'सारावली'-कार ने 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर दिया है[2]। इस प्रकार के उक्त उल्लेख के लिए न उसे 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' आदि देखने की आवश्यकता थी और न उसने वैसा किया ही है।

'सारावली' के ग्यारह से सोलह तक छंदों में ब्रह्मा की उत्पत्ति,

१. 'हिंदी-शब्द-सागर', तीसरा भाग, पृ० २२५४।

२. (क) यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृति प्राहुरविशेषं विशेषवत्॥
पञ्चभिः पञ्चभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा।
एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः॥
महाभूतानि पञ्चैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः।
तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धादीनि मतानि मे॥
इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकः।
वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते॥
मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम्।
चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया॥
एतावानेव सङ्ख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह।
सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पञ्चविंशकः॥
—'श्रीमद्भागवत', तृतीय स्कंध, अध्याय छब्बीस, श्लोक १० से १५।

(ख) अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः।
विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात्॥
—'श्रीमद्भागवत', सप्तम स्कंध, अध्याय सात, श्लोक २२।

(ग) नवैकादश पञ्च त्रीन् भावान् भूतेषु येन वै।
ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम्॥
—'श्रीमद्भागवत', एकादश स्कंध, अध्याय उन्नीस, श्लोक १४।

उनकी स्तुति और भगवान की उनको सृष्टि-विस्तार संबंधी दी गयी आज्ञा का वर्णन है—

नाभिकमल नारायन की सो बेद गर्भ अवतार।
नाभिकमल मे बहुतहि भटक्यो तऊ न पायो पार॥
तब आज्ञा भइ यह हरि की अज, करो परम तप आप।
तब ब्रह्मा तप कियो बर्ष सत दूरि भये सब पाप॥
तब दरसन दीन्हो करुनाकर परमधाम निज लोक।
ताको दरसन देखि भयो अज, सब बातन निःसोक॥
जहाँ आदि निज लोक महानिधि रमा सहस संजूत।
आन्दोलन झूलत करुनानिधि रमा सुखद अति पूत॥
अस्तुति करै बिबिध नाना करि परम पुरुष आनन्द।
जय जय जय स्तुति गीत गायकै पढ़त है नाना छंद॥
आज्ञा करी नाथ चतुरानन करो सृष्टि बिस्तार।
होरी खेलन की बिधि नीकी रचना रचो अपार[1]॥

वास्तव मे पूर्वोद्धृत पंक्तियो मे तो 'सरावली' की प्रस्तावना मात्र थी, उसका प्रारंभ उक्त छदो से होता है और कितनी शिथिल है यह रचना कि समस्त सूर-काव्य मे कदाचित् ही कोई पंक्ति ऐसी मिल सके। इन छंदो का वर्ण्य विषय 'सूरसागर' के तद्विषयक निम्नलिखित पदांशो का सार कहा जा सकता है—

क. नाभि-कमल तै आदि पुरुष मोकौं प्रगटायौ।
खोजत जुग गए बीति, नाल को अंत न पायौ।
तिन मोकौं आज्ञा करी, रचि सब सृष्टि बनाइ।
थावर-जंगम, सुर-असुर, रचे सबै मै आइ[2]।

ख. ब्रह्मा यौं नारद सौं कह्यौ। जब मै नाभि-कमल मै रह्यौ।
खोजत नाल कितौ जुग गयौ। तौहू मै कछु मरम न लह्यो[3]।

'सारावली' में ब्रह्मा के तप करने का वर्णन है तो 'सूरसागर' मे आकाशवाणी से 'चार श्लोक' सुनाये जाने की बात कही गयी है—

१. 'सारावली', छंद ११ से १६ तक।
२. 'सूरसागर', पद २-३६।
३. वही, पद २-३७।

भई अकासबानी तिहि बार। तू ये चारि स्लोक बिचार।
इन्है बिचारत ह्वैहै ज्ञान। ऐसी भॉति कह्यौ भगवान[1]।

दोनो ग्रंथो मे इस प्रकार के सामान्य अंतरों के आधार पर यह नही सिद्ध किया जा सकता कि 'सारवली'-कार किसी सिद्धांत-विशेष का सार देने का प्रयत्न कर रहा है, अधिक से अधिक इन अंतरो का कारण यह हो सकता है कि 'सूरसागर' की कथाएँ लिखते समय 'सारावली'-कार के सामने उसकी संपूर्ण प्रति न रही हो अथवा कहीं-कही उसने सामान्य पौराणिक उल्लेखो और जनश्रुतियों का भी (किसी विशिष्ट ग्रंथ का नही) समावेश अपनी रचना मे कर लिया हो।

'सारावली' के अगले नौ छंद इस प्रकार है—

चौदह लोक करो नाना बिधि रचि बैकुंठ पताल।
नाना रचना रची बिधाता होरी खेल रसाल॥
दसही पुत्र भये ब्रह्मा के जिन सच्यो ससार।
स्वायंभुव मनु प्रगट तब कीन्हे अरु सतरूपा नार॥
भुव की रच्छा करन जु कारन धरि बराह अवतार।
पीछे कपिल रूप हरि धार्यो कीन्हो साख्य बिचार॥
दीन्हो ज्ञान आप माता को कीन्हों भव निस्तार।
आठो लोकपाल तब कीये अपन अपन अधिकार॥
तेज, अग्नि, जम, मरुत, बरुन औ सूर्य चन्द्र ये नाम।
मृत्यु, कुबेर, जच्छपति कहियत जहॅ सकर को धाम॥
सत्यलोक, जनलोक, लोकतप और महर निजलोक।
जहँ राजत ध्रुवराज महानिधि निसिदिन रहत असोक॥
जननी आज्ञा पाय चले बन पाँच बरष सुकुमार।
ताको आप कृपा हरि कीन्हीं धरि आये अवतार॥
पाछे पृथु को रूप हरि लीन्हो नाना रस दुहि काढे।
तापर रचना रची बिधाता बहुबिधि जतननि बाढे॥
रचि नव खंड द्वीप सातों मिलि कीन्हो होरि समाज।
बन उपबन पर्वत बहु फूले सब बसन्त को साज[2]॥

१. 'सूरसागर', पद २-३७।
२. 'सारावली', छंद १७ से २५ तक।

उक्त छंदो में से प्रथम अर्थात् सत्रहवें में ब्रह्मा द्वारा चौदह लोक रचे जाने की, अठारहवें मे उनके दस पुत्रो द्वारा संसार बढ़ाने की और स्वायंभुव मनु तथा सतरूपा के प्रकट होने की, उन्नीसवें मे बराह और कपिल अवतार की, बीसवें मे कपिल द्वारा माता को उपदेश दिये जाने और लोकपालो की उत्पत्ति होने की बात कही गयी है जिनके नाम इक्कीसवें छंद मे गिनाये गये है। बाइसवें छंद मे लोकों की गणना करते करते 'सारावली'-कार का ध्यान ध्रुव की ओर जाता है जिनके लिए भगवान के अवतार लेने की बात तेईसवें छंद मे कही गयी है। चौबीसवें मे 'पृथु' अवतार और पचीसवें मे नौ खंडो और सात द्वीपो की रचना का उल्लेख हुआ है। ये सभी प्रसंग 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदांशों में वर्णित है—

क. स्वायंभुव सो आदि मनु जए।
इनतै प्रगटी सृष्टि अपार[१]।

ख. तब हरि धरि बाराह-बपु ल्याए पृथी उठाइ[२]।

ग. तिनके कपिलदेव सुत भए।
....

इहाँ कपिल सौ माता कह्यौ। प्रभु, मेरौ अज्ञान तुम दह्यौ।
आतमज्ञान देउ समुझाइ। जातै जनम-मरन-दुख जाइ।
कह्यौ कपिल, कहौ तुमसौं ज्ञान। ... .[३]।

घ. ध्रुव उत्तानपाद-सुत भयौ। हरि जू ताकौ दरसन दयौ।
बहुरि दियौ ताकौ अस्थान। देहिं प्रदच्छिन जहँ ससि-भान[४]।

ङ. (ध्रुव सौं माता कह्यौ—)
तैं हूँ जो हरि-हित तप करिहै। सकल मनोरथ तेरौ पुरिहै।
ध्रुव-यह सुनि बन कौं उठि चले। ....
मथुरा जाइ सोइ (सुमिरन) उन कियौ। तब नारायन दरसन दियौ।
... .

१. 'सूरसागर', पद ३-८।
२. वही, पद ३-११।
३. वही, पद ३-१३।
४. वही, पद ४-८।

हरि कह्यौ, राज-हेत तप कियौ । ध्रुव, प्रसन्न ह्वै मै तोहि दियौ ।
अरु तेरै हित कियौ अस्थान । देहि प्रदच्छिन जहँ ससि-भान[१] ।

च. धारि पृथु-रूप हरि राज कीन्हौ ।
धनुष सौं टारि पर्वत किए एक दिसि,
पृथी सम करि, प्रजा सब बसाई ।
सुर-रिषिनि नृपति पुनि पृथी दोहन करी,
आपनी जीविका सबनि पाई[२] ।

'सूरसागर' में स्वायंभुव मनु, बराह अवतार, एवं कपिल, ध्रुव और पृथु की कथा बड़े विस्तार से है। 'सारावली' मे उनका केवल उल्लेख हुआ है क्योंकि उसके रचयिता को इनका केवल सार-रूप देना है। लोकपालों और लोको का उल्लेख 'सूरसागर' के उक्त प्रसंगों में नहीं है। इनकी गिनती 'सारावली'-कार ने सामान्य ज्ञान के आधार पर की है, किसी सिद्धांत-विशेष का सार देने के लिए नहीं।

'सारावली' के छब्बीसवें और सत्ताइसवें छंद में देवासुर-संग्राम की की चर्चा है—

दानव देव लड़े आपस मे कीन्हो युद्ध प्रकार।
बिबिध सस्त्र छूटत पिचकारी चलत रुधिर की धार ॥
दीन्हे मार असुर हरि ने तब देवन दीन्हों राज।
एकन को फगुवा इन्द्रासन इक पताल को साज[3] ॥

इस संग्राम में परब्रह्म श्रीकृष्ण द्वारा असुरो का संहार किये जाने की बात पैंतीसवें और छत्तीसवें छंदों के एक-एक चरण में कही गयी है—

जब जब हरि माया ते दानव प्रगट भये है आय ॥
× × ×
तब तब धरि अवतार कृष्न ने कीन्हों असुर सँहार[४] ।

सूरसागर' में इस बात का उल्लेख निम्नलिखित पदांश मे मिलता है—

१. 'सूरसागर', पद ४-९ ।
२. वही, पद ४-११ ।
३. 'सारावली', छंद २६-२७ ।
४. वही, छंद ३५-३६ ।

सुर हरि-भक्त असुर हरि-द्रोही। सुर अति छमी असुर अति कोही।
उनमै नित उठि होइ लराई। करै सुरनि की कृष्ण सहाई[1]।

'सारावली', के अट्ठाइसवें, उन्तीसवें और पैंतीसवें छंदों में होली के रूपक के अनुसार, देवताओं को फगुआ दिये जाने का वर्णन है—

बिद्याधर, गन्धर्व, अप्सरा गान करत सब ठाढे।
चारन, सिद्ध पढत बिरुदावलि लै फगुवा सुख बाढे॥
चन्द्रलोक दीन्हो ससि को तब फगुवा में हरि आप।
सब नछत्र को राजा कीन्हो ससि-मंडल मे छाप॥
अपने अपने स्थानन पर तब फगुवा दियो चुकाय[2]।

'सारावली' के उक्त छंदो में वर्णित विषय की चर्चा 'सूरसागर' में नही है। इसी प्रकार तीसवें, इकतीसवें, तेंतीसवें और चौंतीसवें छंदों में क्रमश ग्रहो, पातालो, नव भूखंडो और सातो द्वीपों की क्रमश: सूचियाँ हैं—

मंगल बुध सुक्र अरु सनि अरु राहु केतु ग्रह जान।
रवि अरु ससि सबहिन को फगुवा दीन्हों चतुर सुजान॥
अतल बितल अरु सुतल तलातल और महातल जान।
पाताल और रसातल मिलिकै सातों भुवन प्रमान॥
इलावर्त्त औ किम्पुरुषा कुरु औ हरिवर्ष केतुमाल।
हिरनमय रमनक भद्रासन भरत खंड सुखपाल॥
सातों द्वीप कहे सुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर।
जंबू, प्लच्छ, क्रौंच, साक, साल्मलि, कुस, पुष्कर भरपूर[3]॥

'सारावली' की उक्त सूचियाँ भी 'सूरसागर' के गेय पदों के उपयुक्त न होने से उसमे नहीं दी गयी हैं। बत्तीसवें छंद में 'सारावली'-कार

१. 'सूरसागर', पद ३-६।
२. 'सारावली', छंद २८-२६ और ३५।
३. वही, छंद ३०-३१-३३ और ३४।

ने शेषनाग और कच्छप की चर्चा की है—

संकर्षन को धाम परम रुचि तहँ राजत निज वीर।
सेषनाग ताके तर कूरम बसत महा धन धीर[1]॥

'सूरसागर' में भी यह चर्चा यत्र-तत्र मिलती है; जैसे—

कच्छप अध आसन अनूप अति, डाँड़ी सहसफली[2]।

'सारावली' के सैंतीसवें से उन्तालीसवें छंद तक की छह पंक्तियो में पुन: स्वयंभुव मनु-सतरूपा की कथा है जिसका एक बार उल्लेख अट्ठारहवें छंद में कवि कर चुका है—

प्रथम किये स्वायंभुव मनु नृप अज आज्ञा यह दीन्हीं।
भू पर जाय राज तुम करिहौ सृष्टि बिस्तार यह कीन्ही॥
स्वायंभुव मनु अरु सतरूपा तुरत भूमि पर आये।
जल मे मगन भये भुव देखे फिर अज पै चलि आये॥
तासों आय कही सबहीं बिधि भुव द्रव देखियत नाहीं।
तब अति ध्यान कियो श्रीपति को केसव भये सहाही[3]॥

'सारावली' की यह कथा 'सूरसागर' से बिलकुल मिलती है—

ब्रह्मा सौं स्वयंभुव मनु भयौ। तासौ सृष्टि करन कौं कह्यौ।
तिन ब्रह्मा सौ कह्यौ सिर नाइ। सृष्टि करौ सो रहै किहि भाइ।
ब्रह्मा हरि-पद ध्यान लगायौ। ....[4]।

'सारावली' के चालीसवें छंद से चौबीस अवतारों की कथा आरंभ होती है जो १०६६ संख्यक छंद तक चलती है। सबसे पहले तीन छंदो में बाराह अवतार का वर्णन है—

आई छींक नाक ते प्रगटे सूकर अति लघु रूप।
देखत गज-से होय गये है कीन्हों बृहत स्वरूप[5]॥

१. 'साराबली', छंद ३२।
२. 'सूरसागर' पद २-२८।
३. 'सारावली', छंद ३७, ३८ और ३६।
४. 'सूरसागर', पद ३-१०।
५. 'सारावली', छंद ४०।

जय जय करत सकल सुर नर मुनि जल मे कियो प्रवेस।
जाय पताल बाट गहि लीन्ही धरनी रमा नरेस॥
ते भुव-कमल कुसुम की नाईं चले मनहुँ गजराज।
कछु डर नाहिन जिय मे डरपत अति आनन्द समाज[१]॥

'सूरसागर' मे हिरण्याक्ष द्वारा पृथ्वी के हरण और बाराह भगवान द्वारा उसके उद्धार की बात तो कही गयी है; जैसे—

क. तब हरि बपु बराह धरि आयौ। ह्वै बराह पृथ्वी ज्यौं ल्यायौ[२]।

ख. हिरन्याच्छ तब पृथी कौं लै राख्यौ पाताल।
ब्रह्मा बिनती करि कह्यौ, दीनबंधु गोपाल।
तुम बिनु द्वितीया और कौन जो असुर सँहारै।
तुम बिनु करुनासिंधु ! और को पृथी उधारै।
तब हरि धरि बराह-बपु ल्याए पृथी उठाइ[३]।

ग. मनु बराह भूधर सह धरनी धरी दसन की कोटी[४]।

घ. जब हरिनाच्छ जुद्ध अभिलाख्यौ, मन मे अति गरबाऊ।
धरि बराह रूप सो मारयौ लै छिति देह अगाऊ[५]।

परंतु छींक से उनके लघु रूप में प्रकट होने की जो बात 'सारावली'-कार ने कही है, वह 'सूरसागर' मे नहीं है। 'सारावली' का यह कथन 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर है जिसमें ब्रह्मा जी के नासाछिद्र से अँगूठे के बराबर बाराह-शिशु निकलने और शीघ्र ही उसके हाथी के बराबर हो जाने की बात कही गयी है[६]।

१. 'सारावली', छंद ४१-४२।
२. 'सूरसागर', पद ३-१०।
३. वही, पद ३-११।
४. वही, पद १०-१४६।
५. वही, पद १०-२२१।
६. इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसानघ।
बराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः॥
तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत।
गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत्॥
—'श्रीमद्भागवत', तृतीय स्कंध, तेरहवाँ अध्याय, श्लोक १८-१९।

'सारावली' के तेंतालीसवें से छियालीसवें छंद तक सनकादि अवतार का वर्णन है—

जोगो साधु सनकादिक चारों गये हरि के निज लोक।
कीन्हे क्रोध मने जब कीन्हे दियो साप अति सोक॥
जय अरु बिजय असुर योनिन को भये तीन अवतार।
तिनमे प्रथम लियो कस्यप गृह दिति की कोखि मँझार॥
प्रथम भयो हिरन्याच्छ महाबल जिन जीते लोकपाल।
नारद सीख गयो सूकर पै देखो रूप बिकराल॥
सहस बर्ष लौं जल मे जूझे कियो दनुज संहार।
पाछे आय भूमि को थापी कियो जग्य बिस्तार[1]॥

'सारावली' का उक्त वर्णन 'सूरसागर' के निम्नलिखित वर्णन से बिलकुल मिलता जुलता है—

क. ब्रह्मा ब्रह्म-रूप उर धारि। मन सौं प्रगट किए सुत चारि।
सनक सनंदन सनतकुमार। बहुरि सनातन नाम ये चार।
ये चारौ जब ब्रह्मा किए। हरि कौ ध्यान धारयौ तिन हिये।
. . . . .

ब्रह्मा सौं तिन यह बर पाइ। हरि-चरननि चित राख्यौ लाइ[2]।

ख. ब्रह्म-पुत्र सनकादि गए बैकुंठ एक दिन।
द्वारपाल जय-बिजय हुते, बरज्यौ तिनकौं तिन।
साप दियौ तब क्रोध ह्वै असुर होहु संसार।
. . . .

कस्यप की दिति नारि, गर्भ ताके दोउ आए।
... .

हिरन्याच्छ इक भयौ, हिरनकस्यप भयौ दूजौ।
तिनके बल कौं इंद्र, बरुन कोऊ नहिं पूजौ।
हिरन्याच्छ तब पृथी कौं लै राख्यौ पाताल।
... .

तब हरि धारि बराइ बपु लाए पृथी उठाइ।
हिरन्याच्छ लै कर गदा तुरतहिं पहुँच्यौ जाइ।

१. 'सारावली', छंद ४३ से ४६।
२. 'सूरसागर', पद ३-६।

... .

गदा-युद्ध तासौं कियौ असुर न मानै हारि।

. . ..

मार्यौ ताहि प्रचारि हरि, सुर-मन भयौ हुलास[1]।

'सारावली' के सैंतालीस से पचास संख्यक पदों में 'यज्ञपुरुष' अवतार की कथा है—

स्वायंभुव सतरूपा तनया कहियत तीन प्रमान।
आकूती देवहुती औ परसूती चतुर सुजान॥
परसूती दई दच्छप्रजापति तिनकी सती सयान।
सो दीन्हीं महादेव देव को अति आनंद सुजान॥
तज्यो देह अपमान पाय के बहुरि दच्छ-गृह जाई।
पातिव्रतहि धर्म जब जान्यो बहुरो रुद्र बिहाई॥
आकुती दई रुचि प्रजापति भये जग्य अवतार।
इन्द्रासन बैठे सुख बिलसत दूर किये भुव-भार[2]॥

'सूरसागर' मे स्वायंमुव मनु के तीन कन्याएँ होने की बात तो है, उनके नाम नहीं गिनाये गये है; परंतु 'सारावली'-कार को तो सूचियाँ देने का शौक है; सो उसने उनके नाम भी गिना दिये हैं और यज्ञपुरुष की वह कथा सार-रूप में कह दी है जिसको लेकर 'सूरसागर' में कई पद लिखे गये हैं। 'सारावली' की यह कथा 'सूरसागर' की इन पंक्तियो में मिल जाती है—

क. स्वायंभुव मनु सुत भए दोइ। तनया तीनि, सुनौ अब सोइ।
दच्छ प्रजापति कौं इक दई। इक रुचि, एक कर्दम-तिय भई[3]।

ख. दच्छ के उपजीं पुत्री सात। तिनमै सती नाम बिख्यात।
महादेव कौं सो तिन दई। पुनि सो दच्छ-जज्ञ मै मुई।
तहँ कियौ जज्ञ-पुरुष अवतार[4]।

१. 'सूरसागर', पद ३-११।
२. 'सारावली', छंद ४७ से ५०।
३. 'सूरसागर', पद ३-१२।
४ वही, पद ४-४।

ग. दच्छ प्रजापति-जज्ञ रचायौ। महादेव कौं नाहिं बुलायौ।
....

तब करि क्रोध सती तिहि कही। तैं सिव की महिमा नहि लही।
. ...

पिता जानि तोकौं नहि मारौं। अपनौ ही मैं प्रान सँहारौं।
जोग धारना करि तनु त्यागयौ। सिव-पद-कमल हृदय अनुरागयौ।
बहुरि हिमाचल कै अवतरी। समय पाइ सिव बहुरौ बरी।
.. . .

बिप्रनि जज्ञ बहुरि बिस्तारयौ। बेद भली बिधि सौं उच्चारयौ।
जज्ञ पुरुष प्रसन्न तब भए। निकसि कुंड तैं दरसन दए[1]।

घ. कुंड तै प्रगटि जग-पुरुष दरसन दियौ[2]।

'सारावली' के अगले सात छंदों में कपिल अवतार और उनके 'सांख्य' दर्शन की चर्चा है—

देवहुती कर्दम को दीन्हीं तिन कीन्हो तप भारी।
बिन्दु सरोवर आये माधव किये गरुड़ असवारी॥
दियो बरदान सृष्टि करिबे को अस्तुति करी प्रमान।
मेरो अंस अवतार होयगो कहि भये अन्तर्धान॥
पाछे रिषि निज तप मन लायो कीन्हों प्रगट बिमान।
तामे बैठि सकल जग देख्यो कन्या नौ सुखदान॥
पाछें कपिलरूप हरि प्रगटे दर्सन करि मुनिराय।
कीन्हों त्याग गये बन को तब ब्रह्म परम पद पाय॥
पाछे बिबिध ज्ञान जननी को दीन्हो कपिल दृढाय।
साख्य जोग अरु ज्ञान भक्ति दृढ बरनी बिबिध बनाय॥
जल को रूप तुरत ह्वै गई वह हरि के रूप समाय।
चले मगन ह्वै ब्रह्म ध्यान कर गंगासागर न्हाय॥
अजहूँलौं राजत नीरधि तट करत साख्य बिस्तार।
साख्यायन से बहुत महामुनि सेवत चरन सुचार[3]॥

१. 'सूरसागर', पद ४-५।
२. वही, पद ४-६।
३. 'सारावली', छंद ५१ से ५७।

कपिल मुनि की इस कथा का आधार 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियाँ कही जा सकती हैं—

कर्दम पुत्र हेत तप कियौ। तासु नारिहूँ यह ब्रत लियौ।
हरि-सौं पुत्र हमारैं होइ। और जगत-सुख चहैं न कोइ।
नारायन तिनकौं बर दियौ। मोसौं और न कोऊ बियौ।
मै लैहौं तुम ग्रह अवतार। तप तजि करौ भोग संसार।
दुहुँ तब तीरथ माहि नहाए। सुंदर रूप दुहूँ जन पाए।
. ...

तिनके कपिलदेव सुत भए। परम सुभागु मानि तिन लए।
कर्दम कह्यौ तिन्हैं सिर नाइ। आज्ञा होइ, करौं तप जाइ।
... .

यह सुनि कर्दम बनहि सिधाए। उहाँ जाइ हरि-पद चित लाए।
.. ..

इहाँ कपिल सौं माता कह्यौ। प्रभु, मेरौ अज्ञान तुम दह्यौ।
आतमज्ञान देहु समुझाइ। जातैं जनम-मरन-दुख जाइ।
कह्यौ कपिल, कहौं तुमसौं ज्ञान।
.. ..

देवहूति सुज्ञान कौं पाइ। कपिलदेव सौं कह्यौ सिर नाइ।
....

पुनि बन जाइ कियौ तन-त्याग। गहि कै हरि-पद सौं अनुराग।
कपिलदेव सांख्यहि जो गायौ। ... . [1]।

'सारावली' और 'सूरसागर' की कथा में मुख्य पाँच बातों का अंतर भी है—एक तो यह कि बिंदुसरोवर में गरुड़ पर सवार विष्णु के दर्शन, दूसरे, विमान प्रकट करके कर्दम का सारे जग का पर्यटन; तीसरे, नौ कन्याओं की उत्पत्ति; चौथे, देवहूति का जल-रूप होकर हरि में समा जाना, और पाँचवें, कपिल का गंगासागर में स्नान। 'श्रीमद्भागवत' में प्रथम चार के सम्बन्ध में तो स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं[2]; केवल कपिल देव के

१. 'सूरसागर' पद ३-१३।
२. क. स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम।
स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोऽम्बरम्॥

गंगासागर म स्नान की बात नहीं कही गयी है, यद्यपि यह उल्लेख अवश्य मिलता है कि स्वयं समुद्र ने उनका पूजन करके उन्हें स्थान दिया; एवं अनेक मुनि आदि और सांख्याचार्य उनकी स्तुति या स्तवन करते हैं[1]।

'सारावली' के अगले पाँच छंदों मे दत्तात्रेय अवतार का वर्णन है—

अत्रै पुत्र भये ब्रह्मा के तिन कीन्हो तप जाय।
आये तीन देव ताके ढिग ब्रह्मा सिव हरिराय॥
तब उन माँग्यो सुत तुमहीं से तीनो प्रगटे आय।
अज ससि अंस, रुद्र दुर्बासा, दत्तात्रेय हरिराय॥
अनसूया के गर्भ प्रगट ह्वै कियो जोग आराधि।
जम अरु नियम प्रान प्रत्याहार धारना ध्यान समाधि[2]॥

(पिछले पृष्ठ का शेष)

विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मत।
दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षःश्रियं कौस्तुभकन्धरम्॥
—'श्रीद्भागवत्', तृतीय स्कंध, अध्याय इक्कीस, श्लोक ६ और ११।

ख. प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्दमो योगमास्थितः।
विमानं कामगं क्षतस्तर्ह्येवाविरचीकरत्॥
निमज्जयास्मिन् ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह।
इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषा यापकं नृणाम्॥
—'श्रीमद्भागवत्', तृतीय स्कंध, अध्याय तेईस, श्लोक १२ और २३।

ग. तस्यामाधत्त रेतस्ता भावयन्नात्मनाऽऽत्मवित्।
नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसङ्कल्पविद्विभुः॥
अतः सा सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः।
सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धय॥
—वही, श्लोक ४७ और ४८।

घ. तस्यास्तद्योगविधुत्मार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित्।
स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता।
—वही, अध्याय तेंतीस, श्लोक ३२।

१. सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः।
स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः॥
—वही, अध्याय, तेंतीस, श्लोक ३४।

२. 'सरावली', छंद ५८ से ६०।

आसन के सब सिद्ध जोग कर प्रगट कला जगदीस।
दीन्हो भोग सहस नृप को बहु करुनानिधि जगदीस॥
कीन्हें गुरु चौबीस सीख लै जदु को दीन्हों ज्ञान।
पातंजलि से मुनि पद सेवत करत सदा अज ध्यान[1]॥

इस कथा के सम्बन्ध में 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं—

क. रुचि कै अत्रि नाम सुत भयौ। ताहि ब्याहि अनुसुया सौं दयौ।
ताकै भयौ दत्त अवतार। ··· ··· ···· ····[2]।

ख. अत्रि पुत्र-हित बहु तप कियौ। तासु नारिहूँ यह ब्रत लियौ।
तीनौं देव तहाँ मिलि आए। तिनसौं रिषि ये बचन सुनाए।
·· ·· · ·· ···· ····

कह्यौ, बिनय मेरी सुनि लीजै। पुत्र सुज्ञानवान मोहि दीजै।
बिष्नु अंस सौं दत्तऽवतरे। रुद्र-अंस दुर्बासा धरे।
ब्रह्म-अंस चंद्रमा भयौ। अत्रि ऽनुसुया कौं सुख दयौ[3]।

'सारावली' के उक्त पदों में अष्टांग योग की चर्चा और दत्तात्रेय के चौबीस गुरु किये जाने की बात 'सूरसागर' के उक्त पदांशों में नहीं है। इनमें से द्वितीय बात तो सर्वविदित ही है, प्रथम का स्पष्ट उल्लेख 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है—

भक्ति पंथ कौं जो अनुसरै। सो अष्टांग जोग कौ करै।
यम नियमासन प्रानायाम। करि अभ्यास होइ निष्काम।
प्रत्याहार - धारना - ध्यान। करै जु छाँड़ि बासना आन।
क्रम क्रम सौ पुनि करै समाधि। सूर स्याम भजि मिटै उपाधि[4]।

'सारावली' के आगे के आठ छंदों मे नर-नारायण-अवतार की कथा है—

१. 'सारावली', पद ६१-६२।
२. 'सूरसागर', पद ४-२।
३. वही, पद ४-३।
४. वही, पद २-२१।

जब सृष्टिनि पर किरपा कीन्हीं ज्ञान कला बिस्तार।
सनक सनंदन और सनातन चारो सनतकुमार॥
उनसे कह्यो सृष्टि नाना बिधि रचना करो बनाय।
उन नहि मान्यो तब चतुरानन खीझे क्रोध उपाय॥
संकर प्रगट भये भ्रुकुटी ते, करौ सृष्टि निर्मान।
भूत प्रेत बैताल रचे बहु दौरे बिधि को खान॥
पूरन करो कह्यो चतुरानन सृष्टि महा दुख दैन।
तब संकर तपस्या को निकसे चितै कमलदल नैन॥
मूरति त्रिया जु भई धर्म की तिनके हरि अवतार।
नारायन जब भये प्रगट बपु तिन मेट्यो भुव-भार॥
सहस कवच इक असुर सँहारेउ बहुरि कियो तप भारी।
सोच परेउ सुरपति को तब उन पठइ अप्सरा नारी॥
बहुत भाँति उन कियो परम छल तप मे उनके काज।
कछु नहि चली ब्रह्म नारायन सुख समाज तिय साज॥
इक उर्वसी हृदय उपजाई दई सक्र को ताय।
ताको देखि देखि जीवत है अजहुँ इन्द्र सुख पाय[1]॥

उक्त छंदों में से प्रथम चार की कथा 'सूरसागर' के निम्नलिखित पद्यांशों में मिलती है—

क. सनक सनंदन सनतकुमार। बहुरि सनातन नाम ये चार।
ये चारौं जब ब्रह्म किए। हरि कौ ध्यान धरयौ तिन हिए।
ब्रह्म कहयौ, सृष्टि बिस्तारौ। उन यहै बचन हृदय नहि धारौ[2]।

ख. सनकादिकनि कहयौ नहि मान्यौ। ब्रह्मा क्रोध बहुत मन आन्यौ।
तब इक पुरुष भौंह तै भयौ। होत समय तिन रोदन ठयौ।
ताकौं नाम रुद्र बिधि राख्यौ। तासौं सृष्टि करन कौं भाख्यौ।
तिन बहु सृष्टि तामसी करी। सो तामस करि मन अनुसरी।
ब्रह्मा मन सो भली न भाई। सूर सृष्टि तब और उपाई[3]।

१. 'सारावली', छंद ६३ से ७०।
२. 'सूरसागर', पद ३-६।
३. वही, पद ३-७।

'सारावली' के शेष चार छंदों का आधार 'सूरसागर' के एकादश स्कंध का यह पदांश है—

धर्म पिता अरु मूरति माई। भए नारायन सुत तेहि आई।
बदरीकाश्रम रहे पुनि जाई। जोग अभ्यास समाधि लगाइ।
उनके और कामना नाहि। सुख पावै त्रिभुवन मन माहि।
सुरपति देखत गयौ डराइ। काम सैन सँग दियौ पठाइ।
.. ..

काम बान पाँचो संधाने। नारायन ते मनहि न आने।
तब तिन सबनि तहाँ भय पायौ। कह्यौ, इंद्र हमैं कहाँ पठायौ।
तब नारायन आँखि उघारी। उन सबकी कीन्ही मनुहारी।
. .. . . .

सहस अपसरा सुंदर रूप। एक एक तैं अधिक अनूप।
नारायन तहँ परगट करी। इंद्र अपसरा सोभा हरी।
. . ..

तब नारायन आज्ञा करी। इनमै लेहु एक सुंदरी।
नाम उर्बसी उन एक लीनी। पुनि प्रनाम हरि कौ तिन कीनी।
सो सुरपति को दीन्ही जाइ। कह्यो सकल बृत्तात सुनाइ[1]।

'सारावली' के अगले बारह छंदों मे ध्रुव की कथा है जिसके लिए हरि अवतार हुआ था—

स्वायंभुव के द्वितिय पुत्र उत्तानपाद मतिधीर।
तिनके ध्रुव बालक जो जाये औ उत्तम गंभीर॥
नृप के पास गये गोदी मे बैठन को सुकुमार।
तब लघु मात कह्यो तब बैठो जब मेरे अवतार॥
सुनि कटु बचन गयो माता पै तब उन ज्ञान दृढायो।
हरि की भक्ति करो सुख नीके जो चाहो सुख पायो॥
पाँच वर्ष के निकसि चले तब मधुबन पहुँचे आय।
बिच नारद मुनि तत्त्व बतायो जपै मंत्र चित लाय॥
कछु दिन पत्र भच्छ करि बीते कछु दिन लीन्हों पानी।
कछु दिन पवन कियो अनप्रासन रोक्यो स्वास यह जानी[2]॥

१. 'सूरसागर', पद ११३।
२. 'सारावली' छंद ७१ से ७५।

दारुन तप जब कियो राजसुत तब कॉप्यो सुरलोक।
त्राहि-त्राहि हरि सो सब भाख्यो दूर करो सब सोक॥
तब हरि कह्यो कोउ जनि डरपौ अबहि तुरत मै जैहौं।
बालक ध्रुव बन करत गहन तप ताहि तुरत फल दैहौं॥
इतनी कहत गरुड़ पर चढिकै तुरतहिं मधुबन आये।
कंबु कपोल परसि बालक के बानी प्रगट कराये॥
अस्तुति करी बहुत ध्रुव सब बिधि सुनि प्रसन्न भये आप।
दियो राज भूमंडल को सब बिधि थिर करि थाप॥
हरि बैकुंठ सिधारे पुनि ध्रुव आये अपने धाम।
कीन्हों राज तीस षट बर्षन कीन्हें भक्तन काम॥
जच्छ प्रबल बाढे भुव मंडल तिन मारयो निज भ्रात।
तिनके काज अंस हरि प्रगटे ध्रुव जगत बिख्यात॥
बहुत बर्ष लौं राज कियो ध्रुव फिर आये निज लोक।
सबके ऊपर सदा बिराजत ध्रूव सदा निःसोक[1]॥

'सारावली' के उक्त वर्णन पर 'सूरसागर' के निम्नलिखित वर्णन की स्पष्ट छाप है—

क. उत्तानपाद पृथ्वीपति भयौ। ताकौ जस तीनौं पुर छायौ।
नाम सुनीति बड़ी तिहि दार। सुरुचि दूसरी ताकी नार।
भयौ सुरुचि तें उत्तम क्वार। अरु सुनीति कैं ध्रुव सुकुमार।
राजा हियैं सुरुचि सौं नेह। बसै सुनीति दूसरैं गेह।
इक दिन नृपति सुरुचि-गृह आयौ। उत्तम कुँवर गोद बैठायौ।
ध्रुव खेलत खेलत तहँ आए। गोद बैठिबे कौ पुनि धाए।
राजा तिय-डर गोद न लयौ। ध्रुव सुकुमार रोइ तब दयौ।
तबहि सुरुचि ध्रुव कौं समुझायौ। तैं गोबिंद-चरन नहि ध्यायौ।
जो हरि कौ सुमिरन तू करतौ। मेरैं गर्भ आनि अवतरतौ।
राजा तोकौं लेतौ गोद। तबहि गोद मै करतौ मोद।
अजहूँ तू हरि-पद चित लाइ। होहिं प्रसन्न तोहि जदुराइ।
सुरुचि के बचन बान सम लागे। ध्रुव आए माता पै भागे।
....
कहयौ, सुत, सुरुचि सत्य यह कहयौ। बिनु हरि-भक्ति पुत्र मम भयौ।

[1] 'सारावली', छंद ७६ से ८२।

अजहूँ जौ हरि-पद चित लैहौ। सकल मनोरथ मन के पैहौ।

ध्रुव यह सुनि बन कौं उठि चले। पंथ माहि तिन नारद मिले।

तब नारद ध्रुव कौं दृढ देखि। कह्यौ, देउँ मै ज्ञान बिसेखि।
मथुरा जाइ सु सुमिरन करौ। हरि कौ ध्यान हृदय मै धरौ।

मथुरा जाइ सोइ उन कियौ। तब नारायन दरसन दियौ।
ध्रुव अस्तुति कीन्हीं बहु भाइ। तब हरिजू बोले मुसुकाइ।
हरि कह्यौ, राज-हेत तप कियौ। ध्रुव, प्रसन्न ह्वै मै तोहि दियौ।
अरु तेरैं हित कियौ अस्थान। देहि प्रदच्छिन जहँ ससि-भान।
ग्रह-नछत्रहू सबही फिरैं। तू भयौ अटल, न कबहू टरै।

यह कहि हरि निज लोक सिधारे। ध्रुव निज पुर कौं पुनि धारे।

ध्रुव तब निज सिंहासन बैठाए। नृप तप करन बनहि सिधाए।
सातौं द्वीप राज ध्रुव कियौ। सीतल भयौ मातु कौ हियौ[1]।

ख. ध्रुव बिमाता-बचन सुनि रिसायौ।
दीन के द्याल गोपाल, करुनामयी मातु सौं सुनि, तुरत सरन आयौ।
बहुरि जब बन चल्यौ, पंथ नारद मिल्यौ, कृष्न-निज-धाम मथुरा बतायौ।
मुकुट सिर धरैं, बनमाल कौस्तुभ गरैं, चतुर्भुज स्याम सुंदरहि ध्यायौ।
भए अनुकूल हरि, दियौ तिहिं तुरत बर जगत करि राजपद अटल पायौ।
सूर के प्रभु की सरन आयौ जो नर, करि जगत-भोग बैकुंठ सिधायौ[2] ॥

'सूरसागर' की कथा से जो अंतर 'सारावली' में है, वह उसके पिछत्तर से अठत्तर संख्यक छंदों में देखा जा सकता है। इनमें से प्रथम छंद का आधार 'श्रीमद्भागवत' के चतुर्थ स्कंध के आठवें अध्याय के तिहत्तर से छिहत्तर श्लोक हैं जिनमें क्रमशः पत्ते, पानी और वायु पीने तथा

१. 'सूरसागर' पद ४९।
२. वही, पद ४-१०।

श्याम को जीतने की बात कही गयी है[1] । 'सारावली' के शेष तीन छंदो में उक्त अध्याय के अंतिम दो श्लोकों, एवं नवें अध्याय के प्रथम श्लोक की छाया है जिनमे देवताओ का हाहाकर, भगवान का आश्वासन और ध्रुव के पास उनका आगमन वर्णित है[2] ।

'मारावली' के अगले छंद में हंसावतार की कथा है—

सनकादिक पूछ्यो चतुरानन ब्रह्म जीव को बीच ।
प्रगट हंस बपु धरथो जगतगुर जो पै नीर सुमीच[3] ॥

यह वर्णन 'सूरसागर' के एकादश स्कंध के निम्नलिखित पदांश के आधार पर है—

सनकादिक ब्रह्मा पै जाइ । करि प्रनाम पूछ्यौ या भाइ ।
किधौ विषय कौ चित गहि रहयौ । कै बिषयिनि ही चित कौं गह्यौ
. .
ब्रह्मा कौ उत्तर नहि आयौ । तब सनकादिक गर्व बढायौ ।

१. द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने ।
तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥
तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ।
अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥
चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि ।
वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥
पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ।
ध्यायन् ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥
—'श्रीमद्भागवत', चतुर्थ स्कंध, अध्याय ८, श्लोक ७३ से ७६ ।

२. क. नैवं विदामो भगवन् प्राणरोधं, चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं, प्राप्ता वयं त्वा शरणं शरण्यम् ॥
मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ।
यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा ॥
—वही, अध्याय आठ, श्लोक ८१-८२ ।

ख. त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे, कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम् ।
सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता, मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥
—वही, अध्याय नौ, श्लोक १ ।

३. 'सारावली', छंद ८३ ।

ज्ञान हमारौ अतिसय जोइ । ब्रह्मा रह्यौ निरुत्तर होइ ।
ब्रह्मा हरि-पद ध्यान लगाए । तब हरि हंस-रूप धरि आए ।
.. ..

सनकादिक सौ कहि यह ज्ञान । परम हंस भए अंतर्धान[1] ।

'सारावली' के अगले छंद मे पुन: पृथु अवतार की कथा है—

यह भुव मंडल को रस काढयो भाँति-भाँति निज हाथ ।
धरि पृथु रूप कियो जग आनँद अखिल लोक के नाथ[2] ॥

इस कथा का आधार ऊपर चौबीसवें छंद के साथ बताया जा चुका है ।

'सारावली' के अगले चार छंदो में ऋषभदेव अवतार की कथा इस प्रकार मिलती है—

प्रियव्रत बंस धरेउ हरि निज बपु ऋषभ देव यह नाम ।
कीन्हें काज सकल भक्तन को अंग-अंग अभिराम ॥
कीन्हों गर्व महा मघवा ने बरषो बर्षा नाहि ।
तब हरि आप मेघ ह्वै बरषे करी परम सुख छाहि ॥
ज्ञान उपदेस कियो पुत्रनि को ब्रह्मावर्त मँझार ।
पाछे करि संन्यास जगत में बिचरे परम उदार ॥
आठों सिद्धि भईं सन्मुख जब करी न अंगीकार ।
जय जय जय श्री ऋषभदेव मुनि परब्रह्म अवतार[3] ॥

यह कथा 'सूरसागर' मे बहुत बिस्तार से कवि ने लिखी है—

प्रियव्रत कै अग्नीध्र सु भयौ । नाभि जन्म ताही तै लयौ ।
नाभि नृपति सुत-हित जग कियौ । जज्ञ-पुरुष तब दरसन दियौ ।
. . . .

(कह्यौ) मै हरता करता-संसार । मै लैहौं नृप-गृह अवतार ।
रिषभदेव तब जनमे आइ । राजा कै गृह बजी बधाइ ।
बहुरौ रिषभ बडे जब भए । नाभि राज दै बन कौं गए ।
रिषभ-राज परजा सुख पायौ । जस ताकौ सब जग मे छायौ ।

१. 'सूरसागर', पद ११-४ ।
२. 'सारावली', छंद ८४ ।
३. वही, छंद ८५ से ८८ ।

इंद्र देखि इरषा मन लायौ। करि कै क्रोध न जल बरसायौ।
रिषभदेव तबहीं यह जानी। कह्यौ, इंद्र यह कहा मन आनी।
निज बल जोग नीर बरसायौ। प्रजा लोग अतिही सुख पायौ।
रिषभराज सब मन उतसाह। कियौ जयंती सौं पुनि ब्याह।
तासौं सुत निन्यानबे भए। भरतादिक सब हरि-रँग रए।
तिनमै नव नव-खंड-अधिकारी। नव जोगेस्वर ब्रह्म बिचारी।
असी-इक कर्म बिप्र कौ लियौ। रिषभ ज्ञान सबहीं कौं दियौ।
....

बहुरौ भरतहिं दै करि राज। रिषभ ममत्व देह कौ त्याज।
उनमत की ज्यों बिचरन लागे। असन-बसन की सुरतिहि त्यागे।
... .

अष्टसिद्धि बहुरौ तहँ आईं। रिषभदेव ते मुँह न लगाईं[1]।

'सारावली' के अगले दो छंदों में हयग्रीव अवतार का वर्णन किया गया है—

ब्रह्म सभा मे जज्ञ कियो जब करन बेद उच्चार।
प्रगट भये हयग्रीव महानिधि परब्रह्म अवतार ।।
च्यार बेद ले गयौ सँखासुर जल मे रह्यो छुपाय।
धरि हयग्रीव रूप हरि मारयो लीन्हें बेद छुड़ाय[2] ।।

यह कथा 'सूरसागर' मे इस प्रकार मिलती है—

क. चतुरमुख कह्यौ, सँख असुर स्रुति लै गयौ .... ।
... ...

बहुरि संखासुरहिं मारि, बेदाऽनि दिए, चतुरमुख बिविध अस्तुति सुनाई[3]।
ख. संखासुर मारि कै, बेद उद्धारि कै, आपदा चतुरमुख की निवारी[4]।
ग. चारि बेद लै गयौ सँखासुर, जल मैं रह्यौ लुकाऊ।
मीन रूप धरि कै जब मारयौ ... ... [5]।

१. 'सूरसागर', पद ५-२।
२. 'सारावली', छंद ८९-९०।
३. 'सूरसागर', पद ८-१६।
४. वही, पद ८-१७।
५. वही, पद १०-२२१।

'हयग्रीव' अवतार के संबंध में एक रोचक बात यह है कि यद्यपि सूरदास ने चौबीस अवतारो मे उसकी भी गणना की हैं, यथा—

कपिल, मनू, हयग्रीव, पुनि कीन्हौ ध्रुव अवतार[१]।

तथापि उन्होने वेदों का उद्धार करनेवाले अवतार को 'मत्स्यावतार' कहा है। 'श्रीमद्भागवत' के प्रथम स्कंध मे केवल बाइस अवतार गिनाये गये हैं, पादटिप्पणी मे कुछ विद्वानो के अनुसार दो अन्य अवतार हंस और हयग्रीव की सूचना दी गयी है[२]। उस ग्रंथ के आठवें स्कंध में 'हयग्रीव' नामक असुर की चर्चा है जो ब्रह्मा जी के सोते समय वेद चुरा ले गया था[३]। इस प्रकार ध्यान रखने की बात यह है कि 'हयग्रीव' नाम विष्णु के अवतार का भी है जो 'हिंदी शब्द सागर'[४] के अनुसार, मधु-कैटभ नामक दैत्यों के वेद उड़ा ले जाने पर इनके उद्धार और असुरों के विनाश के लिए हुआ था। इसकी पुष्टि 'श्रीमद्भागवत' से भी होती है[५]। और यह नाम एक दैत्य का भी है जो कल्पांत में वेद चुरा ले जाने कारण मत्स्यावतार द्वारा मारा गया था, अस्तु।

१. 'सूरसागर', पद २-३६।

२. 'श्रीमद्भागवत', गीता प्रेस, पादटिप्पणी, पृ० ५६।

३. कालेनागतद्रिस्य धातुः शिशयिषोर्बली।
मुखतो निःसृतान् वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत्॥
ज्ञात्वा तद् दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम्।
दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः॥
अतीतप्रलयापाय उत्थिताय च वेधसे।
हत्वासुरं हयग्रीवं वेदान् प्रत्याहरद्धरिः॥
प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः, श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां, तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि॥
—वही, अष्टम स्कंध, अध्याय २४, श्लोक ८, ९, ५७ और ६१।

४. 'हिंदी-शब्द-सागर', चौथा भाग, पृ० ३७७८।

५. तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्, वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ।
हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च, सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति॥
—'श्रीमद्भागवत', सप्तम स्कंध, अध्याय नौ, श्लोक ३७।

यहै कहि भए अँतरधान तब मत्स्य प्रभु बहुरि नृप आपनौ कर्म साधौ।
सातवैं दिवस आयौ निकट जलधि जब, नृप कह्यौ, अब कहाॅ नाव पावै।
...   .

मत्स्य अरु सर्प तिहि ठौर परगट भए, बाँधि नृप नाव यौं कहि उचारौ।
.   .   .   .

मत्स्य भगवान कह्यौ ज्ञान पुनि नृपति सौं, भयौ सो पुरान सब जगत जान्यौ।
...   .

कह्यौ जो ज्ञान भगवान, सो आनि उर, नृपति निज आयु इहिं बिधि बिताई[1]।

'सारावली' के मत्स्यावतार-वर्णन में दो बातें 'सूरसागर' से अधिक है—१. मछली का जल-जीवों से भय और २. सब अन्नों के बीज लेकर नाव में बैठना। 'श्रीमद्भागवत' में ये दोनो प्रसंग मिल जाते है[2]।

'सारावली' के अगले छंद मे कूर्म अवतार की अत्यंत संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

सुर अरु असुर मथन कीन्हों निधि चौदह रतन निकार।
पर्वत पीठ धरेउ हरि नीके लियो कूर्म अवतार[3]॥

यह कथा 'सूरसागर' मे बड़े विस्तार से मिलती है। यहाॅ निम्नलिखित पंक्तियाॅ देना ही पर्याप्त है—

सुरनि हित हरि कछप-रूप धारयौ मथन करि जलधि अमृत निकारयौ।
..   ..

कूर्म कौ रूप धरि, धरयौ गिरि पीठि पर, सुर-असुर सबनि के मन बधाई[4]।

'सारावली' में समुद्र से निकले जिन चौदह रत्नो की बात कही गयी है, 'सूरसागर' में कवि ने उन्हें एक-एक कर गिनाया है और कौन रत्न किसको मिला, इसका भी विस्तार से वर्णन किया है।

१. 'सूरसागर', पद ८-१६।
२. क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मा मकरादयः।
अदन्त्यतिबला वीर मा नेहोत्स्रष्टुमर्हसि॥
ध्यायन् भगवदादेशं ददृशे नावमागताम्।
तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः॥
— 'श्रीमद्भागवत', अष्टम स्कंध, अध्याय चौबीस, श्लोक २४ और ४२।
३. 'सारावली', छंद १००।
४. 'सूरसागर', पद ८-८।

'सारावली' के अगले पैंतीस छंदों मे नृसिंह अवतार की कथा है जो पिछले सभी अवतारो की कथाओं से अधिक विस्तार से कही गयी है। प्रारंभिक आठ छंदों मे 'सारावली'-कार ने इस कथा की प्रस्तावना दी है जिसमे ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए हिरण्यकशिपु के तपस्या हेतु जाने के वर्णन से उसका आरंभ होता है। उसकी अनुपस्थिति में इंद्र उसके राज्य पर आक्रमण करके लूट-मार मचा देता है, यहाँ तक कि हिरण्यकशिपु की पत्नी को भी पकड़ ले जाता है। उसी समय नारद जी आकर उसे बताते हैं कि इसके गर्भ मे जो शिशु है वह भगवान का भक्त होगा। यह सुनकर स्त्री को उन्ही के संरक्षण मे छोड़कर इंद्र चला जाता है। हिरण्यकशिपु की गर्भिणी पत्नी को नारद जी अनेक धर्मकथाएँ सुनाते हैं जिनको गर्भस्थ बालक भी सुनता-समझता है। कुछ समय पश्चात् प्रह्लाद का जन्म हुआ और वे उसी आश्रम मे पलने लगे। इसी समय हिरण्यकशिपु तप करके लौटता है और नारद जी उसको स्त्री-पुत्र सौंप आते हैं। सारा वृत्तांत जानकर उस दैत्यराज के क्रोध का वारापार नहीं रहता और वह लोकपाल, इंद्र, वरुण, कुबेर, सबको जीतकर अपने अत्याचारो से सुरलोक तक कँपा देता है। तब देवता अज के पास जाते है और सारा वृत्तांत सुनकर अज परब्रह्म का ध्यान करते है। इसी समय आकाश वाणी होती है—जब तक यह दैत्यराज सारे ससार को दुख देगा, तब तक तो मैं इसे नही मारूँगा; परंतु जब यह मेरे भक्त को दुख देगा, तभी इसका प्राण हर लूँगा। 'सारावली' के वे आठ छंद इस प्रकार हैं—

हिरन्यकसिपु अति प्रबल दनुज ह्वै तप कीन्हो परचंड।
तब उन बर दीन्हों चतुरानन कीन्हो अमर अखंड॥
जब तप गयो तबहि मघवा ने सब संपति गहि लीन्हीं।
गहे कच कामिनि जब राजा की तब नारद सिख दीन्ही॥
याके गर्भ बसत है हरि-जन सुनु सुरपति यह बात।
तब तजि दई आप लै आये निज आस्रम बिख्यात॥
नित प्रति ज्ञान-कथा हंसन सों कहत रहत मुनिराज।
सुनि प्रहलाद प्रसन्न कोखि मे अति आनंद समाज॥
ता पाछे तप कियो असुर बहु फिरि देख्यो निज धाम।
तब नारद सुनि दई कथा सुत लै आयो है गाम[1]॥

१. 'सारावली', छंद १०१ से१०५।

पाछे लोकपाल सब जीते सुरपति दियो उठाय।
बरुन कुबेर अगिन जम मारुत सुबस कियो छन माँय॥
हाहाकार भयो सुरलोकनि गये सबै अज पास।
तब अज ध्यान कियो माधव को बानी भई अकास॥
सकल लोक यह देत असुर दुख तऊ न करौं सँहार।
जब मेरे जन को दुख दैहै छिनहि मे डारौं मार[1]॥

'सारावली' के उक्त आठ छंदो की लंबी कथा 'सूरसागर' में नहीं है। उसमे तो केवल इतना कहा गया है –

हिरनकसिप दुस्सह तप किऔ। ब्रह्मा आइ दरस तब दियौ।
. . . ...
भवन आइ त्रिभुवनपति भए। इंद्र बरुन सबही भजि गए[2]।

'सारावली' के उक्त आठ छंदो में दो विशेष बातें कही गयी हैं जो 'सूरसागर' मे नही हैं। पहली बात है हिरण्यकशिपु की अनुपस्थिति मे प्रहलाद की माता के साथ-साथ राजसंपत्ति का इंद्र द्वारा लूटा जाना, नारद का राजमहिषी[3] को बचा कर अपने आश्रम में रखना, उसे धर्मोपदेश देना और अंत में हिरण्यकशिपु को सौंप देना; और दूसरी है हिरण्यकशिपु के अत्याचारो से पीड़ित होकर सवत्र हाहाकार होना, देवताओ का ब्रह्मा की शरण जाना और ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर यह आकाशवाणी होना कि जब यह मेरे भक्त को दुख देगा, तभी मै इसको मार डालूँगा।

यों तो प्रथम अंतर के संबंध मे इतना संकेत 'सूरसागर' के उक्त पद में ही आगे के एक चरण मे मिलता है कि नारद जी द्वारा प्रहलाद को ज्ञानोपदेश उस समय दिया गया था जब वह माता के गर्भ में ही था— 'नारद, माता-गर्भ सुनायौ',[4] तथापि, स्पष्ट रूप से, 'सारावली' के उक्त उल्लेखो का आधार 'श्रीमद्भागवत' है जिसमें पहली बात का वर्णन

१ 'सारावली', छंद १०६ से १०८।
२. 'सूरसागर', पद ७२।
३ 'श्रीमद्भागवत' (गीताप्रेस), सप्तम स्कंध, अध्याय सात, श्लोक ६ की टीका मे प्रहलाद की माता का नाम 'कयाधू' बताया गया है—लेखक।
४. 'सूरसागर', पद ७-२।

सप्तम स्कंध के सातवें अध्याय में[१] और द्वितीय का चौथे अध्याय

१. पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मन्दराचलम् ।
युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति ॥
पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः ।
पापेन पापोऽभक्षीतिवादिनो वासवादयः ॥
तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः ।
वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ।
कलत्रपुत्रमित्राप्तान्गृहान्पशुपरिच्छदान् ।
नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥
व्यलुम्पन् राजशिबिरममरा जयकाङ्क्षिणः ।
इन्द्रस्तु राजमहिषीं मातरं मम चाग्रहीत् ॥
नीयमाना भयोद्विग्ना रुदती कुररीमिव ।
यदृच्छयाऽऽगतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥
प्राह नैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसम् ।
मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥
आहतेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः ।
आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥
अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान् ।
त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ।
इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वचः ।
अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥
ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम् ।
आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत् ते भर्तुरागमः ॥
तथेत्यवात्सीद् देवर्षेरन्ति साप्यकुतोभया ।
यावद् दैत्यपतिर्घोरात् तपसो न न्यवर्तत ॥
ऋषिं पर्यचरत् तत्र भक्त्या परमया सती ।
अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥
ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः ।
धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥
तत्तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे ।
ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः ॥

—'श्रीमद्भागवत', सप्तम स्कंध, अध्याय सात, श्लोक २ से १६ तक ।

में[1] है।

'सारावली' के अगले तीन छंदों में प्रहलाद की शिक्षा इस प्रकार वर्णित है—

जब प्रहलाद प्रगट ताके गृह पाँच वर्ष के भैहैं।
आदर बहु कीन्हों राजा ने पढन बिप्र गृह जैहैं॥
जब वह बिप्र पढावै कुछ कुछ सुनके चित धरि राखै।
जब वह जाय तबहि सबहिनि सों राम राम मुख भाखै॥
लरिका और पढ़त साला में तिनहि करत उपदेस।
हरि को भजन करो सबही मिलि और जगत सुख लेस[2]॥

'सारावली'-कार ने उक्त छंदों में प्रहलाद के गुरु का नाम न लिखकर, केवल 'विप्र' लिखना पर्याप्त समझा है। 'सूरसागर' मे गुरु का नामोल्लेख सबसे पहले किया गया है और अन्य सब बातें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से लिखी गयी हैं—

१. तस्योग्रदण्डसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः।
अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतम्॥
तस्यै नमोऽस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः॥
इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः।
उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः॥
तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिस्वना।
सन्नादयन्ती ककुभः साधूनामभयङ्करी॥
मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः।
मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये॥
ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च।
तस्य शान्तिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत॥
यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति॥
निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने।
प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम्॥
—'श्रीमद्भागवत', सप्तम स्कंध, अध्याय चार, श्लोक २१ से २८ तक।

२. 'सारावली', छंद १०६ से १११।

ताकौ पुत्र भयौ प्रह्लाद। भयौ असुर-मन अति अह्लाद।
पाँच बरस की भई जब आइ। सडामर्कहिं लियौ बुलाइ।
तिनकैं सँग चटसार पठायौ। राम-नाम सौं तिन चित लायौ।
जब पाँड़े इत-उत कहुँ गए। बालक सब इकठौरे भए।
कह्यौ, यह ज्ञान कहाँ तुम पायौ। नारद माता-गर्भ सुनायौ।
....

कह्यौ सबनि सौं तब समुझाइ। सब तजि, भजौ चरन रघुराइ।
रामहि राम पढ़ौ रे भाई। रामहि जहँ-तहँ होत सहाई[1]।

'सारावली' के अगले तीन छंदों में प्रह्लाद की गति-विधि देखकर उसके गुरु का चकित और भयभीत होना, प्रह्लाद से प्रश्नोत्तर करना और अंत में असुरपति से उसकी शिकायत करना लिखा गया है—

यहि बिधि करि उपदेस सबन को किये भजन रसलीन।
संडामर्क जो पूँछन लाग्यो तब यह उत्तर दीन॥
रामकृष्न अवतार मनोहर भक्तन के हित काज।
सोई सार जगत मे कहियत सुनो देव द्विजराज॥
एही बात जगत मे नीकी सोई पढत हम आज।
जबहि बिप्र कहेउ जो असुर सो पुत्र पढ़त बिन काज[2]॥

यहाँ पहली बार 'सारावली'-कार ने प्रह्लाद के गुरु का नाम 'संडामर्क' खोला है, अब तक वह, किस 'स्वतंत्र' सिद्धांत के आधार पर उन्हें 'विपु' मात्र कह रहा था, भगवान ही जाने। शेष सारा वर्णन 'सूर-सागर' के निम्नलिखित पद्यांशों की तुलना में साधारण ही है—

संडामर्क रहे पचि हारि। राजनीति कहि बारंबार।
कह्यौ प्रहलाद पढ़त मै सार। कहा पढावत और जँजार।
....

तब संडामर्का संकाइ। कह्यौ असुरपति सौं यौं जाइ।
तुव सुत कौं पढाइ हम हारे। आपु पढ़ै नहि और बिगारैं[3]।

गुरु 'संडामर्क' की बात सुनकर 'सारावली' का हिरण्यकशिपु पुत्र

१. 'सूरसागर', पद ७-२।
२. 'सारावली', छंद ११२ से १४।
३. 'सूरसागर', पद ७-२।

को बुलाता है और उससे शिक्षा के संबंध में पूछता है जिसका उत्तर प्रहलाद देता है। यह सारा प्रसग 'सारावली' के अगले तीन छंदों में वर्णित है—

तबहि असुर प्रहलाद बुलाये लियो गोद भरि अंक।
कहो पुत्र तुम कहा पढे हौ, पूँछत कहेउ निसंक॥
स्रवन, कीरतन, स्मरन पादरत, अरचन, बंदन, दास।
सख्य और आतमा-निवेदन प्रेम लच्छन जास॥
सुनो पिता हौं यही पढ्यो हूं और बात नहि जानूँ।
इतने और मोहि जो कहियत सो कबहूं नहि मानूँ[1]॥

प्रहलाद का उक्त उत्तर कैसा रटा-रटाया जैसा है! इस बात का अटपटापन 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियो से मिलान करके सहज ही देखा जा सकता है—

हरिनकसिप तब सुतहि बुलाइ। कछुक प्रीति, कछु डर दिखराइ।
बहुरौ गोद माहि बैठार। कह्यौ पढे कहा बिद्या-सार।
सार बेद चारौं कौ जोइ। छेऊ सास्त्र-सार पुनि सोइ।
सर्ब पुरान माहि जो सार। राम-नाम मैं पढ्यौ बिचार[2]।

भक्ति के जो विविध लक्षण 'सारावली' के प्रहलाद ने पिता को बतलाये है, वे अवश्य 'सूरसागर' मे नहीं हैं और इनके न होने में ही उसके रचयिता का कौशल है। पॉच वर्ष का अबोध बालक गर्भस्थ संस्कारों के फलस्वरूप राम-नाम का कीर्तन आदि तो कर सकता है, परंतु 'सारावली' के प्रहलाद की तरह रटंत का परिचय, बिना किसी के स्पष्टत' वैसा कराये नहीं दे सकता। परंतु 'सारावली'-कार को इन सब सूक्ष्म बातो से क्या मतलब! उसने तो भक्ति के जो लक्षण या अंग रट रखे थे, उनको जल्दी से जल्दी 'उगल' कर वह छुटकारा पा लेना चाहता है। और ये लक्षण या अंग उसने सीखे हैं 'श्रीमद्भागवत' के पाचवें अध्याय से[3]; अस्तु।

१. 'सारावली', छंद ११५ से ११७।
२. 'सूरसागर', पद ७-२।
३. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥
—'श्रीमद्भागवत', सप्तम स्कंध, अध्याय पाँच, श्लोक २३-२४।

तदनंतर 'सारावली' का हिरण्यकशिपु प्रहलाद को पृथ्वी पर पटक देता और कभी गुरु संडामर्क को फटकारने लगता है, कभी सेवकों को आज्ञा देता है कि इसे पर्वत पर से गिरा दो। दैत्यराज के सेवक, स्वामी की आज्ञा का अक्षरश: ही नहीं, उससे भी अधिक पालन करते हैं; परंतु प्रहलाद किसी तरह नहीं मरता। यह बात 'सारावली' के साढ़े तीन छंदों में लिखी गयी है—

दीन्हों पटकि भूप धरनी पर कहेउ बिप्र सों खीझ।
रे मूरख तू कहा पढ़ायो कैसे देउ तोहि रीझ॥
जो यह मेरो बैरी कहियत ताको नाम पढायो।
देहु गिराय याहि पर्वत ते छिन गत जीव करायो॥
दीन्हों डारि सैल ते भू पर पुनि जल भीतर डारो।
डारि अग्नि में सस्त्रनि मारो नाना भाँति प्रहारो॥
तऊ न घात भई अंगन की जहँ तहँ राम बचायो[1]।

'सूरसागर' का हिरण्यकशिपु, गुरु संडामर्क को फटकारने की आवश्यकता नहीं समझता, प्रत्युत सारा दोष प्रहलाद का ही समझकर उसी का वध कर डालने की इस प्रकार आज्ञा देता है—

कह्यौ, याहि लै जाउ उठाइ। सुमिरत मो रिपु कौं चित लाइ।
मेरी ओर न कछू निहारौ। याकौं पावक भीतर डारौ।
जौ ऐसी करतहुँ नहिं मरै। डारि देहु गज मैमत तरैं।
पर्बत सौं इहिं देहु गिराइ। मरै जौन बिधि मारौ जाइ।
नृप-आज्ञा लयौ कुँवर उठाइ। कुँवर रह्यौ हरि-पद चित लाइ।
असुर चले तब कुँवर लिवाइ। हरि जू ताकी करी सहाइ।
... .

करै उपाइ सो बिरथा जाइ। तब सब असुर रहे खिसिआइ।
कह्यौ असुरपति सौं उन जाइ। मरत नहीं बहु किए उपाइ।
हम तौ बहुत भाँति पचि हारे। इन तौ रामहिं राम उचारे[2]।

'सारावली' के उक्त वर्णन की तुलना में 'सूरसागर' का वर्णन कितना सांगोपांग है, सहृदय ही समझ सकते हैं। 'सारावली' का हिरण्य-

१. 'सारावली', छंद ११८ से १२१।
२. 'सूरसागर,' पद ७२।

कशिपु सेवकों को आज्ञा देता है प्रह्लाद को केवल पर्वत से गिराने की; और वे दैत्य केवल उतना ही नहीं करते, उसे पर्वत से गिराते, जल में डुबाते, आग में जलाते और शस्त्रो से मारते भी है। इधर 'सूरसागर' के दैत्य पुत्र को मारने की आज्ञा देनेवाले स्वामी के मुख से वैसी आज्ञा सुनकर, उस अबोध शिशु के प्रति सहज वात्सल्य-भाव से प्रेरित होकर इस प्रकार ताकने लगते हैं जैसे किसी पिता के मुख से, भले ही वह दैत्य-राज ही क्यों न हो, अपने एकाकी पुत्र के लिए वैसी आज्ञा दिये जाने की बात पर उन्हें किसी प्रकार विश्वास ही न हो रहा हो। 'मेरी ओर न कछू निहारो' लिखकर जिस 'सूरसागर'-कार ने सहज स्वाभाविकता का दोनो पक्षो मे निर्वाह किया है, क्या उसी का लिखा 'सारावली' का उक्त वर्णन हो सकता है जिसमें हृदय-पक्ष की उपेक्षा ही नहीं, हत्या तक कर दी गयी है ?

'सारावली' के अगले डेढ़ छंदो मे हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद का वार्तालाप इस प्रकार मिलता है—

> तब नृप आप सस्त्र कर गहिकै बहुतहि त्रास दिखायो ॥
> कहाँ है राम - कृष्न वह तेरो यों कहि गर्जन कीन्हीं।
> घट घट जल थल ब्योम धरनि मे ब्यापक यह धुनि लीन्हीं[1] ॥

'सारावली' का उक्त वर्णन जरा उन छंदो से मिलाइए जिनमे प्रह्लाद ने अपनी शिक्षा के संबंध में भक्ति के लक्षण गिनाते हुए 'राम-नाम' पढ़ने की बात कही है। इस प्रकार सारे उत्तर में प्रह्लाद ने कहीं 'कृष्ण' का नाम नहीं लिया है। तब हिरण्यकशिपु ने उक्त वर्णन मे अपनी ओर से 'कृष्ण' शब्द किस सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिए जोड़ दिया ? क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि 'सारावली'-कार इतना अज्ञान है कि सृष्टि-विकास-सूचक विविध अवतारों के क्रम के संबंध में वह कुछ नह जानता और जो मन में आता है वही उलटा-सीधा लिखने लगता है ? फिर 'सारावली'-कार पचासों स्थानों पर तो कृष्ण के लिए 'हरि' शब्द का प्रयोग करता है और यहाँ जब 'हरि' लिखने से उक्त दोष मिट सकता था, तब वैसा न करके किस स्वतंत्रता का परिचय देता है ?

'सूरसागर' में भी यह प्रसंग वर्णित है जिसमें 'हरि' शब्द ही इस

१. 'सारावली', छंद १२१-२२।

प्रसंग म मिलता है। दूसरे, 'सारावली' का उक्त वर्णन भी 'सूरसागर' के निम्नलिखित पद्यांश के वार्तालाप की तुलना में उखड़ा-उखड़ा-सा लगता है—

> नृप कह्यौ, मंत्र-जंत्र कछु आहि। कै छल करत कछू तू आहि।
> ताकौं कौन बचावत आइ। सो तू मोकौं देहि बताइ।
> मंत्र-जंत्र मेरै हरि-नाम। घट-घट मै जाकौ बिस्राम।
> जहाँ-तहाँ सोइ करत सहाइ। तासौ तेरौ कछु न बसाइ।
> कह्यौ, कहाँ सो मोहि बताइ। नातरु तेरौ जिय अब जाइ।
> सो सब ठौर, खंभहू होइ! कह्यौ प्रहलाद, आहि, तू जोइ[1]।

'सारावली' के अगले छंद में खंभ फाड़कर नृसिंह जी प्रकट होते हैं, दूसरे मे ही वे हिरण्यकशिपु का वध कर डालते हैं और तीसरे में सुर-नर-मुनि पुष्प-वर्षा करने लगते हैं—

> तब लै खड्ग खम्भ मे मारो भयो सब्द अति भारी।
> प्रगट भये नरहरि बपु धरि हरि कटकट करि उच्चारी॥
> पकरि लियो छिन माँझ असुर बल डारो नखन बिदारी।
> रुधिर पान करि आँत माल धरि जय जय सब्द उच्चारी॥
> मारो दैत्य दुष्ट इक छिन मे जय नृसिह बपु धारे।
> पुहुपनि बृष्टि करत सुर-नर-मुनि भये भक्त रखवारे[2]॥

'सारावली' के उक्त वर्णन में दो बातें सभी को खटकेंगी। पहली बात यह कि हिरण्यकशिपु ने प्रहलाद से 'खंभ में भी हरि के होने' की बात जब कभी पूछी ही नहीं, तब उसने खड्ग से उस पर ही प्रहार क्या सोच कर किया? वस्तुत: इसका कारण यह है कि खंभ से नृसिंह के प्रकट होने की प्रसिद्ध बात तो 'सारावली'-कार को ज्ञात है; परंतु अपनी असावधानी से उसके संबंध मे प्रश्न कराने या उत्तर दिलाने का उसको ध्यान ही नहीं रह जाता और चटपट उसने दैत्यराज से खंभ पर आघात करवाकर एक कौतुक खड़ा कर दिया है।

दूसरी बात यह कि हिरण्यकशिप का वध 'सारावली'-कार ने इतनी शीघ्रता से करा दिया है कि सारा वर्णन खिलवाड़-सा लगता है। कारण यह है कि उक्त वर्णन करते समय 'सारावली'-कार को ब्रह्मा के उन

१. 'सूरसागर', पद ७-२।
२. 'सारावली', छंद १२३ से १२५।

वरदानो का ध्यान नहीं आता जो उन्होने हिरण्यकशिपु को दिये थे कि न मै दिन में मरूँ, न रात में; न पृथ्वी पर मरूँ, न आकाश में आदि। उसके सुर-नर-मुनि तो हाथ में फूल लिये बरसाने और जयजयकार करने को खड़े थे; सो उनको ज्यादा देर खड़े रखना उसे उचित नहीं प्रतीत हुआ और उसने झटपट दैत्यराज को मरवा दिया। अब देखिए 'सूरसागर' का वर्णन जिसमें सारी बातो का आदि से अंत तक ध्यान रखा गया है—

हिरनकसिप क्रोधहि मन धारयौ। जाइ खंभ कौं मुष्टिक मारयौ।
फाटे तब खंभ भयौ द्वै फारि। निकसे हरि नरसिंह-बपु धारि।
देखि असुर चकित ह्वै गयौ। बहुरि गदा लै सन्मुख भयौ।
हरि तासौं कियौ जुद्ध बनाइ। तब सुर मुनि सब गए डराइ।
संध्या समय भयौ जब आइ। हरि जू ताकौं पकर्‌यौ धाइ।
निज जंघनि पर ताहि पछार्‌यौ। नख-प्रहार तिहि उदर बिदार्‌यौ।
जै जैकार दसौं दिसि भयौ। असुर देह तजि हरिपुर गयौ[1]।

उक्त पंक्तियों में 'सूरसागर'-कार ने दसों दिसाओ में जयजयकार तो कराया, परंतु 'सारावली'-कार की तरह सुर-नर-मुनि से फूल नहीं बरसवाये, इसका भी तो कुछ कारण होना चाहिए और वह यह है कि शत्रु का वध करके भी नृसिंह जी का क्रोध शांत नहीं हुआ था और जब परब्रह्म क्रुद्ध हों तब सुर-मुनि आदि के फूल बरसाने की बात उसे कैसे सूझ सकती थी। परंतु 'सारावली' का रचयिता तो परिस्थिति की ओर से आँख मूँदे केवल परिपाटी का अंधानुकरण करना भर जानता है; अस्तु।

'सारावली' के अगले दो छंद इस प्रकार है—

रमा निकट नहि आवत हरि के ऐसो बपु हरि धारो।
अज सनकादि देव नारद मुनि जा तन रूप निहारो॥
अपनी अपनी अस्तुति करिकै सबहिनि यहै सुनायो।
गंध्रब अरु बिद्याधर चारन बिमल बिमल जस गायो[2]॥

नृसिंह-अवतार तो देवताओं की प्रार्थना पर हुआ था; इसलिए उनकी इच्छा पूरी होने पर सर्व प्रथम उन्हीं को प्रसन्न होना और स्तुति

१. 'सूरसागर', पद ७-२।
२. 'सारावली', छंद १२६-२७।

करना चाहिए था। तब यह रमा यहाँ सबसे पहले कैसे और क्यों आ गयीं ? किस स्वतंत्र सिद्धांत के निर्वाह के लिए ऐसा किया गया है ? 'सारावली'-कार से तो किसी भी संगत वर्णन की हमें आशा ही नहीं है; इसलिए उससे किसी प्रकार का उचित उत्तर पाने की आशा रखना भी व्यर्थ है। हाँ उसकी प्रामाणिकता और स्वतंत्रता के समर्थक प्रत्येक प्रसंग मे ऐसी असंगतियों का क्या उत्तर देते हैं और किस सिद्धांत के आधार पर इनका समर्थन करते हैं, यह जानने को हम विशेष उत्सुक हैं।

अब यही प्रसंग 'सूरसागर' के पद्यांश में देखिए और उसके क्रमिक वर्णन का 'सारावली' से मिलान करके निर्णय कीजिए कि क्या दोनों कथाएँ एक ही व्यक्ति की लिखी हो सकती हैं—

ब्रह्मादिक सब रहे अरगाइ। क्रोध देखि कोउ निकट न जाइ।
बहुरौ ब्रह्मा सुरनि समेत। नरहरि जू कैं जाइ निकेत।
करि दंडवत विनय उचारी। तुम अनंत बिक्रम बनवारी।
. . ..
महादेव पुनि बिनय उचारी। नमो नमो भक्तनि-भयहारी।
... .
बहुरि इंद्र अस्तुति उचारी। मुयौ असुर, सुर भए सुखारी।
ह्वैहैं जग्य अब देव मुरारी। छमियै क्रोध सुरनि-सुखकारी।
पुनि लछमी यौं बिनय सुनाई। डरौं देखि यह रूप नवाई।
महाराज, यह रूप दुरावहु। रूप चतुर्भुज मोहि दिखावहु।
बरुन कुबेरादिक पुनि आइ। करी बिनय तिनहूँ बहु भाइ[1]।

'सारावली' और 'सूरसागर,' दोनों के उक्त वर्णनों में कितना अंतर है !'सारावली' में न शिव की चर्चा है और न देवराज की। परब्रह्म के अवतार के समय इनको क्यों और किस स्वतंत्र सिद्धांत के आधार पर हटा दिया गया है ? क्या यह 'सारावली'-कार की सर्वथा असावधानी नहीं है ? इसके विपरीत, 'सूरसागर' में ब्रह्मा, महादेव, इंद्र, लक्ष्मी (रमा), वरुण, कुबेरादिक के स्तुति करने की बात कहकर मर्यादित शिष्टाचार का जिस कवि ने अत्यंत कौशलपूर्ण वर्णन किया है, क्या 'सारावली' का वर्णन भी उसी का हो सकता है ?

'नृसिंह' अवतार का शेषांश 'सारावली' के अंतिम आठ छंदों में इस प्रकार वर्णित है—

१. 'सूरसागर', पद ७-२।

तब प्रहलाद आय हरि पद सों सीस नाय यह भाख्यो।
जय जय जय जगदीस जगतगुरु मोर अधम प्रन राख्यो ॥
तुमहीं आदि अखंड अनूपम असरन सरन मुरार।
देव देव परब्रह्म परिपूरन भक्त हेतु अवतार ॥
जहँ जहँ भीर परत भक्तन को तहँ तहँ होत सहाय।
अस्तुति करि मन हरष बढायो लेहन जीभ कराय ॥
तब बोले नरसिंह कृपा करि सुनहु भक्त मन बात।
मन्वंतर को राज दियो तोहिं धरचो सीस पर हाथ ॥
निर्गुन सगुन होय मैं देख्यो तोसों भक्त न पाऊँ।
जहँ जहँ परत भीर भक्तन को तहाँ प्रगट ह्वै आऊँ ॥
सुन प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी तोको कबहुँ न त्यागूँ।
जैसे धेनु बच्छ को चाटत तैसे मैं अनुरागूँ ॥
जो माँगो सो देहुँ तुरत ही नहि बिलंब कछु लागै।
तब प्रहलाद यही बर माँग्यो चरन कमल अनुरागै ॥
करी कृपा दीन्हों करुनानिधि अटल भक्ति थिर राज।
अंतर्धान भये हरि तहँते सफल भये सब काज[1] ॥

'सूरसागर' में भी उक्त सारा प्रसंग लगभग इसी प्रकार वर्णित है; उदाहरणार्थ—

क. तब प्रहलाद निकट-हरि आइ। करि दंडवत परयौ गहि पाइ।
तब नरहरि जू ताहि उठाइ। है कृपाल बोले या भाइ।
कहु जो मनोरथ तेरै होइ। छाँडि बिलंब करौं अब सोइ।
दीनानाथ दयाल मुरारि। मम हित तुम लीन्हौ अवतार।
असुर असुचि है मेरी जाति। मोहि सनाथ कियौ सब भाँति।
भक्त तुम्हारी इच्छा करैं। ऐसे असुर किते संहरैं।
भक्तनि हित तुम धारी देह। तरिहैं गाइ-गाइ गुन एह।
....
और न मेरी इच्छा कोइ। भक्ति अनन्य तुम्हारी होइ।
....
हरि कह्यौ मोहि बिरद की लाज। करौ मनवंतर लौं तुम राज।
....
पुनि प्रहलाद राज बैठाए। सब असुरनि मिलि सीस नवाए[2]।

१. 'सारावली', छंद १२८ से १३५।
२. 'सूरसागर', पद ७-२।

ख. तब लगि हौं बैकुंठ न जैहौं।
सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी, जब लगि तव सिर छत्र न दैहौं।
मन-बच-कर्म जानि जिय अपनै, जहाँ जहाँ जन तहँ तहँ ऐहौं।
निर्गुन सगुन होइ सब देख्यौ, तोसौं भक्त कहूँ नहिं पैहौ[1]।

'सूरसागर' के उक्त दोनों उदाहरणों में वर्णन की जो सुसंबद्धता है, उसकी आशा तो हम 'सारावली'-कार से कर ही नहीं सकते, केवल एक बात का उत्तर उसकी प्रामाणिकता के समर्थकों से हम चाहते हैं। वह यह कि 'सूरसागर' के दूसरे उदाहरण का अंतिम चरण—'निर्गुन सगुन होइ सब देख्यौ, तोसौं भक्त कहूँ नहिं पैहौं'—'सारावली' कार ने अपने एक सौ बत्तीसवें छंद का पूर्वार्द्ध बनाकर भाव नहीं, शब्दावली अपहरण-वृत्ति का जो परिचय दिया है, उसके मूल मे कौन सा स्वतंत्र सिद्धांत है ?

'सारावली' के अगले चार छंदों में क्रमशः नारद, धन्वंतरि और परशुराम अवतारो की कथा इस प्रकार कही गयी है कि उनके नाम भर उनमें आ गये हैं—

नारद रूप जगत उद्धारन बिचरत लोकन माय।
करि उपदेस ज्ञान हरि भक्तहि अरु बैराग्य दृढाय॥
स्वायंभुव सतरूपा दोऊ कहियत है अवतार।
जग को धर्म प्रचार किए भुव भक्ति-कर्म आचार॥
करुनाकर जलनिधि ते प्रगटे सुधा-कलस लै हाथ।
आयुर्वेद बिस्तारन कारन सब ब्रह्माड के नाथ॥
छत्रिय दुष्ट बढे जो भुव पर लियो कृष्न अवतार।
परसुराम ह्वै कै द्विज थापे दूर कियो भू-भार[2]॥

इनमें से नारद के अवतार की कथा 'सारावली' में एक प्रकार से है ही नहीं और मनु की चर्चा पीछे की जा चुकी है। केवल धन्वंतरि और परशुराम के अवतारों की निरर्थक-सी कथा का मिलान करने के लिए 'सूरसागर' की ये पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

क. बहुरि धन्वंत्रि आयौ समुद्र सौं निकसि,
सुरा अरु अमृत निज संग लायौ[3]।

१. 'सूरसागर', पद ७-५।
२. 'सारावली', छंद १३६ से १३९।
३. 'सूरसागर', पद ८-८।

ख. मारे छत्री इकइस बार। यौं भयौ परसुराम अवतार[1]।

ग. यह सुनि कै आयौ तुरत, मारयौ तिन्है प्रचारि।
बहुरौ जिय धरि क्रोध हते छत्री इकइस बार[2]।

'सारावली' के एक सौ चालीसवें से तीन सौ सोलहवें तक, कुल एक सौ सतहत्तर छंदों में रामावतार की कथा है। इनमें से अठारह छंदों में प्रस्तावना है जिसके तीन भाग किये जा सकते हैं। प्रस्तावना का प्रथम भाग प्रारंभ के छह-सात छंदों में है जिसमें रावण कुंभकरण के अत्याचारों से देवताओ का ब्रह्मा के पास जाना, उनका क्षीर-सिंधुवासी से स्तुति करना और इनका सब देवताओ को कपि-कुल मे जन्म लेने की मंत्रणा देना कहा गया है—

रघुकुल-बंस चतुर चूड़ामनि पुरुषोत्तम अवतार।
दसरथ के गृह जन्म लियो हरि राम-रूप सुकुमार॥
रावन कुंभकरन असुराधिप बढे सकल जग माहि।
सबहिनि लोकपाल उन जीते कोऊ बाच्यो नाहि॥
सकल देव मिलि जाय पुकारे चतुरानन के पास।
लै सिव संग चले चतुरानन छीर-सिन्धु सुखवास॥
अस्तुति करि बहु भाँति जगाये तब जागे निज नाथ।
आज्ञा दई जाय कपि-कुल में प्रगटो सब सुर साथ॥
तब ब्रह्मा सबहिनि सों भाष्यो सोई सब सुर कीन्हों।
सातों द्वीप जाय कपि कुल में आय जन्म सुर लीन्हों॥
अपने अंस आप हरि प्रगटे पुरुषोत्तम निज रूप।
नारायन भुव भार हरो है अति आनन्द स्वरूप[3]॥

यह प्रसंग 'सूरसागर' के आधार पर न होकर सामान्य जनश्रुतियों और कथा-प्रवचनो के अनुसार है। एक सौ छियालीस से बावन तक के छंदो में रामावतार की प्रस्तावना का द्वितीय भाग है जिसके अंत में यद्यपि 'सारावली'-कार ने 'ब्रह्मांड पुराण' का उल्लेख किया है, तथापि उसका आधार कथा-प्रवचन ही प्रतीत होते हैं; क्योकि उसमें कोई महत्वपूर्ण बात नही कही गयी है।

१. 'सूरसागर', पद ६-१३।
२. वही, पद ६-१४।
३. 'सारावली', छंद १४० से १४५।

बासुदेव यों कहत बेद में है पूरन अवतार।
सेष सहस मुख रटत निरंतर तऊ न पावत पार ॥
सहस बर्ष लौं ध्यान कियो सिब रामचरित सुखसार।
अवगाहन करिकै सब देख्यो तऊ न पायो पार ॥
बिती समाधि सती तब पूछ्यो कहो मर्म गुरु ईस।
काको ध्यान करत उर अंतर को पूरन जगदीस ॥
तब सिव कहेउ राम अरु गोबिंद परम इष्ट इक मेरे।
सहस बर्ष लौं ध्यान करत हौं राम कृष्न सुख केरे ॥
तामै राम समाधि करी अब सहस बर्ष लौ बाम।
अति आनन्द मगन मेरो मन अँग अँग पूरन काम ॥
दाया करि मोको यह कहिये अमर होहुँ जेहि भाँत।
मोहि नारद मुनि तत्व बतायो ताते जिय अकुलात ॥
महादेव तब थिर करिकै यह चरित कियो बिस्तार।
सो ब्रह्मांड पुरान ब्यास मुनि कियो बदन उच्चार[1] ॥

'सूरसागर' में भी इस प्रकार के सामान्य उल्लेख यत्र-तत्र मिल जाते हैं; जैसे—

क. (उमा कह्यौ,) मेरैं हित इतनौ दुख भरत। मोहि अमर काहे नहिं करत।
तब सिव-उमा गए ता ठौर। जहाँ नहीं द्वितिया कोउ और।
सहसनाम तहँ तिन्हैं सुनायौ। जातैं आपु अमर पद पायौ[2]।

ख. सुक-सारद से करत बिचारा। नारद से पावहिं नहि पारा।
सिव समाधि जिहिं अंत न पावैं। ... ...[3]।

प्रस्तावना का तृतीय भाग एक सौ तिरपन से सत्तावन तक छंदों में है जिनमें वाल्मीकि जी द्वारा उलटा नाम जपने, सतकोटी रामायण 'करने', वसिष्ठ मुनि द्वारा रामचंद्र से और कागभुसुंड द्वारा गरुड़ से रामकथा का वर्णन किये जाने आदि का उल्लेख है—

१. 'सारावली', छंद १४६ से १५२।
२. 'सूरसागर', पद १-२२६।
३. वही, पद १०-३।

मुनि बाल्मीकि कृपा सातो रिषि राम मंत्र फल पायो ।
उलटो नाम जपत अघ बीत्यो पुनि उपदेस करायो ॥
राम-चरित बरनन के कारन बाल्मीकि अवतार ।
तीनों लोक भये परिपूरन रामचरित सुखसार ॥
सतकोटी रामायन कीनो तऊ न लीन्हों पार ।
कह्यो बसिष्ठ मुनि रामचन्द्र सो रामायन उच्चार ॥
काकभुसुंडि गरुन सों भाष्यो रामचरित अवतार ।
सकल बेद अरु सास्त्र कह्यो है रामचन्द्र जस सार ॥
कछु संछेप सूर अब बर्नत लघुमति दुर्बल बाल ।
यह रसना पावन के कारन मेटन भव जंजाल[1] ॥

ये प्रसंग भी एक प्रकार से प्रसिद्ध ही हैं और 'सतकोटि रामायन' की बात तो तुलसीदास ने भी 'मानस' मे कही है[2]। अतएव उक्त उल्लेखो की प्रेरणा भी 'सारावली'-कार को नित्यप्रति होनेवाले कथा-प्रवचनो मे ही मिली होगी।

एक सौ अट्ठावन से चौंसठ छंदो तक राम-जन्म की कथा है जिसमे अन्य सामान्य बातो के साथ-साथ चतुर्व्यूह रूप मे उनके प्रकट होने, वसिष्ठ और नारद मुनि द्वारा द्विजो को दान दिये जाने और देव तथा मुनियो द्वारा आशीर्वाद दिये जाने का उल्लेख हुआ है—

तीनो ब्यूह संग लै प्रगटे पुरुषोत्तम श्रीराम ।
संकरषन प्रद्युम्न लछमन भरत महासुख धाम ॥
सत्रुघ्नहि अनिरुध कहियतु है चतुरब्यूह निज रूप ।
रामचन्द्र प्रगटे जब गृह में हरषे कोसल भूप ॥
पुष्प नछत्र नौमी जु परम दिन लगन सुद्ध सुभ बार ।
प्रगट भये दशरथ गृह पूरन चतुरब्यूह अवतार ॥
अति फूले दसरथ-मन ही मन कौसल्या सुख पायो ।
सौमित्रा कैकइ मन आनँद ये सबहिनि सुत जायो[3] ॥

१. 'सारावली', छंद १५३ से १५७ ।
२. नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सतकोटि अपारा ।
—'रामचरितमानस', बालकाड, दोहा, ३३ ।
३. 'सारावली', छंद १५८ से १६१ ।

गुरु बसिष्ठ नारद मुनि ज्ञानी जन्म-पत्रिका कीनी।
रामचन्द्र बिख्यात नाम यह सुर मुनि की सुधि लीनी ॥
देन दान नृप-राज द्विजनि को सुरभी हेम अपार।
सब सुन्दरि मिलि मंगल गावति कंचन कलस दुआर ॥
आये देव और मुनिजन सब दै असीस सुख भारी।
अपने अपने धाम चले सब परम मोद रुचिकारी[1] ॥

'सूरसागर' मे भी यह प्रसंग लगभग इसी रूप में वर्णित है, दो एक स्थलो पर बहुत सामान्य अंतर दिखायी देता है, जैसे 'सूरसागर' मे वसिष्ठ से 'जनम' पूछे जाने का उल्लेख तो है, पर उसमें 'नारद' का नाम नहीं है। इसी प्रकार तीनो व्यूहो और माताओं के नाम भी 'सारावली' मे गिनाये गये है जो उसके रचयिता की प्रवृत्ति के अनुरूप ही हैं। 'सूरसागर' के तत्संबंधी पदांश ये हैं—

क. दसरथ नृपति अजोध्या राव। ताकै गृह कियौ आविर्भाव[2]।

ख. आजु दसरथ कैं आँगन भीर।
ये भू-भार उतारन कारन प्रगटे स्याम सरीर।
....
त्रिदस-नृपति रिषि-ब्योम-बिमाननि देखत रह्यौ न धीर।
त्रिभुवननाथ दयालु दरस दै हरी सबनि की पीर।
देत दान राख्यौ न भूप कछु महा बड़े नग हीर[3]।

ग. अजोध्या बाजति आजु बधाई।
गर्भ सुच्यौ कौसिल्या माता, रामचंद्र निधि आई।
गावैं सखी परस्पर मंगल, रिषि अभिषेक कराई।
भीर भई दसरथ कै आँगन, सामबेद-धुनि छाई।
पूछत रिषिहिं अजोध्या कौ पति, कहियै जनम गुसाईं।
भौमवार, नौमी तिथि नीकी, चौदह भुवन बड़ाई।
चारि पुत्र दसरथ के उपजे, तिहूँ लोक ठकुराई[4]।

१. 'सारावली', छंद १६२ से १६४।
२. 'सूरसागर', पद ६-१५।
३. वही, पद ६-१६।
४. वही, पद ६-१७।

घ. मागध - बंदी - सूत लुटाए, गो - गयंद-हय - चीर।
देत असीस सूर, चिरजीवौ, रामचंद्र रनधीर[1]।

'सारावली' के एक सौ छाछठवें पद से सत्तानबे छंद तक श्रीराम का बाल-चरित्र या लीला वर्णित है जिनमे वस्तुत: उनकी बाल-लीला चार-पॉच पंक्तियों में ही है जिसकी तुलना में 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदांश उद्धृत किये जा सकते हैं—

क. करतल - सोभित बान धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन पहिरे लाल पनहियाँ[2]।

ख. धनुहीं-बान लए कर डोलत।
चारौं बीर संग इक सोभित, बचन मनोहर बोलत।
लछिमन-भरत-सत्रुहन सुंदर राजिवलोचन राम[3]।

श्रीराम आदि के भोजन का जो अतिरिक्त वर्णन 'सारावली'-कार ने किया है, वह बहुत सामान्य है और कहीं-कही तो उस पर सूरदास द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण की बाल-लीला की स्पष्ट छाप है, जैसे 'सारावली' की निम्नलिखित पंक्तियो का प्रसंग—

दसरथ राम न्हाय भोजन को बैठे अपने धाम।
लावौ बेगि राम-लछमन कौं, सुनि आए सुखधाम।
बैठे संग बाबा के चारौं भैया जेबन लागे।
दसरथ राम आपु जेंवत है, अति आनँद अनुरागे।
लघु लघु कौर राम-मुख मेलत, आपु पिता मुख मेलत।
बाल-केलि कौ बिसद परम-सुख सुख-समुद्र नृप झेलत[4]।

'सूरसागर' के नीचे दिये पदांशों से मिलता-जुलता ही है—

क. नंद बुलावत हैं गोपाल।
आवहु बेगि बलैया लेउँ हौं, सुन्दर नैन बिसाल।
परस्यौ थाल धरयौ मग जोवत, बोलति बचन रसाल[5]।

१. 'सूरसागर', पद ९-१८।
२. वही, पद ९-१९।
३. वही, पद ९-२०।
४. 'सारावली', छंद १८४ से १८६।
५. 'सूरसागर' पद १०-२२३।

ख. जेवत कान्ह नंद इकठौरे।
कछुक खात लपटात दोउ कर बालकेलि अति भोरे।
बरो कौर मेलत मुख भीतर···· ···· ···· ···[१]।

ग. न्हात नंद सुधि करी स्याम की, ल्यावहु बोलि कान्ह-बलराम।
मेरैं संग आइ दोउ बैठें, उन बिनु, भोजन कौनै काम[२]।

घ. सुनतहिं टेर, दौरि तहँ आए, कब के निकसे बाल।
जेवत नहीं नंद तुम्हरे बिनु, बेगि चलहु गोपाल[३]।

ङ. जेवत स्याम नंद की कनियाँ।
···· ···· ·· ··
आपुन खात नंद-मुख नावत, सो छबि कहत न बनियाँ[४]।

'सारावली' का 'आचमन'-वर्णन भी 'सूरसागर' के इसी प्रसंग के अनेक पदों मे आया है।

'सूरसागर' से जो मुख्य अंतर 'सारावली' के उक्त छंदों में हैं, वह है श्रीराम का शृंगार-वर्णन जो इसके रचयिता ने बड़े विस्तार से किया है। कितने आश्चर्य की बात है कि 'सूरसागर' के कवि ने प्राय: ऐसा ही वर्णन श्रीकृष्ण और राधा के शृंगार का किया है! अतएव यहाँ 'सारावली' के एक एक छंद को लेकर 'सूरसागर' की तद्विषयक पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही है—

१. चित्र-बिचित्र सीस चौतनिया—सारा.[५]।

१.क. सिर लाल चौतनी—सागर[६]।

ख. सिर चौतनी—सागर[७]।

ग. सोभित सीस लाल चौतनियाँ—सागर[८]।

१. 'सूरसागर', पद १०-२२४।
२. वही, पद १०-२३५।
३. वही, पद १०-२३६।
४. वही, पद १०-२३८।
५. 'सारावली', छंद १७२।
६. 'सूरसागर', पद १०-८६।
७. वही, पद १०-९४।
८. वही, पद १०-१०६।

घ. कुलही चित्र - बिचित्र झगूली—सागर[1] ।

ङ. सीस कुलहिया चौतनियाँ[2] ।

२. अलकावलि-मुक्तावलि गूँथी, डोर सुरग बिराजै ।
मानो सुरसरि धार सरस्वती जमुना मध्य बिराजै—सारा.[3] ।

२.क. स्याम अलकनि सुबीच मोती-दुति मंगा ।
मानहु झलमलात संभु के सीस गंगा - सागर[4] ।

ख. मनु सरसुति गंगा जमुना मिलि आस्नम कीन्हौ आइ—सागर[5] ।

ग. मनौ एक संग गंग-जमुन नभ—सागर[6] ।

'सारावली'-कार ने उक्त छंद में श्रीराम की अलकावली में मुक्तावली गुँथी होने की बात कही है। 'सूरसागर' मे श्रीकृष्ण के शृंगार-वर्णन मे कदाचित् कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं आया है, हॉ, राधा और उसकी सखियो के शृंगार में अवश्य मुक्तावली से मॉग भरी जाने का उल्लेख मिलता है। उक्त २क. का उदाहरण भी राधा के शृंगार-वर्णन से ही है जिसके मूल उल्लेख को अपना कर और २ख. तथा ग जैसे उदाहरणों से प्रेरणा पाकर श्रीराम की अलकावली का भी मुक्तावली-युक्त वर्णन 'सारावली'-कार ने कर दिया है । आगे ऐसे दो-तीन उदाहरण और भी मिलेंगे जिनमें 'सूरसागर' की राधा का शृंगार 'सारवली' के राम का शृंगार बना दिया गया है। किस स्वतंत्र सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिए 'सारावली' ने ऐसा अद्भुत प्रयत्न किया है, इसका उद्घाटन उसके समर्थक ही कर सकते हैं। अब पुन: राम का शृंगार देखिए—

३. तिलक भाल पर परम मनोहर गोरोचन कौ दीनो ।
मानौं तीन लोक की सोभा अधिक उदै सो कीनो—सारा.[7] ।

१. 'सूरसागर', पद १०-११७ ।
२. वही, पद १०-१३२ ।
३. 'सारावली', छंद १७३ ।
४. 'सूरसागर', पद १०-१०७६ ।
५. वही, पद १०-१८१३ ।
६. वही, पद १०-१८१४ ।
७. 'सारावली', छंद १७४ ।

३.क. चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए—सागर[1]

ख. तिलक गोरोचन—सागर[2]।

ग. रुचिर चारु कमनीय भाल पर, कुंकुम तिलक दिए।
मानहुँ अखिल भुवन की सोभा राजति उदय किए—सागर[3]।

यहाँ जान पड़ता है कि 'सूरसागर' के उक्त प्रथम दो उदाहरणों से 'सारावली'-कार को वर्णन की प्रेरणा मिली है और तृतीय का भाव ही नहीं, शब्द तक अपहरण करके उसने अपने विशिष्ट 'स्वतंत्र सिद्धांत' का प्रतिपादन किया है!

४. खंजन नैन बीच नासा-पुट राजत यह अनुहार।
खंजन जुग मनौ लरत लराई, कीर बुझावत रार—सारा.[4]।

४.क. सजल लोचन चारु नासा परम रुचिर बनाइ।
जुगल खंजन करत अबिनति, बीच कियौ बनराइ—सागर[5]।

ख. चपल नैन बिच चारु नासिका इकटक दृष्टि रही तहँ लाई।
मानहुँ खंजन बिच सुक बैठ्यौ.... ... . . सागर[6]।

ग. सुभग मुख पर चारु लोचन नासिका इहि भाँति।
मनौ खंजन बीच सुक मिलि, बैठे हैं इक पाँति—सागर[7]।

'सारावली' का उक्त छंद स्पष्ट ही 'सूरसागर' के तीनो उदाहरणों के भाव और शब्द लेकर रचा गया है जिसमे कवि ने प्रथम चरण मे 'खंजन-नैन' देकर, और यों काव्य-कला का गला घोटकर, संभवत किसी 'स्वतंत्र सिद्धांत' का प्रतिपादन किया है!

५. नासा के बेसर मै मोती बरन बिराजत चार।
मनौ जीब-सनि-सुक्र एक ह्वै बाढे रवि के द्वार—सारा.[8]।

१. 'सूरसागर', पद १०-६६।
२. वही, पद १०-१०३।
३. वही, पद १०-१८२१।
४. 'सारावली', छंद १७५।
५. 'सूरसागर', पद १०-२२५।
६. वही, पद १०-१८१०।
७. वही, पद १०-१८१६।
८. 'सारावली', छंद १७६।

५.क. नासा लटकत मोती—सागर[१]।

ख. बेसरि के मुक्ता मैं झाईं बरन बिराजत चारि।
मानौ सुरगुरु सुक्र भौम सनि चमकत चंद मँझारि—सागर[२]।

'सूरसागर' के दूसरे उदाहरण को 'सारावली'-कार ने कुछ बिगाड़ कर ही उक्त छंद मे दिया है और शब्दों का अपहरण तो देखने योग्य है ही। मजे की बात यह है कि 'सूरसागर' का दूसरा उदाहरण राधा के शृंगार वर्णन का है, जिमे 'सारावली'-कार ने राम-शृंगार-वर्णन का अंग बनाकर कोई 'स्वतंत्र सिद्धांत' सूचित किया है। ऐसे उदाहरण किसी 'मंदमति' के हो सकते हैं या 'प्रबीन' के, इसका निर्णय उसकी प्रामाणिकता को पोषक ही स्वयं कर लें।

६. कुंडल ललित कपोल बिराजत, झलकत आभा गंड।
इंदीवर पर मनौ देखियय रवि की किरन प्रचंड—सारा.[३]।

६.क. कुंडल लोल कपोल बिराजत—सागर.[४]।

ख. कुंडल लोल कपोलनि झलकत—सागर.[५]।

ग. चलित कुंडल गंड मंडल झलक ललित कपोल—सागर.[६]।

घ. सीस मुकुट मकराकृत कुडल, झलकत बिबिध कपोलनि भाँति।
मनहुँ जलद-जुग-पास जुगल रवि, तापर इंद्रधनुष की काँति—सागर[७]।

ङ. स्रवन कुंडल गंडमडल उदित ज्यौं रवि भोर—सागर.[८]।

च. देखि री देखि कुंडल लोल।
चारु स्रवननि ग्रहन कीन्हे झलक ललित कपोल—सागर[९]।

१. 'सूरसागर', पद १०-१३९।
२. वही, पद, १०-२११८।
३. 'सारावली', छंद १७७।
४. 'सूरसागर', पद १०-१२४।
५. वही, पद १०-१३७।
६. वही, पद १०-६२७।
७. वही, पद १०-१२१५।
८. वही, पद १०-१३८१।
९. वही, पद १०-१८१५।

शृंगार-वर्णन का है जिसमें का 'चिबुक'-वर्णन-सिद्धांत 'सारावली'-कार को इतना प्रिय लगा है कि उसने अपने छंद मे उसका भी समावेश करके राम-शृंगार-वर्णन को स्वतंत्र (!) और पूर्ण (!) कर दिया है।

८. कंठसिरी बिच्र पदिक बिराजत, बहु मनि-मुक्ता-हार।
दाहिनाबर्त देत ध्रुव तारे, सकल नखत बहु बार—सारा०[1]।

८ क. पहुँची करनि, पदिक उर हरि-नख—सागर[2]।

ख कंठ सिरी उर पदिक बिराजत गजमोतिनि के हार।
दहिनाबर्त देति मनु ध्रुव कौ मिलि नछत्र की मार—सागर[3]।

'सूरसागर' का दूसरा उदाहरण ही 'सारावली'-कार के 'स्वतंत्र सिद्धांत' के अनुसार उसकी रचना का छंद बन गया है और रोचक बात यह है कि 'सूरसागर' का पद राधा-शृंगार-वर्णन का है जो 'सारावली' में राम-शृंगार-वर्णन का अंग बन गया है। ऐसो प्रसंगो मे कवि की 'प्रवीनता' क्या अनुपमेय नहीं है ?

९. रतन जटित कंकन-बाजूबँद नगन मुद्रिका सोहै।
डार-डार मनु मदन बिटपतरु, देखि देखि मन मोहै—सारा०[4]।

× × ×

रतन-जटित गजरा बाजूबँद सोभा भुजनि अपार।
फूँदा सुभग फूल फूले मनु मदन-बिटप की डार—सागर[5]।

'सूरसागर' का उक्त उदाहरण भी राधा शृंगार-वर्णन का है जिसे कितनी 'प्रवीणता' से 'सारावली'-कार ने राम-शृंगार-वर्णन के अनुकूल बना लिया है, देखते ही बनता है! दूसरी बात यह कि 'सूरसागर' के उक्त पदांश में बाजूबँद के फुँदने के लिए कवि की उत्प्रेक्षा है, मानों मदन बिटप की डाल पर सुंदर फूल फूले हो। उधर 'सारावली' का रचयिता फुँदने के फूल का उल्लेख न करके केवल मदन-बिटप की डाल पकड़े ही रह जाता है, फूल तक न वह पहुँचता है, न उसकी दृष्टि ही पहुँचती है।

१. 'सारावली', छंद १७९।
२. 'सूरसागर', पद १०-१०६।
३. वही, पद १०-२६१०।
४. 'सारावली', छंद १८०।
५. 'सूरसागर', पद १०-२६१०।

१०. कटि किंकिनि रुनझुन सुनि तन की हंस करत किलकारी।
नूपुर धुनि पग लाल पन्हैया, उपमा कौन बिचारी—सारा०[1]।

१० क. नूपुर-कलरव मनु हंसनि-सुत रचे नीड—सागर[2]।
ख चरन रनित नूपुर-धुनि मानौ बिहरत बाल मराल—सागर[3]।
ग. रुनुक झुनुक नूपुर पग बाजत धुनि अति ही मनहरनी—सागर[4]।
घ. चलत मग पग बजति पैजनि परसपर किलकाति।
मनौ मधुर मराल-छौना बोलि बैन सिहात—सागर[5]।
ङ. चलत गति कटि कुनित किंकिनि, घूँघरू झनकार।
मनौ हंस रसाल बानी अरस-परस बिहार—सागर[6]।
च. रतन-जटित पग सुभग पाँवरी, नूपुर परम रसाल।
मानहुँ चरन-कमल-दल-लोभी बैठे बाल मराल—सागर[7]।

'सारावली' के छंद की सभी बातें 'सूरसागर' के उक्त उदाहरणों मे अनेक बार कही गयी हैं। सूरदास ने जहाँ अनेक स्थलो पर स्वर की सुकुमारता का ध्यान करके 'छौना' या 'बाल' मराल या हंस का बोलना कहा है, वहाँ 'सारावली' कार को 'हंस' की 'किलकारी' सुनायी पड़ती है जिससे कदाचित् उसके कान खड़े हो गये होंगे!

'सूरसागर' के ऊपर दिये गये उदाहरण सामान्य रूप से चुने गये हैं, विशेष छान-बीन करने पर और भी उदाहरण मिल सकते थे, परंतु 'सरसठ वर्षीय' 'सारावली'-कार की 'प्रवीणता' का प्रमाण देने के लिए इतने ही उद्धरण देना पर्याप्त जान पड़ता है। उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'सरावली'-कार ने श्रीराम का जो शृंगार-वर्णन किया है, वह वस्त्र, आभूषण और नखशिख-अंकन, तीनों दृष्टियों से सर्वथा अपूर्ण है। उस पर

१. 'सारावली', छंद १८१।
२. 'सूरसामर', पद १०-१०४।
३. वही, पद १०-११४।
४. वही, पद १०-१२३।
५. वही, पद १०-१४८।
६. वही, पद १०-१०५६।
७. वही, पद १०-१७६१।

भी 'सारावली' के वर्णन में कदाचित् कोई भी ऐसी बात नहीं कही गयी है जो 'सूरसागर' मे श्रीकृष्ण के शृंगार-वर्णन में न कह दी गयी हो। सबसे मनोरंजक बात तो यह है कि 'सारावली'-कार ने श्रीराम के शृंगार में कुछ बातें, जिनकी ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है, ऐसी लिख दी हैं जो उन्हीं शब्दो मे 'सूरसागर'-कार ने राधा के शृंगार-वर्णन में दी है। 'सारावली'-कार की 'मतिमंदता' का इसमे अधिक पुष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है? गनीमत इतनी है कि स्वयं कवि अपनी इस 'योग्यता' से परिचित है और स्पष्टतया उसकी घोषणा करने मे भी संकोच नहीं करता। 'सारावली'-कार ने 'सूरसागर' के रचयिता के भाव ही नही, शब्दो और वाक्यो तक का अपहरण करके किस स्वतंत्रता और सिद्धांत-विशेष का परिचय दिया है—इसकी छानबीन का दायित्व उन्ही विद्वानों को सौप देना हमे उचित प्रतीत होता है जो उसको स्वतंत्र सैद्धांतिक रचना मानते हैं।

'सारावली' के एक सौ अट्ठानबे से दो सौ पॉच संख्यक छंदों तक विश्वामित्र के यज्ञ की श्रीराम द्वारा रक्षा की कथा कही गयी है—

बिस्वामित्र बडे मुनि कहियत जज्ञ करत निज धाम।
मारिच और सुबाहु महासुर बिघन करत दिन जाम ॥
परब्रह्म अवतार जानिकै आये नृप के पास।
दसरथ राय बहुत पूजा बिधि किन्हीं प्रसन्न हुलास ॥
भोजन कर जबही जु बिराजे तब भाष्यो मुनिराय।
जज्ञ सुफल कीजै मेरौ अब दीजै राम पठाय ॥
तब नृप कह्यो राम है बालक मोको आज्ञा कीजै।
तब द्विज कह्यो राम परमेस्वर बचन मान यह लीजै ॥
गुरु बसिष्ठ सब बिधि समुझाये राम लखन सँग दीन्हे।
मारग मे अहिल्या उधारी नावक निज पद छीने ॥
बिस्वामित्र सिखाई बहुबिधि बिद्या धनुष प्रकार।
मारग म ताड़का जु आई धाई बदन पसार ॥
छिन मे राम तुरत सो मारी नेक न लागी बार।
दीन्ही मुक्ति जानि निज महिमा आये रिषि के द्वार ॥
कीन्हे बिप्र जज्ञ परिपूरन असुर बिघ्न को आये।
अग्नि बान कर दहन कियो है एक समुद्र पठाये[1] ॥

१. 'सारावली', छंद १९८ से २०५।

यह सारा प्रसंग बहुत सामान्य है और बड़े चलताऊ ढंग से वर्णित । 'सूरसागर' मे इस प्रसंग के प्रमुख उल्लेख इस प्रकार मिलते हैं—

क. दसरथ सौ रिषि आनि कह्यौ ।
असुरनि सौं जग होन न पावत, राम-लषन तब संग दयौ ।
मरि ताड़का, जज्ञ करायौ, बिस्वामित्र अनंद भयौ[1] ।

ख. गंगा-तट आए श्रीराम ।
तहॉं पषान रूप पग परसे गौतम रिषि की बाम ।
गई अकास देव तन धरिकै, अति सुंदर अभिराम[2] ।

'सारावली' के दो सौ छह से अट्ठाइस तक के छंदों मे 'धनुष-भंग' प्रसंग वर्णित है जो बहुत साधारण है और सामान्य कथा-प्रवचनो पर आधारित है । उसमे केवल एक प्रसंग महत्व का है—सीता की चिंता, जो तीन छंदो मे वर्णित है—

सीता कहत सहेलिन सौं पुनि, यही कहत रघुनंद ।
तब उन कह्यौ, सकल सुखसागर, सो ये परमानंद ।
बारंबार जिय सोच करत है, बिधि सौं बचन उचारी ।
मन-क्रम-बचन यहै बर दीजो, मॉगत गोद पसारी ।
एक बार सुरदेवी पूजन, भयौ दरस सखि मोहि ।
ता दिन तैं छिन कल न परत है, सत्य कहत हौ तोहि[3] ।

जरा स्वतंत्र सैद्धांतिक रचना की इस सीता के अद्भुत दर्शन कर लीजिए । पहली पंक्ति में वे सखियो से पूछती हैं—क्या रघुनंद यहीं हैं ? उनके प्रश्न का तात्पर्य हुआ कि मैंने उनकी कीर्ति सुनी है, दर्शन नहीं किये हैं । जब सखियो ने स्वीकारात्मक उत्तर दिया, तब वे विधि से 'गोद पसार' कर उनको वर-रूप मे मॉगने लगीं । यहॉं तक तो किसी प्रकार निभ गया, इसके पश्चात् ही उन्हें 'एक बार' की याद आ गयी, जैसे वह 'एक बार' की बात इतना पहले घटी हो कि न सीता जी को स्वयंवर के आरंभ मे याद आयी, न सभा मे आने पर याद आयी और न 'रघुबर' का परिचय पूछते समय ही वह याद आयी । अंत मे जब 'वर' की याचना करते-करते उनको उसका स्मरण ही हो आया, तब उन्होने

१. 'सूरसागर', पद ६-२१ ।
२. वही, पद ६-२२ ।
३. 'सारावली', छंद २१६ से २१ ।

न उस बात को मन मे रखने की आवश्यकता समझी और न किसी अंतरंग सखी से उसका संकेत करने की, बस वह अपना हृदय खोलकर रख देती हैं—एक बार मुझे इनका 'दरस' हुआ था (अर्थात् मैं अब तक इन्हें पहचान नहीं पायी थी, परंतु जब तुम लोग कहती हो कि 'रघुबर' यही हैं, तब इन्हीं का दर्शन हुआ होगा), उस दिन से (जिसको बीते न जाने कितने दिन हो गये है, यद्यपि 'सारावली'-कार ने उस दिन का कही उल्लेख नही किया है, न राम फुलवारी मे जाते है, न सीता नगर में घूमती हैं, न सीता के देवी पूजने जाने की चर्चा को गयी है, लेकिन जब सीता जी स्वयं उनके दर्शन करने की बात कह रही है, तब उनकी बात सत्य मानने क साथ-साथ यह अनुमान कर लेना होगा कि किसी 'स्वतंत्र सिद्धांत की रक्षा करने के लिए कवि ने उस प्रसंग का उल्लेख न किया होगा) मुझे क्षण भर भी कल नही पड़ती। यह बात सीता जी ने हँसी में नही कही है, इसी से उस सखी को, जो शायद उनकी बात को हँसी समझ रही थी, क्योंकि विकलता का कोई चिह्न उसको विदेहकुमारी में दिखायी नही पड़ा था, विश्वास दिलाने के लिए उन्हें कहना पड़ता है—'सत्य कहत हौं तोहिं'। कैसा सटीक और 'सिद्धांत'-युक्त चरित्र-चित्रण है ! अब 'सूरसागर' मे वर्णित यही प्रसंग देखिए—

क. चितै रघुनाथ-बदन की ओर।
रघुपति सौं अब नेम हमारौ, बिधि सौं करति निहोर।
यह अति दुसह दिनाक पिता-प्रन राघव-बयस किसोर।
इन पै दीरघ धनुष चढै क्यौं, सखि, यह संसय मोर[1]।

ख तात-कठिन प्रन जानि जानकी, आनति नहि उर धीर[2]।

'सारावली' की सीता का ध्यान 'धनुष और पिता-प्रन' की कठोरता की ओर नहीं जाता, क्योंकि वह सखी को अपनी विकलता का विश्वास पहले करा देना चाहती है, अथवा संभव है, इसका कारण यह हो कि वह रघुबर के परब्रह्मत्व से परिचित होने के कारण सिद्धांतत: उसका उल्लेख न करना चाहती हो।

अन्य क्षत्रियो द्वारा धनुष न टूटने पर जनक का क्रोध और लक्ष्मण

१. 'सूरसागर', पद ६-२३।
२. वही, पद ६-२६।

का वीरोचित उत्तर 'सूरसागर' में नहीं है। परंतु धनुष टूटने की जिस बात को 'सारावली'-कार ने एक पंक्ति में ही समाप्त कर दिया है—

डारयो तोर, अघात सब्द भयो, जैसे काल कौ रूप[1]।

उसका कितना सुंदर और प्रसंगानुकूल वर्णन 'सूरसागर' मे है, पढ़ते ही बनता है—

करुनामय जब चाप लियौ कर बाँधि सुदृढ कटि-चीर।
भूभृत सीस नमित जो गर्ब गत, पावक सींच्यौ नीर।
डोलत महि अधीर भयौ फनिपति, कूरम अति अकुलान।
दिग्गज चलित, खलित मुनि आसन, इंद्रादिक भय मान।
रवि मग तज्यौ, तरकि ताके हय, उत्पथ लागे जान।
सिव बिरंचि ब्याकुल भए धुनि सुनि ,जब तोऱ्यौ भगवान।
भंजन-सब्द प्रगट अति अद्‌भुत, अष्ट दिसा नभ पूरि।
स्रवन-हीन सुनि भए अष्टकुल नाग गरब भयचूरि।
इष्ट-सुरनि बोलत नर तिहि सुनि, दानव, सुर बड सूर।
मोहित बिकल जानि जिय सबहीं, महा प्रलय कौ मूर[2]।

धनुष-भंग के अंत मे 'सारावली'-कार ने परशुराम के आगमन का भी वर्णन किया है—

सब ही दिसा भई अति आतुर, परसुराम सुनि पायौ।
परसु सम्हार, सिष्य सँग लैके, छिन ही मै तहाँ आयौ[3]।

परंतु उन्होने आकर किया क्या, इसका कुछ उल्लेख नहीं है। शायद 'सारावली'-कार को उक्त छंद लिखने के बाद याद आ गया हो कि 'वाल्मीकि' जी ने तो परशुराम से राम की भेंट विवाह करके लौटने पर करायी थी, मेरे ग्रंथ मे यह पहले क्यो चले आये? अच्छा, अब आ ही गये हैं, तो कम से कम 'सिद्धांत' की रक्षा के ही लिए, इन्हें जनक-परिवार के 'हरष' मे बाधक मत बनाओ और न इनसे लौटने ही को कहो। ये भी कुछ देर या दिन मौन दर्शक ही बने रहें तो क्या हर्ज है? राम को तो ये आगे चलकर समझ ही लेंगे!

१. 'सारावली', छंद २२६।
२. 'सूरसागर', पद ६-२६।
३. 'सारावली', छंद २२७।

'सारावली' के दो सौ उन्तीस से पैंतीस तक के छंदों में राम-सीता-विवाह इस प्रकार वर्णित है—

जनकराज तब बिप्र पठाये बेग बरात बुलाई।
दसरथराज बाजि गज लैकै सबही सौज तुराई॥
चली बरात बिपुल धन लैकै जुरे मनुज नहि पार।
सोभा सिंधु करत नहि आवै बर्नन करत उचार॥
गुरु बसिष्ठ मुनि लग्न कियो सुभ सुभ नछत्र सुभ बार।
आये जान नृपति सनमाने कीन्हीं अति मनुहार॥
ब्याह-केलि सुख बर्नन कीन्हो मुनि बाल्मीकि अपार।
सो सुख सूर कह्यो वह कीरति जगत करी बिस्तार॥
बेद सास्त्र मथि करी ब्याह बिधि सोइ कीन्हीं नृपराय।
राम लखन अरु भरत सत्रुहन चारो दिये बिहाय॥
होम हवन द्विज पूजा गनपति सूरज सक्र महेस।
दीन्हो दान बहुत बिप्रनि को राजा मिथिल नरेस॥
उत्सव भयो परम आनँद को बहुत दायजो दीन्हो।
भये बिदा दसरथ नृप नृप सो गमन अवधपुर कीन्हों[1]॥

यह प्रसंग 'सूरसागर' में इस प्रकार मिलता है—

क. महाराज दसरथ तहँ आए।
बैठे जाइ जनक-मंदिर महँ, मोतिनि चौक पुराए।
बिप्र लगे धुनि बेद उचारन, जुवतिनि मंगल गाए।
सुर-गँधर्व-गन कोटिक आए, गगन बिमाननि छाए।
राम-लषन अरु भरत-सत्रुहन ब्याह निरखि सुख पाए।
सूर भयौ आनंद नृपति-मन, दिवि दुन्दुभी बधाए[2]।

ख. दसरथ चले अवध आनंदत।
जनकराज बहु दाइज दै करि बार-बार पद बंदत।
तनया जामातनि कौं समदत नैन नीर भरि आए।
सूरदास दसरथ आनंदित चले निसान बजाए[3]।

१. 'सारावली', छंद २२६ से ३५।
२. 'सूरसागर', पद ६-२४।
३. वही, पद ६-२७।

'सूरसागर' के दूसरे उदाहरण के द्वितीय चरण मे जनकराज-द्वारा 'बार-बार पद-बंदत' कहकर और तृतीय चरण मे उनके 'नैन नीर भरि आए' का उल्लेख करके, भरतीय परिवार मे पुत्री के विवाहोत्सव पर, हिंदू पिता के जिस हृदय का मार्मिक चित्रण किया गया है, उसकी आशा 'सारावली'-कार से की ही नहीं जा सकती, क्योकि वह 'स्वतंत्र सैद्धांतिक' रचना मे दत्तचित्त है जिसमें हृदय-पक्ष के लिए संभवत: किंचित भी स्थान नहीं है । इसी प्रसंग मे 'सारावली'-कार ने लिखा है—

सोभा-सिधु कहत नहि आवै[1] ।

यह चरण क्या पाठक को सूरदास की निम्नलिखित पंक्ति का स्मरण नहीं कराता—

सोभा-सिधु न अंत रही री[2] ।

'सारावली' के आगे के तीन छंदो मे राम-परशुराम-संवाद है जिसमें इक्कीस बार क्षत्रियो का वध करनेवाला वह तेजस्वी ब्राह्मण कठपुतली-जैसा व्यवहार इस प्रकार करता है—

तब मुनि कह्यौ धनुष क्यौ तोरयौ, रुद्र परम गुरु मेरे ।
रामचंद पूरन पुरुषोत्तम, नैक नैन जब हेरे ।
लीन्हौं अंस खैच भृगुपति कौ, अपने रूप समायौ ।
करौ जाय तप सैल महेद्र पै, सुनि मुनिबर सिर नायौ[3] ।

अब जरा 'सूरसागर' के परशुराम के तेजस्वी व्यक्तित्व का दर्शन कीजिए—

परसुराम तेहि औसर आए ।
कठिन पिनाक कहौ किन तोरचौ, क्रोधित बचन सुनाए ।
बिप्र जानि रघुबीर धीर दोउ, हाथ जोरि, सिर नायौ ।
बहुत दिननि कौ हुतौ पुरातन हाथ छुअत उठि आयौ
तुम तौ द्विज, कुल-पूज्य हमारे, हम तुम कौन लराई ?
क्रोधवंत कछु सुन्यौ नही, लियौ सायक धनुष चढाई ।
तबहू रघुपति क्रोध न कीन्हौ, धनुष न बान सँभारयौ ।
सूरदास प्रभु-रूप समुझि, बन परसुराम पग धारचौ[4] ।

१. 'सारावली', छंद २३० ।
२. 'सूरसागर', पद १०-२६ ।
३. 'सारावली', छंद २३७-३८ ।
४. 'सूरसागर', पद ६-२८ ।

'सारावली' के आगे के दो छंदों मे पुत्रो के साथ दशरथ का अवधपुरी में प्रवेश वर्णित है—

अति आनंद अजोध्या आये कियो नगर सृंगार।
कदली खंभ चौक मोतिनि के बाँधी बंदनवार॥
कियो प्रबेस राजभवननि मे रामचंद्र सुखरास।
अदभुत भवन बिराजत रतननि सूरज कोटि प्रकास[1]॥

जिस पर 'सूरसागर' के निम्नलिखित पद की छाया है—

अवधपुर आए दसरथ राइ।
राम लषन अरु भरत, सत्रुहन, सोभित चारौ भाइ।
घुरत निसान, मृदंग-संख-धुनि, भेरि-झाँझ-सहनाइ।
उमँगे लोग नगर के निरखत, अति सुख सबहिनि पाइ।
कौसिल्या आदिक महतारी, आरति करहि बनाइ।
यह सुख निरखि मुदित सुर-नर-मुनि, सूरदास बलि जाइ[2]।

'सारावली' के दो सौ बयालिस-तेंतालिस संख्यक छंदों में 'वनवास-प्रसंग' वर्णित है—

बचन समुझि नृप आज्ञा कीन्हीं देव उपाय करो।
रामचद्र पितु आज्ञा मानी जिय मे बचन धरो॥
यह भू भार उतारन रघुपति बहुत रिषिनि सुख देन।
बनोबास को चले सिया सँग सुखनिधि राजिवनैन[3]॥

उक्त छंदों की प्राणहीनता कितनी दयनीय है! दशरथ, कैकेयी, कौशल्या, सीता, लक्ष्मण, राम, किसी के भी चरित्र का पता 'सारावली'-कार को है ही नहीं; इसी से वह किसी के भी हृदय का चित्रण न करके न जाने किस स्वतंत्र सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। उसकी समदर्शी (!) दृष्टि में राम को वनवास देकर न कैकेयी निष्ठुरता दिखाती है, न उसके लिए दशरथ को घोर संताप या पश्चाताप होता है, न कौशल्या को किसी प्रकार का दुख होता है, न सीता को वन चलने के लिए पति से आग्रह

१. 'सारावली', छंद २३९-४०।
२. 'सूरसागर', पद ९-२९।
३. 'सारावली', छंद २४२-४३।

करना पड़ता है, न राम को उन्हें समझाना पड़ता है, न लक्ष्मण को उनका साथ देने के लिए हठ करना पड़ता है और न अंतर्यामी राम को उनकी प्रीति का स्मरण करके उनकी बात मानने के लिए विवश ही होना पड़ता है। इस प्रसंग को लेकर लिखे गये जो नौ-दस मार्मिक पद 'सूरसागर' में है[1] उनको उद्धृत करना भी निरर्थक है।

'सारावली' के आगे के चार छंदों में श्री राम वाल्मीकि को दर्शन देकर चित्रकूट पहुँच जाते हैं—

मारग मे हरि कृपा करी है परम भक्त इक जान।
तहँ ते गये जु चित्रकूट को जहाँ मुनिन की खान॥
बाल्मीकि मुनि बसत निरंतर राम मंत्र उच्चार।
ताको फल यह आज भयो मोहिं दर्सन दियो कुमार॥
पूजा कर पधराय भवन मे रामचंद्र परनाम।
कियो बिबिध बिध पूजा करिकै रिषि चरननि सिर नाम॥
बहुत दिवस लौं बसे जगतगुरु चित्रकूट निज धाम।
किये सनाथ बहुत मुनि कुल को बहु बिधि पूरे काम[2]॥

अवधपुरी की सीमा के बाद गंगा पार जाने के प्रश्न को लेकर जो राम-केवट-संवाद सभी भक्त कवियों के साथ सूरदास के भी[3] प्रियतम विषयों मे एक रहा है, उसको लेकर 'सारावली'-कार एक शब्द तक नहीं लिखता। इसी प्रकार राम और लक्ष्मण-जैसे सुकुमारों को सीता-जैसी सुकुमारी के साथ वन में घूमते देख ग्रामवासियों के मन मे जो निर्मल सहानुभूति उमड़ती है और जिसको लेकर सूरदास ने तीन मार्मिक पद लिखे हैं[4], वह यदि 'मंदमति दुरबल बाल कवि का हृदय स्पर्श नहीं कर सकी तो आश्चर्य की क्या बात है!

'सूरसागर' में इसके पश्चात् दशरथ-तनु त्याग,[5] कौशल्या-विलाप

१. 'सूरसागर', पद ९-३० से ९-३९ तक।
२. 'सारावली', छंद २४४-४७।
३. 'सूरसागर', पद ९-४० से ९-४२ तक।
४. वही, पद ९-४३ से ९-४५ तक।
५ वही, पद ९-४६।

और भारत-आगमन[१], माता के प्रति भरत-वचन[२], महाराज दशरथ की अंत्येष्ठि[३] आदि मार्मिक प्रसंग वर्णित हैं जिनको देने की आवश्यकता 'सारावली'-कार नही समझता। उसके 'कोसलपुर-वासी' तो 'बिन दसरथ' के ही चित्रकूट पहुँचकर रामचंद-मुख देखते हैं और सबकी उदासी मिट जाती है—

बिन दसरथ सब चले तुरत ही कौसलपुर के बासी।
आए, रामचंद्र मुख देख्यौ, सबकी मिटी उदासी[४]।

'सारावली'-कार का आगे का उल्लेख कितना 'मंदमति-युक्त' है, कहने की आवश्यकता नही जान पड़ती—

रामचंद्र पुनि सब जन देखे, पिता न देखन पाये।
पूछी बात, कह्यौ तब काहू, मन बहु बिधि बिलखाये[५]।

'सारावली' के अनुसार राम सबको देख आये, भरत-शत्रुहन से तो मिल ही चुके थे, माताओ से भी मिल लिये, गुरु और मंत्रियो से भी मिल लिये। किसी की वेश-भूषा या आकृति से उन्हें राजा दशरथ की मृत्यु की शंका तक नही हुई। चारो ओर उन्होने पिता को खोजा, जब इस पर भ उनका दर्शन न हुआ, तब उन्हें पिता के संबंध मे पूछना पड़ा जिसका उत्तर 'काहू' से पाकर उन्हें उनके मरण की बात ज्ञात हुई। कितनी स्वतंत्र और सैद्धांतिक बात 'सरसठ बरस प्रबीन' कवि को सूझी है! और इस सूचना का सीता और लक्ष्मण पर क्या प्रभाव पड़ा—इस संबंध मे भी 'सारावली'-कार मौन है। लक्ष्मण पर पड़नेवाले प्रभाव की तो बात पूछना भी अन्याय है, क्योकि जब से उसने वनवास-प्रसंग का वर्णन आरंभ किया है, अभी तक यह सूचना ही नही द है कि लक्ष्मण भी भाई और भावज के साथ आये हैं। यह सूचना तो आगे तीन छंदो के बाद मिलेगी जब कोसल-समाज अयोध्या लौट जायगा और राम दडकवन को चलने लगेंगे[६]। परंतु सीता के साथ आने की बात वह कह चुका है—

१ 'सूरसागर', पद ६-४७।
२. वही, पद ६-४८ और ६-४६।
३. वही, पद ६ ५०।
४. 'सारावली', छंद २४६।
५. वही, छंद २५०।
६. वही. छंद २५४।

बनोबास को चले सिया सँग सुखनिधि राजिबनैन[1] ।

कितने आश्चर्य की बात है कि श्वशुर के मरण के बात सुनकर 'सारावली' की सीता, दुख करना तो दूर की बात, सामने तक नहीं आती। अब जरा 'सूरसागर' के इस प्रसंग मे राम सीता की दशा देखिए—

भ्रात-मुख निरखि राम बिलखाने ।
मुंडित केस-सीस, बिहवल दोउ, उमँगि कंठ लपटाने ।
तात मरन सुनि स्रवन कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ ।
मोह मगन, लोचन जल धारा, बिपति न हृदय समाइ ।
लोटति धरनि परी सुनि सीता, समुझति नहि समुझाई ।
दारुन दुख दवारि ज्यौं तृन बन, नाहिन बुझति बुझाई ।
दुरलभ भयौ दरस दसरथ कौ, सो अपराध हमारे ।
सूरदास स्वामी करुनामय, नैन न जात उघारे[2] ।

सुधी आलोचको की तो बात दूर, काव्य मे जरा भी रुचि रखनेवाला व्यक्ति क्या उक्त पद को पढ़कर स्पष्टत: नही कह देगा कि 'सारावली' का वर्णन किसी भी दृष्टि से उसके रचयिता का हो ही नही सकता ? चित्रकूट में राम-भरत का संवाद 'सारावली' मे इस प्रकार वर्णित है—

गुरु बसिष्ठ मुनि कह्यो भरत सो राम ब्रह्म अवतार ।
बन मे जाय बहुत मुनि तारै दूर करै भुव भार ॥
पुनि निज बिस्वरूप जो अपनों सो हरि जान देखायो ।
आज्ञा पाय चले निज पुर को प्रभुहि गीत समुझायो[3] ॥

'सूरसागर' में वर्णित इस प्रसंग के सामने 'सारावली' का वर्णन कितना निष्प्राण है, इस बात को न उठा कर हम यह पूछना चाहते हैं कि श्रीराम की चरण-पादुका लेकर भरत के अयोध्या लौटने की जो बात भारत का बच्चा-बच्चा जानता है और जिसके संबंध में 'सूरसागर' मे भी लिखा गया है कि—

क. सूर स्वामि की पाँवरि सिर धरि भरत चले बिलखाइ[4] ।

१. 'सारावली', छंद २४३ ।
२. 'सूरसागर', पद ६-५२ ।
३. 'सारावली', छंद २५२-५३ ।
४. 'सूरसागर', पद ६-५३ ।

ख. सूरदास प्रभु दई पाँवरी अवधपुरी पग धारे[1] ।

और 'श्रीमद्भागवत' मे भी जिसका स्पष्ट उल्लेख है[2], उसको किस सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिए 'सारावली'-कार ने उड़ा दिया है ? श्रीराम द्वारा इस अवसर पर भरत को निज 'विश्वरूप' दिखाना 'सारावली'-कार की कैसी अद्भुत सूझ है !

'सारावली' के दो सौ छाछठवें छंद तक सूर्पणखा नासिका-पद, खर-दूषण-वध और सीताहरण की कथा है जिनमें से खर-दूषण के नाम तक उसमे नहीं आये हैं और सारा वर्णन निर्जीव तो है ही—

मारग में बहु मुनिजन तारे अरु बिराध रिपु मारे ।
बंदन कर सरभंग महामुनि अपने दोष निवारे ॥
दरसन दियो सुतीछन गौतम पंचबटी पग धारे ।
तहाँ दुष्ट सूपनखा नारी करि बिन नाक उधारे ॥
यह सुनि असुर प्रबल दल आये छिन मे राम सँहारे ।
कीन्हे काज सकल सुर मुनि के भुव के भार उतारे ॥
मुनि अगस्त्य आस्रम जु गये हरि बहुबिधि पूजा कीन्हीं ।
दिव्य बसन दीने जब मुनि ने फिर यह आज्ञा दीन्हीं ॥
दसकंधर को बेगि सँहारो दूर करो भुव भार ।
लोपामुद्रा दिव्य बस्त्र लै दीने जनककुमारि ॥
सूपनखा जब जाय पुकारी नाक कान लै हाथ ।
रावन क्रोध कियो अति भारी अधर फरक अति गात ॥
गयो मारीच आस्रमहि तबहीं वाने बहु समझायो ।
तब मारीच कह्यो दसकंधर बिनती बहुत करायो ॥
रामचंद्र अवतार कहत हैं सुनि नारद मुनि पास ।
प्रगट भये निसिचर मारन को सुनि वह भयो उदास ॥
कर गहि खड्ग तोर बध करिहौं सुनि मारिच डर मान्यो ।
रामचंद्र के हाथ मारूँगो परम पुरुष फल जान्यो[3] ॥

१. 'सूरसागर', पद ९५४ ।

२. पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ।
नन्दिग्रामात् स्वशिबिराद् गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
—'श्रीमद्भागवत', नवम स्कंध, अध्याय दस, श्लोक ३६ ।

३. 'सारावली', छंद २५५ से ६३ ।

कपट कुरंग रूप धरि आयो सीता बिनती कीन्हीं।
रामचंद्र कर सायक लैकै मारन की बिधि कन्हीं ॥
मारयो धनुष बान ले ताको लछमन नाम पुकारेउ।
लछमन नाम सुनत तहँ आये अवसर दुष्ट बिचारेउ ॥
धरिकै कपट भेष भिच्छुक को दसकंधर तहँ आयो।
हर लीन्हों छिन मे माया करि अपने रथ बैठायो[1] ॥

'सूरसागर' में उक्त कथाओ मे से अधिकांश है और सारी घटनाओ का पूर्ण और सटीक चित्र उनमें मिलता है। इसके विपरीत, 'सारावली' -कार इतना असावधान है कि उसने लक्ष्मण द्वारा खींची गयी रेखा तक का उल्लेख नहीं किया है जो 'सूरसागर' में तो है ही[2], सर्व-साधारण मे भी अत्यंत प्रसिद्ध है। श्रीराम मारीच को मार कर जब लौटते हैं, तब 'सारावली'-कार उनको 'माया-सीता' के दिखायी न देने की बात कहता है—

जब माया-सीता नहि देखी, मन में भये उदास[3]।

परंतु यह 'माया-सीता' कहाँ से उत्पन्न हो गयी थी, इसकी चर्चा करने का ध्यान उसे नहीं रहता, जबकि 'सूरसागर'-कार कहता है—

जनक-तनया धरी अगिनि मै, छाया-रूप बनाइ।
यह न कोऊ भेद जानै, बिना श्री रघुराई[4]।

उक्त पंक्ति मे एक और बात भी 'सारावली'-कार ने बड़ी विचित्र कही है—राम, माया सीता को न देखकर मन मे उदास भए। परब्रह्म का 'मन में उदास होना' कैसा सैद्धांतिक कथन है! तब ऊपर से राम प्रसन्न हुए या उदास, इसको कल्पना या अनुमान उस सैद्धांतिक रचना के पोषक ही कर लें, अस्तु।

सीता-हरण करते रावण को 'सारावली'-कार ने 'केहरि का भाग लेकर भागनेवाला गोमायु जंतु' कहा है—

चल्यौ भाजि गोमाय जंतु ज्यौं, लै केहरि कौ भाग[5]।

१. 'सारावली', छंद २६४-६६।
२. 'सूरसागर', पद ६-५६ और ६-६०।
३. 'सारावली', छंद २६८।
४. 'सूरसागर', पद ६-६०।
५. 'सारावली', छंद २६७।

'सूरसागर' मे यही बात रुक्मिणी-विवाह-प्रसंग में दो-तीन बार कही गयी है—

क. हरि-भख जंबुक पानिहि[१] ।

ख. नकत सृगाल सिह कौ भोजन[२] ।

ग. कृष्न सिह बलि धरी तुम्हारी, लैबे कौं जंबुक अकुलात[३] ।

घ. सूरजदास सिह बलि अपनौ लीन्हौ दलकि सृगालहि[४] ।

ङ. करनि सिह तुम्हरी धरी, कैसैं चपै सृगाल[५] ।

राम-कथा के अनेक मार्मिक प्रसंगो छोड़कर 'सारावली'-कार ने 'सुतीच्छन गौतम' 'मुनि अगस्त्य' आदि के आश्रमों में राम के जाने की बात अवश्य लिखी है जो 'सूरसागर' में नहीं है ।

सीता-हरण के पश्चात् राम-विलाप का मार्मिक प्रसंग कवियों ने लिखा है । 'सूरसागर' में भी इस प्रसंग के तीन अत्यंत मार्मिक पद हैं[६] । 'सारावली' कार ने एक पंक्ति मे ही यह प्रसंग समाप्त करके न जाने किस सिद्धांत का स्वतंत्र प्रतिपादन किया है—

जब माया सीता नहि देखी, जिय मै भये उदास ।
पूछन लगे राम द्रुम-गन सौं, बहुत बढी दुख-रास[७] ।

'सारावली' के आगे के दो छंदो में जटायु की कथा है जो अपनी करनी बखानता हुआ कहता है—राम ! मै तासूँ बहुत लड़ाई कीन[८] । 'सूरसागर' में यह प्रसंग भी अधिक विस्तार और पूर्णता से मिलता है[९] ।

'सारावली' के दो सौ बहत्तरवें छंद मे शबरी की सामान्य कथा है जिसके जूठे बेर खाने की बात भक्तो में ही नहीं, सर्वत्र प्रसिद्ध है और

१. 'सूरसागर', पद १०-४१६६ ।
२. वही, पद १०-४१७० ।
३. वही, पद १०-४१७१ ।
४. वही पद १०-४१८२ ।
५. वही पद १०-४१८८ ।
६. 'सूरसागर', पद ६-६२ से ६-६४ तक ।
७. 'सारावली', छंद २६८ ।
८. वही, छंद २६६ ।
९. 'सूरसागर', पद ६-६५ और ६-६६ ।

'सूरसागर' में भी कवि ने इसका उल्लेख किया है—

खाटे फल तजि, मीठे ल्याई। जूँठे भए सो सहज सुहाई।
अंतर्जामी अति हित मानि। भोजर कीने स्वाद बखान[1]।

इसके अनंतर राम-सुग्रीव-मिलन, बालि-बध, बानर-सैन्य-संगठन, सीता की खोज में बानर-दलो का प्रस्थान, संपाती-संवाद, हनुमान का सागर-लंघन और लंका - प्रवेश, बिभीषन से भेंट, अशोकवाटिका मे सीता-दर्शन, संदेश तथा मुद्रिका-प्रदान और सीता-संवाद, अशोकवाटिका-भंग, निशिचरो से युद्ध, इन्द्रजीत-हनुमान-युद्ध, रावण-हनुमान-संवाद, लंका-दहन, हनुमान की वापसी और राम के दर्शन करके उनसे सीता की कथा सुनाना आदि उन्नीस-बीस विषयों का वर्णन 'सारावली -कार ने केवल चौदह छंदों में कर दिया है—

रबिनंदन जब मिले राम को अरु भेंटे हनुमान।
अपनीं बात कही उन हरि सों बालि बड़ो बलवान ॥
सप्ताल बेधन हरि कीन्हों बालि छिनक में तारो।
दीन्हों राज राम रबिनंदन सब बिधि काज सँवारो ॥
सप्त द्वीप के कपि दल आये जुरी सेन अति भारी।
सीता की सुधि लेन चले कपि ढूँढत बिपिन मँझारी ॥
जलनिधि तीर गये सब कपि मिलि सुनि सँपाति की बानी।
लंक बसत सीता रिपु-बन मे सब बानर यह जानी ॥
राम चरन कर सुमिरन मन मे चले पवनसुत धाय।
राम प्रताप बिघ्न सब मेटे पैठे नगर सुख पाय ॥
धरि लघु रूप प्रबेस कियो कपि लंका नगर मँझार।
राम भक्त निज जान बिभीषन भेंटे भरि अँकवार ॥
तब वाने सब भेद बतायो देखी कपि सब लंक।
राम-चरन धरि हृदय मुदित मन बिचरत फिरत निसंक ॥
जाय असोकबाटिका देखी दरसन सीता कीन्ह।
करि दंडवत बहुत बिनती करि राम मुद्रिका दीन्ह ॥
सब संदेस कह्यो कपि सियप्रति सुनि हियमें धरि राख्यो।
राम सँदेस कहेउ तब सीता जो बूझो सो भाख्यो[2] ॥

१. 'सूरसागर', पद ६-६७।
२. 'सारावली', छंद २७४ से ८२।

लागी भूख चले उपबन मे नाना बिधि फल खायो ।
बिटप उखारि उजारि बिपिन को सबहिनि को दरसायो ।।
सुनि पुकार निसिचर बहु आये कूदि सबनि संहारे ।
इंद्रजीत बलनिधि जब आयो ब्रह्मअस्त्र उन डारे ।।
तासों बँधे दसानन देखन चले पवनसुत धीर ।
रावन बहुत ज्ञान समझायो कथ कथ कथा गँभीर ।।
चले छुड़ाय छिनक मे तबही जार दई सब लंक ।
कूदि चले गज बन को जयकरि ज्यो मृजराज निसंक ।।
आये तीर समुद्र मिले कपि मिले आय जहँ राम[1] ।

'सूरसागर' मे उक्त छंदों के प्राय सभी प्रसंग लगभग चालीस पदो मे वर्णित हैं[2] । 'सारावली' की केवल अट्टाइस और सो भी बहुत ही सामान्य पंक्तियो की तुलना में 'सूरसागर' की उन लगभग सात सौ पंक्तियो को उद्धृत करना सर्वथा निरर्थक ही प्रतीत होता है । और 'सारावली' के कवि की 'प्रवीणता' की दाद यह पढ़कर भी कौन न देना चाहेगा कि हनुमान के मुख से सीता की कथा सुनकर राम अत्यंत पुलकित हुए ? 'सारावली'-कार स्पष्ट कहता है—

सुनि-सुनि कथा स्रवन सीता ती पुलकित अति अभिराम[3] ।

'सारावली' के आगे के दो छंदों के चार चरणो में ही श्रीराम का बानर-सैन्य लेकर सिधु-तट पहुँचना, समुद्र-सेतु बाँधकर ससैन्य पार उतरना, लंका में सैन्य-शिविर की स्थापना, अंगद का दूतत्व, रावण अंगद-संवाद और उनका लौटकर अपने दल मे आ जाना आदि बातें वर्णित है—

करि कपि कटक चले लंका को छिन मे बाँध्यो सेत ।
उतर गये पहुँचे लंका पै बिजय ध्वजा संकेत ।।
पठये बालिकुमार बिनय करि समझाये बहु बार ।
चित नहि धरी काल-बस जान्यो फिरि आयो सुकुमार[4] ।।

१. 'सारावली', छंद २८३ से ८७ ।
२. 'सूरसागर', पद ६-६८ से ६-१०५ तक ।
३ 'सारावली', छंद २८७ ।
४. वही, छंद २८८-८६ ।

इसके पश्चात् ही राम-रावण युद्ध होता है, तभी जैसे 'सारावली'-कार को याद आता है कि रावण के बाद लंका का राजा कौन होगा, इसका प्रबंध तो मैंने अब तक किया ही नहीं, अतएव अगले छंद में ही वह लिखता है—

असरन-सरन उदार-कल्पतरु रामचंद्र रनधीर।
रिपु भ्राता जान्यौ जु विभीषन, निसिचर कुटिल सरीर।
राख्यो सरन लंकेस कियो पुनि, जब निसिचर सब मारे[1]।

'सूरसागर' मे राम के सिंधु-तट पर पहुँचने से रावण-वध तक का प्रसंग अट्ठावन पदों में वर्णित है[2]। इन पदो मे अष्टछापी सूरदास ने हनुमान की अनेक वीरोक्तियो के साथ-साथ, विभीषण-रावण-संवाद, राम-प्रतिज्ञा, रावण-मंदोदरी-संवाद, राम-सागर-संवाद, सेतु-बंधन, जलनिधि-तरण, अंगद दूतत्व, अंगद-कथित राम-सदेश, लक्ष्मण-संदेश, लक्ष्मण-युद्ध-गमन, कुंभकरण रावण-संवाद, लक्ष्मण-शक्ति, हनुमान का द्रौणागिरि-प्रस्थान और आगमन, लक्ष्मण-पुनर्जीवन, लक्ष्मण-प्रतिज्ञा, राम रावण युद्ध, रावण वध, अशोकवाटिका मे लक्ष्मण प्रवेश, सीता दर्शन, राम की उपेक्षा, सीता की अग्नि-परीक्षा आदि अनेक विषयो की चर्चा की है। परंतु 'सारावली' कार उक्त विषयो मे से कुंभकर्ण और इंद्रजीत के मारे जाने का वर्णन केवल एक छंद में करके दूसरे मे ही विभीषण को राज्य दिला देता है। 'सूरसागर' के उक्त विषयो मे से और को तो जाने दीजिए, लक्ष्मण-शक्ति और रावण-वध, दोनो बातें 'सारावली' का 'लघुमति' या 'मंदमति बाल' भूल जाता है अथवा अपने किसी सिद्धांत-विशेष के प्रतिकूल समझकर उनका उल्लेख न करके 'मंदोदरी' को 'अचल' करने की फिक्र मे श्रीराम को लगा देता है—

करि मंदोदरि अचल, आयसु दै अभयदान सब कीनौ[3]।

और इस प्रकार की स्वतंत्र कल्पना के स्रोत का अन्वेषण करने का भार 'सरावली' की प्रामाणिकता के पोषकों पर छोड़ कर आगे बढ़ जाता है।

१. 'सारावली', छंद २९०-९१।
२. 'सूरसागर', पद ९-१०६ से ९-१६२ तक।
३. 'सारावली', छंद २९३।

'सारावली' के अगले बीस छंदों मे राम के अयोध्या लौटने और राज्य करने का वर्णन इस प्रकार विस्तार से किया गया है—

चले पवनसुत बिप्र रूप धरि भरतहि देन बधाई।
जानि दूत रघुपति को प्रमुदित भरत मिले तब धाई ॥
सुनत नगर सबहिनि सुख मान्यो जहँ तहँ ते चले धाई।
रामचंद्र पुनि मिले भरत सो आनँद उर न समाई ॥
कियो प्रबेस अजोध्या मे तब घर घर बजत बधाई।
मंगल कलस धराये द्वारे बंदनवार बँधाई ॥
राजभवन मे राम पधारे गुरु बसिष्ठ दरसायो।
सीस नवाय बहुत पूजा करि सूरजबंस बढायो ॥
समाधान सबहिनि को कीन्हो जो दर्सन को आयो।
कौसल्या कैकयी सुमित्रा मिलि मन मे सुख पायो ॥
बैठे राम राजसिहासन जग मे फिरी दुहाई।
निर्भय राज राम को कहियत सुर नर मुनि सुख पाई ॥
चार मूर्ति धरि दरसन आये चार बेद निज रूप।
अस्तुति करी बहुत नानाबिधि रीझे कोसल भूप ॥
सिव बिरंचि नारद सनकादिक सब दरसन को आये।
रामराज बैठे जब जाने सबहिनि मन सुख पाये ॥
लोकपाल अति ही मन हरषे सब सुमननि बरषाये।
पुष्पबिमान बैठि हरि आये लै कुबेर पहुँचाये ॥
अति आनंद भयो अवनी पर रामराज सुखदास।
कृतजुग धर्म भये त्रेता मे पूरन रमा प्रकास ॥
अस्वमेध बहु जज्ञ किये पुनि पूजे द्विजनि अपार।
हय गय हेम धेनु पाटम्बर दीन्हें दान उदार ॥
चरित अनेक किये रघुनायक अवधपुरी सुख दीन्हो।
जनकसुता बहु लाड लड़ावति निपट निकट सुख कीन्हो ॥
जानि बसंत बहुत द्रुम फूले जनकसुता अनुरागे।
प्रेम-प्रवाह प्रगट प्रगटायो होरी खेलन लागे ॥
कबहुँक निकट देखि वर्षा रितु झूलत सुरँग हिंडोरे।
रमकत झमकत जनकसुता सँग हाव-भाव चित चोरे[1] ॥

१. 'सारावली', छंद २६७-३१०।

कबहुँक कमल सरोवर उपवन जनकसुता सँग लीन्हे ।
नाना जल बिहार बिहरत है संत जननि सुख दीन्हें ॥
कबहुँक रतन महल चितसारी सरद निसा उजियारी ।
बैठे जनकसुता सँग बिलसत मधुर केलि मनुहारी ॥
कबहुँक अगर धूप नानाबिधि लिय सुगंध सुखकारी ।
कबहुँक निरतत देवनटी लखि रीझत है सुख भारी ॥
राम बिहार कहेउ नाना बिधि बाल्मीकि मुनि गायो ।
बरनत चरित बिस्तार कोटि सत तऊ पार नहि पायो ॥
सूर समुद्र की बूँद भई यह कवि बरनन कह करिहै ।
कहति चरित रघुनाथ सरस्वति बौरी मति अनुसरिहै ॥
अपने धाम पठाय दिये तब पुरबासी सब लोग ।
जै जै जै श्रीराम कल्पतरु प्रगट अजोध्या भोग[1] ॥

उक्त बीस छंदो मे प्रथम छह सामान्य वर्णन के है—यद्यपि कला की दृष्टि से सभी निष्प्राण हैं। इन छंदो की कथा 'सूरसागर' में भी मिल जाती है[2]। आगे के दो छंदो में चारो वेदों का मूर्ति रूप धरकर श्रीराम की स्तुति करना और सिब-विरंचि-नारद सनकादिक का उनके दर्शनो को आना वर्णित है। संभवत: 'सारावली'-कार को इसकी प्रेरणा 'सूरसागर' के उन पदों से मिली होगी जिनमे वेद और नारद श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं[3]। और 'सिव-विरचि-सनकादिक' आदि की वंदना की बात तो वह सभी जगह कहता है, जैसा कि वामन-कथा से ज्ञात होता है[4]। इतना लिख जाने पर 'सारावली' के रचयिता को ध्यान आता है कि अभी पुष्पक विमान अयोध्या मे ही रखा है, सो अगले छंद मे वह उसे कुबेर के पास भिजवाये जाने की सूचना देता है। श्रीराम के साथ, हनुमान के अतिरिक्त और किसी कवि-नायक या निशिचर-नाथ के आने की उसने कभी सूचना ही नहीं दी है, इसलिए उनको विदा करने का प्रश्न ही नही उठता। इसके पश्चात् वह राम सीता-विहार के कुछ प्रसंगो का वर्णन करता है जिस पर स्पष्टत: श्रीकृष्ण की संयोग-लीला की हल्की सी छाप है। इन आठ दस छंदो में भी 'सारावली'-कार ने कोई उल्लेखनीय बात नहीं लिखी है।

१ 'सारावली', छंद ३११-३१६।
२. 'सूरसागर', पद ६-१६६ से से ६-१७१ तक।
३. वही, पद १०-४३०० से १०-४३०२।
४. 'सारावली', छंद ३३१।

'सारावली' के अगले बारह छंदो में (तीन सौ सत्रहवें मे अट्ठाइसवें तक) पुन: विविध अवतारों की संक्षिप्त कथा है। पहले छंद में परशुराम अवतार वर्णित है जो पीछे एक सौ उनतालीसवें छंद में 'सारावली'-कार लिख चुका है—

दुष्ट नृपति जब बैठे भुव पर, धरि भृगुपति को रूप।
छिन मे भुव को भार उतारयो परसुराम द्विज भूप[1] ॥

उक्त छंद सभी दृष्टियों से साधारण है। एक बार इस अवतार का उल्लेख करने के अनंतर इस की चर्चा पुन: करने की आवश्यकता सारावली'-कार को क्यो पड़ी, इसकी छानबीन उसकी 'स्वतंत्र सैद्धांतिकता' के समर्थकों को करनी चाहिएं।

दूसरे छंद में व्यास अवतार वर्णित है—

व्यास रूप ह्वै बेद बिस्तारे कीन्हें प्रगट पुराननि।
नाना वाक्य धर्म थापन को तिमिर हरन भुव भारनि[2] ॥

यह प्रसंग 'सूरसागर' में भी विस्तार से मिलता है[3]।

तीसरे छंद में 'सारावली'-कार ने बुद्ध अवतार की चर्चा की है—

बुद्ध रूप कलि धर्म प्रकास्यो दया सबन को मूल।
दूर कियो पाखडबाद हरि भक्तनि को अनुकूल[4] ॥

यह अवतार 'सूरसागर' के द्वादश स्कंध में वर्णित है[5] और 'सारावली' कार ने यह भुला कर कि वही अंतिम अवतार था, उसको अन्य अनेक अवतारो के पूर्व ही लिख दिया है जिसकी 'स्वतंत्रता' का समर्थन भी उसकी 'प्रवीणता' के समर्थक ही कर सकते हैं। चौथे छंद में कल्कि अवतार का ऐसे रूप मे वर्णन है जैसे वह हो चुका है और कल्कि भगवान म्लेच्छों को मार कर धर्म-स्थापन कर चुके हैं जिसके लिए संसार में जय जयकार भी हो चुका है—

१ 'सारावली', छंद ३१७।
२. वही, छंद ३१८।
३. 'सूरसागर', पद १-२२५, १-२२६ और १-२३०।
४. 'सारावली', छंद ३१९।
५. 'सूरसागर', पद १२-२।

कलि के आदि, अंत कृतजुग के, है कल्की अवतार।
मारि म्लेच्छ धर्म फिर थाप्यो, भयौ जग जै-जैकार[१]।

उधर अष्टछापी सूरदास भविष्य में होने वाले कल्कि अवतार के संबंध में लिखते हैं—

हरि करिहै कलंकि अवतार। जिहि कारन सो कहौं बिचार।
कलि मैं नृप होइहै अन्याई। कृषी अन्न लैहै बरियाई।
. ...
यौं होइहै कलंकि अवतार। . ...[२]।

इस प्रसंग मे 'सारावली'--कार की 'प्रवीणता' पर तरस आने के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ?

आगे के आठ छंदो में पुनः उलटे सीधे अवतार वर्णित हैं जिनमें न कोई कम है और न कोई उल्लेखनीय बात ही है—

कर्मबाद थापन को प्रगटे पृस्नि गर्भ अवतार।
सुधा-पान दीन्हों सुरगन को भयो जग जस बिस्तार॥
असुरनि को ब्यामोह कियो हरि धरो मोहिनी रूप।
अमृत पान कराय सुरनि को कीन्हे चरित अनूप॥
तैसे ही भुव-भार उतारन हरि हलधर अवतार।
कालिदी आकर्ष कियो हरि मारे दैत्य अपार॥
गज अरु ग्राह लडे जल भीतर तब हरि सुमिरन कीन्हौ।
छोड़ि गरुड़ सुख धाम सॉवरों भक्तनि को सुख दीन्हो॥
जब बहु असुर बढे पृथिवी पर कियो अनर्थ बिस्तार।
सत्यसेन प्रगटे बिस्भंभर सत्य कियो है अपार॥
निज बैकुंठ बसाय रमापति कियो रमा को हेत।
बिनती सुनि कमला की केसव कीन्हों सुख संकेत॥
ब्रह्मचर्य थापन के कारन धरो बिभू अवतार।
जहॅ तहॅ मुनिवर निज मरजादा थापी अघट अपार॥
अजित रूप ह्वै सैल धरो हरि जलनिधि मथिबे काज।
सुर अरु असुर चकित भये देखत किये भक्त के काज[३]॥

१. 'सारावली', छंद ३२०।
२. 'सूरसागर', पद १२-३।
३. सारावली' छद ३२१ से २८।

इन अवतारो के वर्णनो पर 'सूरसागर' की कितनी छाप है, यह देखने के लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। 'सारावली' के ३२४वें छंद के दोनो चरणो का 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियो से मिलान कीजिए और 'सारावली' कार की 'प्रवीणता' की सराहना कीजिए—

क. जब गज गह्यौ ग्राह जल भीतर, तब हरि कौं उर ध्याए[१]।

ख. छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड तजि साँवरो .... [२]।

'सारावली' के तीन सौ उन्तीसवें छंद से पैंतालीस छंद तक 'वामन' अवतार की कथा कही गयी है। यह वर्णन 'सूरसागर' मे तद्विषयक प्राप्त चार पदो से[३] मिलता-जुलता होने पर भी कुछ सामान्य बातों में स्वतंत्र हैं जो साधारण कथा प्रसंगो मे बराबर आती रहती हैं। 'सारावली' के आगे के पंद्रह छंदो मे पुन: अनेक अंशावतारों का वर्णन है जिनमें से कुछ 'सूरसागर' में आये है और कुछ नही। 'सारावली' के ये सभी वर्णन बहुत साधारण है। यह प्रसंग कवि ने इतना लिखकर समाप्त किया है—

सदा बिहार करत ब्रजमंडल नंद-सदन सुखकारी।

यही बात 'सूरसागर' में भी कही गयी है[४]—

ब्रज ही मै नित करत बिहारन[५]।

'सारावली' के तीन सौ इकसठ संख्यक छंद से श्रीकृष्ण अवतार की कथा आरंभ होती है जो आठ सौ सरसठवें छंद तक उसी गति से चलती है जिस गति मे पीछे राम कथा लिखी गयी है। इस प्रकार 'सारावली'-कार ने श्रीकृष्ण अवतार पॉच सौ सात छंदो मे लिखा है जिसको चार भागों में सहज ही बॉटा जा सकता है—

१. प्रस्तावना ३६१ से ३८८=२७ छंद
२. ब्रज-लीला ३८९ से ४९०=१०१ छंद
३. मथुरा-लीला ४९१ से ६२०=१२९ छंद
४. द्वारका-लीला ६२१ से ८६७=२४६ छंद

१. 'सूरसागर', पद १-७।
२. वही, पद १-५।
३. वही, पद ८-१२ से ८-१५ तक।
४. 'सारावली', छंद ३६०।
५. 'सूरसागर', पद १०-९५१।

'सूरसागर' मे यह क्रम बिलकुल उलटा है। व्रजलीला बहुत विस्तार से लिखी गयी है और मथुरा-द्वारका लीलाएँ अत्यंत संक्षेप मे दी गयी हैं। 'सारावली' और 'सूरसागर' का कथा विस्तार-संबंधी का यह अंतर देखकर ही डा० दीनदयाल गुप्तने लिखा था—इस ग्रंथ ('सारावली') मे भी कृष्ण की ऐश्वर्य और रस, दोनो प्रकार की लीलाओ का संक्षेप मे वर्णन है, परंतु कृष्ण के ऐश्वर्य रूप पर बल अधिक है और 'सूरसागर' के प्राप्त पदो में कृष्ण के आनंद रूप (व्रज-रूप) पर है[1]। इस संबंध में निवेदन यह है कि 'सारावली'-कार 'रस' या 'ऐश्वर्य' रूप जैसे शब्दों के महत्व से सर्वथा अपरिचित है और उसके लिए श्रीकृष्ण की सभी लीलाएँ एक समान हैं और इसी कारण वह जिन-जिन लीलाओ या कथाओं से श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष या परोक्ष, किसी प्रकार का भी संबंध देखता-सुनता है, उन सभी को समान दत्तचित्तता और 'प्रवीणता' से लिखने लगता है। 'सारावली' मे मथुरा-द्वारका-लीला-वर्णनो का व्रज-लीला-वर्णन से बहुत बढ़ जाने का यही कारण है कि उसने उन अनेक कथाओ का समावेश इन भागो में कर दिया है जो 'सूरसागर' के प्रथम स्कंध मे 'श्रीभागवत्'-प्रसंग के अंतर्गत दी गयी हैं, अस्तु।

अब 'सारावली' के श्रीकृष्ण-लीला-वर्णन की बानगी देखिए। तीन सौ इकसठ संख्यक छंद उसी भाव और उन्हीं शब्दो को लेकर लिखा गया है जो ग्रन्थ के प्रथम छंद में हैं। आगे के तीन छंद सामान्य प्रस्तावना-रूप में हैं और छह छंदों में जन्म वर्णित है—

जब हरि लीला की सुधि कीन्ही प्रगट करन बिस्तार।
श्री बृषभानु रूप ह्वै प्रगटे पुनि व्रजराज उदार॥
बिद्या ब्रह्म कही जसुमति सों जाकी कोखि उदार।
सौरह कला चंद्र ज्यो प्रगटे दीन्हों तिमिर बिदार॥
पुनि बसुदेव देवकी कहियत पहिले हरि बर पायो।
पूरन भाग्य आय हरि प्रगटे जदुकुल ताप नसायो॥
आठे बुद्ध रोहिनी आई संख चक्र बपु धारो।
कुंडल लसत किरीट महा धुनि बपु बसुदेव निहारो[2]॥

१. 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', पृ. २८५।
२. 'सारावली', छंद ३६२ से ३६५।

अस्तुति करी बहुत नाना बिधि रूप चतुर्भुज देख्यो।
पीतांबर अरु स्याम जलद बपु निरखि सुफल दिन लेख्यो॥
तब हरि कहेउ जन्म तुम्हारे गृह तीन बार हम लीन्हों।
पृस्नी गर्भ देव ब्राह्मन जो कृष्न रूप रंग भीन्हों॥
माँगो सकल मनोरथ अपने मनबाछित फल पायो।
संख चक्र गदा पद्म चतुर्भुज अजन जन्म लै आयो॥
यह भुव-भार उतारन कारन हलधर को सँग लायो।
क्रीडा करौं लोक-पावनकर करौं भक्त मन भायो॥
प्राकृत रूप धर्यो हरि छिन में सिसु ह्वै रोवन लागे।
तब बसुदेव देवकी निरखत परम प्रेम-रस पागे[१]॥

उक्त छंदो का भाव 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदांशों से मिलता-जुलता है—

क. बुध रोहिनी अष्टमी-संगम[२]।
ख. अजन जन्म धरि आयौ[३]।
ग. माथै मुकुट, सुभग पीतांबर[४]।
घ. संख चक्र गदा पद्म-चतुर्भुज[५]।
ङ. सिसु ह्वै रोवन लागे[६]।
च. चारि भुज जिहि चारि आयुध[७]।
छ. पूरब कथा सुनाइ कही हरि, तुम माँग्यौ इहि भेष करे[८]।

'सारावली'-कार ने उक्त पंक्तियों में जो कुछ लिखा है, वह सब इतना साधारण है कि 'सूरसागर' के पौराणिक प्रसंग भी उससे अच्छे हैं। इतना ही नहीं, 'सारावली' मे 'अजन जन्म धरि आयौ', 'संख-चक्र-गदा-पद्म-

१. 'सारावली', ३६६ से ३७०।
२. 'सूरसागर', पद १०-४।
३. वही, पद १०-४।
४. वही, पद १०-४।
५. वही, पद १०-२८।
६. वही, पद १०-४।
७. वही, पद १०-५।
८. वही, पद १०-८।

चतुर्भुज', 'सिसु ह्वै रोवन लागे' आदि 'सूरसागर' के वाक्य और वाक्यांश ज्यों के त्यों अपना लिये गये हैं।

वसुदेव जी का श्रीकृष्ण को लेकर मथुरा से गोकुल-गमन 'सारावली' के अगले आठ छंदों मे वर्णित है—

तब देवकी दीन ह्वै भाख्यो नृप को नाहि पतीजै।
अहो बसुदेव, जाव लै गोकुल कह्यो हमारो कीजै ॥
तब लै हरि पलना पौढाये पीतांबर जु उढायो।
तब बसुदेव सीस धरि पलना भयो सबनि मन भायो ॥
गोकुल चले प्रेम आतुर ह्वै खुलि गये कपट कपाट।
सोये स्वान पहरुआ सोये सबै मुक्त भई बाट ॥
तब बसुदेव लियो कर पलना अपने सीस चढायो।
रैन अँधेरी कछु नहि सूझत अटकर अटकर आयो ॥
सेष सहसफल ऊपर छाये घन की बूँद बचावैं।
आगे सिह हुँकारत आवत निर्भय बाट जनावै ॥
जमुना अति जल पूर बहत है चरन-कमल परसायो।
मारग दीन्हों राम सिंधु ज्यों नंदभवन चलि आयो ॥
पहुँचे आय महर मंदिर मे नैंक न संका कीन्ही।
बालक धरि लैकै सुरदेवी सुरति गवन की कीन्हीं ॥
लै बसुदेव तुरत घर आये काहू जिय नहि जाने।
जब वह रोवन लागी तब सब जाग परे अकुलाने[1] ॥

इस वर्णन का आधार सामान्य कथा प्रसंग तो है ही, 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियो से भी 'सारावली' कार को सहारा मिला है—

क. नृप कबहूँ न पसीजै[2]।
ख. अहो बसुदेव, जाहु लै गोकुल[3]।
ग. स्वान सूते पहरुवा सब नीद उपजी गेह।
निसि अँधेरी बीजु चमकै, सघन बरसै मेह।
बंदि बेरी सबै छूटी खुले बज्र-कपाट।
सीस धरि श्रीकृष्न लीने, चले गोकुल-बाट।

१. 'सारावली', छंद ३७१-७८।
२. 'सूरसागर', पद १०-६।
३. वही, पद १०-४।

सिह आगैं, सेष पाछै, नदी भइ भरपूरि ।
. .. .

चरन परसत थाह दीन्हीं, पार गए बसुदेव[1] ।

घ. पहुँचे जाइ महर-मंदिर मै, मनहि न संका कीनी[2] ।

ङ. बालक धरि लै सुरदेवी कौ[3] ।

'सारावली' और 'सूरसागर' के उक्त उद्धरणो की तुलना करने पर सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम के वर्णन मे न द्वितीय जैसी संबद्धता है और न सफाई ही। इसके अतिरिक्त अन्य स्थलो के समान ही 'सारावली'-कार ने यहाॅ भी 'नृप कबहूॅ न पतीजै', 'अहो बसुदेव, जाहु लै गोकुल', 'खुले कपाट', 'पहुँचे जाइ महर मंदिर मै, मनहिं न संका कीनी', 'बालक धरि लै कै सुरदेवी को' आदि वाक्य 'सूरसागर' से ही अपहृत कर लिये है।

'सारावली' के आगे के दस छंदो में कंस द्वारा सुरदेवी वध-प्रसंग वर्णित है—

बालक भयो कह्यो नृप सों जब दौरि कंस तब आयो ।
कर गहि खड्ग कह्यो देवकि सों बालक कहॅ पहुँचायो ।।
तब देवकी अधीन कह्यउ यह मै नहि बालक जायो ।
यह कन्या मोहि बकस बीर तू कीजै मो मन भायो ।।
कंस बंस को नास करत है कहा समुझि रिसियानी ।
मोको भई अनाहद बानी ताते डर नहि जानी ।।
कन्या माँग लई तब राजा नेकु संक नहि आनी ।
पटकत सिला गई आकासै कंस प्रतीत न मानी ।।
भइ अकासबानी सुरदेवी कंस यहाॅ अब आई ।
तेरो सत्रु प्रगट कहुँ ब्रज में काहु लख्यो नहि जाई ।।
जैसे मीन करत जल क्रीड़ा जल मे रहत समोई ।
त्यों तुव काल प्रगट इक कतहूॅ लखि न सकत तेहि कोई[4] ।।

१. 'सूरसागर', पद १०-५ ।
२. वही, पद १०-४ ।
३. वही, पद १०-८ ।
४. 'सारावली', छंद ३७६-३८४ ।

अंतर्धान भई सुरदेवी कंस प्रतीत जो मानी।
तब बसुदेव देवकी के गृह कंस गयो यह जानी॥
छमि अपराध देवकी मेरो लिख्यो न मेट्यो जाई।
मैं अपराध किये सिसु मारे कर जोरे बिललाई॥
पुनि गृह आय सेज पर सोयो नेकु नीद नहि आवै।
देस देस के दूत बुलाये सबहिनि मतो सुनावै॥
दीन हीन जो असुर चढत बल करत सकल पुनि तैसो।
बूझत नहि तन भार उतारेउ जल को माखन जैसो[1]॥

'सारावली' के उक्त छंदो की असमर्थ भाषा को क्या कोई भी ब्रज-भाषा-मर्मज्ञ सूरदास की कह सकता है? क्या यह भाषा 'सूरसागर' के उन पौराणिक प्रसंगो से भी गयी बीती नहीं है जिनके वर्णन मे सूरदास ने किसी भी प्रकार की रुचि नही है? और 'सारावली'-कार का उक्त निष्प्राण-जैसा वर्णन सामान्य जनश्रुतियो के साथ-साथ 'सूरसागर' के निम्न-लिखित पदांशो पर आधारित है—

क. कंस बंस कौ नास करत है[2]।
ख. मोकौ भई अनाहत बानी, तातै सोच न टरई[3]।
ग. देवकी-गर्भ भई है कन्या, राइ न बात पतीनी।
पटकत सिला गई आकासहि दोउ भुज चरन लगाई।
गगन गई, बोली सुरदेवी, कंस मृत्यु नियराई।
जैसै मीन जाल मै क्रीडत, गनै न आपु लखाई।
तैसेहि कंस, काल उपज्यो है, ब्रज मै जादवराई।
.. ..
यह सुनि कंस देवकी आगै रह्यो चरन सिर नाई।
मै अपराध कियौ सिसु मारे, लिख्यौ न मेट्यौ जाई।
काकै सत्रु जन्म लीन्यो है, बूझै मतौ बुलाई।
चारि पहर सुख-सेज परे निसि, नैंकु नीद नहि आई[4]।

१. 'सारावली', छंद ३८५-३८८।
२. 'सूरसागर', पद १०-४।
३. वही, पद १०-४।
४. वही, पद १०-४।

'सूरसागर' और 'सारावली' के उक्त उद्धरणों का मिलान करने पर देखा जा सकता है कि द्वितीय के रचयिता ने कोई विशेष बात तो कही ही नहीं है, 'सूरसागर' के भावो का प्रत्येक चरण में अपहरण करने के साथ-साथ 'कंस बंस कौ नास करत है', 'मोकौं भई अनाहत बानी', 'पटकत सिला गई आकासहिं', 'जैसैं मीन जाल मै क्रीड़त', 'लिख्यौ न मेट्यौ जाई', 'मै अपराध किए सिसु मारे', 'नैंकु नीद नहिं आई' आदि वाक्यों और वाक्यांशो का अपहरण करके अपने 'विशिष्ट सिद्धांत' का परिचय दिया है।

'सारावली' के तीन सौ नवासी से चार सौ चौदह संख्यक छंदो तक गोकुल मे श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव वर्णित है—

भयो भोर जसुमति गृह आनँद मंगलचार बधाई।
जागी महरि पुत्र मुख देख्यो आनँद उर न समाई॥
जैसे ससि प्रगटत प्राची दिसि सकल कला भरिपूर।
जसुमति कोखि आय हरि प्रगटे असुर तिमिर कर दूर॥
नंद राय घर ढोटा जायो महर महा सुख पायो।
बिप्र बुलाय बेद-धुनि कीन्ही स्वस्ती बचन पढायो॥
जातकर्म करि पूजि पितर सुर पूजन बिप्र करायो।
दोइ लख धेनु दई तेहि अवसर बहुतहि दान दिवायो॥
पर्बत सात तिलनि को कीन्हों रतननि ओघ मिलायो।
मागध सूत और बदीजन ठौर ठौर जस गायो॥
बाजे बजत बिचित्र भाँति सो रह्यउ घोष सब गाज।
सुर सुमननि बरषावत गावत व्योम बिमाननि साज॥
बाँधत बदनवार साथिये द्वारे ध्वजा सुहाई।
कनक कलस प्रतिपौर बिराजत मंगलचार बधाई॥
सुरभी बृषभ सिगारे बहु बिधि हरदी तेल लगाई।
सुबरन माल बिचित्र धातु रंग अँग अँग चित्र बनाई॥
आये गोप भेट लै लैकै भूपन बसन सोहाये।
नाना बिधि उपहार दूध दधि आगे धरि सिर नाये॥
जसुमति के गृह पुत्र प्रगट भयो सुनी सकल ब्रजनारी।
मंगल साज सँवार हाथ लै घर घर मंगलकारी[1]॥

१. 'सारावली', छंद ३८६-३६८।

अति आतुर ह्वै चली झुंड जुरि सिर सुमननि बरसावै।
मानो रीझि मधुप धरनी को रस पराग दरसावै ।।
पहुँची जाय महर मंदिर मे करत कुलाहल भारी।
दरसन करि जसुमति सुत को सब लेन लगीं बलिहारी ।।
नाचत गोप परस्पर सब मिलि छिरकत है नवनीत।
दूध और दधि और हरद जल सींचत हैं करि प्रीत ।।
जसुमति कोखि सराहि बलैया लेन लगीं ब्रजनार।
ऐसो सुत तेरे गृह प्रगट्यो या ब्रज को सिंगार ।।
जसुमति रानी देति बधाई भूषन रतन अपार।
फूली फिरति रोहिनी मइया नखसिख करि सिंगार ।।
देत असीस चली ब्रजसुंदरि जिय उपज्यो सुख भारी।
ग्रह-पूजन सब कियो बेद बिधि नंदराय सुखकारी ।।
देस देस तें ढाढी आये मनबाछित फल पायो।
को कहि सकै दसौंधी उनको भयो सबनि मन भायो ।।
ता दिन ते सगरे या ब्रज मे रमा - रूप दरसायो।
निज कुल बृद्ध जानि इक ढाढी गोबर्धन ते आयो ।।
परम उदार महर ब्रजपति जू ढाढी निकट बुलायो।
बाजत हुडुक मँजीरा नूपुर नाना भाँति नचायो ।।
झँगा पगा अरु पाग पिछौरी ढाढिन को पहिरायो।
हरि दरियाई कंठ लगाई परदर सात उठायो ।।
बहुत दान दीन्हे उपनंद जू रतन कनक मनि हीर।
धरानंद धन बहुतहि दीन्हों ज्यों बरषत घन नीर ।।
कुंडल कान कंठ - माला दै ध्रुवनंद अति सुख पायो।
सीधा बहुत सुर सुरानंदै गाड़ा भरि पहुँचायो ।।
कर्माधर्मा नंद कहत है बहुतहि दान दिवायो।
ब्रजरानी ढाढिन पहिराई मन बाछित फल पायो ।।
चले भवन को दै असीस दोउ निर्भय कीरति गावै।
जिन जाँचे ब्रजपति उदार अति जाचक फिर न कहावै ।।
नाना बिधि के बिबिध खिलौना रतननि अधिक अमोले।
ताको लेन गये मथुरा को आनक दुंदुभि बोले[1] ।।

१. 'सारावली', छंद ३९९-४१३।

वेग जाव गोकुल तुम अबही सुनियत है उतपात।
सुनि ब्रजराज तुरत घर आये जिय मे अति अकुलात[१] ॥

उक्त छंदो में मुख्यत. तीन प्रसंगों का वर्णन है—एक, श्रीकृष्ण-जन्म के समाचार से सारे गोकुल मे आनंद और मगलचार होना, गोकुल के नर-नारियो का सोल्लास बधाई देने नंद-यशोदा के पास आना तथा सबका स्वागत सत्कार किया जाना, दो, नद जी का विप्रो को बुलाकर वेद-ध्वनि और यथोचित कुलाचार कराना तथा विप्रो और याचकों को पात्रानुसार दान देना, तीन, ढाढ़ी-ढाढ़िनि का आना और नंद-यशोदा का उनको पहिरावनी तथा दान देना। ये तीनो प्रसंग 'सूरसागर' मे विस्तार से वर्णित हैं। स्थानाभाव से सूरदास के अनेक पदो में से केवल निम्नलिखित अंश यह दिखाने के लिए यहाँ उद्धृत है कि 'सारावली'-कार ने उक्त छंदो मे भी कोई नयी बात नही लिखी है, 'सूरसागर' के ही पदो का सार देने का असफल-सा प्रयत्न किया है—

क. जागी महरि, पुत्र मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मै न समाइ[२]।
ख. ढोटा है रे भयौ महर कै, कहत सुनाइ-सुनाइ।
सबहि घोष मै भयौ कुलाहल, आनँद उर न समाइ[३]।
ग. अमर बिमान चढे सुख देखत, जै-धुनि-शब्द सुनाई[४]।
घ. धनि - धन्य महरि की कोख, भाग - सुहाग भरी।
जिन जायौ ऐसौ पूत, सब सुख फरनि फरी।
. . . . .
बंदीजन - मागध - सूत आँगन भौन भरे।
. . . .
पुर घर - घर भेरि - मृदंग, पटह निसान बजे।
बर बारनि बंदनबार, कंचन कलस सजे[५]।
ङ. अनंद अतिसै भयौ, घर-घर नृत्य ठाँवहि - ठाँव।
नंद द्वार भेंट लै - लै उमह्यौ गोकुल गाँव।

१ 'सारावली', छंद ४१४।
२. 'सूरसागर', पद १०-१३।
३. वही, पद १०-२०।
४. वही, पद १०-२२।
५. वही, पद १०-२४।

... .

द्वार सथिया देति स्यामा, सात सीक बनाइ।
.. . .

हरद - अच्छत - दूब-दधि लै, तिलक करैं ब्रजबाल[१]।

च. बनि ब्रज - सुंदरि चली, सु गाइ बधावन रे।
कनक - थार रोचन - दधि तिलक बनावन रे[२]।

छ. आनंद - मगन सब अमर गगन छाए,
पुहुप बिमान चढे पहर - पहर के[३]।

ज. जसुमति - ढोटा ब्रज की सोभा।
.. ..

अति आनंद नंद रस भीने।
परबत सात रतन के दीने।
... .

द्वै लख धेनु द्विजनि कौ दीनी।
नंद - पौरि जे जॉचन आए।
बहुरौ फिरि जाचक न कहाए[४]।

झ. (नंद जू) मेरैं मन आनंद भयौ है, मै गोबर्धन तै आयौ।
. ...

बंदीजन अरु भिच्छुक सुनि - सुनि दूरि - दूरि तै आए[५]।

ञ मै तेरे घर कौ हौं ढाढी, मोसरि कोउ न आन।
. .. .

धन्य नंद, धनि-धन्य जसोदा, जिन जायौ अस पूत[६]।

'सारावली' के उक्त छंदो में दो बातें नयी लिखी मिलती हैं जो 'सूरसागर' में नहीं है। पहली बात है 'गाड़ा भर सीधौ' देने की जिससे

१. 'सूरसागर', पद १०-२६।
२. वही, पद १०-२८।
३. वही, पद १०-३०।
४. वही, पद १०-३२।
५. वही, पद १०-३५।
६ वही, पद १०-३६।

जान यही पड़ता है कि 'सारावली'-कार उसी वर्ग का कवि है जिन्हें 'सीधे' की ही सबसे अधिक चाह रहती है, अन्यथा जहाँ रत्नो के सात-सात पर्वत लुटाये गये हो, वहाँ 'सीधौ' की बात से उसका चित्त कैसे रमा रहता ? दूसरी बात है नंद जी का पुत्र के लिए खिलौने लेने मथुरा जाना। यह बात किसी कथावाचक के प्रवचन मे ही 'सारावली'-कार ने सुनी होगी, अन्यथा चार दिन के बालक को छोड़कर नंद जी के इस प्रकार मथुरा जाने का उल्लेख इस रूप में न किया गया होता।

उक्त दो मौलिक बातो के अतिरिक्त 'सारावली'-कार ने जो कुछ लिखा है, वह प्राय: सब 'सूरसागर' के आधार पर है जिसके अनेक उप-वाक्यों और वाक्यांशो को लेकर अपनी भाषा-भाव-दरिद्रता का उसने प्रमाण दिया है, जैसे—'जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ', 'उर न समाई', 'परबत सात रतन के', 'द्वै लख धेनु' आदि। इसी प्रकार के और भी अनेक प्रयोग 'सूर-सागर' के अन्य पदो से लेकर 'सारावली'-कार ने सारा प्रसंग पूरा किया है।

'सारावली' के अगले पाँच छंदो मे पूतना-बध की कथा इस प्रकार दी गयी है—

प्रथम पूतना कंस पठाई अति सुंदर बपु धारयो।
घसिकै गरल लगाय उरोजनि कपट न कोउ निहारयो ॥
लिये उठाय स्याम सुदर को थन गहिकै मुख लीन्हों।
लीन्हे खीजि प्रान बिष पय जुत देह बिकल तब कीन्हों ॥
छाँड़ि छाँड़ि कहि परी धरनि पर कर चरननि जु पसारि।
जोजन डेढ बिटप बेली सब चूर चूर करि डारि ॥
ताको जननी की गति दीन्ही परम कृपाल गुपाल।
दीन्हों फूँक काठ तन वाको मिलिकै सकल गुवाल ॥
तबही नंदरायजू आये कौतुक सुनि यह भारी।
बिस्मित भये देव ने राख्यो बालक यह सुखकारी ॥
बिप्र बुलाय बेद धुनि कीन्ही रच्छा बहुत कराई।
आरति बिबिध उतारि महर जू मंगल करत बधाई[1] ॥

१. 'सारावली', छंद ४१५-४२०।

'सूरसागर' में उक्त प्रसंग इस प्रकार वर्णित है—

क. घसि कै गरल चढाइ उरोजनि, लै रुचि सौं पय प्याऊँ[1]।

ख. बालक लियौ उछंग दुष्टमति हरषित अस्तन-पान कराई।
बदन निहारि प्रान हरि लीनौ, परी राच्छसी जोजन ताई।
सूरज दै जननी-गति ताकौं, कृपा करी निज धाम पठाई[2]।

ग. मुख चूम्यौ, गहि कंठ लगायौ, बिष लपट्यौ अस्तन मुख नाई।
पय सँग प्रान ऐंचि हरि लीनौ, जोजन एक परी मुरझाई[3]।

उक्त छंदो मे भी 'सूरसागर' के अनेक शब्द उठा कर रख लिये हैं, जैसे—'घसि कै गरल चढ़ाइ उरोजनि', 'दै जननी-गति' आदि। पूतना के 'स्तनो' के लिए 'थन' का प्रयोग करके 'सारावली'-कार ने अपनी 'रसिकता' (?) का परिचय दिया है। साथ ही अपनी कल्पना का यहाँ इतना स्वतंत्र और मौलिक प्रदर्शन उसने किया है कि सकल ग्वालो द्वारा मिलकर पूतना के शरीर को भी फुँकवाकर उसकी अंतिम गति सुधरवा दी है। परंतु अन्य दैत्यो के संबंध मे वैसा उल्लेख करने की आवश्यकता उसने क्यो नहीं समझी, इसका कारण खोजने का प्रयत्न इस ग्रंथ की प्रामाणिकता के पोषको को करना चाहिए।

अगले छंद मे पहली बार कृष्ण के 'करौंटी' लेने का वर्णन 'सारावली' मे किया गया है—

एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरषी नँदरानी।
बिप्र बुलाय स्वस्ति बाचन करि रोहिनि नैन सिरानी[4]॥

इस प्रसंग की ओर 'सूरसागर' मे भी संकेत किया गया है—

क. किलकि झटकि उलटे परे, देवनि मुनिराई।
सो छबि नद निहारि कै, तहँ महरि बुलाई[5]।

१. 'सूरसागर', पद १०-४६।
२. वही, पद १०-५०।
३. वही, पद १०-५१।
४. 'सारावली', छंद ४२१।
५. 'सूरसागर', पद १० ६६।

ख. स्याम उलटे परे देखे, बड़ी सोभी लहरि[१] ।
ग. महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी ।

. . ..

पटकि रान उलटौ परयौ, मै करौ बधाई[२] ।

इसी समय 'सारावली' के रचयिता को ध्यान आता है कि अभी 'बलभाई' के जन्म की बात तो उसने लिखी ही नहीं है, सो आगे के दो छंदों मे उसका उल्लेख करने लगता है कि वर्ष भर पहले ही उनका अवतार हो गया था (जिसे मै भूल जाने के कारण कृष्ण जन्म के लगभग साठ छंद लिखने के बाद लिख रहा हूँ)—

नित मंगल नित होत कुलाहल नित-नित बजत बधाई ।
भादो देव छट्ठि को सुभ दिन प्रगट भये बलभाई ।।
बर्ष दिवस पहिले ब्रजमंडल सेष महा बपु लीन्हों ।
अपनो धाम जान प्रगटो भुव रूप प्रगट निज कीन्हो[३] ।।

'सारावली' के अगले तीन छंदो मे 'शकट-भंजन' और एक छंद छोड़ कर आगे के दो छंदों में तृणावर्त-वध की कथा है—

कंस नृपति ने सकट बुलायो लै कर बीरा दीन्हों ।
आय नंद गृह द्वार नगर मे रूप सकट को कीन्हो ।।
मारी लात स्याम पलना ते परयो धरनि भहराय ।
जहँ तहँ ते दौरे ब्रजबासी स्यामहि लियो उठाय ।।
बच्छ पुच्छ लै दियो हाथ पर मंगल गीत गवायो ।
जसुमति रानी कोखि सिरानी मोहन गोद खिलायो ।।

× × ×

तृनावर्त बिपरीत महा खल सो नृपराय पठायो ।
चक्रबात ह्वै सकल घोष मे रज-धुंधर ह्वै छायो ।।
चल्यो उठाय गुपाल ब्योम मे तब हरि कंठ गहायो ।
पटक्यो सिला खरिक के आगे छिन निरजीव करायो[४] ।।

१. 'सूरसागर', पद १०-६७ ।
२. वही, पद १० ६८ ।
३. 'सारावली', छंद ४२२-२३ ।
४. वही, छंद ४२४ २५-२६ और ४२८-२६ ।

ये दोनो कथाएँ 'सूरसागर' मे इस प्रकार मिलती हैं—

क सकटै गर्व बढायौ।
यह मुनि नृपति हरष मन कीन्हो, तुरतहि बीरा दीन्हौ[१]।

ख. पान लै चल्यौ नृप आन कीन्हौ।
सकट कौ रूप धरि असुर लीन्हौ।

नैकु फटक्यौ लात, सबद भयौ आघात, गिरयौ भहरात सकटा सँहारयौ[२]।

ग. अति बिपरीत तृनावर्त आयौ।
बात-चक्र-मिस व्रज ऊपर परि, नंद-पौरि कै भीतर आयौ।

अंधाधुंध भयौ सब गोकुल, लेत उड्यौ, आकास चढायौ।

मारयौ असुर सिला सौं पटक्यौ, आप चढयौ ता ऊपर भायौ[३]।

घ. महा दुष्ट लै उड्यौ गुपालहि, चल्यौ अकास कृष्न यह जानी।
चॉपि ग्रीव हरि प्रान हरे, [४]।

बीच के एक छंद मे यशोदा को 'विश्व-दर्शन' कराये जाने की कथा 'सारावली' कार ने लिखी है—

इक दिन अस्तन पान करावति जसुमति अति बड़भागी।
बदन पसारि बिस्व दिखरायो छन इक मुरछा जागी[५]॥

इस छंद के दोनो चरणो का आधार 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियाँ जान पड़ती है—

क. गोद लिए हरि कौं नँदरानी, अस्तन-पान करावति है[६]।

ख बदन उघारि दिखायौ त्रिभुवन बन-घन नदी-सुमेर।

१. 'सूरसागर', पद १०-६१।
२. वही, पद १०-६२।
३. वही, पद १०-७७।
४. वही, पद १०-७८।
५. 'सारावली', छंद ४२८।
६. 'सूरसागर', पद १०-७३।

नभ-ससि-रवि मुख भीतर हीं सब सागर-धरनी-फेर।
यह देखत जननी मन व्याकुल, बालक-मुख कहा आई[1]।

ग. अखिल ब्रह्मंड-खंड की महिमा, दिखराई मुख-माँहिं।
... .
कर तै साँटि गिरत नहि जानी, भुजा छाँडि अकुलानी[2]।

घ. बदन पसारि . . ... तीनौं लोक दिखाए[3]।

'सूरसागर' मे मुख में विश्व-दर्शन कराने का प्रसंग दो स्थलों पर वर्णित है—एक, माटी-भक्षण-प्रसंग में और दूसरा, शालग्राम-प्रसंग में। परंतु 'सारावली' कार अपनी स्वतंत्रता दिखलाने के लिए स्तन-पान के समय मुख दिखलाये जाने की अद्भुत कल्पना करता है। आखिर, 'प्रबीन' ठहरा, अपनी प्रवीणता दिखाने का अवसर पाकर भला क्यो चूकने लगा ?

'सारावली' के अगले तीन छंदो मे नामकरण-संस्कार वर्णित है—

गर्गराज मुनिराज महारिषि सो बसुदेव पठायो।
नामकरन ब्रजराज महर घर अति आनंदित आयो॥
नामकरन कीन्हों दोहुन को नारायन सम भाषे।
तुम्हरे दुःख मिटावन कारन पूरन को अभिलाषे॥
राम कृष्ण अवतार मनोहर भक्तनि के हित काज।
बहुतहि काज करैगे तुम्हरे सुनहु महर ब्रजराज[4]॥

यह प्रसंग 'सूरसागर' के तीन पदों मे विस्तार से मिलता है[5]। दोनों में अंतर यह है कि 'सारावली' के गर्गराज वसुदेव के भेजे हुए आये हैं और 'सूरसागर' के पुत्र-जन्म सुनकर स्वयं ही—

(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घर कौ पुत्र-जन्म सुनि आयौ[6]।

१. 'सूरसागर', पद १०-२५३।
२. वही, पद १०-२५५।
३. वही, पद १०-२६२।
४. 'सारावली', छंद ४३०-३१-३२।
५. 'सूरसागर', पद १०-८५ से १०-८७ तक।
६. वही, पद १०-८६।

'सारावली' के आगे के चार छंदो मे 'कागासुर'-वध की कथा इस प्रकार है—

एक दिना पलना हरि पौढे नंद महर के द्वार।
नँदरानी गृह कारज लागी नाहिन लई सँभार॥
कंस नृपति इक असुर पठायो धरेउ काग को रूप।
सम्मुख आय नयन दोउ जोरे देख्यो स्याम को रूप॥
कंठ चाप बहु बार फिरायो पटक्यो नृप के पास।
एक जाम मे बचन कह्यो यह प्रगट भयो तुत्र नास॥
यह कहिकै तनु त्याग कियो उन कंस नृपति के आगे।
भयो उदास सुहात न कुछवै छिन सोवत छिन जागे[1]॥

इस कथा का स्पष्ट आधार 'सूरसागर' का निम्नलिखित पद्यांश है—

काग-रूप इक दनुज धरयौ।
नृप-आयसु लै धरि माथे पर, हरषवंत उर गरब भरयौ।
.. ..

पलना पर पौढे हरि देखे, तुरंत आइ नैननिहि अरयौ।
कंठ चाँपि बहु बार फिरायौ, गहि फटक्यौ, नृप पास परयौ।
तुरत कंस पूछन तिहि लाग्यौ, क्यौ आयौ, नहिं काज करयौ।
बीतै जाम बोलि तब आयौ, सुनहु कंस तब आइ सरचौ[2]।

दोनो उद्धरणो का मिलान करने से भावापहरण और शब्दापहरण, 'सारावली'-कार की दोनो प्रवृत्तियो का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है।

'सारावली' के अगले दो छंदो मे कृष्ण के घुटनो चलने का वर्णन है—

एक दिना ब्रजराज महर जू और जसोदा रानी।
घुटुवन चलत स्याम को देखत बोलत अमृत बानी॥
इततें नंद महर बोलत है उतते जननि बुलावति।
सुंदर स्याम खिलोना कीन्हों हँसि-हँसि मोद बढावति[3]॥

१. 'सारावली', छंद ४३३-४३६।
२. 'सूरसागर', पद १०-५६।
३. 'सारावली', छंद ४३७ ३८।

उक्त वर्णन का आधार 'सूरसागर' की ये पंक्तियाँ हैं—

घुटुरुनि चलत स्याम मनि-आँगन, मात-पिता दोउ देखत री।
.. . .

इततैं नंद बुलाइ लेत है, उततैं जननि बुलावै री।
दंपति होड़ करत आपुस मै स्याम खिलौना कीन्हौ री[1]।

'सारावली' के आगे के दो छंदो में 'चंद-प्रस्ताव' इस प्रकार वर्णित है—

ससि कूँ देखि आर हरि ठानी, कर मनुहार मनावत।
मधु-मेवा-पकवान मिठाई, बिबिध खिलौना लावत॥
कमलनैन कौं महर जसोदा, जल प्रतिबिब दिखावत।
फेरत हाथ चंद पकरन कौं, नाहिन होत लखावत[2]॥

जो 'सूरसागर' मे बहुत विस्तार से वर्णित है[3]। 'सारावली'-कार ने अगले छंद मे 'बूढ़े बाबू' के आने की बात लिखी है—

बूढे बाबू दरसन आये, लाय चंद्रमनि दीनीं।
ताकूँ देख आर सब छाँडी, भोजन की सुधि कीनीं[4]॥

जिसका उल्लेख भी सूरदास के एक चरण में स्वयं मीतल जी ने खोज निकाला है—

बूढौ बाबू नाम हमारौ, 'सूर स्याम' तेरौ जानै[5]।

'सारावली' के अगले छन्द मे कनक-कटोरे में स्याम को दूध पिलाये जाने का वर्णन है—

औट्यौ दूध कपूर मिलायौ, प्यावत कनक-कटोरे।
पीवत देखि रोहनी-जसुमति, डारत है तृन तोरे[6]॥

१. 'सूरसागर', पद १०-६८।
२. 'सारावली', छंद ४३६-४०।
३. 'सूरसागर', पद १०-१८८ से १०-१६६।
४. 'सारावली' छंद ४४१।
५. 'सूर-निर्णय', पृ० ११६।
६. 'सारावली', छंद ४४२।

यह प्रसंग 'सूरसागर' में भी मिलता है[1], यद्यपि कपूर मिलाये जाने की चर्चा उसमें नही हैं।

'सारावली' के आगे के दो छन्दो में माखन-चोरी का सर्वथा निरर्थक और निर्जीव वर्णन है—

कछु दिन भये संग दोउ बालक, बल-मोहन दोउ भाई।
चोरी करत, हरत दधि-माखन, लीला कहिय न जाई॥
सब व्रज-नारि उराहन आईं, व्रजरानी के आगे।
मै नाहिन दधि खायौ याकौ, सिसु ह्वै रोवन लागे[2]॥

इस प्रसंग को लेकर 'सूरसागर' में अनेक पद लिखे गये हैं[3] जिनको उक्त वर्णन की तुलना के लिए उद्धृत करना अनावश्यक है।

तीन छन्दो मे 'सारावली'-कार ने 'माटी भक्षण-प्रसंग' लिखा है—

एक दिना व्रजपति की पौरी, खेलत हरि व्रज-बाल।
माटी खाय बदन दिखरायौ, चंचल नैन बिसाल॥
सकल ब्रह्माड बदन मै देख्यौ, व्रजमडल-पाताल।
नंद महर, जसुदा-रोहिनि, पुनि धेनु, सकल व्रज-ग्वाल॥
हृदय ज्ञान उपज्यौ तब जसुमति, पूरन ब्रह्म बिसेखे।
हरि उपजाई माया तब, सब बहुरि पुत्र कर लेखे[4]॥

यह प्रसंग 'सूरसागर' मे भी उसी प्रकार वर्णित है[5] जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है।

'सारावली' के अगले दस छंदो मे उलूखल-बंधन-प्रसंग विस्तार से वर्णित है—

एक दिना दधि मथन करत ही, महर घोष की रानी।
हरि मॉग्यौ माखन नहि दीन्हौं, तब मन मैं रिस ठानी[6]॥

१. 'सूरसागर', पद १०-२२६।
२. वही, पद १०-२३४ से १०-२४० तक।
३. 'सारावली', छंद ४४३-४४।
४. वही, छंद ४४५-४६-४७।
५. 'सूरसागर', पद १० २५३ से १०-२५६ तक।
६. 'सारावली', छंद ४४८।

फोरयौ भाड, दही आँगन मैं फैल परयौ अति भारी ।
दौरी पकर देत नहि मोहन, अति आतुर महतारी ।।
जानी विकल बहुत जननी कौं, हरि पकराई दीनी ।
बहुत दाम लै बाँधन लागी, आँगुर द्वै भई हीनी ।।
व्याकुल भई बँधत नहि मोहन, दया स्याम कूँ आई ।
ऊलख दाम बँधे हरि जाने, गोपी देखन धाई ।।
तौलौं बँधे स्याम दामोदर, जौलौं यह कृति कीन्हीं ।
देख दुखित ह्वै सुत कुबेर के, कृपादृष्टि रति दीन्हीं ।।
नारद मुनि कौ स्राप पायकै, स्याम दई गति ताय ।
निकसे बीच अटक ऊखल मै, स्याम रहे अटकाय ।।
चरन परसि तै पुलक भई भुअ, परे वृच्छ भहराय ।
भयौ सब्द-आघात स्वर्ग लौं, सुनि आये ब्रजराज ।।
अस्तुति कर वे गये स्वर्ग कूँ, अभै हाथ कर दीन्हौं ।
बंधन छोरि नंद बालक कौ, लै उछंग कर लीन्हौं ।।
जसुमत जू सौं लरे महर जू, तुम क्यौं बाँध्यौ दाम ।
गर्ग कह्यौ मो, है नारायन, आये है बल-स्याम ।।
जसुमत माय धाय उर लीन्हे, राई-लौन उतारौ ।
लेत बलाय रोहिनी नीकै, सुंदर रूप निहारौ[१] ।।

यह प्रसंग 'सूरसागर' मे भी विस्तार से लिखा गया है[२] । 'सारावली-कार ने प्रथम दो छन्दो मे उलूखल-बंधन का कितना अद्भुत कारण बताया है ! 'सूरसागर' मे कृष्ण की माखन-चोरी के उलाहनों से खीझी हुई माता जब एक ग्वालिनी को पुत्र का हाथ पकड़े आते देखती है, तब वह इस कार्य मे प्रवृत्त होती हैं । कितनी सूझ-बूझ का स्वाभाविक चित्रण सूरदास के इस पद मे है—

ऐसी रिस मै जौ धरि पाऊँ ।
कैसे हाल करौं धरि हरि के, तुमकौं प्रगट दिखाऊँ ।
सॅटिया लिए हाथ नँदरानी, थरथरात रिस गात ।
मारे बिना आजु जौ छाँडौं, लागै मेरै तात ।

१. 'सारावली', छंद ४४६ से ४५७ ।
२. 'सूरसागर', पद १०-३४१ से १०-३६१ ।

इहि अंतर ग्वारिनि इक औरै, धरे बाँह हरि ल्यावति।
भली महरि सूधौ सुत जायौ, चोली-हार बतावति।
रिस मै रिस अतिही उपजाई, जानि जननि अभिलाष।
सूर स्याम भुज गहे जसोदा, अब बाँधौं कहि माष[1] ॥३४१॥

जो हो, 'सारावली', के वर्णन पर 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदों की स्पष्ट छाप है—

क. जसुमति रिस करि-करि रजु करषै।
सुत हित क्रोध देखि माता कै, मनहीं मन हरि हरषै।
उफनत छीर जननि करि ब्याकुल, इहि बिधि भुजा छुड़ायौ।
भाजन फोरि दही सब डारयौ, माखन कीच मचायौ।
लै आई जेवरि अब बाँधौं, गरब जानि न बँधायौ।
अंगुर द्वै घटि होति सबनि सौं, पुनि-पुनि और मँगायौ।
नारद-साप भए जमलार्जुन, तिनकौं अब जु उधारौं।
सूरदास प्रभु कहत भक्त-हित जनम-जनम तनु धारौं[2] ॥३४२॥

ख. तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ।
जर सहित अरराइ कै, अघात सब्द सुनाइ।
— — —
दुहुँ तरु बिच स्याम बैठे, रहे ऊखल लागि।
— — —
आइ घर जो नंद देखे, तरु गिरे दोउ भारि।
बाँधि राखति सुतहि मेरे, देत महरिहि गारि[3]।

'सारावली'-कार इसी प्रसंग में 'महर जू' के 'जसुमति जू' से 'लड़ने' की बात कहता है और यशोदा की मानसिक स्थिति का द्योतक एक शब्द तक नहीं कहता, हाँ, डाँट खाकर वह इतना अवश्य करती है—

जसुमत माय धाय उर लीन्हे राई-लौन उतारौ[4]।

१. 'सूरसागर', पद १०-३४१।
२. वही, पद १०-३४२।
३. वही, पद १०-३८७।
४. 'सारावली', छंद ४५७।

उधर 'सूरसागर' में मातृ हृदय से परिचित अष्टछापी सूरदास ने यशोदा की मानसिक स्थिति का कितना स्वाभाविक चित्रण किया है, सहृदय ही समझ सकते है—

क. निरखि जसुमति अजिर देखै, बँधे नाहि कन्हाइ ।
बृच्छ दोउ घर परे देखे, महरि कीन्ह पुकार ।
अबहि आँगन छाँड़ि आई, चप्यौ तरु की डार ।
मै अभागिनि बाँधि राखे, नंद-प्रान-अधार ।

— — —

नैन जल भरि ढारि जसुमति, सुतहि कंठ लगाइ ।
जरै रिस जिहि तुमहि बाँध्यौ, लगै मोहि बलाइ ।
नंद सुनि मोहि कहा कहैगे, देखि तरु दोउ आइ ।
मै मरौं, तुम कुसल रहौ दोउ, स्याम हलधर भाइ[१] ।

ख. मोहन हौं तुम ऊपर वारी ।
कंठ लगाइ लिए, मुख चूमति, सुंदर स्याम बिहारी ।
काहे कौं ऊखल सौं बाँध्यौ, कैसी मै महतारी[२] ।

ग. बरै जेवरी जिहिं तुम बाँधे, परै हाथ भहराइ[३] ।

'सारावली' और 'सूरसागर' के उक्त उद्धरणो की तुलना से क्या यह स्पष्ट नही होता कि प्रथम ग्रंथ का रचयिता सर्वथा हृदयहीन व्यक्ति है जिसको मातृ-हृदय क्या, किसी भी हृदय की भावना का कोई परिचय नही है और उसका सारा वर्णन सर्वथा रसहीन सूची-जैसा ही है ? क्या अष्ट-छापी सूरदास की सहृदयता से परिचित कोई भी सहृदय आलोचक कह सकता है कि 'सारावली' का उक्त वर्णन भी 'सूरसागर' के रचयिता का ही हो सकता है ?

'सारावली' के अगले चार छंदों में नंद आदि गोपो के सपरिवार गोकुल से वृंदावन-प्रस्थान का वर्णन है—

बडे गोप उपनंद बुलाये, नंद महर के धाम ।
कीन्हौं मंत्र गोप सब मिलि कै, जेहि बिधि पूरन काम ॥

१. 'सूरसागर', पद १०-३८७ ।
२. वही, पद १०-८८ ।
३. वही, १०-३८६ ।
४. 'सारावली', छंद ४५६

बहु उतपात रहत है गोकुल, नित प्रति कंस पठायौ ।
अंत जाय कहुँ बास करैगे, बालक देव बचायौ ॥
अब बृंदाबन जाय रहैगे, जहाँ बीरुध त्रिन-पानी ।
चले गोप अति ओप बिराजे, बोलत हो-हो बानी ॥
जमुना उतर, आये बृंदाबन, जहाँ सुखद द्रुम राजै ।
गोबर्द्धन--बृन्दाबन--जमुना, सघन कुंज अति छाजै[1] ॥

इस वर्णन का आधार 'सूरसागर' का निम्नलिखित पद्यांश है—

गोकुल होत उपद्रव प्रति दिन, बसिऐ बृंदाबन मैं जाई ।
सब गोपनि मिलि सकटा साजे, सबहिनि के मन मै यह भाई[2] ।

आगे के दो छन्दों में 'सारावली'-कार ने वत्सासुर और बकासुर-वध का वर्णन किया है—

बसे जाय आनंद उमँग सौं, गइयाँ सुखद चरावै ।
आयौ दुष्ट बछासुर जान्यौ, हरि चित बात धरावै ॥
करि बिचार छिन मै हरि मारयौ, सो बछरा बन आज ।
ता पाछै जो बकासुर आयौ, घात कियौ ब्रजराज[3] ॥

यह प्रसंग भी 'सूरसागर' मे मिलता है[4] जिसको यहाँ उद्धृत करने की विशेष आवश्यकता नहीं जान पड़ती ।

'सारावली' के अगले छह छन्दो मे 'ब्रह्म-मोह' या ब्रह्मा द्वारा बाल-वत्स हरण-प्रसंग का बहुत सामान्य वर्णन है—

बच्छ चरावन, बेनु बजावत, गोप सखन के संग ।
सो देखन चतुरानन आये, हरि-लीला रस-रंग ॥
छाकै खात, खवावत ग्वालन, सुंदर जमुना तीर ।
ग्वाल-मंडली मध्य बिराजत, हरि-हलधर दोउ बीर ॥
गाय-गोप और बच्छ सबै बिधि छिन ही मै हरि लीनौ ।
सबकौ रूप भये हरि आपुन, नैक बिलंब न कीनौ[5] ॥

१. 'सारावली', ४६० से ४६२ ।
२. 'सूरसागर', पद १०-४०२ ।
३. 'सारावली', छंद ४६३-६४ ।
४. 'सूरसागर', पद १०-४१० ।
५. 'सारावली', छंद ४६५-४६७ ।

जबही गर्व गयौ बिरंचि कौ, अदभुत चरित्रहि देख।
परौ धाय हरि-पॉय जोरि कर, नाथ कृपाकर लेख ॥
अस्तुति करी बेद बिधि करिकै, चतुरानन बहु भाँति।
अदभुत चरित देखि माधौ कौ, हँसत सकल किलकाति ॥
गये धाम अपने बिधि सुख सौ, हरि आज्ञा सुख पाय।
वर्ष दिवस लौं सर्व रूप हरि ब्रजबासिन सुखदाय[1] ॥

यह प्रसंग 'सूरसागर' के अनेक पदो में बड़ी कुशलता से वर्णित है[2] जिसका आनंद जिज्ञासुजन वहीं से प्राप्त करें तो अच्छा हो ।

'सारावली' के अगले पंद्रह छंदो में कृष्ण की कई लीलाएँ वर्णित हैं जिनमें से कालिय-नाग-नाथन, दावानल-पान, श्याम-श्रृंगार, चीर-हरण, रास-वर्णन, गोवर्द्धन-धारण, धेनुक-प्रलंब और शंखचूड़ का वध, नंद जी को वरुण-पाश से छुड़ाना, व्योमासुर, केशी और अरिष्ट-वध आदि प्रसंग केवल एक-एक छंद में लिखे गये हैं—

धेनु चरावन चले स्याम घन ग्वाल मंडली जोर।
हलधर संग छाक भरि कॉवरि करत कुलाहल सोर ॥
क्रीडा करत आप बृंदाबन धेनु समूह नचावत।
गोबर्धन पर बेनु बजावत फूलनि भेष सवाँरत ॥

× × ×

काली नाग नाथ हरि लाये सुरभी ग्वाल जिवाये।
कनक कमल के बोझ सीस धरि मथुरा कंस पठाये ॥

× × ×

दावाइल को पान कियो मुख गोपनि रच्छा कीनी।
बर्षा सुरितु देख बृँदाबन क्रीड़ा की सुधि लीनी ॥
बेनु बजाय बिलास कियो बन धौरी धेनु बुलावत।
बरहा पीड दाम गुंजा मनि अद्भुत भेष बनावत ॥

× × ×

प्रातकाल अस्नान करन को जमुना गोपि सिधारी।
लैके चीर कदंब चढे हरि बिनवति है ब्रजनारी[3] ॥

१. 'सारावली', छंद ४६८ से ७० ।
२. 'सूरसागर', पद ४३६, ३७, ३८, ८३ से ८६, और ४९२ ।
३. 'सारावली', छंद ४७१ से ७६ ।

× × ×

दै बरदान संग खेलन को सरद रैनि जब आई।
रचि कै रास सबनि सुख दीन्हों रजनी अधिक कराई ॥

× × ×

गोबर्द्धन धरि सब ब्रज राख्यौ मघवा मान मिटायो।
नारायन प्रगटे सब जाने जोइ गर्ग मुनि गायो ॥

× × ×

धेनुक और प्रलंब सँहारे संख-चूड़ बध कीन्हों।

× × ×

करिकै चरन परस प्रभु बन में ब्याल अभय पद दीन्हो ॥

× × ×

नाना बिधि क्रीड़ा हरि कीन्हीं ब्रजबासिनि सुख पायो।
सबहिनि यह माँग्यो बिनती करि हरि बैकुंठ दिखायो ॥

× × ×

अभय दान दीन्हो मघवा को नंदराय को राख्यौ।

× × ×

बरुनलोक मे गये कृपा करि विविध बचन उनि भाख्यो ॥

× × ×

जज्ञ करत बाह्मन मथुरा के ओदन् स्याम मँगायो।
उन नहिं दियो नारि पै पठये तब उन सुनि सुख पायो ॥
षट रस धार सँवारि साज सों सबहीं हरि पै आईं।
कियो मनोरथ पूरन उनको निर्भय करि जु पठाईं ॥

+ + +

ब्योमासुर केसी सब मारे अरु अरिष्ट बध कीन्हो।

+ + +

क्रीड़ा बहुत करी गोकुल में भगतनि को सुख दीन्हो[1] ॥

श्रीकृष्ण की ब्रजलीला के ये ही प्रमुख प्रसंग है जिसको लेकर सूरदास ने 'सूरसागर' में पचासों पद लिखे हैं, अतएव उनके उदाहरण यहाँ देना व्यर्थ ही है। इसी प्रकार 'सारावली' के उक्त छंदों में धेनुक, प्रलंब

१. 'सारावली', छंद ४७७ से ८४।

और शंखचूड़-वध एक छंद के एक चरण में लिखा गया है और व्योमासुर, केसी और अरिष्ट-वध दूसरे छंद के एक चरण मे। ये वर्णन भी सर्वथा निष्प्राण हैं। हाँ, यहाँ हम 'सारावली' की प्रामाणिकता के पोषको से यह अवश्य जानने चाहते हैं कि पिछले छंदो मे जहाँ उसके रचयिता ने अनेक अनावश्यक पौराणिक प्रसंगो को बहुत विस्तार से लिखा है, वहाँ सूरदास के उक्त प्रियतम विषयो का चलताऊ और निष्प्राण वर्णन किस उद्देश्य से किया है ? क्या ये सब छंद भी 'सूरसागर' के ही रचयिता द्वारा रचे गये वे मानते हैं ? क्या उक्त छंदो में सूची प्रस्तुत करने जैसा असफल प्रयास नही है ? और अष्टछाप के परमाराध्य के उक्त निष्प्राण लीला-वर्णन मे किस स्वतंत्र सिद्धांत के प्रतिपादन की झलक उनको दिखायी देती है ?

कितने आश्चर्य की बात है कि श्रीकृष्ण की सारी व्रजलीला उक्त थोड़े से छंदो में समाप्त करके 'सारावली'-कार आगे बढ़ जाता है। इस प्रसंग के अंतिम छह छन्दो मे कंस को नारद द्वारा उत्तेजित किये जाने का वर्णन उसने इस प्रकार किया है—

नारद आय कहेउ नृप सो यह कौन नींद तू सोवै।
तेरो सत्रु प्रगट गोकुल में गुप्त न जानत कोवै॥
यह सब देव प्रगट भये व्रज मे जहँ तहँ ठौरहि ठौर।
उग्रसेन बसुदेव देवकी जादव जे सब और॥
नंद गोप वृषभानु जसोदा सबहि गोप-कुल जानो।
करो उपाय बचो जो चाहो मेरो बचन प्रमानो॥

\+ + +

यह सुनि कंस सबनि को बंधन दीनो है तेहि काल,
श्री बसुदेव देवकी निज पितु बंधन दियो बिसाल॥

\+ + +

फिरि नारद गोकुल हो आवे हरि चरननि सिर नाये।
अस्तुति करी बहुत नाना बिधि मधुरै बीन बनाये॥
हरि कछु इन उत्तर नहिं दीन्हें फिरि गये अपने धाम।
बल मोहन सब सखा बृंद लै क्रीड़त गोकुल ग्राम[1]॥

यह प्रसंग भी 'सूरसागर' में विस्तार से वर्णित है।

१. 'सारावली', छंद ४८५-४९०।

'सारावली' में यहाँ तक श्रीकृष्ण की वह ब्रजलीला वर्णित है जो अष्टछापी कवियों के ही नहीं, समस्त कृष्ण-भक्तो के प्रियतम विषयो मे है। श्रीकृष्ण की बाल-लीला-संबंधी जो पचासो प्रसंग 'सूरसागर' मे हैं, उनको यदि 'सारावली'-कार ने छोड़ दिया है, तो अधिक आपत्ति की बात नही है, परंतु जिस 'सारावली' को, प्रामाणिकता के पोषको ने 'स्वतंत्र सैद्धांतिक रचना' माना है, उसके संबंध मे क्या यह विचारणीय नहीं है कि ब्रजलीला के प्रमुख और आध्यात्मिक अर्थ-गर्भित प्रसंगो मे से अनेक का संक्षिप्त वर्णन और अनेक की सर्वथा उपेक्षा उसमे क्यो की गयी है ? जो कवि राम के बाल-श्रृंगार-वर्णन में दस छन्द लिख सकता है, वह इष्टदेव श्रीकृष्ण के श्रृंगार या रूप-वर्णन के लिए एक पंक्ति भी किस सिद्धांत का प्रतिपादन करने के कारण नही लिखता ? मुरली के संबंध मे 'सारावली' मे एक भी छन्द नही है, राधा का ब्रजलीला मे कही नाम नही है, राधा कृष्ण या गोपी-कृष्ण के संयोग-वर्णन के लिए एक पंक्ति उसमें नही है। श्रीकृष्ण-राधा-विवाह की कवि कल्पना तक नही कर सका है। पनघट-लीला और दान-लीला के संबन्ध में वह संकेत तक नहीं करता। और इनमें से एक दो प्रसंगों को वह पुन: क्यों उठा लेता है जब मुख्य प्रसंग मे उनकी चर्चा तक नहीं की गयी है ? क्या यह दृष्टिकोण अष्टछापी सूरदास का हो सकता है ? जो कवि वात्सल्य और प्रेम-श्रृंगार का अत्यंत विशद और सांगोपांग चित्रण 'सूरसागर' में कर सकता है, वही दूसरी रचना मे इस प्रकार उनको सर्वथा भुला सकता है. और अनेक निरर्थक प्रसंगों का विस्तृत वर्णन कर सकता है ?

इतना ही नहीं, 'सूरसारावली' मे होली के रूपक की प्रमुखता देख कर क्या यह आशा नहीं की जाती कि श्रीकृष्ण की ब्रज-लीला में होली-वर्णन को भी उसका रचयिता विस्तार से लिखेगा ? परंतु कितने आश्चर्य की बात है कि इस विषय में भी 'सारावली'-कार सर्वथा मौन है जब कि 'सूरसागर' में इस विषय के लगभग सौ पद मिलते हैं। जिस निकुंज-लीला के वर्णन को उसने अपने जीवन की चरम सिद्धि समझा और कहा है, उसके संबंध में भी यहाँ वह एक पंक्ति नहीं लिखता। झूलन, मिलन और मान-वर्णन भी 'सारावली' की ब्रज-लीला का अंग नहीं बन पाये हैं। इन सब विषयों की उपेक्षा किस सिद्धान्त की रक्षा के लिए की गयी है ? और क्या इतने पर भी 'सारावली' को 'सूरसागर'-कार की ही स्वतंत्र रचना मानने की बात किसी की सुबुद्धि में आ सकती है ?

'सारावली' के चार सौ इक्यानबे से चौरानबे छंदो की आठ पंक्तियो मे इतने विषयो का वर्णन हुआ है—कंस का अक्रूर को बुलाकर कृष्ण-बलराम को मथुरा लाने का आदेश देना, अक्रूर का 'गोकुल' (?) आना (जब कि नन्द आदि के गोकुल से वृन्दावन चले जाने की बात 'सारावली'-कार पहले लिख चुका है) और नद, बलदेव, रोहिणी तथा यशोदा से मिलना, नंद द्वारा उनका स्वागत-सत्कार किया जाना, सबका भोजन करना और सारा वृत्तांत सुनाकर, कंस के धनुषयज्ञ का सबको निमन्त्रण देना—

बोल अक्रूर कंस यह भाष्यौ, सुन सुफलक-सुत बात ।
राम कृष्ण कौ लाओ मधुपुरी, बिलब करौ जिन जात ॥
तब रथ बैठि चले सुफलक-सुत, संध्या गोकुल आये ।
पैडे मै हरि-चरन धूरि लै, अपने अंग लगाये ॥
मिले नंद, बलदेव, रोहिनी, और जसोदा रानी ।
पूजा करि, पधराय सदन मै, भोजन की बिधि ठानी ॥
भोजन करि अक्रूर जो बैठे सब वृत्तांत सुनाये ।
धनुष-जज्ञ कीन्हौ नृप जू ने, सब कूँ बेगि बुलाये[1] ॥

'सूरसागर में भी यह प्रसंग विस्तार से वर्णित है[2] जिसको उक्त संक्षिप्त विवरण की तुलना में उद्धृत करना सर्वथा निरर्थक है। और अगले ही छंद मे 'सारावली'-कार लिखता है।

चले महर ब्रजराज सौंज लै, कौतुक देखन आज ।
राम-कृष्न दोउ आगे लैकै, सकल घोष सिरताज[3] ।

कैसा कविजनोचित वर्णन है! व्रज के पेड़-पौधो ने, व्रज के पशु पक्षियो ने, व्रज के ग्वाल-बालों ने, व्रज की स्त्रियो ने, रोहिणी ने, नन्द ने, यशोदा ने, किसी ने, श्रीकृष्ण और बलराम के जाते समय एक शब्द तक नहीं कहा जबकि 'सूरसागर' में इस प्रसंग का अत्यंत मार्मिक वर्णन लगभग तीस पदों में मिलता है[4]। राधा और उसकी सखियों की तो 'सारावली'-कार ने आज तक कोई चर्चा ही नहीं की है, अतएव वे तो

१ 'सारावली', छंद ४९१-४९४ ।
२. 'सूरसागर', पद १०-२९३९ से १०-२९६५ ।
३. 'सारावली', छंद ४९५ ।
४ 'सूरसागर', पद १०-२९५९ से १०-२९९० ।

कृष्ण-बलराम के जाते समय कर ही क्या सकती थीं, अन्य सभी परिचितो, संबंधियो, यहाँ तक कि माता यशोदा ने भी उन्हें इस तरह विदा कर दिया जैसे वे पिता के साथ मेला देखने जा रहे हो। क्या यही स्वतंत्र रचना है? इस हृदय-हीनता का समर्थन क्या किसी भी सिद्धांत के द्वारा किया जा है? क्या इस पर भी 'सारावली' को अष्टछापी सूरदास की रचना कहा जा सकता है?

आगे के दो छंदों में 'सारावली-कार ने ब्रजवासियों मथुरा-यात्रा का वर्णन किया है—

मारग मै कालिंदी के तट, कीन्हौं जल-असनान।
निज बैकुंठ दिखायौ जल मै, दीन्हौ पूरन ज्ञान॥
करि बदन हरि के चरनन कौ, पुन अक्रूर यह भाख्यौ।
तुम जदुकुल प्रगटे पुरुषोत्तम, भक्तन कौ प्रन राख्यौ[1]॥

यह प्रसंग 'सूरसागर के निम्नलिखित पदांशों मे वर्णित है—

क. सुफलक-सुत दुख दूरि करयौ।
जमुना-तीर कियौ रथ ठाढौ आपुहि प्रगट हर्यौ।
तिनहि कहयौ, तुम स्नान करौ ह्यॉ .. .. [2]।

ख. सुनत अक्रूर यह बात हरषे।
आपु असनान कौ नीर परसे।
गए कटि नीर लौं नित्य संकल्प करि, करत अस्नान इक भाव देख्यौ।
जैसेइ स्याम-बलराम स्यंदन चढे, वहै छवि कुंभ-रस मॉझ देख्यौ।
चक्रित भए कबहुँ तीर पुनि जल निरखि, धोष अक्रूर जिय भयौ भारी।
सूर-प्रभु चरित मै थकित अतिही भयौ, तहाँ दरसि नित थल-बिहारी[3]।

ग. बार-बार मोसौं कह बूझत, तुम परब्रह्म गुसाइं।
तुम हरता-करता एकै हौ, अखिल भुवन के साइँ[4]।

आगे के दस छंदों में श्रीकृष्ण का मथुरा पहुँचना 'सारावली'-कार इस प्रकार लिखता है—

१. 'सारावली', छंद ४८६-४८७।
२. 'सूरसागर', पद १०-३०१४।
३. वही, पद १०-३०१५।
४. वही, पद १०-३०१६।

मथुरा आय रहे उपबन मै, नंदराय सब गोप।
राम-कृष्ण के चरन-परस तै, अधिक मधुपुरी ओप ॥
गये नग्र देखन कौं मोहन, बलदाऊ लै साथ।
पुर-कुलबधू झरोखा झाँकत, निरखि-निरखि मुसक्यात ॥

× × ×

पैंड़े मै इक रजक सँहार्यौ, सबहि बसन हरि लीन्हे।
बालक मिले, सबहि पहिराये, सबहिन कौं सुख दीन्हे ॥

× × ×

आगै मिल्यौ सुदामा माली, फूल-माल पहिराई।
निरभै दान दियौ हरि तिनकौं, अबिचल भक्ति दृढाई ॥

× × ×

कुबिजा घसि चंदन लै आई, मारग देखन आई।
हरि माँग्यौ उन लै जु समर्प्यौ, मनबांछित फल पाई ॥

× × ×

दियौ बरदान भवन आवन कौं, तहाँ तै चले कन्हाई।
मथुरा नग्र देखि मनमोहन, फूले है दोउ भाई ॥
रीझत नारि कहत मथुरा की, आपुस मै दै सैन।
कोमल गात कौन कौ ढोटा, सुंदर राजिबनैन ॥
यह बालक सुकुमार सरस बपु, असुर प्रबल अति भारी।
कैसे कै वाकौ मारैगे, सोचत है पुर-नारी ॥

× × ×

उपबन आय कियौ हरि ब्यारू, नंदराय सुख दीनौं।
मधु-मेवा पकबान-मिठाई, जो भायौ सो लीनौं[1] ॥

यह सारा वर्णन 'सूरसागर' के निम्नलिखित वर्णन से मिलता-जुलता है–

क. हरि कह्यौ, चलौ मथुरापुरी देखिऐ, सहित अक्रूर मुनि तहाँ आए।
सूर प्रभु कियौ बिश्राम निसि बसि तहाँ, बोधि अक्रूर निज गृह पठाए[2]।

ख नंद महर के सुत दोउ सुनिकै नारिनि हर्ष भर्यौ।

१. 'सारावली', छंद ४६८ से ५०६।
२. 'सूरसागर', पद १०-३०३३।

कोउ महलनि पर, कोउ छज्जनि पर, कुल-लज्जा न करयौ[१] ।

ग रजक मारि हरि प्रथम हीं, नृप-बसन लुटाए ।
रंगरंग बहु भाँति के गोपनि पहिराए[२] ।

घ. पुनि सुदामा कह्यौ, गेह मम अति निकट, कृपा करि तहाँ हरि चरन धारे ।
धोइ पद-कमल पुनि हार आगैं धरे, भक्ति दै, तासु सब काज सारे ।
लिए चंदन बहुरि आनि कुबिजा मिली, स्याम अँग लेप कीन्हौ बनाई ।
रीझि तिहि रूप दियौ, अंग सूधौ कियौ, बचन सुभ भाखि निज गृह पठाई[३] ।

ङ. ढोटा कौन कौ यह री ?
— — — — — — ।
घनतन स्याम, कमल-दल लोचन, चारु चपल तुल री[४] ।

च. बल समेत नृप कंस बुलाए, रचे रंग-रन अति भारे री ।
सूर असीस देति सब सुंदरि, जीवहि अपनी माँ-प्यारे री[५] ।

छ. निरदय यह कंस इनहि चाहत है मारे ।
कहाँ मल्ल कहाँ अतिहि कोमल ये भारे[६] ।

'सारावली'-कार ने उक्त छंदों में केवल एक बात नयी कही है जो 'सूरसागर' में नहीं है और वह यह है—

गए नग्र देखन कौं मोहन बलदाऊ लै साथ[७] ।

'सारावली'-कार की इस 'स्वतंत्र कल्पना' का कारण है उसके मस्तिष्क में राम का लक्ष्मण को साथ लेकर नगर देखने जाना और इसीलिए वह भूल गया कि कंस का महल नगर के बीच में था, उसके बाहर नहीं और अपने विश्रामालय तक उनके जाते समय ही सैकड़ों नर-नारियों

१. 'सूरसागर', पद १०-३०२५ ।
२. वही, पद १०-३०४२ ।
३. वही, पद १०-३०४७ ।
४. वही, पद १०-३०२६ ।
५. वही, पद १०-३०३१ ।
६. वही, पद १०-३०६५ ।
७ 'सारावली', छंद ४६६ ।

के नेत्र उनके दर्शन करके सफल हो गये होंगे। इस प्रसंग में अन्तिम छंद में भी उसने एक साधारण कल्पना की है—

पौढे जाइ दोउ सेज्या पर, सोवत आई निंद।
सुपने मै मथुरा फिर देखी, जागे बाल-गोविद[1]।

'सारावली' के पॉच सौ आठवें से तेइसवें छंद तक श्याम-बलराम आदि का कंस की सभा में जाना और कुबलिया हाथी के साथ-साथ अनेक मल्लो का मारा जाना वर्णित है। ये सब बातें 'सूरसागर के निम्नलिखित पदांशों मे वर्णित हैं—

क धनुषसाला चले नंदलाला।
सखा लिए संग प्रभु रंग नाना करत ... [2]।
ख. कंस एक तहँ असुर पठायौ, यहै कहत वह आयौ।
बनै धनुष तोरै अब तुमकौ, पाछै निकट बुलायौ।
बालक देखि गहन भुज लाग्यौ, ताहि तुरत हीं मारयौ
तोरि कोदंड मारि सब जोधा, तब बल-भुजा निहारयौ[3]।
ग सुनिहि महावत बात हमारी।
बार-बार संकर्षन भाषत, लेत नहि ह्याँ तैं गज टारी।[4]
घ. तब रिस कियौ महावत भारि।
जौ नहि आज मारिहौं इनकौ, कंस डारिहै मारि।
अंकुस राखि कुभ कर करष्यौ, हलधर उठे हँकारि।
धायौ पवनहुँ तैं अति आतुर, धरनी दंत खँभारि।
तब हरि पूँछ गही दच्छिन कर कँदुक फेरि सिर बारि।
पटक्यौ भूमि, फेरि नहि मटक्यौ, लीन्हौ दंत उपारि[5]।
ङ. स्याम चानूर, बलबीर मुष्टिक भिरे, सीस सौं सीस, भुज भुज मिलावैं।
वै उन्हैं गहत वै दौरि उनकौं, करत बल छल नहीं दाँव पावै।
धरि पछारयौ दुहूँ वीर दुहूँ मल्ल कौं .... [6]

१. 'सारावली', छंद ५०७।
२. 'सूरसागर', पद १०-३०४७।
३. वही, पद १०-३०४९।
४. वही, पद १०-३०४६।
५. वही, पद १०-३०५८।
६. वही, पद १० ३०७२।

च. मल्ल जे जे रहे सबै मरि तुरंत, असुर जोधा सबै तेउ सँहारे ।[1]

छ. मल्ल सुभट परे भगार, कृष्म कैं रिसाने[2] ।

ज. मल्ल पछारि असुर सँहारे, तुरत सबनि सुरलोक दियौ[3] ।

'सारावली' के इस प्रसंग के छंदों मे तीन बातें ऐसी हैं जो 'सूरसागर' में नहीं मिलती। पहली इस प्रकार है—

गये ब्रजराज द्वार भूपति के बहु उपहार दिवाये।
तब नृप कह्यो सकल गोपनि सों भली करी तुम आये।।
बैठारे सब मंच ओप सों कौतुक देखन लागे।
राम-कृष्न सँग ग्वाल मंडली नगर देखि अनुरागे[4] ।।

अर्थात् नंद जी ने कंस को उपहार आदि भेंट किये और उसने सब स्वीकार कर उनको उचित आसन आदि दिये। दूसरी बात इस प्रकार है—

जब उन कह्यौ मल्ल क्रीड़ा तुम करत गोप के संग।
बृंदाबन मे हम सुनियत है क्रीड़त हौ बहुरंग।।
कह्यो चानूर मुष्टि सब मिलि कै जानत हौ सब जीके[5] ।

अर्थात् कंस ने कृष्ण-बलराम से कहा—मैंने सुना है कि वृन्दावन मे तुम लोग मल्लक्रीड़ा करते हो, जरा हमे भी कुछ करतब दिखाओ। ये दोनों बातें सामान्य कथावाचकों के प्रवचनो से ली गयी जान पड़ती हैं जो अपनी बात रोचकता से कहने मे सदा कुशल होते हैं। तीसरी बात है श्रीकृष्ण और बलराम को सभा में अनेक व्यक्तियो द्वारा अपने अपने भाव के अनुसार इस रूप में देखना—

बड़े-बड़े राजा सब बैठे अरु पुरबासी लोग।
अपने-अपने भाव सु देखत मिट्यो सकल मन सोग।।
मल्लनि सबनि मल्ल-से दीखे नृपनि लगे नृप राय।
जुवतिनि सबै काम बपु देखे भेंटन को ललचाय[6] ।।

१. 'सूरसागर', पद १० ३०७३।
२. वही, पद १०-३०७७।
३. वही, पद १०-३०८०।
४. 'सारावली', छंद ५०९-१०।
५. वही, छंद ५१९-२०।
६. वही, छंद ५१४-१५।

गोपनि सखा भाव करि देखे दुष्ट नृपति कृत दंड।
पुत्र भाव बसुदेव देवकी देखे नित्य अखंड॥
बिदुष जननि बिराट प्रभु दीखे अति मन मे सुख पायो।
पूरन तत्व देखि जोगीजन हित सो ध्यान लगायो॥
जदुकुल के कुल दीपक प्रगटे सब यादव सुखदाई।
कंस देखि निज काल आपनो बहुतहि क्रोध रिसाई[1]॥

इस वर्णन की प्रेरणा या तो 'सारावली-कार को 'सूरसागर' की इस पंक्ति से मिली होगी—

चितये मल्ल नंद-सुत कोधा, काल-रूप ब्रजांगी जोधा[2]।

जिसको उसने विस्तार दिया है, या गोस्वामी तुलसीदास के 'मानस' का निम्नलिखित प्रसंग उसके सामने रहा होगा—

जिन्ह के रहीं भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।
देखहि रूप महा रन धीरा। मनहुँ बीर रस धरें सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी।
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुरबासिन देखे दोउ भाई। नर-भूषन लोचन सुखदाई।

नारि बिलोकहि हरषि हियँ निज-निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिगार धरि, मूरति परम अनूप।

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख पग कर लोचन सीसा।
जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहि जैसें।
सहित बिदेह बिलोकहि रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी।
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा। सात सुद्ध सम सहज प्रकासा।
हरि-भगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता।
रामहि चितव भार्यं जेहि सीया। सो सनेह सुख नहि कथनीया।
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि सोऊ।
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि सम देखेउ कोसलराऊ[3]।

१. 'सारावली', छंद ५१६-१८।
२. 'सूरसागर', पद १०-३०७०।
३. 'रामचरितमानस' बालकाड, दोहा २४१-४२।

परंतु-गोस्वामी जी जसी विराट् कल्पना 'सारावली-कार को कहाँ नसीब है? इसीलिए इसके छंद उक्त वर्णन के सामने सर्वथा निष्प्राण हैं। और तो और, कल्पना की झोंक मे 'सारावली'-कार यह भी भुला देता है कि बंदीगृह मे पड़े हुए वसुदेव और देवकी राजसभा मे कैसे पहुँच गये जो उन्हें श्याम बलराम के, पुत्र-भाव से नहीं, 'नित्य अखंड-रूप से अद्भुत दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया जबकि केवल अट्ठाइस छंद पहले ही वह कह चुका है—

यह सुनि कंस, सबन कौ बंधन दीनौ है तेहि काल।
श्रीबसुदेव-देवकी, निज पितु, बंधन दियौ बिसाल[1]।

और आगे, केवल तेरह छंद पश्चात् ही पुनः लिखता है—

बंधन छोर पिता-माता के अस्तुति कर सिर नायौ[2]।

अतएव हमें तो यह आशा नहीं होती कि गोस्वामी तुलसीदास के 'मानस' का उक्त प्रसंग 'सारावली'-कार ने स्वयं देखा या पढा होगा। हाँ, यह अवश्य संम्भव है कि किसी कथावाचक ने 'श्रीमद्भागवत' में प्राय: इसी प्रकार का वर्णन पढ़कर[3] अपने प्रवचन में वैसा कहा हो जिससे 'सारावली'-कार को अपनी रचना मे, लगभग उन्हीं शब्दों म, उसका समावेश करने की प्रेरणा मिली हो, अस्तु।

'सारावली' के आगे के पॉच छंदों मे 'कंस-वध' इस प्रकार वर्णित है—

तब नृप कंस बहुत बिललायो बार-बार रिसयाई।
बॉधो नंद हरो गोपनि धन कीन्हों कपट दुराई[4]॥

१. 'सारावली', छंद ४८८।
२. वही, छंद ५२६।
३. मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्,
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां,
वृष्णीनं परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः।
'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अध्याय तेंतालीस, श्लोक १७।
४. 'सारावली', छंद ५२४।

फागुन बदि चौदस को सुभ दिन अरु रबिबार सुहायो।
नखत उत्तरा आप बिचारेउ काल कंस को आयो ॥
यह कहि कूदि गये हरि ऊपर जहँ बैठे नृपराय।
हरि को देखि खड्ग कर लीन्हो सम्मुख आयो धाय ॥
तब हरि केस पकरि अपने कर धरनी मॉझ पछारो।
ऊपर गिरे आपु तिहुँ पुर कौ बोझ सीस पर डारो ॥
कच गहि आपु बहुत वह खैच्यो हरि जमुना लौं आये।
करि बिस्राम सकल स्रम बीत्यो जब जमुना जल न्हाये[1] ॥

यह प्रसंग 'सूरसागर' में इस प्रकार मिलता है—

क. रंग महलनि खरे, कहा रे तुम करौ, ढाल कर खड्ग तहँ लै चलावै[2]।

ख. भले रे नंद के छोहरा डर नहीं, कहा जो मल्ल मारे बिचारे।
बार ही बार दै हॉक गए कहॉ अब, आपुनै सम असुर ते हँकारे।
पौरि गाढी करौ, द्वार बीरनि कहे, आपु दलकारि मुख गारि दैकै[3]।

ग. जाइ पहुँचे तहॉ कंस बैठ्यौ जहॉ, गए अवसान प्रभु के निहारे।
ढाल तरवारि आगैं धरी रहि गई, महल कौ पंथ खोजत न पावत।
लात कै लगत सिर तै गयौ मुकुट गिरि, केस गहि लै चले हरि खसावत[4]।

घ. धमकि मार्यौ घाव, गुमकि हिरदै रह्यौ, झमकि गहि केस लै चले ऐसे।
ठेलि हलधर दियौ, झेल तब हरि लियौ, महल के तरै, धरनी गिरायौ[5]।

ङ. तुरत मंच तै धरनि गिरायौ। ऐसेहि मारत बिलँब न लायौ।
केस गहे पुहुमी घिसटायौ।डारि जमुन के बीच बहायौ[6]।

'सारावली' के, उक्त प्रसंग के पॉचो छंदो में दो नयी बातें कहीं गयी हैं—एक तो यह कि उसके रचयिया ने कंस के वध की तिथि का उल्लेख कर दिया है। यह तिथि-गणना 'सारावली'-कार का स्वभाव है

१. 'सारावली', छंद ५२५-५२८।
२. 'सूरसागर', पद १०-३०७५।
३. वही, पद १०-३०७६।
४. वही, पद १०-३०७८।
५. वही, पद १०-३०७९।
६ वही, पद १०-३०९५।

अत. उसके न देने मे ही आश्चर्य था, देने मे नहीं। दूसरी बात अन्तिम छंद मे मिलती है—

करि बिस्राम सकल स्रम बीत्यौ, जब जमुना-जल न्हाये[1] ।

कंस को मारकर यमुना मे स्नान को बात तो किसी सीमा तक समझ मे आ सकती है, परन्तु जिन श्रीकृष्ण को 'सारावली'-कार अपने ग्रंथ के आदि से सैकड़ो बार 'परब्रह्म' कह चुका है, उनका श्रम स्नान और विश्राम द्वारा दूर होने की बात उसको खूब सूझी! धन्य है उसकी यह स्वतन्त्र सिद्धान्त-स्थापना!

आगे के दो छंदो मे 'सारावली'-कार ने वसुदेव-देवकी के बंधन 'छोरे' जाने का सर्वविदित वर्णन किया है जिसके साथ ही कृष्ण यह भी कह देते हैं कि यशोदा और नंद ने मुझे बहुत आनद दिया, परंतु मै उनकी टहल नही कर पाया—

बंधन छोरि पिता माता के अस्तुति करि सिर नायो।
तुम हमको पठये गोकुल मे याते लाड़ लड़ायो॥
जसुमति मात और ब्रजपति जू बहुतहि आनँद दीनो।
याते टहल करन नहि पायो कहत स्याम रँग भीनो[2] ॥

इसके बाद के छंद मे 'सारावली' के कृष्ण-बलराम बिना उग्रसेन के बंधन 'छोरे' और उनको गद्दी पर बैठाये ही आकर नंद से कहते हैं—

तब ब्रजराज महर पै आए, बल-मोहन दोउ भाई।
तुम्हरी कृपा कंस मै मारौ, कहाँ लौं करौं बडाई[3] ।

नंद जी ने इस कृतज्ञता-प्रकाश या विनम्रता का क्या अर्थ निकाला, यह तो हम नही जानते, परंतु 'सारावली'-कार का उक्त कथन से स्पष्ट संकेत है कि अब आप वृंदावन पधारिए, धन्यवाद! और सचमुच सारे ब्रजवासी नंद जी के साथ, हिल-मिलकर (अर्थात् श्रीकृष्ण बलराम के व्यवहार का बखान करके अत्यंत प्रसन्न होकर) नंदग्राम को चल दिये—

१. 'सारावली', छंद ५२८।
२. वही, छंद ५२६-३०।
३. वही, छंद ५३१।

हिलमिल चले सकल ब्रजवासी, नंदग्राम फिरि आयौ[१]।

'सूरसागर' का रचयिता ही नहीं, कृष्ण-लीला मे जरा भी रुचि रखने वाला व्यक्ति क्या इस प्रकार की हृदयहीनता की कल्पना कर सकता है ? और क्या यह निष्प्राण वर्णन नहीं सूचित करता कि 'सारावली'-कार के पास न कवि का हृदय है और न भक्त का ही ? उसकी यह क्षुद्रतम निष्ठुरतापूर्ण हृदयहीनता देखिए और उससे मिलाइए 'सूरसागर' कार के वे पंद्रह पद[२] जिनमे नंद-विदा का ऐसा मार्मिक चित्र है जिसे देखकर किसी भी सहृदय के नेत्र सजल हो जायँगे। यहाँ उनमें से कुछ पदांश उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा—

क. संकित नंद त्रास बानी सुनि बिलँब करत यह क्यौं न चलैं[३]।

ख. मोकौं तुम अति सुख दियौ, सो कहा बखानो।
मथुरा नर-नारी सुनैं, ब्याकुल ब्रजबासी[४]।

ग. निठुर बचन जनि कहौ कन्हाई। अतिहीं दुसह सह्यौ नहि जाई ॥
तुम हँसि कै बोलत ये बानी। मेरै नैन भरत है पानी ॥
अब ये बोल कबहुँ जनि बोलौ। तुरत चलहु ब्रज आँगन डोलौ ॥
पंथ निहारति जसुमति ह्वैहै। धाइ आइ मारग मै लैहै ॥
तब नंदहि हलधर समुझावत। कछु करि काज तुरत ब्रज आवत ॥
जननि अकेली ब्याकुल ह्वैहै। तुमहि गएँ कछु धीरज लैहै ॥
बहुत कियौ प्रतिपाल हमारौ। जाइ कहाँ उर ध्यान तुम्हारौ ॥
ब्याकुल होन जननि जनि पावै। बार बार कहि कहि समुझावै ॥
ब्याकुल नंद सुनत यह बानी। डसी मनौ नागिनी पुरानी ॥
ब्याकुल सखा गोप भए ब्याकुल। अंतक-दसा भए भय-आकुल ॥
सूर स्याम सुख निरखत ठाढ़े। मनौ चितेरे लिखि सब काढ़े[५] ॥

१. 'सारावली', छंद ५३३।
२. 'सूरसागर', पद १०-३११३ से १०-३१२७ तक।
३. वही, पद १० ३११३।
४. वही, पद १०-३११४।
५. वही, पद १०-३११५।

घ. गोपालराइ हौ न चरन तजि जैहौं।
तुमहि छाँड़ि मधुबन मेरे मोहन, कहा जाइ ब्रज लैहौं ॥
कैहौ कहा जाइ जसमति सौं, जब सन्मुख उठि ऐहै।
प्रात समय दधि मथत छाँडि कै, काहि कलेऊ दैहै।
बारह बरस दियौ हम ढीठौ, यह प्रताप बिनु जाने।
अब तुम प्रगट भए बसुद्यौ-सुत गर्ग बचन परमाने ॥
रिपु हति- काज सबै कत कीन्हौ कत आपदा बिनासी।
डारि न दियौ कमल कर तै गिरि, दबि मरते ब्रजवासी ॥
बासर संग सखा सब लीन्हे, टेरि न धेनु चरैहौ।
क्यौं रहिहै मेरे प्रान दरस बिनु, जब संध्या नहिं ऐहौ ॥
ऊरध स्वाँस चरन गति थाकी, नैन नीर भरहाइ।
सूर नंद बिछुरत की बेदनि, मो पै कही न जाइ[1] ॥

ङ. सूर स्याम के निठुर बचन सुनि, रहे नैन जल छाइ[2]।

यह सुनि भए ब्याकुल नंद।
निठुर बानी कही जब, परि गए दुख फंद ॥
निरखि मुख मुख रहे चक्रित, सखा अरु सब गोप।
चरित ए अक्रूर कीन्हे, करत मन मन कोप ॥
धाइ चरननि परे हरि कैं, चलहु ब्रज कौं स्याम[3]।

छ. (मेरे) मोहन तुमहि बिना नहि जैहौ।
महरि दौरि आगे जब ऐहै, कहा ताहि मै कैहौं ॥
माखन मथि राख्यौ ह्वै है, तुम हेत, चलौ मेरे बारे।
निठुर भए मधुपुरी आइ कै, काहै असुरनि मारे ॥
सुख पायौ बसुदेव देवकी, अरु सुख सुरनि दियौ।
यहै कहत नँद गोप सखा सब, बिदरन चहत हियौ[4] ॥

१. 'सूरसागर', पद १०-३११६।
२. वही, पद १०-३११७।
३. वही, पद १०-३११८।
४. वही, पद १०-३१२०।

ञ. फिरि करि नंद न उत्तर दीन्हौ।
रोम रोम भरि गयौ बचन सुनि, मनहु चित्र लिखि कीन्हौ।।
यह तौ परंपरा चलि आई, सुख दुख लाभऽरु हानि।
हम पर बबा मया किए रहियौ, सुत अपनौ जिय जानि।।
को जलपै काके पल लागै, निरखि बदन सिर नायौ।
दुःख समूह हृदय परिपूरन, चलत कंठ भरि आयौ।।
अध अध-पद भुव भई कोटि गिरि, जौ लगि गोकुल पैठौ।
सूरदास अँस कठिन कुलिस तैं, अजहुँ रहत तनु बैठौ[1]।।

झ. चले नद ब्रज कौं समुहाइ।
गोप सखा हरि बोधि पठाए, सबै चले अकुलाइ।।
काहूँ सुधि न रही तन की कछु, लटपटात परै पाइ।
गोकुल जात फिरत पुनि मधुबन, मन तिन उतहि चलाइ।।
बिरह सिधु मै परे चेत बिनु, ऐसैंहि चले बहाइ।
सूर स्याम बलराम छाँड़ि कै, ब्रज आए नियराइ[2]।।

'सारावली' की प्रामाणिकता के पोषक उक्त प्रसंग जैसे कृष्ण-कथा के किसी भी मर्मस्पर्शी स्थल को 'सूरसागर' से मिलाकर देखें और बतायें कि क्या वे अब भी उसे परम भक्त और भावुक अष्टछापी सूरदास की रचना मानते हैं और यदि हाँ, तो किस स्वतंत्र सिद्धांत का परिचय देने के लिए ऐसे मार्मिक स्थलों का उसमें सर्वथा अस्वाभाविक वर्णन किया गया है ?

नंद के प्रति विनम्र कृतज्ञता प्रकट करने और उनके विदा होने, इन दोनों छंदों के बीच मे एक और छंद 'सारावली' में इस प्रकार है—

रोहिनी यह बोली जसुमति सौं, हम तुम्हरै सुख पायौ।
ज्यौं तुम्हरौ सुत त्यौं मेरौ सुत बहुतहि लाड़ लड़ायौ[3]।

यह रोहिणी बीच में कहाँ से आ टपकी ? वे तो अभी वृंदावन में हैं। उग्रसेन का तिलक हुआ नहीं है, श्रीकृष्ण-बलराम के यज्ञोपवीत का प्रसंग आया नही है, नंद अभी मथुरा से गये नहीं हैं, तब उनको सारी सूचना कैसे मिल गयी और बिना किसी प्रकार का निमंत्रण पाये यशोदा

१. 'सूरसागर', पद १०-३१२५।
२. वही, पद १०-३१२६।
३. 'सारावली', छंद ५३२।

से उक्त वाक्य कहकर मथुरा जाने के लिए विदा वे क्यो माँगने लगीं ? इस प्रकार की कितनी असंगत बातो को 'सारावली'-कार के 'स्वतंत्र सिद्धांत' के नाम पर सहन किया जाना चाहिए ?

आगे के दो छंदों मे उग्रसेन के गद्दी पर बैठाये जाने और मथुरा-वासियों के प्रसन्न होने की कथा है—

हिलि मिलि चले सकल ब्रजबासी नंदगाँव फिरि आयो ।
सुबस बसी मथुरा ता दिन ते उग्रसेन बैठायो ॥
मंगलचार भये घर घर मे मोतिन चौक पुरायौ[1] ।

उसके पश्चात् कवि लिखता है—

तब हरि मात - पिता पर आये, दोउ भाइन सिर नायौ ।
बंधन छोर बिनय बहु कीन्हे, तुम हम बिन दुख पायौ[2] ।

यह 'बंधन छोरने' की बात फिर कहाँ से आ गयी ? क्या छह छंद पहले 'बंधन छोरे मात पिता के' लिखकर केवल उनको सांत्वना दी गयी थी कि घबराना मत, हम आ गये हैं और जब उग्रसेन गद्दी पर बैठ जायँगे, पुरवासी मंगलचार मनाने लगेंगे, तब आकर तुम्हारे बंधन 'छोरेंगे' ? 'सारावली' की प्रामाणिकता के समर्थक खोज करें कि इस प्रकार की कितनी असावधानियाँ 'सूरसागर' के उन पचासो पदो में कितना श्रम करने पर मिलती हैं जिनका विषय एक है, जिनका क्रम एक है और जिनकी शैली एक है ।

पाँच सौ सैंतीसवें पद से श्रीकृष्ण की शिक्षा का वर्णन 'सारावली'-कार ने किया है जो छह छंदों मे है—

गर्ग बुलाय बेद-बिधि कीन्हीं सुभ उपबीत करायो ।
बिद्या पढन काज गुरु गृह दोउ पुरी अवंति पठायो ॥
राजनीति मुनि बहुत पढाई गुरु सेवा करवाये ।
सुरभी दुहत दोहिनी माँगी बाँह पसारि देवाये ॥
गुरु-दच्छिना देन जब लागे गुरु-पत्नी यह माँग्यो ।
बालक बह्यो सिंधु मे हमरो सो नित प्रति चित लाग्यो[3] ॥

१. 'सारावली', छंद ५३३ ३४ ।
२. वही, छंद ५३५ ।
३. वही, छंद ५३७-३६ ।

यह सुनि स्याम-राम दोऊ मिलि गये जलधि के बीच ।
पंचानन जू संख तहँ लीन्हों मारि असुर अति नीच ॥
जमपुर जाय संख धुनि कीन्ही जम राजा चलि आयो ।
चरन धोय चरनोदक लीन्हों बालक दै सिर नायो ।
लै बालक गुरु आगे धरि कै राम कृष्न सुख रासी ।
आज्ञा लै मधुपुरी सिधारे परब्रह्म अबिनासी[1] ॥

'सूरसागर' मे यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित है—

क. बसुद्यौ कुल-ब्यौहार बिचारि ।
हरि-हलधर कौ दियौ जनेऊ, करि षटरस ज्यौनारि[2] ।

ख. अंतरजामी कुँवर कन्हाई ।
गुरु-गृह पढत हुते जहँ विद्या .. . .।
गुरु सौं कह्यौ जोरि कर दोऊ, दछिना कहौ सो देऊँ मँगाई ।
गुरु पतिनी कह्यौ, पुत्र हमारे मृतक भए सो देहु जिवाई ।
आनि दिए गुरु-सुत जयपुर तै, तब गुरुदेव असीस सुनाई[3] ।

'सारावली' के उक्त छंदो में 'सूरसागर' से जो बातें अतिरिक्त मिलती हैं, वे सभी बहुत सामान्य हैं। अगला छंद भी निरर्थक है—

क्रीड़ा करत बिबिध मथुरा में अक्रुर भवन सिधारे ।
अस्तुति करी बहुत नाना बिधि निर्भय करि सिर धारे[4] ॥

दूसरे छंद मे 'कुबिजा' की बात एक चरण में कही गयी है—

कुबिजा के घर आप पधारे, सबै मनोरथ कीनौ[5] ।

'सूरसागर' मे यह सारा प्रसंग आठ पदो में वर्णित है[6] जिनको उक्त पंक्ति की तुलना के लिए उद्धृत करना सर्वथा निरर्थक है ।

'सारावली' के अगले नौ छंदो में श्रीकृष्ण उद्धव को एकांत में व्रज-वासियों से अपना संबंध बताते और उनके लिए पत्र के साथ मौखिक संदेश भी देकर 'बेगि' ही व्रज जाने की आज्ञा देते हैं—

१. 'सारावली', छंद ५४०-४२ ।
२. 'सूरसागर', पद १०-३०६३ ।
३. वही, पद १०-३४११ ।
४. 'सारावली' छंद ५४३ ।
५. वही, छंद ५४४ ।
६. 'सूरसागर', पद १०-३१०० से १०-३१०७ ।

उद्धव भक्त बुलाय संग लै हरि एकात यह भाख्यो ।
ब्रज-वासी लोगनि सों मै तो अंतर कछु नहि राख्यो ॥
सुर गुरु सिष्य बुद्धि मे उत्तम जदुकुल कहत प्रमान ।
मंत्री भृत्य सखा मो सेवक याते कहत सुजान ॥
मोकूँ लाड़ लड़ायो उन जो कहँ लगि करौ बडाई ।
सुनि ऊधो तुम समझत नाहिन अब देखोगे जाई ॥
बेग जाव ब्रज मो आज्ञा तें ब्रज बासिनि सुख देहौ ।
चरन-रेनु सिर धरि गोपिनि की तुमहुँ अभय पद लेहौ ॥
गोपिनिसो बिनती करि कहियो नितप्रति मन सुधि करियो ।
बिरह-व्यथा बाढ़ै जब तनुमे तब-तब मोहि चित धरियो ॥
पाती लिखी आप कर मोहन ब्रजबासी सब लोग ।
मात जसोदा पिता नंद जू बाढ़ो बिरह बियोग ॥
धौरी धूमरि कारी काजरि मैन मँजीठी गाय ।
ताको बहुत राखियो नीके उन पोष्यो पय प्याय ॥
बन मे मित्र हमारो इक है हमहीं सो है रूप ।
कमल नयन घनस्याम मनोहर सब गोपनि को भूप ॥
ताको पूजि बहुरि सिर नइयो अरु कीजो परनाम ।
उन हमरो ब्रज सबहि बचायो सब बिधि पूरे काम[1] ॥

उक्त छंदों में उद्धव को सारा संबंध-रहस्य समझाते हुए श्रीकृष्ण तथा उसे समझते-स्वीकारते हुए उनके सखा, दोनो 'सूरसागर' के श्रीकृष्ण और उद्धव से कितने भिन्न हैं, निम्नलिखित दो पदो से ज्ञात हो सकता है—

क. सखा, सुनि एक मेरी बात ।
वह लता-गृह संग गोपिनि, सुधि करत पछितात ॥
बिधि लिखी नहिं टरत क्यौं हूँ, यह कहत अकुलात ।
हँसि उपँग-सुत बचन बोले, कहा हरि पछितात ॥
सदा हित यह रहत नाहीं, सकल मिथ्या जात ।
सूर-प्रभु यह सुनौ मोसौं, एक ही सौं नात[2] ॥

१. 'सारावली' छंद ५४५-५३ ।
२. 'सूरसागर', पद १०-३४२४ ।

ख. जब ऊधौ यह बात कही।
तब जदुपति अति ही सुख पायौ, मानी प्रगट सही ॥
श्री मुख कह्यौ जाहु तुम ब्रज कौं मिलहु जाइ ब्रज-लोग।
मो बिन, बिरह भरी ब्रज-बाला, जाइ सुनावहु जोग ॥
प्रेम मिटाइ ज्ञान परबोधहु, तुम हौ पूरन ज्ञानी।
सूर उपँग-सुत मन हरषाने, यह महिमा इन जानी[1] ॥

सबसे आश्चर्य की बात यह है कि 'सारावली' के श्रीकृष्ण 'धौरी धूमरि' आदि गैयों तक की सुधि लेने की बात उद्धव से कहते हैं, परंतु राधा के लिए कुछ संदेश आदि देने की तो बात दूर, उसका उन्हें एक बार स्मरण तक नहीं आता। 'सारावली' की प्रामाणिकता के पोषक मानते और कहते है कि उसकी रचना सूरदास ने सरसठ वर्ष की अवस्था तक कर ली थी और उस समय तक 'सूरसागर' का जितना भाग बन चुका था, उसका 'सार' 'सारावली' में है। तब उक्त प्रसंग में 'राधा' के उल्लेख न होने का क्या यह कारण माना जाय कि सरसठ वर्ष की अवस्था तक सूरदास ने राधा का नाम नही सुना था अथवा यह स्वीकार किया जाय कि सरसठ वर्ष की अवस्था तक 'सूरसागर' का जितना भाग लिखा गया था, उसमें 'राधा' का नाम तक नहीं आया था ? आखिर राधा का उल्लेख अब तक की समस्त कृष्ण-लीला में न मिलने का कोई कारण तो होना ही चाहिए न ? तब क्या इस 'मौन' के मूल मे यह 'स्वतंत्र सिद्धांत' स्वीकार किया जाय कि जिस प्रकार 'श्रीमद्भागवत' मे राधा का उल्लेख नहीं है, वैसा ही 'सारावली' कार भी करना चाहता है ? परंतु इस 'सिद्धांत' का निर्वाह भी 'सारावली'-कार ने नही किया है और इसकी जड़ तो उसी छंद से कट जाती है जिसमे निकुंज-लीला की बात कही गयी है, क्योंकि वह तो राधा के बिना संभव ही नहीं है। यही नहीं, 'सारावली' के आगे के छंदो मे राधा का नाम तीस से भी अधिक बार लिखा गया है[2] ?

शेष बातें 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदांशो के ही आधार पर जान पड़ती है—

१. 'सूरसागर', पद १०-३४२५।
२ 'सारावली', छंद ७१६-२०-२१-२२, ६१-६३-६७, ८६५, ६१०-११-१४-१६-१७-१८-२०-२१-२६-७४ ६१, १००६-१०-४६-४६-६१-६६-७१-७६-८०-६६-६७ आदि।

क. तबहि उपँग-सुत आइ गए।
सखा-सखा कछु अंतर नाही, भरि-भरि अंक लए[1]।

ख. हरि गोकुल की प्रीति चलाई।
सुनहु उपँगसुत मोहि न बिसरत ब्रज-वासी सुखदाई[2]।

ग ऊधौ, ब्रज कौं गमन करौ।
हमहि बिना गोपिका बिरहिनी, तिनके दुःख हरौ[3]।

घ. स्याम-कर पत्री लिखी बनाइ।
नंद बाबा सौं बिनै, कर जोरि जसुदा माइ।
गोप-बालक सखखि कौ हिलि-मिलि कंठ लगाइ।
और ब्रज-नारि जे है, तिनहि प्रीति जनाइ[4]।

ङ. ऊधौ, इतनी कहियौ जाइ।
... . ।
वह गुन हमकौं कहा बिसरिहै, बडे किए पय प्याइ।
अरु जब मिल्यौ नंद बाबा सौं, तब कहियौ समुझाइ।
तौ लौं दुखी होन नहि पावै, धौरी धूमरि गाइ[5]।

च. मित्र एक मन (बन) बसत हमारै, ताहि मिलैं सुख पाइहौ।
करि-करि समाधान नीकी बिधि, मोकौं माथौ नाइहौ[6]।

'सूरसागर' में बलराम और कुब्जा ने भी उद्धव को संदेश दिये है, 'सारावली'-कार ने उनकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं समझी है। उसे न बलराम के संदेश की मार्मिकता प्रभावित कर सकी, न कुब्जा का प्रेमोपालंभ ही। 'सूरसागर' से उद्धृत दोनो के संदेशों का एक-एक उदाहरण देखिए और 'सारावली'-कार की 'स्वतंत्रता' सराहिए—

१. 'सूरसागर', पद १०-३४२०।
२. वही, पद १०-३४२२।
३. वही, पद १०-३४२८।
४. वही, पद १०-३४३६।
५. वही, पद १०-३४३८।
६. वही, पद १०-३४४६।

क. हलधर कहत प्रीति जसुमति की ।
कहा रोहिनी इतनी .पावै, वह बोलनि अति हित की ॥
एक दिवस हरि खेलत मो सँग, झगरौ कीन्हौ पेलि ।
मोकौं दौरि गोद करि लीन्हौ, इनहि दियौ कर ठेलि ॥
नंद बबा तब कान्ह गोद करि, खीझन लागे मोकौं ।
सूर स्याम नान्हौं तेरौ भैया, छोह न आवत तोकौं[1] ॥

ख. ऊधौ ब्रजहि जाहु पालागौं ।
यह पाती राधा-कर दीजौ, यह मै तुमसौं माँगौं ॥
गारी देहि प्रात उठि मोकौं, सुनति रहति यह बानी ।
राजा भए जाइ नँदनंदन, मिली कूबरी रानी ॥
मो पर रिस पावति काहे कौं, बरजि स्याम नहि राख्यौ ?
लरिकाई तै बाँधति जसुमति, कहा जु माखन चाख्यौ ॥
रजु लै सबै हजूर होति तुम, सहित सुता-वृषभान ।
सूर स्याम बहुरौ ब्रज जैहै, ऐसे भए अजान[2] ॥

पाँच सौ चौवनवें छंद से अट्ठावनवें छंद तक 'सारावली मे उद्धव की यात्रा का उपक्रम, उनका 'गोकुल' पहुँचना, नंद-यशोदा से मिलना, भोजन आदि करके बैठना और 'राम-कृष्ण-गुन' गाते-गाते रात बिता देना वर्णित है—

आज्ञा लै ऊधो श्रीपति की चले वेग नंद-ग्राम ।
पुष्कर माल उतार हृदय ते दीनी सुंदर स्याम ॥
पीताबर अपनो पहिरायो स्तुति कुंडल पहिराये ।
अपने रथ बैठाय प्रीति सों उद्धव ब्रज पधराये ॥
दिनमनि अस्त भये गये गोकुल नंदराय सों भेटे ।
बल मोहन दोउ देखि माधुरी परम बिरह दुख मेटे ॥
मिले नंद बलराम-कृष्न दोउ है नीके यह भाख्यो ।
मारयो कंस भली सब कीन्हीं जादव कुल सब राख्यो ॥
पूजा करि भोजन करवायो उद्धव संत सरायो ।
सोवन निसा नैक नहि पाये राम कृष्न गुन गायो[3] ॥

१. 'सूरसागर', पद १०-३४३४ ।
२. वही, पद १०-३४४५ ।
३. 'सारावली', छंद ५५४-५८ ।

उक्त सारा वर्णन बहुत साधारण है, जिसके लिए 'सूरसागर' से उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

इसके बाद 'सारावली'-कार को यशोदा की सुधि आती है और एक ही छद मे उसने उनकी दशा का इस प्रकार वर्णन कर दिया है—

जसुदा बिकल बात पूछत है नैनन नीर-प्रवाह।
तन मन मै अति ही दुख बाढ्यौ, अति आतुर जनु दाह[1]।

'सूरसागर' का जो रचयिता माता यशोदा के बिलखते हृदय का चित्रण करने में हिंदी के समस्त कवियो मे बढ़कर समझा जाता है और जिसने 'सूरसागर' में इस प्रसंग को लेकर अनेक मार्मिक पद लिखे हैं, क्या कोई भी निष्पक्ष आलोचक उक्त पंक्तियाँ उसी की बता सकता है? जरा सूरदास की यशोदा का भरा हुआ विकल हृदय 'सूरसागर' के निम्न-लिखित केवल तीन पदांशो में देख लीजिए—

क. घर घर इहै सब्द पर्‌यौ।
सुनत जसुमति धाइ निकसी, हरष हियौ भर्‌यौ[2]।

ख. कबहुँ सुधि करत गुपाल हमारी।
पूछत पिता नंद ऊधौ सौ अरु जसुदा महतारी[3]।

ग. ऊधौ कहौ साँची बात।
दधि, मह्यौ, नवनीत माधव, कौन के घर खात॥
किन सखा सँग संग लीन्हे, गहे लकुटी हाथ।
कौन की गैयाँ चरावत, जात कौ धौं साथ॥
कौन गोपी कूल-जमुना, रहत गहि-गहि घाट।
दान हठ कै लेत कापै, रोकि किनकी बाट॥
कौन ग्वालनि साथ भोजन, करत किनतै बात।
कौन कैं माखन चुराबन, जात उठिकै प्रात॥
इतौ बूझत माइ जसुमति, परी मुरछित गात।
सूरदास किसोर मिलवहु, मेटि हिय की तात[4]॥

१. 'सारावली', छंद ५५६
२. 'सूरसागर', पद १०-३४६२।
३. वही, पद १०-३४७२।
४. वही, पद १०-३४७५।

अगले छंद में उद्धव का प्रात:काल होते ही स्नान करने जाना और फिर 'ब्रज' लौटना (जैसे वे स्नान करने ब्रज के बाहर चले गये थे) कहा गया है—

बातें करत सेष निसि आई उद्धव गये सनान।
सुमिरन करि फिरि ब्रज मे आए गोपिनि देखे आन[1] ॥

तभी गोपियो से उनकी भेंट होती है। पहले कोई गोपी (नंद-द्वार पर खड़ा) रथ देखकर अनुमान लगाती है कि कहीं कृष्ण लौट तो नहीं आये तभी दूसरी उसके भ्रम का निवारण करके उद्धव के आने का उद्देश्य इस प्रकार बताती है—

तब इक सखी कहै सुन री तू सुफलकसुत फिरि आयो।
प्रान गये लै पिंड देन को देह लेन मन भायो[2] ॥

कैसी अद्भुत हैं 'सारावली' की ये गोपियाँ जिनको उद्धव के आने से न किसी प्रकार की प्रसन्नता होती है, न उनसे श्रीकृष्ण का कुशल-समाचार पूछने की इच्छा होती है और न उनसे प्रियतम का संदेश पाने की ही कोई इच्छा, जिज्ञासा, उत्सुकता या आशा उनके मन में जागती है; तभी तो वे किसी प्रकार का उल्लास न प्रकट करके 'प्रान और पिंड' की तें करने लगती हैं। इस प्रसंग में भी 'सूरसागर' के वे मार्मिक पद उद्धृत करना व्यर्थ ही है जिनमें गोपियों के विह्वलता, उत्सुकता, प्रफुल्लत और खिझलाहट का वर्णन कवि ने किया है[3]। तदनंतर उद्धव उन सबको प्रणाम करते और गोपियाँ 'पाती' लाने के उनके कार्य को 'भला' कहकर एक पंक्ति में ही अपनी दशा का वर्णन करके संतुष्ट हो जाती हैं—

इतने देखि कृष्न अनुचर मुख उद्धव यह सब जानी।
उद्धव कियो प्रनाम सबनि को बिनय कियो मृदु बानी ॥
भली करी तुम आये उद्धव लाये हरि की पाती।
जा दिन ते हरि गोकुल छाँड्यो हम पर बिरह बराती[4] ॥

अब जरा 'सूरसागर' की गोपियों का शिष्टाचार देखिए और उसका मिलान कीजिए 'सारावली' की गोपियो से जो न तो उद्धव के प्रणाम का

१. 'सारावली', छंद ५६०।
२. वही, छंद ५६२।
३. 'सूरसागर', पद १०-३४५७ से १०-३४७०।
४. 'सारावली', छंद ५६३-६४।

उत्तर देती हैं, और न उनका किसी प्रकार का स्वागत-सत्कार ही करने की आवश्यकता समझती हैं—

निरखत ऊधौ कौं सुख पायौ।
सुंदर सुलज सुबंस देखियत, यातैं स्याम पठायौ।।
नीकै हरि-संदेस कहैगौ, स्रवन सुनत सुख पैहैं।
यह जाननि हरि तुरत अइहैं, यह कहि हृदै सिरैहैं।।
घेरि लिए रथ पास चहूँघा, नंद गोप ब्रजनारी।
महर लिवाइ गए निज मंदिर, हरषित लियौ उतारी।।
अरघ देत भीतर तिहिं लीन्हौ, धनि धनि दिन कहि आज।
धनि धनि सूर उपँगसुत आए, मुदित कहत ब्रजराज[1]।।

और प्रियतम श्याम की 'पाती' पाकर गोपियों को कितनी प्रसन्नता होती है, इसका वर्णन 'सूरसागर'-कार ने इस प्रकार किया है—

क. पाती मधुबन ही तैं आई।
सुंदर स्याम आपु लिखि पठई, आइ सुनौ री माई।।
अपने अपने गृह तैं दौरीं, लै पाती उर लाई।
नैननि निरखि निमेष न खंडित प्रेम तृषा न बुझाई[2]।

ख निरखति अंक स्याम सुंदर के बार-बार लावति लै छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गइ स्याम स्याम जू की पाती।।
गोकुल बसत नंदनंदन के, कबहुँ बयारि न लागी ताती।
अरु हम उती कहा कहै ऊधौ, जब सुनि बेनु नाद सँग जाती।।
उनकैं लाड़ बदति नहि काहू, निसि दिन रसिक-रास-रस राती[3]।

ग. पाती मधुबन तैं आई।
ऊधौ हरि के परम सनेही, ताकै हाथ पठाई।।
कोउ पढति, कोउ धरति नैन पर, काहूँ हृदै लगाई।
कोउ पूछति फिरि फिरि ऊधौ कौं आपुन लिखी कन्हाई?
बहुरौ दई फेरि ऊधौ कौं, तब उन बाँचि सुनाई।
मन मै ध्यान हमारौ राख्यौ, सूर सदा सुखदाई[4]।।

१. 'सूरसागर', पद १०-३४७१।
२. वही, पद १०-३४८६।
३. वही, पद १०-३४८७।
४. वही, पद १०-३४८८।

'सारावली'-कार क उक्त मार्मिक प्रसंगों से कोई सरोकार नहीं है। उसकी स्वतंत्र सैद्धांतिक रचना मे तो अगले ही छंद में 'मधुप' आ जाता है और 'भ्रमर-गीत' आरंभ हो जाता है—

इतने मॉझ मधुप एक देख्यो आय चरन लपटायो।
ताको देखि कहति उद्धव सों हरि गोकुल बिसरायो॥
रे रे मधुप कितब के बंधू चरन परस जनि करिहौ।
प्रिया अंक कुंकुम कर राते ताही को अनुसरिहौ॥
अधर सुधा रस सुकृत पान दै कान्ह भये अति भोगी।
बिजय सखा की सखी कहत है तासों रहत सॅयोगी॥
तीन लोक नारी को कहियत जो दुर्लभ बल बीर।
कमला हू नित पॉय पलोटति हम तो हैं आभीर[1]॥

कितना अद्भुत प्रसंग निर्वाह है! व्रज की गोपियॉ उद्धव का दर्शन करने के पूर्व ही उसे 'पिंड देने वाला' कह कर कोसती हैं, दर्शन होने पर जब वह प्रणाम और मृदु बानी में विनय करता है, उसका किसी प्रकार आदर सत्कार नहीं करती और जब उनके प्रियतम की 'पाती' उन्हें सौंपता है तो पुरस्कार-स्वरूप उसे 'फटकार' देती हैं। और 'सारावली' का उद्धव भी कितना विनम्र, सहनशील और लज्जालु हैं कि सविनय प्रणाम करके चुपचाप खड़ा सब-कुछ सुनता रहता है। सीधा वह इतना है और गोपियों की 'फटकार' खाते ही इतना सिटपिटा जाता है कि गोपियों को सुनाने के लिए दिया हुआ श्रीकृष्ण का संदेश तक उसे विस्मरण हो जाता है। पर शायद 'फटकार' से सिटपिटाकर वह संदेश नहीं भूला है, प्रत्युत भूलने का उसका स्वभाव ही है, तभी तो नंद-यशोदा के सामने भी उसने इतना ही कहा है कि बलराम और कृष्ण 'नीके' हैं, कोई संदेश देने की याद उसको वहॉ भी नहीं रही है; जबकि 'सूरसागर' का उद्धव कुशल-समाचार आदि के पश्चात् ही नंद-यशोदा को श्याम का संदेश सुनाता हुआ कहता है—

कह्यौ कान्ह, सुनि जसुदा मैया।
आवहिंगे दिन चारि पॉंच मैं, हम हलधर दोउ भैया॥
मुरली बेत बिषान हमारौ, कहूॅ अबेर सबेरौ।
मति लै जाइ चुराइ राधिका, कछुव खिलौना मेरौ[2]॥

१. 'सारावली', छंद ५६५ से ५६८।
२. 'सूरसागर', पद १०-३४७३।

जा दिन तैं हम तुम सौं बिछुरे, काहु न कह्यौ कन्हैया।
प्रात न कियौ कलेऊ कबहूँ, साँझ न पय पियौ घैया॥
कहा कहौं कछु कहत न आवै, जननी जो दुख पायौ।
अब हमसौं बसुदेव देवकी, कहत आपनौ जायौ॥
कहिऐ कहा नंद बाबा सौं, बहुत निठुर मन कीन्हौ।
सूर हमहि पहुँचाइ मधुपुरी, बहुरि न सोधौ लीन्हौ[१]॥

गोपियो से भेंट होने पर भी 'सूरसागर' के उद्धव ने 'हरि-कुसलात' के साथ-साथ श्रीकृष्ण के सारे कार्यों का भी बखान कर दिया है जिससे उनको अपने प्रियतम की व्यस्तता का आभास मिल सके—

गोपी सुनहु हरि कुसलात।
कंस नृप कौ मारि छोरे आपने पितु - मात॥
बहुत बिधि मनुहार करि, दियौ उग्रसेनहि राज।
नगर लोग सुखी बसत हैं, भए सुरनि के काज॥
मोहि यह पाती दई लिखि, कह्यौ कछु संदेस।
सूर निर्गुन ब्रह्म उर धरि, तजहु सकल अँदेस[२]॥

इसके पश्चात् उसने श्रीकृष्ण का संदेश भी गोपियो को संक्षेप में समझाया है—

गोपी सुनहु हरि संदेस।
....
कह्यौ तुमहि ब्रह्म ध्यावन, छाँडि बिषय - बिकार[३]।

प्रेममयी गोपियों की आशा के सर्वथा विपरीत संदेश इस प्रकार संक्षिप्त रूप मे देकर कवि ने मनोवैज्ञानिकता का कैसा सुंदर निर्वाह किया है। जब गोपियाँ इस संक्षिप्त संदेश का उत्तर दे लेती हैं[४], तब उद्धव विस्तार से अपनी बात समझाते हैं—

१. 'सूरसागर', पद १०-३४७३।
२. वही, पद १०-३४८४।
३. वही, पद १०-३४८५।
४. वही, पद १०-३४८६ से १०-३५०१ तक।

सुनौ गोपी हरि कौ संदेस।
करि समाधि अंतर-गति ध्यावहु, यह उनकौ उपदेस ॥
वै अविगत अविनासी पूरन, सब घट रहे समाइ।
तत्व ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, बेद पुराननि गाइ ॥
सगुन रूप तजि निरगुन ध्यावहु, इक चित इक मन लाइ।
यह उपाइ करि बिरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ ॥
दुसह सँदेस सुनत माधौ कौ, गोपी जन बिलखानी।
सूर बिरह की कौन चलावै, बुड़ति मीन बिनु पानी[1] ॥

उद्धव के संदेश का तात्पर्य सूरदास की गोपियों को अब अच्छी तरह समझ में आता है। अतएव अब वे उत्तर भी पहले से कुछ तीखे स्वर मे देती हैं। 'सूरसागर' मे इसी समय से 'भ्रमरगीत' आरंभ होता है। परंतु 'सारावली'-कार जैसे अपने 'स्वतंत्र सिद्धांत' के प्रतिपादन में इतना मग्न है कि उसे इन सब बातों का ध्यान ही नही रहता और उसकी गोपियाँ 'मधुप' को फटकारने के मुख्य कार्य में लग जाती हैं। अष्टछापी सूरदास के प्रियतम विषय का यह 'संक्षेप' है या विषय की हत्या ही कर दी गयी है? 'सूरसागर' में इस प्रसंग को लेकर कई सौ बहुत सुंदर पद लिखे गये है जिनको उक्त छंदो की तुलना मे उद्धृत करना वस्तुत: उस महाकवि की रचना के साथ खिलवाड़ करना है।

'सारावली' के आगे के सात छंदों में श्रीकृष्ण की व्रजलीला का बहुत सामान्य वर्णन है जिसमें न क्रम का ध्यान रक्खा गया है और न कोई उल्लेखनीय बात ही कही गयी है। सातो छंद ये हैं—

पहले ही इन हनी पूतना बाँधे बलि को दान।
सूपनखा ताड़का सँहारी स्याम सहज यह बान ॥
जाकी कथा सुनी जिन स्रवननि बन बिहंग भये जोगी।
माँगत भीख फिरत घर घर ही सुजन कुटुंब बियोगी ॥
फिरि हरि आय जसोदा के गृह रिंगन लीला करिहैं।
माँग्यो चंद्र आर जब कीन्हीं उन बातनि चित धरिहै[2] ॥

१. 'सूरसागर', पद १० ३५०२।
२. 'सारावली', छंद ५६६-७१।

बहुत दनुज संहार स्याम घन ब्रज की रच्छा करिहैं।
जमला-अर्जुन बिटप उपारे काली को बिष हरिहै॥
बेनु बजाय रास बन कीन्हों अति आनँद दरसायो।
लीला कथत सहसमुख तौऊ अजहूँ पार न पायो।
महा प्रलय के मेघ पठाये सुरपति कीन्हों कोप।
छिनहीं माँझ गोबर्धन धारयो राखि लिये सब गोप॥
ऐसे बहुत चरित्र कान्ह के बरनि कहत नहि आवैं।
उद्धव तुम नयनंनि नहि देख्यो ताते भेद न पावै[1]॥

उक्त छंदों को सुनते ही 'सारावली' के उद्धव जैसे सोते से जाग उठते हैं और गोपियों को धन्य धन्य कहते हुए इस प्रकार उनके महत्व का बखान करने लगते हैं—

तब ऊद्धव कह्यो धन्य धन्य तुम धन्य धन्य ब्रजनार।
तुम्हरे सुबस सदा हरि खेल्यो ब्रज में करत बिहार॥
तुम्हरी चरन-कमल-रज कारन तप कीन्हों चतुरानन।
रमा सेष पुनि किनहुँ न पायो सो देखियत बृंदाबन॥
गुल्म-लता में जन्म माँगि तब बिधि सों गोद पसारी।
उद्धव कहत सदा मोहिं दीजै चरन-रेनु ब्रजनारी॥
एक रूप ह्वै रहे बृंदाबन गुल्म - लता कर बास[2]।

कैसा भोला-भाला और सीधा-सादा है 'सारावली' का उद्धव जो थोड़ी फटकार और थोड़ी कृष्ण की ब्रज-लीला सुनते ही 'धन्य धन्य' कहकर कभी तो विधि से गुल्म-लता-रूप में जन्म देने की प्रार्थना करता है और कभी ब्रज-नारियों की चरण धूल देने की। इसका कारण यह है कि उसका ब्रज आने का उद्देश्य केवल 'चिट्ठी' पहुँचा देने का है और उसीलिए उसका व्यवहार भी सामान्य 'चिट्ठीरसा' जैसा है, यद्यपि पुरस्कार के स्थान पर उसको मिलती 'फटकार' है। 'सूरसागर' के उद्धव के पास कुछ कहने को है और वह बार-बार कहता भी है। इसी से जब वह गोपियों की प्रेमाभक्ति से प्रभावित होता है, तब उसका उल्लास भी 'सारावली' के उद्धव से कहीं अधिक है जिसका परिचय उसके निम्नलिखित वक्तव्यों से मिलता है—

१. 'सारावली', छंद ५७२ से ७५।
२. वही, छंद ५७६ से ५७६।

एक रूप ऊधव फिरि आये हरि चरननि सिर नायो।
कह्यो वृत्तांत गोप गोपिनि को बिरह न जात कहायो[1] ॥

कैसा विचित्र है 'सारावली के इस उद्धव का स्वभाव की जिन गोपियों की अभी इतनी प्रशंसा कर रहा था, और जिनके लिए श्याम का पत्र लाया था, न उनसे मथुरा लौटने के लिए विदा लेता है और न पत्र का लिखित या मौखिक उत्तर ही माँगता है। और कितना कृतघ्न है यह कि जिन नंद-यशोदा के यहाँ यह 'षटमास' रह चुका है, जैसा कि वह अगले छंद में स्वयं स्वीकारता है—

मोहि खोजत षटमास बीत गये, तबहू न पायौ अंत[2]।

उनसे भी चलते समय न विदा लेता है और पत्र या संदेश का उत्तर ही! और कितनी विचित्र है 'सारावली' की गोपियाँ जो प्रियतम का पत्र पाकर न उसका उत्तर देती है, न उनके पास कोई संदेश कहलाती हैं, न उनको व्रज की दयनीय दशा से परिचित कराना चाहती हैं और न उनसे यही प्रार्थना करती हैं कि कभी हमें दर्शन देने पल भर के लिए ही यहाँ आ जाना! कैसी अद्भुत है 'सारावली' की वह राधा जिसने उद्धव से न भेंट की है, न प्रियतम की कुशलता पूछी है, न उनकी चिट्ठी पढ़ी है, न उनका स्वागत-सत्कार किया है, न उनसे अपनी व्यथा कहती है और न अब प्रियतम के लिए कोई संदेश ही देती है! और कितने अद्भुत हैं वे माता-पिता—यशोदा और नंद—जो पुत्रों के लिए न कोई संदेश देते हैं, न उन्हें घर लौटने को कहते हैं और न किसी प्रकार का कोई उपहार ही उद्धव के द्वारा भिजवाने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं! इस संबंध में 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदों में माता-पिता का हृदय देखिए और निर्णय कीजिए कि 'सारावली' का उक्त वर्णन भी क्या इसी कवि का हो सकता है—

क. ऊधौ पा लागति हौं कहियौ, स्यामहि इतनी बात।
इतनी दूरि बसत क्यौं बिसरे, अपने जननी-तात॥
जा दिन तै मधुपुरी सिधारे, स्याम मनोहर गात।
ता दिन तै मेरे नैन पपीहा, दरस प्यास अकुलात॥

१. 'सारावली' छंद ५८०।
२. वही, छंद ५८१।

जहँ खेलन के ठौर तुम्हारे, नंद देखि मुरझात।
जौ कबहूँ उठि जात खरिक लौं, गाइ दुहावन प्रात॥
दुहत देखि औरनि के लरिका, प्रान निकसि नहि जात।
सूरदास बहुरौ कब देखौं, कोमल कर दधि खात[१]॥

ख. कहियौ जसुमति की आसीस।
जहाँ रहौ तहँ नंद लाड़िलौ, जीवौ कोटि बरीस॥
मुरली दई दोहनी घृत भरि, ऊधौ धरि लइ सीस।
यह तौ घृत उनही सुरभिनि कौ, जे प्यारी जगदीस॥
ऊधौ चलत सखा मिलि आए, ग्वाल बाल दस-बीस।
अबकै यह ब्रज फेरि बसावहु, सूरदास के ईस[२]॥

'सारावली के अगले ही छंद में उद्धव का सारा वक्तव्य इतने में ही समाप्त हो जाता है—

छिन नहि दूर स्याम तुम उन सों मै निस्चय यह कीनो॥
तुमरो रूप देखि गोकुल मै बाढ्यो नेह नबीनो[३]॥

'सूरसागर' में इस विषय को लेकर लगभग साठ पद लिखे गये हैं जिनमें अनेक बड़े मार्मिक है। उनके सामने 'सारावली' की उक्त पंक्तियाँ शकर-कण के सामने रेत-कण जैसी हैं।

आगे के सात छंदो मे 'सारावली'-कार ने श्रीकृष्ण का वक्तव्य दिया है जिसमे वे ब्रज और वहाँ के वासियो से अपने नित्य संबंध की इस प्रकार घोषणा करते हैं—

तब हरि कह्यो सुनो उद्धव जू ब्रजबासी तन मोर।
तिनको सपने कबहुँ न छाँड़ौ सत्य कहत हौं तोर॥
बृंदाबन में धेनु चरावत गोप सखनि के संग।
बेनु बजावत मोद बढावत क्रीड़ा कोटि अनंग॥
अरु गोपिनि सों अंग संग करि नित प्रति करौं बिनोद।
दुष्ट कंस मारन यहँ आयौ, सदा जसोदा गोद[४]॥

१. 'सूरसागर', पद १०-४०८२।
२. वही, पद १०-४०९०।
३. 'सारावली', छंद ५८२।
४ वही, छंद ५८३ से ८५।

कुंज कुंज में क्रीड़ा करि करि गोपिनि को सुख देहौं।
गोप सखनि सँग खेलत डोलौं ब्रज नज अंत न जैहौं ॥
मारेउ दुष्ट बहुत जो भू पर धर्म करो बिस्तार।
बसुधा-भार उतारन कारन जदुकुल लियो अवतार
मित्र एक बन बसत हमारो सो नयननि भरि देख्यो।
ताको पूजन नित प्रति करिहौं सो तुम सुबुध बिसेख्यो ॥
नाना रत्न कंदरा कबहूं छिन नहि मोहि भुलावैं।
क्रीड़ा करौं नित्य कुंजनि मे गोपिनि को सुख भावै[1] ॥

उक्त छंदों में 'सूरसागर' में वर्णित प्रसग से एक मुख्य अंतर यह है कि उनमें धर्म-विस्तार और भू-भार उतारने की बात विशेष कही गयी है जिसे सर्वथा अप्रासंगिक समझकर सूरदास ने अपने कृष्ण के मुख से नहीं कहलाया है। 'सारावली' के उक्त छंदों की शेष बातें 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदांशों की छाया से भी गयी-बीती हैं—

क. ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
बृंदाबन गोकुल बन उपवन, सघन कुंज की छाहीं ॥
प्रात समय माता जसुमति अरु नंद देखि सुख पावत।
माखन रोटी दह्यौ सजायौ, अति हित साथ खवावत ॥
गोपी ग्वाल बाल सँग खेलत, सब दिन हँसत सिरात।
सूरदास धनि धनि ब्रजबासी, जिनसौं हित जदु-तात[2] ॥

ख. ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हँस-सुता की सुंदर कगरी, अरु कुंजनि की छाहीं ॥
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं ॥
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि-मुक्ताहल जाहीं।
जबहि सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीं ॥
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं[3] ॥

१. 'सारावली' छंद ५८६ से ५८६।
२. 'सूरसागर', पद १०-४१५६।
३. वही, पद १०-४१५७।

'सारावली' के उक्त पाँच सौ छियासी संख्यक छंद की बात 'सूरसागर' में इस प्रसंग में श्रीकृष्ण ने नहीं कही है, यद्यपि अन्य अनेक प्रसंगों में उसका भाव व्यक्त किया जा चुका है।

आगे के छह छंदों मे श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अक्रूर का हस्तिनापुर जाने और वहाँ का संवाद लाने का वर्णन है। यह वर्णन इतना साधारण है कि उक्त छंदो को यहाँ उद्धृत करना अनावश्यक प्रतीत होता है। इसका आधार 'सूरसागर' के दशम स्कध . पूर्वार्द्ध का अंतिम पद है[१] जो बहुत बड़ा होने के कारण यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

'सारावली' के अगले चार छंदों में मथुरा पर जरासंध के सत्रह आक्रमणों और उनकी विफलता का वर्णन है। उसके आगे के पाँच छंदों मे कालयवन का 'तीन कोटि भट' लेकर मथुरा पर आक्रमण करने और कृष्ण-बलराम का मंत्रणा करके द्वारका चले जाने का वर्णन है। अंतिम छंद मे जरासंध और कालयवन, दोनो की सेना के मारे जाने का उल्लेख हुआ है और आगे के बारह छंदों मे मुचकुंद की तथा चार मे पर्वत-दाह की कथा है। 'सारावली' के उक्त छंदो की सामान्य कथा 'सूरसागर' में भी मिलती है[२]। मुचकुंद की स्तुति का वर्णन 'सूरसागर' में नहीं है; परंतु 'श्रीमद्भागवत' में वासुदेव और मुचकुंद का वार्तालाप बहुत विस्तार से वर्णित है[३]। उसमें मुचकुंद की स्तुति भी दी गयी है[४]। इस वर्णन से 'सारावली'-कार को निश्चय ही प्रेरणा मिली है। इसी प्रकार 'सारावली' में जो बात श्रीकृष्ण अपने मुख से कहते हैं—

भुज की रज, नभ के तारे सब, तितने हैं अवतार[५]।

उससे मिलती-जुलती बात 'सूरसागर' में उसका रचयिता ब्रह्मा के मुख से कहलाता है—

भूमिरेनु कोऊ गनै, नछत्रनि गनि समुझावै।
कह्यौ चहै अवतार, अंत सोऊ नहिं पावै[६]।

१. 'सूरसागर', पद १०-४१६० ।
२. वही, पद १०-४१६१-६२-६३ ।
३. 'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अध्याय इक्यावन, श्लोक २३ से ४५ ।
४. वही, श्लोक ४५ से ५८ ।
५. 'सारावली', छंद ६०६ ।
६. 'सूरसागर', पद २-३६ ।

और निष्पक्षता तथा ईमानदारी से देखा जाय तो पहले कथन की अपेक्षा दूसरे में अधिक गंभीरतापूर्ण महत्ता है।

'सारावली' में यहाँ पर मथुरा-लीला समाप्त होती है। 'सूरसागर' के कथा-क्रम की दृष्टि से देखा जाय तो उसके जितने मर्मस्पर्शी स्थल हैं, जिनकी ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है और जो प्रत्येक भावुक कवि, सैद्धांतिक भक्त अथवा किसी भी सहृदय को सहज ही रुचिकर हो सकते हैं, उन सबका बहुत ही सामान्य और चलताऊ वर्णन करके 'सारावली'-कार ने प्राय: प्रत्येक छंद में अपनी हृदयहीनता का परिचय दिया है।

छह सौ इक्कीसवें छंद से 'सारावली' में श्रीकृष्ण की द्वारका-लीला आरंभ होती है जिसकी प्रस्तावना पहले छंद मे इस प्रकार है—

भयो अनंद द्वारका मे सब घर घर गीत गवाये।
करि रिपु हानि समर सब जीत्यो राम कृष्न घर आये[1]॥

उक्त छंद में कोई विशेष बात नहीं कही गयी है, जबकि 'सूरसागर' के दो पदों मे द्वारका-शोभा का सुंदर वर्णन मिलता है[2] जिनमें से एक इस प्रकार है—

देखो री सखि आजु नैन भरि, हरि के रथ की सोभा।
जोग, जज्ञ, जप, तप, तीरथ ब्रत, कीजत है जिहि लोभा॥
चारु चक्र मनि खचित मनोहर, चंचल चँवर पताका।
सोभ छत्र ज्यौं ससि प्राची-दिसि, उदय कियौ निसि राका॥
स्याम सरीर सुदेस पीत-पट, सीस मुकुट उर माल।
जनु दामिनि घन रवि तारा-गन, प्रगट एक ही काल॥
उपजति छबि अति अधर संख मिलि, सुनियत सब्द प्रसंस।
मानहु अरुन कमल मंडल मैं, कूजत है कल हंस॥
मदन गुपालहि देखत ही अब, सब सुख सोक बिसारे।
बैठे हैं सुफलकसुत गोकुल लैन जु जहाँ सिधारे॥
आनंदित नर नारि नगर के, बदन बिमल जस गायौ।
सूरदास द्वारिका निबासी, प्राननाथ प्रभु पायौ[3]॥

१. 'सारावली', छंद ६२१।
२. 'सूरसागर', पद १६-४१६४-६५।
३. वही, पद १०-४१६४।

'सूरसागर' मे उक्त पदो के उपरांत एक पद मे मनमोहन के चौगान खेलने का वर्णन है जिसमे उनकी स्वस्थ जीवन-चर्या पर सुन्दर प्रकाश पडता है[१]। 'सारावली'-कार इस संबंध मे मौन है। उसने तो उक्त प्रस्तावना के पश्चात् बीस छंदो मे रुक्मिणी विवाह का वर्णन किया है। यह प्रसंग उसने इस प्रकार उठाया है—

एक समय नारद मुनि आये नृपति भीष्म के गेह।
पूजा करी बहुत नाना विधि नृपति जनायो नेह ॥
लखि रुक्मिनी कह्यो मुनि नारद यह कमला अवतार।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम श्री बसुदेव कुमार ॥
उनके जोग्य यही कन्या है सुनो देव महराज।
तब नृप कह्यउ करौ निस्चय यह सफल होय मम काज[२] ॥

उक्त छंदो मे भीष्म के पास नारद जी के आने की जो पंडिताऊ-जैसी बात कही गयी है, वह न 'सूरसागर' मे है और न 'श्रीमद्भागवत' मे। 'सूरसागर' में तो इस पारिवारिक समस्या को बहुत स्वाभाविक रीति से उठाया गया है—

कुंडिनपुर को भीषम राइ। बिष्नु भक्ति कौ तिहि चित चाइ ॥
रुक्म आदि ताके सुत पाँच। रुक्मिनि पुत्री हरि रँग राँच ॥
नृपति रुक्म सौं कह्यौ बनाइ। कुँवरि जोग बर श्री जदुराइ ॥
रुक्म रिसाइ पिता सौं कह्यौ। जदुपति ब्रज जो चोरत मह्यौ ॥
रुक्मिनि कौं सिसुपालहि दीजै। करि बिवाह जग मै जस लीजै ॥
यह सुनि नृप नारी सौं कह्यौ। सुनि ताकौ अंतरगत दह्यौ[३] ॥

'श्रीमद्भागवत' में भी रुक्मिणी-विवाह की बात इसी प्रकार उठायी गयी है[४]। 'सारावली-कार ने इस प्रसंग में नारद जी का जो आगमन बताया है, वह इसलिए कि हमारे कथावाचकों ने नारद जी को ऐसे ही कार्य सौंप रखे हैं और वे जानते है कि इससे उनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं, आनंद ही मिलता है। स्वयं 'सारावली-कार कंस को उकसाने

१. 'सूरसागर', पद १०-४१६६।
२. 'सारावली', छंद ६२२-२३-२४।
३. 'सूरसागर', पद १०-४१६७।
४. 'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अध्याय बावन, श्लोक २१ से २५।

का कार्य नारद को पहले भी सौंप चुका है—

नारद आय कह्यौ नृप सौं, यह कौन नींद तू सोवै।
तेरौ सत्रु प्रगट गोकुल मैं, गुप्त न जानत कोवै[1]।

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार अन्य पौराणिक प्रसगों में, जैसे पार्वती-विवाह में, नारद जी कन्या के माता-पिता को भविष्य बताते कहे जाते हैं, वैसा ही 'सारावली'-कार ने लिखा है यद्यपि उससे कथा या वर्णन मे किसी प्रकार की विशेषता नहीं आती और न उसके न होने पर किसी प्रकार की न्यूनता की ही संभावना थी।

आगे के दो छंदों मे नारद मुनि ही रुक्मिणी का संदेश श्रीकृष्ण तक इस प्रकार पहुँचा आते है—

तब नारद मुनि गये द्वारका कृष्नचंद्र के पास।
बिनती करी रुक्मिनी की सब सुनि हरि भये हुलास॥
करौ बेगि कछु बिलँब न कीजै नारद कहि यह बात[2]।

कितनी विचित्र बात है कि रुक्मिणी और नारद का वार्तालाप कहीं 'सारावली' मे नहीं है, न उसने इनके सामने अपनी किसी प्रकार की इच्छा व्यक्त की है और न इनको श्रीकृष्ण तक पहुँचाने के लिए कोई संदेश ही दिया है, परंतु नारद जी उसकी 'बिनती' उनको सुनाने पहुँच जाते हैं। वस्तुतः ऐसा करना भी 'सारावली' के नारद के स्वभाव का एक अंग है जिसका परिचय उन्होने कंस को पूर्वोद्धृत छंद मे उत्तेजित करने के पश्चात् उसी सूचना को स्वयं कृष्ण तक पहुँचाने के लिए व्रज जाकर दिया है, यद्यपि कृष्ण उनकी सूचना के लिए न उनको प्रशंसा करते दिखाये गये है और न 'अस्तुति' आदि सुनकर प्रसन्न या संतुष्ट होते अथवा उत्तर ही देते हैं—

फिरि नारद गोकुल हो आये हरि चरननि सिर नाये।
अस्तुति करी बहुत नाना बिधि मधुरे बीन बजाये॥
हरि कछु इन उत्तर नहि दीन्हों फिरि गये अपने धाम[3]।

१. 'सारावली', छंद ४८५।
२. वही, छंद ६२५-२६।
३. वही, छंद ४८६-६०।

'सूरसागर' मे रुक्मिणी ने अपना संदेश एक विप्र के द्वारा भेजा है जिसको लेकर सूरदास ने पॉच-छह सुंदर पद लिखे हैं[1] जिनमे से एक यहाँ उद्धृत है—

द्विज कहियौ जदुपति सौं बात ।
बेद बिरुद्ध होत कुंडनिपुर, हस के अंस काग नियरात ॥
जनि हमरे अपराध बिचारहु, कन्या लिख्यौ मेटि गुरु तात ।
तन आतमा समरप्यौ तुमकौं, उपजि परी तातै यह बात ॥
कृपा करहु उठि बेगि चढहु रथ, लगन समै आवहु परभात ।
कृष्न सिह बलि धरी तुम्हारी, लैबे कौं जंबुक अकुलात ॥
तातै मै द्विज बेगि पठायौ, नेम धरम मरजादा जात ।
सूरदास सिसुपाल पानि गहै, पावक रचौ करौ अपघात[2] ॥

इतना ही नहीं, सूरदास ने रुक्मिणी की अंतर्व्यथा को व्यक्त हुए भी दो[3] मार्मिक पद लिखे हैं जिनमे से एक इस प्रकार है—

सखी पर होईं तौ उड़ि जाउँ ।
जहँ वै बसत नद के ढोटा, ढूँढि लेउँ सोइ गाउँ ॥
कीजै कहा भई जौ ऐसी, कहौ तौ बिष फल खाउँ ।
हिरदै मेरैं दवा जरति है, गहिरे नीर अन्हाउँ ॥
बधु बैर कहिबौ जदुपति सो ठाढी नहि ठहराउँ ।
सूरदास प्रभु असुर बिवाही, धरती फाटि समाउँ[4] ॥

जिस 'सारावली'-कार ने राधा की ही विरह वेदना का चित्रण करने की ओर ध्यान नही दिया है, उससे रुक्मिणी की मनोव्यथा के चित्रण की आशा करना व्यर्थ ही है ।

अब जरा रुक्मिणी का संदेश पाकर 'सारावली' के कृष्ण की दशा क्या हुई, यह भी देख लीजिए—

स्रवन सुनत कमलापति कौ जिय-तन पुलकित सब गात[5] ।

१. 'सूरसागर', पद १०-४१६८ से ४१७३ ।
२. वही, पद १० ४१७१ ।
३. वही, पद १० ४१७५-७६ ।
४ वही, पद १०-४१७६ ।
५. 'सारावली', छंद ६२६ ।

और यह 'पुलकन' इतनी बढ़ जाती है कि उनको स्पष्ट नारद से कहना पड़ता है कि मुझे नींद ही नहीं आती—

सुनि नारद मोहि नीद न आवै, करिहौ बेग उपाय[1] ।

'सारावली' के श्रीकृष्ण के इस कथन का क्या अर्थ निकाला जाय ? अत्यंत पुलकित होने के कारण नीद नही आयी अथवा रुक्मिणी की रक्षा करने की चिंता से ? और कितने दिन नींद नहीं आयी ? एक दिन नींद न आने की बात होती तो कहने का ढंग निश्चय ही निश्चित होता, यदि कई दिन नींद नही आयी, तो क्या यह समझा जाय कि कई रातें जागकर वे रुक्मिणी के सकट-हरण का उपाय ही सोचते रहे ? उधर 'सूरसागर' के कृष्ण संदेश पाकर चल पहले देते हैं, बातचीत रास्ते मे करते हैं—

सुनत हरि रुकमिनि कौ संदेस ।
चढि रथ चले बिप्र कौ सँग लै, कियौ न गेह प्रवेस ॥
बारबार बिप्र कौ पूछत, कुँवरि बचन सो सुनावत ।
दीनबंधु करुना-निधान सुनि, नैन नीर भरि आवत ॥
कह्यौ हलधर सौं आवहु दल लै, मै पहुँचत हौ धाइ ।
सूरज प्रभु कुंडिनपुर आए, बिप्र सो जाइ सुनाइ[2] ॥

'सारावली' और 'सूरसागर' के कृष्णो के उक्त चरित्रो की तुलना करके विज्ञ पाठक स्वयं निर्णय कर लें कि क्या दोनो का चित्रण एक ही कवि का हो सकता है ।

'सारावली' के अगले दो छंदो मे श्रीकृष्ण के वहाँ आने और उपवन में डेरा डालने का वर्णन है, परंतु 'सूरसागर' मे रुक्मिणी की सखी उसे जिस प्रकार समझाती है, उसकी छाया का स्पर्श भी 'सारावली'-कार नही कर सका है—

सोच पोच निवारि री उठि देखि, दीन दयाल आयौ ।
निरखि लोचन बिपति मोचन, कुँवरि फल बॉछ्यौ सो पायौ ॥
सुनत भई अकुलाइ ठाढी, ज्यौं मृतक मधु दै जिवायौ ।
चढि सदन वा बदन की छबि, निरखि दानव दव बुझायौ ॥

१. 'सारावली', छंद ६२७ ।
२. 'सूरसागर', पद १०-४१७७ ।

लै बुलाइ जु हिय लगायौ, हरषि मंगलचार गायौ।
नैन आरती अरघ आँसू, भेट तन-मन-धन चढायौ॥
जानिहौ ब्रजनाथ जी की, कियौ सो जो तुम बताऔ।
अघ हरन पुनि परन-बस हरि, जानिहौ किहि जोग भायौ[1]॥

तदनंतर चार छंदो मे, रुक्मिणी की देवी-पूजा और स्तुति, देवी द्वारा दिये गये वरदान और श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण का इस प्रकार वर्णन 'सारावली' में मिलता है—

पूजन करन चली देवी को सखी बृंद सब संग।
पूजा करि बोली यह कमला लोक-लाज कृत भंग॥
अटल सक्ति अबिनास अधिक बल एक अनादि अनूप।
आदि अब्यक्त अबिका पूरन अखिल लोक तव रूप॥
कृष्नचंद्र के चरन कमल मे सदा रहो अनुराग।
ये ही पति नित होहि हमारे जो पूरन मम भाग॥
तब उन कहेउ कृष्न तुम्हारे पति ह्वै है अचल सुहाग।
चली महा बर पाय रुक्मिनी अति पूरन अनुराग॥
तब हरि आय बैठि रथ नीके आय मिले बड भाग।
कर गहि बाँह लई रथ नीके अति आतुर चले भाग॥
मानो नील मेघ के सँग मे मिली दामिनी आय।
चले तुरत हरि पुरी द्वारिका संख चक्र धरि धाय[2]॥

यह सारा वर्णन 'सारावली'-कार की बँधी परिपाटी के अनुसार है जिसमे शब्द और भाव बार-बार दोहराये जाते हैं और कोई नयी बात नहीं कही जाती। यही प्रसंग 'सूरसागर' मे इस प्रकार वर्णित है—

रुकमिनि देवी-मंदिर आई।
धूप दीप पूजा-सामग्री, अली संग सब ल्याई॥
रखवारी कौ बहुत महाभट, दीन्हे रुक्म पठाई।
ते सब सावधान भए चहुँ दिसि, पंछी तहाँ न जाई॥
कुँवरि पूजि गौरी बिनती करी बर देउ जादवराई।
मै पूजा कीन्ही इहि कारन, गौरी सुनि मुसकाई॥

१. 'सूरसागर', पद १०-४१८०।
२. 'सारावली', छंद ६३० से ६३५।

पाइ प्रसाद अंबिका-मंदिर, रुकमिनि बाहर आई।
सुभट देखि सुंदरता मोहे, धरनि गिरे मुरझाई ॥
इहि अंतर जादौपति आए, रुकमिनि रथ बैठाई ;
सूरज-प्रभु पहुँचे दल अपने, तब सुभटनि सुध पाई[1] ॥

'सारावली' के वर्णन में रुक्मिणी की स्तुति और देवी के वरदान को प्रधानता दी गयी है जब कि 'सूरसागर' मे रुक्मिणी की सुरक्षा का विशेष प्रबंध किये जाने का अत्यंत स्वाभाविक और परिस्थिति के अनुकूल वर्णन भी विशेष रूप से मिलता है जिसकी ओर 'सारावली'-कार का ध्यान जा ही नहीं सका है। रथ पर रुक्मिणी के बैठ जाने पर 'सूरसागर' के अनुसार श्रीकृष्ण अपने 'दल मे पहुँचते' हैं, परंतु 'सारावली' के कृष्ण अति आतुर होकर (जैसे प्राण और रुक्मिणी, दोनों को लेकर) 'भाग चलते' है। यहाँ 'भाग चलने' की बात लिखकर कवि ने जिस 'शब्द-दरिद्रता' का परिचय दिया है, उसके लिए क्या कहा जाय ?

इधर तो 'सारावली'-कार कृष्ण को 'भगाकर' उनकी रक्षा के उपाय सोचने मे लगता है, उधर 'सूरसागर' मे इसी अवसर पर एक महत्वपूर्ण बात लिख दी गयी है—

याही तै सूल रही सिसुपालहि।
सुमिरि सुमिरि पछितात सदा वह, मान भग के कालहि[2] ॥

परंतु किसी 'स्वतंत्र सैद्धांतिक रचना' में सभी बातो का समावेश कैसे हो सकता है ? इसीलिए 'सारावली'-कार शिशुपाल के 'मान-भंग' की बात भुला कर काम की बात करता है और श्रीकृष्ण के 'पीछे' या 'साथ लगे' जानेवाले जरासंध और शिशुपाल की ओर ध्यान देना अधिक आवश्यक समझता है। परतु इधर उसका ध्यान गया ही था कि एक छंद बाद ही बलराम ने आकर सारे दुष्टो के साथ असुर-नृपतियो की भीड़ को मार दिया और शिशुपाल तथा जरासंध भाग गये, तब बेचारा 'सारावली'-कार उनके युद्ध का वैसा विस्तृत वर्णन करता ही कैसे जैसा 'सूरसागर' में मिलता है[3] ? दूसरे, भुलक्कड़पन तो 'सारावली'-कार की

१. 'सूरसागर', पद १०-४१८१।
२. वही, पद १०-४१८२।
३. वही, पद १०-४१८३।

पुरानी आदत ही है; अतएव जब वह ब्रज और मथुरा-लीला का वर्णन करते समय 'राधा' को ही भूल गया तब यदि उक्त भाग-दौड़ में रुक्मिणी के विरोधी भाई रुक्म का उसको ध्यान न आया हो, जिसका वर्णन 'सूरसागर' में तो मिलता ही है, तो अधिक आश्चर्य की बात नहीं है। इसलिए पाठक को भी 'सारावली' की ये पंक्तियाँ पढकर ही संतोष कर लेना चाहिए—

चले तुरत हरि पुरी द्वारिका संख चक्र धरि धाय।
दुष्ट नृपति को मान मथन करि चले द्वारिका नाथ।
जरासंध सिसुपाल आदि नृप पाछे लागे साथ॥
रथ पाछे मिलि सोभित यहि बिधि सकल दुष्ट की खान।
महा सिंह निज भाग लेत ज्यों पाछे दौरै स्वान॥
हलधर आय दुष्ट सब मारे असुर नृपति की भीर।
भाजि चले सिसुपाल जरासँध अति ब्यापित तन पीर[1]॥

'सारावली' के कृष्ण रुक्मिणी को हर कर लाये है और 'भागकर' आये है, संभवतः इसीलिए उसके रचयिता ने द्वारकावासी स्त्री-पुरुषों द्वारा उनका किसी प्रकार का स्वागत कराने की आवश्यकता नहीं समझी है। इसके विपरीत, 'सूरसागर' के कृष्ण शत्रुओं को पराजित करके, विजय श्री लेकर लौटे हैं, अतएव उसका रचयिता दो पदों में द्वारकावासियों द्वारा अत्यंत उल्लास से उनका स्वागत किये जाने का वर्णन करता है[2]।

'सारावली' के इस प्रसंग के शेष बीस छंदों मे से तीन मे विवाह का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

आये नाथ द्वारिका नीके रच्यो माँडवो छाय।
ब्याह केलि विधि रची सकल सुख सौंज गनी नहि जाय॥
ब्रह्मा रुद्र देव तहँ आये सुक नारद सनकादि।
दरसन करि मगल सुख कै सब मेटी बिरह जो आदि॥
चैत्र मास पूनौ को सुभ दिन सुभ नक्षत्र सुभ बार।
ब्याहि लई हरि देव रुक्मिनी बाढ्यो सुख जो अपार[3]॥

उक्त छंदो मे से वस्तुत. प्रथम में ही विवाह का वर्णन है, दूसरे छंद

१. 'सारावली', छंद ६३५ से ६३८।
२. 'सूरसागर', पद १०-४१८४ ८५।

में उन ब्रह्मा, रुद्र, शुक, नारद, आदि की वह सूची है जो हर अवसर पर श्रीकृष्ण का दर्शन या इनकी स्तुति करने के लिए तैयार रहते हैं और तीसरे मे तिथि-गणना-संबंधी अपनी प्रकृति से लाचार 'सारावली'-कार 'सुभ दिन-नछत्र और बार' बताता है। उधर 'सूरसागर' के कवि ने केवल विवाह का बहुत रोचक वर्णन तीन लंबे पदों मे किया है[१] जिनको उक्त पंक्तियो से मिलान करने के लिए उद्धृत करना सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है।

छह सौ बयालीस से अट्ठावन सख्यक छंदों तक 'सारावली'-कार ने श्रीकृष्ण के अन्य विवाहो का वर्णन किया है। 'सूरसागर' मे इस विषय को लेकर तीन लंबे पद लिखे गये हैं[२] और दोनो ग्रंथो का वर्ण्य विषय लगभग एक सा ही है। अतएव दोनो के उद्धरण देना अनावश्यक है।

आगे के तीस छंदो में 'सारावली'-कार ने श्रीकृष्ण के गार्हस्थ्य-जीवन का परिचय दिया है। इसके प्रथम तेईस छंदो मे उनकी वह जीवन-चर्या वर्णित है जो नारद जी ने देखी थी और अंतिम सात मे नारद जी की स्तुति है। 'सूरसागर' में भी इसी नारद-संशय और उसके समाधान को लेकर एक लंबा पद लिखा गया है[३]। 'सारावली'-कार ने जहाँ अपने वर्णन मे मानव जीवन के सामान्य दैनिक कार्य कलाप गिना दिये हैं, वहाँ 'सूरसागर' के पद की पृष्ठभूमि एक प्रकार से आध्यात्मिक है। 'श्रीमद्भागवत्' में भी यह प्रसंग विस्तार से वर्णित है[४] जिससे भी 'सारावली'-कार को प्रेरणा मिलने की संभावना है।

आगे के दस छंदो (६८६ से ६९८) मे 'सारावली'-कार ने प्रद्युम्न-विवाह का वर्णन किया है जो 'सूरसागर' में भी लगभग उसी प्रकार से मिलता है[५]। इसके बाद का छंद तो निरर्थक-सा है। आगे के तीन छंदो (७०० से ७०२) मे अनिरुद्ध-विवाह वर्णित है जो 'सूरसागर'-कार ने दो पदों में बहुत विस्तार से लिखा है[६]। तदनंतर 'सारावली' के सात छंदो

१. 'सूरसागर', पद १०-४१८६-८७-८८।
२. वही, पद १०-४१९०, ४१९२ और ४१९४।
३. वही, पद १०-४२१०।
४. 'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अध्याय उनहत्तर और सत्तर।
५. 'सूरसागर', पद १०-४१८९।
६. वही, पद १०-४१९७-९८।

(७०३ से ७०६) मे पौंड्रक और सुदक्षिण-वध कुछ अटपटे और अस्पष्ट ढंग से वर्णित है। 'सूरसागर' में ये प्रसंग एक-एक पद में लिखे गये हैं[1] जिनको 'सारावली' के सामान्य वर्णन से मिलान करने के लिए उद्धृत करना निरर्थक-सा है।

'सारावली' के अगले बाईस छंदो (७१० से ७३१) का विषय सूर्य ग्रहण पर कुरुक्षेत्र-स्नान और श्रीकृष्ण की व्रजवासियो से भेंट है। इनमें से प्रथम छह छदो मे 'सारावली'-कार ने ऐसे बहुत से व्यक्तियां के नाम गिना दिये है जो कुरुक्षेत्र मे स्नानार्थ एकत्र हुए थे—

पुनि कुरुछेत्र गये जादौ मिलि कियौ तीर्थ अस्नान।
जज्ञ होम करि पितर देवता बिप्रान को बहु दान॥
सूरज ग्रहन नृपनि बहु जान्यो आय जुरी सब भीर।
दरसन भयो सबनि को हरि को मिट्यो ताप तनु पीर॥
भीष्म द्रोन अरु करन जुधिष्ठिर भीमार्जुन सहदेव।
कुंती नकुल और गान्धारी कृपी बिदुर सह देव॥
दुर्जोधन सब भ्रात संग लै धृतराष्ट्रहि लै आयो।
नारद गौतम बाल्मीकि मुनि हरि दरसन हित धायो॥
भरद्वाज मरीचि अंगिरा अत्रे मुनी अनत।
पुलह पुलस्त अगस्त कस्यप पुनि अरु सनकादिक संत॥
हरि को दरसन करि सुख पायो पूजा बहु बिधि कीन्ही।
अति आनंद भयो तन मन मे सौज बहुत बिधि दीन्हीं[2]॥

उक्त वर्णन मे कौन सी विशेषता है और यदि उक्त अनेक नाम न गिनाये गये होते, तो किस सिद्धांत के प्रतिपादन मे कौन सी कमी आ जाने की आशंका थी ? यदि 'सारावली' और 'सूरसागर' का रचयिता एक ही व्यक्ति है तो अपने जिस वृहत् गेय काव्य मे उसने बाईस तेईस पद इस प्रसंग को लेकर लिखे है[3], वहाँ वह उक्त व्यक्तियो में से किसी एक का भी स्पष्ट नाम क्यो नही लेता ? 'सारावली' मे जहाँ उक्त प्रसंग छिड़ते ही उसका रचयिता राजाओ और ऋषि-मुनियो की नामावली का संग्रह

१. 'सूरसागर', पद १०-४२०६ और ४२०७।
२. 'सारावली', छंद ७१० से १५ तक।
३. 'सूरसागर', पद १०-४२७५ से ४२९७।

करने में जुट जाता है, वहाँ 'सूरसागर' मे 'कुरुक्षेत्र-स्नान'-विषयक प्रसंग के केवल एक और वह भी सबसे अंतिम पद मे केवल तीन पंक्तियो मे 'सारावली' की सारी बात समाप्त कर दी गयी है—

हरि कुरुखेत अन्हान सिधाए। तब सब भूपति दरसन आए।
हरि तिन सबको आदर कियौ। भयौ संतुष्ट सबनि कौ हियौ।
तब भूपति हरि कौं सिर नाइ। करन लगे अस्तुति या भाइ[1] ॥

'सूरसागर' के जिस पद से उक्त पंक्तियाँ उद्धृत की गयी है, वह सामान्य भाषा-शैली मे है और उसमे एक नहीं, अनेक नामो की गणना करा देने से भी कोई विशेष अंतर नहीं आता था, फिर भी उसमे किसी व्यक्ति का नाम न होना क्या यह नही सूचित करता कि उक्त पद भिन्न व्यक्ति का रचा हुआ है जिसका वर्णनादर्श 'सारावली'-कार से सर्वथा भिन्न है ?

उक्त प्रस्तावना के पश्चात् 'सारावली' का अगला छंद इस प्रकार है—

व्रजवासी सब सखा संग के जसुमति अरु व्रजराज।
दरसन पाय बहुत सुख पायो सफल भये सब काज[2] ॥

यो बिना किसी प्रकार की प्रतीक्षा, उत्सुकता, अधीरता, संदेश, प्रयत्न आदि के श्रीकृष्ण और व्रजवासियो की भेंट 'सारावली'-कार ने करा दी। क्या यही हृदयहीन 'सारावली'-कार उस 'सूरसागर' का रचयिता हो सकता है जिसमें कुरुक्षेत्र जाने के पूर्व श्रीकृष्ण रुक्मिणी से कहते है—

रुकमिनी मोहि निमेष न बिसरत, वे व्रजवासी लोग।
हम उनसौं कछु भली न कीन्ही, निसि-दिन मरत बियोग।
जदपि कनक-मनि रची द्वारिका, बिषय सकल संभोग।
तद्यपि मन जु हरत बंसी बट, ललिता कै संजोग।
मैं ऊधौ पठयौ गोपिनि पै, देन सँदेसौ जोग।
सूरदास देखत उनकी गति, किहि उपदेसै सोग[3] ॥

× × ×

१. 'सूरसागर', पद १०-४२६७।
२. 'सारावली', छंद ७१६।
३. 'सूरसागर', पद १०-४२७१।

रुकमिनि मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
वह क्रीड़ा वह केलि जमुन तट, सघन कदम की छाहीं ।।
गोप बधुनि की भुजा कंध धरि, बिहरत कुंजनि माहीं ।
और बिनोद कहाँ लगि बरनौं, बरनत बरनि न जाहीं ।।
जद्यपि सुख निधान द्वारावति, गोकुल के सम नाहीं ।
सूरदास घन-स्याम मनोहर, सुमिरि सुमिरि पछिताहीं[1] ।।

× × ×

रुकमिनि चलौ जन्मभूमि जाहि ।
जद्यपि तुम्हरौ बिभव द्वारिका, मथुरा कै सम नाहि ।।
जमुना कैं तट गाइ चरावत, अमृत-जल अँचवाहिं ।
कुंज केलि अरु भुजा कंध धरि, सीतल द्रुम की छाँहिं ।।
सरस सुगंध मद मलयानिल, बिहरत कुंजन माहिं ।
जो क्रीड़ा श्री बृंदावन मैं, तिहूं लोक मैं नाहि ।।
सुरभी ग्वाल नंद अरु जसुमति, मम चित तैं न टराहि ।
सूरदास प्रभु चतुर सिरोमनि, तिनकी सेव कराहि[2] ।।

केवल रुक्मिणी से ही नहीं, सत्यभामा से भी, उसी की 'सौंह' खाकर 'सूरसागर' मे श्रीकृष्ण कहते है—

सुनि सतभामा सौंह तिहारी ।
जब-जब मोहिं घोष सुधि आवत, नैननि बहत पनारी ।।
वै जमुना वै सखा हमारे, नित नव केलि बिहारी ।
बृंदाबन की गुल्मलता है, मन-मधुकर की प्यारी ।।
बीथी बृच्छु गोप के मंदिर, उपमा कहौ कहा री ।
मानौं अधर सरोवर नासे, जसुदा-सी महतारी ।।
माखन खान फेनु दुहि पीवन, ओदन सुपति बिहारी ।
सूरदास-प्रभु उनहिं मिले ते, मै सुरपुरी बिसारी[3] ।।

और सकल परिवार के साथ कुरुक्षेत्र पहुँचते ही 'सूरसागर' के कृष्ण जो पहला कार्य करते हैं, वह यह कि ब्रजवासियो को बुलाने के लिए उन्होंने दूत भेज दिया—

१. 'सूरसागर', पद १० ४२७२ ।
२. वही, पद १०-४२७३ ।
३ वही, पद १०-४२७४ ।

बड़ौ परब रवि-ग्रहन, कहा कहौं तासु बडाई।
चलौ सकल कुरुखेत, तहॉ मिलि न्हैयै जाई॥
तात मात, निज नारि लिए, हरि जू सब संगा।
चले नगर के लोग, साजि रथ तरल तुरंगा॥
कुरुच्छेत्र मे आइ, दियौ इक दूत पठाई।
नंद जसोमति गोपि ग्वाल सब सूर बुलाई[1]॥

यदि 'सारावली' और 'सूरसागर' में वर्णित उक्त दोनो प्रसंगो—नामावली देने और श्रीकृष्ण का दूत भेजने—के अंतर के संबंध मे यह कहा जाय कि 'सारावली'-कार ने 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर वैसा किया है जिसमे नामावली भी है और श्रीकृष्ण के दूत भेजने का भी स्पष्ट उल्लेख नही है[2], तो स्वत: सिद्ध हो जाता है कि वह 'सूरसागर' के रचयिता मे भिन्न कोई व्यक्ति है जिसने भिन्नादर्श लेकर अपने ग्रंथ की रचना की है।

'सारावली' के अगले दो छंदो में उसके रचयिता ने यशोदा और गोपियों का श्रीकृष्ण मे मिलन दिखाया है—

जसुमति मात उछंग लगाये बल मोहन को आय।
बाल-भाव जित्र में सुधि आई अस्तन चले चुचाय॥
गोपिनि देखि कान्ह की सोभा बहुनहि मन सुख पायो।
सघन निकुंज सुरति संगम मिलि मोहन कठ लगायो[3]॥

उधर 'सूरसागर' के कृष्ण का दूत माना यशोदा से कितने हृदय-स्पर्शी ढंग से उनका संदेश देते हुए कहता है—

हौ इहॉ तेरेहि कारन आयौ।
तेरी सौं सुनि जननि जसोदा, मोहि गोपाल पठायौ॥
कहा भयौ जो लोग कहत है, देवकि माता जायौ।
खान-पान परिधान सबै सुख, तैही लाड लडायौ॥
इतौ हमारौ राज द्वारिका, मो जी कछू न भायौ।
जब-जब सुरति होति उहिं हित की, बिछुरि बच्छ ज्यौं धायौ॥

१. 'सूरसागर', पद १०-४२७५।
२. 'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अध्याय बयासी, श्लोक ५ से १७।
३. 'सारावली', छंद ७१७-१८।

अब हरि कुरुच्छेत्र मै आए, सो मै तुम्है सुनायौ।
सब कुल सहित नंद सूरज-प्रभु, हित करि उहाँ बुलायौ[1] ॥

जिस प्रकार उक्त पद मार्मिक है, उसी प्रकार सारे व्रज-समाज का उनसे मिलन-वर्णन भी कवि ने बड़ी सहृदयता से किया है—

नंद जसोदा सब ब्रजबासी।
अपने-अपने सकट साजिकै, मिलन चले अबिनासी ॥
कोउ गावत कोउ बेनु बजावत, कोउ उतावल धावत।
हरि दरसन की आसा कारन, बिबिध मुदित सब आवत ॥
दरसन कियौ आइ हरि जू कौ, कहत स्वप्न कै साँची।
प्रेम मगन कछु सुधि न रही अँग, रहे स्याम रँग राँची ॥
जासौ जैसी भाँति चाहियै, ताहि मिले त्यौं धाइ।
देस-देस के नृपति देखि यह प्रीति रहे अरगाइ ॥
उमँग्यौ प्रेम-समुद्र दुहू दिसि, परिमिति कही न जाइ।
सूरदास यह सुख सो जानै, जाकै हृदय समाइ[2] ॥

× × ×

तेरौ जीवन मूरि मिलहि किन माई।
महाराज जदुनाथ कहावत, तबहि हुते सिसु कुँवर कन्हाई ॥
पानि परे भुज धरे कमल मुख, पेखत पूरब कथा चलाई।
परम उदार पानि अवलोकत, हीन जानि कछु कहत न जाई ॥
फिरि फिरि अब सनमुख ही चितवति, प्रीति सकुच जानी जदुराई।
अब हँसि भेंटहु कहि मोहि निज जन, बाल तिहारौ नंद दुहाई ॥
रोम पुलक गद गद तन तीछन, जलधारा नैननि बरषाई।
मिले तु तात, मात, बाधव सब, कुसल-कुसल करि प्रश्न चलाई ॥
आसन देइ बहुत करी बिनती, सुत धोखे तब बुद्धि हिराई।
सूरदास प्रभु कृपा करी अब, चितहि धरे पुनि करी बड़ाई[3] ॥

दोनो ग्रंथो के उक्त वर्णनों मे किस सहृदय को भावुकता और मार्मिकता का आकाश-पाताल-जैसा अंतर नहीं खटकेगा? और कौन

१. 'सूरसागर', पद १०-४२७८।
२. वही, पद १०-४२८२।
३. वही, पद १०-४२८३।

कह सकता है कि यह अंतर दो भिन्न ग्रंथों की भाषा-शैली मात्र की भिन्नता का परिणाम है ?

'सारावली' के अगले छंद मे राधा के संबंध मे रुक्मिणी की जिज्ञासा इस प्रकार व्यक्त की गयी है—

रुक्मिनि कहत कमल-लोचन सों राधा हमैं दिखावौ।
जाकी नित्य प्रसंसा तुम करि हम सबहिनिकुँ सुनायौ[1] ॥

'सूरसागर' मे यह प्रसंग भी अत्यंत सजीवता के साथ दो पदों में वर्णित है—

हरि सौं बूझति रुकमिनि इनमैं को बृषभानु किसोरी।
बारक हमैं दिखावहु अपने बालापन की जोरी ॥
जाकौ हेत निरंतर लीन्हे, डोलत ब्रज की खोरी।
अति आतुर ह्वै गाइ दुहावन, जाते पर-घर चोरी ॥
रचते सेज स्वकर सुमननि की, नव-पल्लव पुट तोरी।
बिन देखै ताके मन तरसै, छिन बीतै जुग कोरी ॥
सूर सोच सुख करि भरि लोचन, अंतर प्रीति न थोरी।
सिथिल गात मुख बचन फुरत नहिं, ह्वै जु गई मति भोरी[2] ॥

× × ×

बूझति है रुकुमिनि पिय इनमैं को बृषभानु किसोरी।
नैकु हमैं दिखरावहु अपनी बाला-पन की जोरी ॥
परम चतुर जिन कीन्हे मोहन, अल्प बैस ही थोरी।
बारे तै जिहि यहै पढायौ, बुधिबल कल बिधि चोरी ॥
जाके गुन गनि ग्रंथित-माला, कबहुँ न उर तै छोरी।
मनसा सुमिरन, रूप ध्यान उर, दृष्टि न इत-उर मोरी[3] ॥

'सारावली' के उक्त छंद से जान पड़ता है जैसे रुक्मिणी भूले हुए पाठ को दोहराती हुई बात करती है। इसके विपरीत, 'सूरसागर' मे जैसे उसकी हार्दिक जिज्ञासा अत्यंत सजीवता के साथ व्यक्त हुई है। रुक्मिणी

१. 'सारावली', छंद ७१६।
२. 'सूरसागर', पद १०-४२८५।
३. वही, पद १०-४२८६।

के प्रश्न के उत्तर में 'सारावली' के कृष्ण को कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि राधा स्वयं ही वहाँ आ जाती है—

तब बृषभानु सुता पग धारी रानिनि मंडल माँझ।
मनो सरस इन्दीबर फूले ता मधि फूली साँझ[1] ॥

परंतु 'सूरसागर' का रचयिता 'सारावली'-कार की तरह असावधान नहीं है। अतएव रुक्मिणी का प्रश्न सुनते ही 'सूरसागर' के कृष्ण तुरंत उत्तर देते है—

वह लखि जुवति बृंद मै ठाढी, नील बसन तन गोरी।
सूरदास मेरौ मन वाकी चितवनि बंक हरयौ री[2] ।

इसके उपरांत 'सारावली'-कार राधा के रूप के सामने श्रीकृष्ण की पटरानियो के सौंदर्य का फीका हो जाना कहता है—

देख तेज बृषभान-सुता कौ सबै भई छबि-हीन[3] ।

उक्त कथन इस अवसर पर सर्वथा निरर्थक है या नही ? उससे यहाँ किस उद्देश्य की सिद्धि हुई है ? बात यह है कि 'सारावली'-कार को कुछ कहना है और वह कह देता है, किस अवसर पर क्या कहना चाहिए, इसका उसको न ज्ञान है न उसे समझने की बुद्धि ही है। हृदय-मिलन के इस अवसर पर बाह्य सौदर्य की ओर किसी 'मंदमति' की ही बुद्धि और दृष्टि जा सकती है, सूरदास जैसे सहृदय की नही।

'सारावली' के आगे के आठ छंदो में श्रीकृष्ण ने राधा के प्रति अपने उतावले प्रेम की गाथा गायी है—

तब हरि कह्यो मोहि राधा बिन पल छिन कछु न सोहाय।
सुनौ रुक्मिनी कथा घोष की मोपै कही न जाय ॥
एक दिना बन में इन मोको अपनी सुधा पियायो।
ताके बल गिरि गोबरधन लै अपने हाथ उठायो ॥
अरु काली धेनुक दावानल प्रगट पूतना आई।
इनकी कृपा सकल बिघनंनि को छिन मे दिये नसाई[4] ॥

१. 'सारावली', छंद ७२० ।
२. 'सूरसागर', पद १०-४२८६ ।
३ 'सारावली' छंद ७२१ ।
४. वही, छंद ७२२ से ७२४ ।

भाँति भाँति करि मोहि लडायो सघन कुंज में जाय।
ताकी कथा कहाँ कहँ तुमसे मोपै कही न जाय॥
रास केलि करि क्रीडा कीन्हीं होरी खेल खिलायो।
मटुकि छुडाय लियो दधि बरसत तऊ कछु मन नहिं आयो।
रतन जटित पर्जंक द्वारिका पौढत हौं सुखधाम।
तौहू इनको ध्यान करत ही बीतत है सब जाम॥
इन बिन मोहि कछू नहि भावै नन्दराय की आन।
सुनौ रुक्मिनी लोचन मे ए बसी रहै मन प्रान॥
जागत सोवत अरु बन डोलत भोजन करत बिहार।
ध्यान करत नखसिख इनही को बसि द्वारिका मँझार[1]॥

उक्त वाक्यों में श्रीकृष्ण ने उस राधा के प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया है न वे जिसके साथ व्रज में कभी क्रीड़ा करते बताये गये हैं, न जिसका स्मरण उन्होंने कभी मथुरा पहुँच कर किया, न जिसके लिए उद्धव के द्वारा कोई संदेश भेजा, न स्वयं उद्धव ने जिसकी ओर दृष्टिपात किया, न जिसकी चर्चा उन्होंने श्रीकृष्ण के पास लौटकर की और न जिसका ध्यान श्रीकृष्ण को द्वारका-लीला के अवसर पर ही कभी आया। तब उक्त छंदो मे उन्होने जो कुछ कहा है, जिस प्रकार राधा के प्रति उन्होंने अपना प्रेम व्यक्त किया है, उनकी यथार्थता पर 'सारावली'-कार के अतिरिक्त कौन विश्वास कर सकता है जो स्वयं भी कुरुक्षेत्र-प्रसंग के पूर्व कभी भूलकर भी राधा का नाम लेने की आवश्यकता नही समझता ?

श्रीकृष्ण के उक्त लंबे वक्तव्य का श्रोताओं पर क्या प्रभाव पड़ा, रुक्मिणी तथा अन्य पटरानियो ने राधा के साथ कैसा व्यवहार किया, वे उससे मिली-भेंटी या अपनी 'छवि' को उसके सामने हीन होते देखकर कुढ़ती रहीं और उससे बोलने की भी रवादार न हुई, और स्वयं श्रीकृष्ण ने ही उसके प्रति कैसा व्यवहार किया, जिसके ध्यान मे वे, उक्त छंदों के अनुसार, प्रति पल लीन रहते थे, उससे उन्होंने क्या कहा, कैसा व्यवहार या स्वागत-सत्कार किया और राधा ने अपने प्रियतम और उनके परिवार को देखकर कुछ कहा-सुना या उनकी पटरानियो को छविहीन करके 'बड़ी मानलीला' ठान बैठी आदि-आदि प्रश्नों का समाधान करने की तो बात दूर, तत्संबंधी कोई संकेत तक 'सारावली'-कार नही करता। वह तो केवल

१. 'सारावली', छंद ७२५ से ७२६।

इतना लिखता है कि मिल भेंटकर और सर्वथा मौन रहकर 'बिपुल बिहार' करके व्रजवासी अपने घर और यदुवंशी अपने घर चले गये—

तब मिलि रंग बहुत भाँतिनि सो कीन्हे बिपुल बिहार।
ब्रजजन चले सकल गोकुल को दीन्हे दान अपार॥
चले द्वारिका जदुकुल सब मिलि भयो कुलाहल भार।
पहुँचे आय द्वारिका सम्मुख घर घर मंगलचार[1]॥

अब जरा 'सूरसागर' मे राधा का परिचय प्राप्त करके रुक्मिणी का ललककर उससे मिलना और उसका स्वागत-सत्कार करना देखकर अपने नेत्र सफल कर लीजिए—

रुकमिनि राधा ऐसै भेटी।
जैसै बहुत दिननि की बिछुरी, एक बाप की वेटी॥
एक सुभाव एक वय दोऊ, दोऊ हरि कौ प्यारी।
एक प्रान मन एक दुहुनि को, तन करि दीसति न्यारी॥
निज मंदिर लै गई रुकमिनी, पहुनाई बिधि ठानी।
सूरदास प्रभु तहँ पग धारे, जहँ दोऊ ठकुरानी[2]॥

इसके पश्चात 'सूरसागर' का रचयिता राधा और कृष्ण के परम प्रेममय मिलन का भी वर्णन करता है—

राधा माधव भेट भई।
राधा माधव, माधव राधा, क्रीट-भृंग-गति ह्वै जु गई॥
माधव राधा के रँग राँचे, राधा माधव रँग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई[3]॥

कितनी मोटी बात है कि यदि 'सूरसागर' के रचयिता ने ही 'सारावली' जैसी निकृष्ट कोटि की रचना की होती, तो कैसा भी सिद्धांत प्रतिपादन उसका ध्येय रहा होता, क्या उक्त प्रसंग में कोई भी संकेत किये बिना वह रह सकता था और विशेषकर उस स्थिति मे जब इस ग्रंथ के अनेक स्थलो पर न जाने कितनी निरर्थक बातें वह केवल कहता ही नहीं, बार-बार दोहराता भी है?

१. 'सारावली' छंद ७३०-३१।
२. 'सूरसागर', पद १०-४२६१।
३. वही, पद १०-४२६२।

इतना ही नहीं, 'सूरसागर' के कृष्ण राधा से मुस्कराकर एक गूढ़ संकेत द्वारा उसकी समस्त भावनाओं का समाधान करके उसे ब्रज भेजते हैं—

बिहँसि कह्यौ, हम तुम नहि अंतर, यह कहिकै उन ब्रज पठई[1]।

केवल राधा से ही नही, सभी ब्रजवासियो को अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार की ओर से आश्वस्त करते हुए ये कहते है—

ब्रजबासिनि सौं कह्यौ, सबनि तैं ब्रज-हित मेरैं।
तुमसौं नाहीं दूरि, रहत हौं निपटहि नेरैं॥
भजै मोहि जो कोइ, भजौं मैं तेहि ता भाई।
मुकुर माहि ज्यौं रूप, आपनै सम दरसाई[2]॥

इस अवसर पर 'सूरसागर' के कृष्ण अपने गोप-सखाओं को भी नहीं भूलते और उनका नाम ले-लेकर तथा शपथ खाकर अपने प्रेम की दृढता पर विश्वास दिलाते है—

सबहिनि तैं हित है जन मेरौ।
जनम जनम सुनि सुबल सुदामा, निबहौं यह प्रन बेरौ॥
ब्रह्मादिक इंद्रादिक तेऊ, जानत बल सब केरौ।
एकहि साँस उसास त्रास उडि, चलते तजि निज खेरौ॥
कहा भयौ जो देस द्वारिका, कीन्हौ दूरि बसेरौ।
आपन ही या ब्रज के कारन, करिहौं फिरि-फिरि फेरौ॥
इहाँ-उहाँ हम फिरत साधु हित, करत असाधु अहेरौ।
सूर हृदय तैं टरत न गोकुल, अंग छुअत हो तेरौ[3]॥

ब्रजवासियों को इस प्रकार सांत्वना देते-देते श्रीकृष्ण के नेत्र इस प्रकार सजल हो जाते हैं कि कवि भी उनके प्रेम का वर्णन करने मे अपनी असमर्थता स्वीकारता है—

यह कहि कै समदे सकल, नैन रहे जल छाइ।
सूर स्याम कौ प्रेम कछु, मो पै कह्यौ न जाइ[4]।

१. 'सूरसागर', पद १०-४२९२।
२. वही, पद १०-४२९४।
३. वही, पद १०-४२९५।
४. वही, पद १०-४२९४।

श्रीकृष्ण के निष्कपट और असीम प्रेम का परिचय पाकर 'सूरसागर' के व्रजवासी भी अपने परम सौभाग्य पर गद्गद् हो जाते हैं। उनके भरे हुए हृदय और रुद्ध कंठ से निकले हुए निम्नलिखित वाक्यों की गंभीरता को क्या 'सारावली'-कार कहीं पहुँच सका है ?

हम तौ इतनै ही सचु पायौ।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, बहुरौ दरस दिखायौ ॥
कहा भयौ जो लोग कहत है, कान्ह द्वारिका छायौ।
सुनिकै बिरह दसा गोकुल की, अति आतुर ह्वै धायौ ॥
रजक धेनु गज कंस मारि कै, कीन्हौ जन कौ भायौ।
महाराज ह्वै मातु पिता मिलि, तऊ न व्रज बिसरायौ ॥
गोपी गोपऽरु नंद चले मिलि, प्रेम समुद्र बढायौ।
अपने बाल गुपाल निरखि मुख, नैननि नीर बहायौ ॥
जद्यपि हम सकुचे जिय अपनै, हरि हित अधिक जनायौ।
वैसेइ सूर बहुरि नँदनँदन, घर-घर माखन खायौ[1] ॥

कुरुक्षेत्र-स्नान के अवसर पर व्रजवासियो की श्रीकृष्ण से भेंट होना जैसे उनकी दीर्घकालीन तपस्या की सिद्धि मिलना है। श्रीकृष्ण-कथा का यह एक अत्यंत मार्मिक प्रसंग है जिसका वर्णन 'सूरसागर' मे संक्षिप्त होने पर भी बहुत मर्मस्पर्शी है। उसकी तुलना मे 'सारावली' का वर्णन अत्यंत साधारण और थोथा या सारहीन है ? इससे स्पष्ट है कि इसके रचयिता को न कथा के भावपूर्ण और मार्मिक स्थलो की पहचान है और न उसमें उनका वर्णन करने की साधारण कवि-जैसी भी योग्यता ही है। वह वस्तुत: 'सूचीकार' है और सूची प्रस्तुत करना ही उसका एकमात्र आदर्श या सिद्धांत है जिसका प्रतिपादन भी वह समुचित रूप से करने मे सर्वथा असफल रहा है।

'सारावली' के अगले चार छंदो में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का बहुत सामान्य वर्णन किया गया है—

कियो बिचार जज्ञ को राजा राजसूर्य जिय जानि।
कृष्नचंद्र को बेगि बुलावो संग सकल पटरानि[2] ॥

१. 'सूरसागर', पद १०-४२६६।
२. 'सारावली', छंद ७३२।

आये इंद्रप्रस्थ सब जदुकुल महा महोत्सव मानि।
जुरे भूप बहु सकल देस के हरि-दरसन जिय जानि ॥
चारों भ्रात चारि दिसि जीत्यो भारत कही बखान।
ठौर ठौर के नृप सब आये लै उपहार प्रमान ॥
बड़ो जज्ञ रजसूय रचायो जुरे बिप्र बहु भारी।
महा भाग्य राजा जु जुधिष्ठिर जहँ माधव अधिकारी[1] ॥

'सूरसागर' के भी कई पदों मे इस यज्ञ के संबंध मे संकेत किये गये हैं—

क. धर्मसुत कै हृदय यह उपाई।
राजसू जज्ञ कौ कियौ आरभ मै, जानि कै नाथ, तुमको सहाई[2]।

ख. जज्ञ राजसू माहि आपु हरि, सबके पाउँ पखारे[3]।

इस यज्ञ मे प्रश्न उठाया गया कि सबसे पहले पूजा का अधिकारी कौन है, जिसके उत्तर में 'सारावली'-कार के अनुसार, सहदेव ने श्रीकृष्ण का नाम लिया—

सबहिनि कह्यो प्रथम पूजा अब कहौ कौन की कीजै।
सबमे बड़ो कौन भूपति है जाहि अर्चना दीजै ॥
तब सहदेव कह्यो सबहिनि सों सुनो नृपति मन लाय।
पूजा जोग प्रगट पुरुषोत्तम कृष्नचंद्र जदुराय[4] ॥

यद्यपि 'सूरसागर' में यह प्रसंग नही है, तथापि है यह इतना प्रसिद्ध कि 'सारावली'-कार को उसके लिए किसी ग्रंथ का आधार लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी होगी। आगे वह लिखता है कि सहदेव के प्रस्ताव से 'सुर-मुनि-मनुज' सब को तो प्रसन्नता हुई, केवल शिशुपाल खीझ गया और उसने श्रीकृष्ण की करतूतों का बखान करना आरंभ कर दिया—

१. 'सारावली', छंद ७३३ से ७३५।
२. 'सूरसागर', पद १०-४२१५।
३. वही, पद १०-४२२०।
४. 'सारावली', छंद ७३६-३७।

सबहिनि कह्यो साधु यह बानी सुर मुनि मनुज सराई।
इक सिसुपाल दुष्ट नृप कहिये सुनतहि उठ्यो रिसाई ॥
गोकुल नंद अहीर गोप-गृह पय पिय के यह जीयो।
दधि जु चुराय खाय बृंदाबन चरित बिषम बहु कीयो ॥
मातुल मारि बहुत अघ कीन्हे कहँ लौं करौं बड़ाई।
बृंदाबन गोबर्धन कुंजनि लूटी नारि पराई ॥
बन बन गाय चरावत डोलत काँध कमरिया राजै।
लकुटी हाथ गरे गुंजमाला अधर मुरलिका बाजै ॥
ऐसे ख्याल करे इन बहु बिधि कहत जु आवै लाज।
बेद बिदित सुर काज बिगारे बहकाये ब्रजराज ॥
जज्ञ करत बिप्रनि मथुरा में जाँचे भीख न दीन्हीं।
अर्पन कियो नही देवनि को पहिले इन मति कीन्हीं ॥
माखन चोर चोर गोपिनि को दूध जु दधि लै खायो।
जमुना न्हात गोप-कन्यनि को लै पट कदम चढायो ॥
काली हरि की आज्ञा को लै जमुना माँझ बसायो।
ताहि निकारि दियो छनि ही मे नेक सँकोच न आयो ॥
इक पूतना पय पान करावन प्रेम सहित चलि आई।
ताहि लगाय हृदय लपटानो प्रान जो लियो चुराई ॥
जन्म होत इन मात तात को तबहीं बंधन दीन्हों।
जादव जाति भाजि जित तितको अनत जाय सुख कीन्हों ॥
बेनु बजाय रास इन कीन्हों मुग्ध गोप की नारी।
पर-नारी को दोष कछू चित इन नहि कीन्ह बिचारी ॥
दूध दही के भाजन चाटे नैकहु लाज न आई।
माखन चोरि फोरि मथनी को पीवत छाँछ पराई ॥
छाक खाय जूँठन ग्वालनि की कछु मन मे नहिं मान्यो।
पर-दारा के संग जाय निसि कुब्जा सों सुख मान्यो ॥
बहुत प्रीति करि गोपनि जाने बहु बिधि लाड़ लड़ायो।
ताकौ जतन कछू नहि मान्यो मथुरा मे चलि आयो ॥
जरासंध इन बहुत बारही करि संग्राम पलायौ।
हमरे डर करि दोऊ भाई नगर समुद्र बसायो[1] ॥

१. 'सारावली', छंद ७३८ से ७५२।

कालजमन के आगे भाज्यो जाय गुफा गहि लीन्हीं ।
लात मारि मुचुकुंद जगायो नैकु दया नहि कीन्हीं ॥
बातें बहुत याहि की लंपट सभा माँझ नहि कहिये ।
जिय मे समुझि आपने सम्मुख मुख ते चुप करि रहिये[1] ॥

'सारावली' में वर्णित शिशुपाल के उक्त कथन मे तीन बाते ध्यान देने की है। पहली तो यह कि उसने कुछ ऐसी बातो की चर्चा की है जिनका वर्णन 'सारावली'-कार ने अपने ग्रंथ मे इसके पूर्व किया ही नही है। उदाहरण के लिए सात सौ चालीसवें छंद के द्वितीय चरण मे 'वृंदा-वन-गोबर्द्धन-कुंजन लूटी नारि पराई' कहकर कवि ने जिस 'दान-लीला-प्रसंग' की ओर संकेत किया है, उसका उल्लेख श्रीकृष्ण की व्रज-लीला मे अब तक कहीं हुआ ही नहीं है। इस उल्लेख से 'सारावली'-कार की वह असावधानी स्पष्ट ही है जो वह कई स्थलों पर दिखा चुका है। क्या इस प्रकार की असावधानी की आशा कोई अष्टछापी कवि सूरदास से कर सकता है ?

दूसरी बात यह है कि शिशुपाल के श्रीकृष्ण-दोष वर्णन मे किसी प्रकार का क्रम ही नहीं है, उनकी सारी लीलाओ का क्रम उलट-पलट दिया गया है, यहाँ तक कि व्रज और मथुरा-लीलाएँ भी गड्डमड्ड कर दी गयी है। उदाहरण के लिए जन्म होने पर माता-पिता के बंधन का कारण बनने की बात ७४७वें छंद मे है, पूतना वध का उल्लेख ७४६वें में; माखन-चोरी की चर्चा ७४६ वें में है, गोचारण की ७४१वें मे है और जूठी छाक खाने का प्रसंग ७५०वें आता है, कालो-नाग-नाथन का उल्लेख ७४४ मे है, चीर-हरण-लीला का ७४४वें मे और दान-लीला-प्रसंग पहले ही ७४०वें मे आ चुका है। मथुरा मे कृष्ण के आने का प्रसंग ७५१वें छंद में वर्णित है, परंतु कंस के मारे जाने की कहानी, तीन छंद पूर्व, ७४०वें में ही कही गयी है आदि। क्या किसी प्रसंग मे 'सूरसागर'-कार ने भी ऐसा क्रम-भंग किया है ?

तीसरे, 'सरावली' का शिशुपाल एक-एक बात का कई कई बार उल्लेख करने की मूर्खता भी दिखाता है, जैसे दधि-माखन-चोरी की बात वह तीन-तीन ७३६, ७४४, ७४६ संख्यक छंदो में कहता है। यह रचयिता की 'मंदबुद्धि' का प्रमाण है या 'प्रवीणता' का ?

१. 'सारावली', छंद ७५३ ५४ ।

'सूरसागर'-कार 'सारावली'-जैसा अंडबंड और अपूर्ण प्रसंग लिखने से उसका न लिखना ही अच्छा समझता है। उसने सारे प्रसंग को दो पंक्तियों मे ही समाप्त कर दिया है—

बैर भाय सुमिरयौ सिसुपाल। ताहि राजम् मै गोपाल।
चक्र सुदरसन करि संहारयौ। तेज तासु निज मुख मै धारयौ[1]।

परंतु, जैसा कहा जा चुका है 'सारावली'-कार की नीति विचित्र है। वह श्रीकृष्ण-कथा के अत्यन्त मर्मस्पर्शो प्रसंगो पर या तो बिलकुल मौन हो जाता है, या एक-दो पंक्तियों मे उनकी ओर संकेत करके आगे बढ़ जाता है और सर्वथा निरर्थक बातो का वर्णन, न जाने किस सिद्धांत के नाम पर, बहुत विस्तार से करता है। शिशुपाल के उक्त वक्तव्य को सुनकर पांडवो का क्रुद्ध होना, श्रीकृष्ण का उसको मार कर निज लोक पठाना और युधिष्ठिर का प्रसन्न होना उसने चार छंदो मे लिख डाला है—

अतिसै क्रोध भये पाडव सुत, और नपति हरिदास।
राखे बरज सबन कूँ माधौ, नैक न भये उदास॥
अति ही भई अवज्ञा जानी, चक्र सुदर्सन मान्यौ।
करि निज भाव एक सत्रुंन मै, छिनक दुष्ट सिर भान्यौ॥
परम कृपाल दयाल देवकी-नंदन पावन नाम।
दीनी मुक्ति दया करिकै तब, दियौ लोक निज धाम॥
जै जैकार भयौ बसुधा पर, राय युधिष्ठि हरषे।
अमृत स्नान कराय बेद बिधि, कनक-कुसुम सिर बरसे[2]॥

इसके अनंतर तीन छंदा मे 'सारावली' कार पांडवों की सभा में दुर्योधन के भ्रम और तज्जनित क्रोध का वर्णन इस प्रकार करता है—

दीन्ही सभा बनाय पाडु की, मय मायागत अत।
ताकूँ देख भ्रमे दुर्योधन, महा मोह मतिमंत॥
जल मै थल-मति, थल मै जल-मति, भई नृपति की जान।
अधपुत्र लखि हँसे पवनसुत, सुन जिय मै रिस मान॥
गयौ भवन अकुलाय बहुत जिय, क्रोधवंत अभिमानी।
ताही दिन तै पाडु-पुत्र सो, बैर विषम गति ठानी[3]॥

१. 'सूरसागर', पद १०-४२१६।
२. 'सारावली', छंद ७५५ ७५८।
३. वही, छंद ७५९-६०-६१।

दुर्योधन के भ्रम और क्रोध का यह प्रसंग भी अत्यंत प्रसिद्ध है और उसका प्रत्यक्ष संबंध श्रीकृष्ण से न होने के कारण 'सूरसागर'-कार ने संभवत. उसका वर्णन करने की आवश्यकता नही समझी है।

'सारावली' के अगले छंद में दुर्योधन और युधिष्ठिर की द्यूत-क्रीड़ा का उल्लेख हुआ है जिसके परिणाम स्वरूप द्रौपदी का अपमान करने के लिए उसे दुश्शासन सभा मे पकड़ लाता है—

सभा रची चौपर क्रीड़ा करि, कपट कियौ अति भारी।
जीत जुधिष्ठिर की सब जानी, तौउ मन मै अधिकारी॥
जुवती हरी जान दुष्टन नै, जब द्रोपदी बुलाई।
हरि कौ सुमिरन करत, पंथ मै दुस्सासन गहि लाई[1]॥

यह प्रसंग 'सूरसागर' में भी लगभग इसी प्रकार मिलता है—

कौरव पासा कपट बनाए। धर्म-पुत्र कों जुआ खिलाए।
तिन हारयो सब भूमि भँडार। हारी बहुरि द्रौपदी नार।
ताकौं पकरि सभा मै ल्यावै। दुस्सासन कटि-बसन छुड़ावै[2]।

आगे के तीन छंदो मे 'सारावली'-कार ने श्रीकृष्ण के प्रति द्रौपदी की रक्षा याचना इस प्रकार लिखी है—

अहो नाथ, ब्रजनाथ, नाथ निज, जदुकुल के निज नाथ।
गोकुलनाथ, नाथ सब जन के, मो पति तुम्हरे हाथ॥
ज्यौं गजराज बचायौ जल मै, नैक बिलंब न कीन्ही।
अपनौ भक्त बचाबन कारन, विष विषया करि दीन्हीं॥
सिबरी-गीध और पसु-पंछी, सबकी रक्षा कीनी।
अब तौ सहाय करौ तुम मेरी, हौ पामर मतिहीनी[3]॥

द्रौपदी की उक्त प्रार्थना कितने निर्जीव ढंग से लिखी गयी है। क्या यह शब्दावली उस सूरदास की है जिसने इस प्रसंग में कई बड़े मार्मिक पद 'सूरसागर' मे लिखे हैं[4] जिनमें से केवल दो यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

१. 'सारावली', छंद ७६२-६३।
२. 'सूरसागर', पद १०-२४६।
३. 'सारावली', छंद ७६४-६५-६६।
४. 'सूरसागर', पद १-२४७ से १-२५९।

राखौ पति गिरिवरगिरि धारी।
अब तौ नाथ, रह्यौ कछु नाहिन, उघरत माथ अनाथ पुकारी।
बैठी सभा सकल भूपनि की, भीषम-द्रोन-करन ब्रतधारी।
कहि न सकत कोउ बात बदन पर, इन पतितनि मो अपति बिचारी।
पाडु कुमार पवन से डोलत, भीम गदा कर तै महि डारी।
रही न पैज प्रबल पारथ की, जब तै धरम-सुत धरनी हारी।
अब तौ माथ न मेरौ कोई, बिनु श्रीनाथ-मुकुन्द-मुरारी।
सूरदास अवसर के चूकै, फिरि पछितैहौ देखि उघारी[1] ॥

× × ×

इत उत देखि द्रौपदी टेरी।
ऐंचत-बसन, हँसत कौरव-सुत, त्रिभुवन नाथ, सरन हौ तेरी।
सरबस दै अम्बर तन बॉच्यौ, सोउ अब हरत, जाति पति मेरी।
क्रोधित देखि हँसे कौरव-कुल, मानौ मृगी सिह बन घेरी।
गहि दुस्सासन केस सभा मे, बरबस लै आयौ ज्यौं चेरी।
पाडव सब पुरुषारथ छॉड्यो, बॉधे कपट-बचन की बेरी।
हा जदुनाथ द्वारिका-बासी, जुग-जुग भक्त आपदा फेरी।
बसन-प्रवाह बढ्यौ सुनि सूरज, आरत बचन कहे जब टेरी[2] ॥

द्रौपदी जिस समय विलाप कर रही थी, श्रीकृष्ण उस समय, 'सारावली'-कार के अनुसार, द्वारका मे चौपड़ खेल रहे थे, और उसकी आवाज सुनते ही चौंक कर उन्होने पासे फेंक दिये—

चौपर खेलत भवन आपने हरि द्वारिका मॅझार।
पासो डारि परम आतुर सौं कीन्हे अनत उचार[3] ॥

'सारावली' का यह उल्लेख कथावाचको के सामान्य प्रवचनो के आधार पर है। 'सूरसागर'-कार ने केवल इतना संकेत किया है, और वह सर्वविदित ही है कि श्रीकृष्ण उस समय कौरवो की सभा में नहीं थे। इसके उपरांत दो छंदो मे 'सारावली'-कार ने द्रौपदी का चीर बढ़ने, भीष्म, द्रोण, कर्ण, युधिष्ठिर आदि के विस्मित होने और हारकर दुश्शासन के सभा मे बैठने का वर्णन किया है—

१. 'सूरसागर', पद १-२४८।
२. वही, पद १-२५१।
३. 'सारावली', छंद ७६७।

चीर बढाय दियो बहु तेहि छिन ऐंचत पार न पायो ।
भीष्म द्रोन अरु करन जुधिष्ठिर सब बिस्मय मन लायो ।।
रहेउ दुष्ट पचि हार दुसासन कछू न कला चलाई ।
बैठ्यो आय सभा मे पाछे बार बार पछिताई[1] ।।

'सूरसागर' का वर्णन भी 'सारावली' के उक्त वर्णन से मिलता-जुलता है, जैसे—

क. दुखित द्रौपदी जानि जगतपति आए खगपति त्याग ।
पूरे चीर भीरु-तन-कृष्ना, ताके भरे जहाज ।
काढि-काढि थाक्यौ दुस्सासन, हाथनि उपजी खाज ।
बिकल मान खोयौ कौरव-पति, पारेउ सिर कौ ताज[2] ।

ख. केस पकरि ल्यायौ दुस्सासन, राखी लाज मुरारे ।
नाना बसन बढाइ दिए प्रभु, बलि-बलि नंद-दुलारे ।
नगन न होति चकित भयौ राजा, सीस धुनै, कर मारै[3] ।

ग. पूरे चीर, अंत नहि पायौ, दुरमति हारि लही ।
सूरदास प्रभु द्रुपद-सुता की, हरि जू लाज ठही[4] ।

'सूरसागर' के उक्त अवतरणों में सहृदय कवि जितने भाव और विश्वास भरे स्वर से द्रौपदी की सहायता की बात कह रहा है, 'सारावली' के वर्णन को लेकर उसकी तो चर्चा करना ही व्यर्थ है, यहाँ केवल इतना देखना पर्याप्त है कि 'सारावली' कार ने जो कुछ कहा है, वह 'सूरसागर' की छाया-मात्र है, और उसका यह कहना कि यह कथा 'बेद-पुरान-तंत्र-भारत' मे बहुत बिधि से कही गयी है—

बेद-पुरान-तन्त्र-भारत मै कही बहुत बिधि भाखी[5] ।

सर्वथा निरर्थक है; क्योंकि उसने उक्त ग्रंथो मे से किसी का भी आधार लेकर केवल द्रौपदी की ही नहीं, कोई भी कथा नहीं लिखी है, अधिक से अधिक उसने तद्विषयक कुछ प्रवचन सुने-मात्र थे—जिनको वह

१. 'सारावली', छंद ७६८-६६ ।
२. 'सूरसागर', पद १-२५५ ।
३. वही, पद १-२५७ ।
४. वही, पद १-२५८ ।
५. 'सारावली', छंद ७७० ।

अपनी 'मंद' या 'प्रवीण' बुद्धि के साथ जितना हृदयंगम कर सका, वही उसकी रचना का आधार है।

द्रौपदी पर एक विपत्ति पड़ी और उसकी सहायता, उसके विश्वास के अनुसार, श्रीकृष्ण ने कर दी बस, 'सारावली'-कार के अनुसार, वह यंत्रवत् अपने भवन मे चली गयी—

फिर द्रौपदी भवन मै आई, श्री हरि लज्जा राखी[1]।

कितनी कृतघ्न है 'सारावली'-कार की यह द्रौपदी जो घोर संकट मे अपनी सहायता करनेवाले के प्रति कृतज्ञता का एक शब्द भी प्रकट करने की आवश्यकता नही समझती और (हर्ष-भरी या शायद इठलाती हुई) अपने भवन को चली जाती है। और उस पर तुर्रा यह कि 'सारावली' मे सब कथाएँ, कम से कम 'सूरसागर' की तुलना मे तो, एक प्रकार की प्रबंधकता के साथ लिखी जा रही है। उधर अष्टछापी सूरदास की द्रौपदी अपनी रक्षा होते ही कितनी कृतज्ञता के साथ गा उठती है—

जौ मेरे दीनदयाल न होते।
तौ मेरी अपत करत कौरव सुत, होत पाडवनि ओते।
कहा भीम के गदा धरै कर, कहा धनुष धरै पारथ ?
काहु न धरहरि करी हमारी, कोउ न आयौ स्वारथ[2]।

इतना ही नहीं, कवि स्वयं गद्‌गद् स्वर में, द्रौपदी की तरह विपत्ति से ग्रस्त जनो को बार-बार आश्वस्त करता है—

क. जय-जयकार भयौ त्रिभुवन मै, जब द्रौपदि उबरी।
सूरदास-प्रभु सिंह-सरन गहि स्यारहि कहा डरी[3]।

ख. सूरजप्रभु यह मान सदाई, भक्त हेत महाराज[4]।

ग. सूरदास ताकौं डर काकौ, हरि गिरिधर के ओले[5]।

१. 'सारावली', छंद ७७०।
२. 'सूरसागर', पद १-२५६।
३. वही, पद १-२५४।
४. वही, पद १-२५५।
५. वही, पद १-२५६।

घ. जापर कृपा करै करुनामय, ता दिसि कौन निहारै।
जो जो जन निस्चै करि सेवै, हरि निज बिरद सँभारै।
सूरदास प्रभु अपने जन कौ, उर तै नैकु न टारै[1]।

ङ. सूरदास प्रभु नँद नंदन-गुन गावत निसि दिन रोवै[2]।

उक्त प्रसंग में भी दोनो ग्रंथो में जो अंतर मिलता है यदि कोई इसका भी समाधान किसी विशिष्ट सिद्धांत-प्रतिपादन की बात कह कर करना चाहे तो सिवा हठधर्मीपन के और क्या कहा जा सकता है ?

'सारावली' के अगले दो छंदो में, पांडवों के वनवास-काल में दुर्वासा का उनके पास आना और उनके शाप से श्रीकृष्ण का पांडवो की रक्षा करना इस प्रकार बताया गया है—

पुनि बनबास दियो पाडव-सुत हरि द्वारिका मे जानी।
अच्छय पात्र दिवायो रवि पै बडे भक्त सुख दानी ॥
दुर्बासा सापन को आये तिनकी कछु न चलाई।
अच्छय कियो कमल-दल लोचन भक्तनि भये सहाई[3] ॥

'सूरसागर' में भी यत्र-तत्र इस प्रसंग का उल्लेख मिलता है, जैसे—

अतिथि रिषीस्वर सापन आए, सोच भयौ जिय भारी।
स्वल्प साग तै तृप्त किए सब, कठिन आपदा टारी[4]।

प्रत्यक्ष है कि 'सूरसागर' के अवतरण में 'अक्षय पात्र' की चर्चा न होने पर भी उसके संबंध मे स्पष्ट संकेत है।

आगे के तीन छंदो में 'सारावली' कार श्रीकृष्ण के दूत-कार्य का वर्णन करता है और वे दुर्योधन के सामने पांडवो की माँग इस प्रकार रखते हैं—

१. 'सूरसागर', पद १-२५७।
२. वही, पद १-२५६।
३. 'सारावली', छंद ७७१-७२।
४. 'सूरसागर', पद १-२८२।

पाडव-कुल के सहाय भये हरि जहँ तहँ संगहि डोले ।
दुर्जोधन सों कह्यो दूत ह्वै भक्त-पच्छ दृढ बोले ।।
पाँच गॉव पाडव को दीजै सुनौ नृपति मम बात ।
और राज सब तुमही करिये निपट जगत बिख्यात ।।
प्राची और प्रतीचि उदीची और अपाची मान ।
इंद्रप्रस्थ बीच मे दीजै और राज तुव जान[1] ।।

अंतिम छंद मे 'प्राची-प्रतीची' आदि कहकर पॉच गाँवो का जो उल्लेख किया गया है, वह तो 'सारावली'-कार की नाम-गणन-प्रियता की देन है, शेष बातो के संबंध मे 'सूरसागर' में भी संकेत किया गया है—

"सुनि राजा दुर्जोधना, हम तुम पै आए ।
'पाडव-सुत जीवत मिले, दै कुसल पठाए ।
'छेम-कुसल अरु दीनता, दंडवत सुनाई ।
'कर जोरे बिनती करी, दुरबल-सुखदाई ।
'पाँच गाउँ पॉचौ जननि, किरपा करि दीजै।
'ये तुम्हरे कुल बंस है, हमरी सुनि लीजै[2] ।"

तदनंतर 'सारावली' में त न छंदो में दुर्योधन के अस्वीकार करने पर श्रीकृष्ण का क्रुद्ध होकर इस प्रकार कहना बताया गया है—

सुनि कै क्रोध भयो दुर्जोधन सब पाडव को राज ।
तुमरो कुल सब नास होयगो कहि जो चले ब्रजराज ।।
बहुत दुःख दीन्हों पाडव को अबलौं मै सहि लीन्हों ।
लाख भवन बैठारि दुष्ट ने भोजन मे बिष दीन्हौ ।।
बन बन फिरे अर्क-तूलन ज्यौं बास बिराटहि कीन्हों ।
अंतहि गुप्त रहे ता पुर मे भेद काहु नहि दीन्हों[3] ।।

उक्त प्रथम छंद मे 'सारावली'-कार ने श्रीकृष्ण से दुर्योधन को जो शाप दिलाया है, वह 'सूरसागर' मे नहीं है और न 'अर्क-तूल ज्यों' पांडवों के उड़े-उड़े फिरने की बात ही इसमे कही गयी है । इसके विपरीत, 'सूर-सागर' के कृष्ण तो निर्लिप्त भाव से 'हम कछु लैन न दैन मैं' कहकर दुर्योधन की सभा से लौट आते हैं—

१. 'सारावली', छंद ७७३-७४-७५ ।
२. 'सूरसागर', पद १-२३८ ।
३. 'सारावली', छंद ७७६-७७-७८ ।

हम कछु लैन न दैन मै, ये बीर तिहारे।
सूरदास प्रभु उठि चले, कौरव-सुत हारे[१]।

हाँ, 'सारावली' के दूसरे छंद के द्वितीय चरण मे 'लाख भवन' की बात 'सूरसागर' के अनेक पदो मे मिलती है, जैसे—

क. लच्छा गृह तै काढ़ि कै पाडव गृह ल्यावै[२]।

ख. लाखागृह तै जरत पाडु-सुत बुधि-बल नाथ उबारे[३]।

ग. लाखागृह तै ' ' पाडव बिपति निवारी[४]।

'सारावली' के अगले छंद में महाभारत के युद्ध और श्रीकृष्ण के शस्त्र न उठाने के प्रण के संबंध मे लिखा गया है—

जुरे नृपति अच्छौनि अठारह भयो जुद्ध अति भारी।
रथ हाँकत गोबिद अर्जुन को दीन्ह सस्त्र सब डारी[५]॥

'सूरसागर' मे भी श्रीकृष्ण की इस प्रतिज्ञा की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है। वे दुर्योधन से कहते हैं—

.... तब श्री पति बानी उचरी।
जुद्ध न करौ सस्त्र नहि पकरौं एक ओर सेना सिगरी[६]।

भीष्म पितामह को जब श्रीकृष्ण के इस प्रण की बात ज्ञात हुई तो उन्होंने भी उसको तोड़ने की प्रतिज्ञा की। 'सारावली' में यह प्रसंग अगले छंद में मिलता है—

करी प्रतिज्ञा कहेउ भीष्म मुख पुनि पुनि देव मनाऊँ।
जो तुम्हरे कर सर न गहाऊँ गंगा-सुत न कहाऊँ[७]॥

'सूरसागर' के भी दो-तीन पदों में भीष्म की इस प्रतिज्ञा का वर्णन हुआ है; एक पद में वे सामान्य रूप से कहते हैं—

१. 'सूरसागर', पद १-२३८।
२. वही, पद १-४।
३. वही, पद १-१०।
४. वही, पद १ १७।
५. 'सारावली', छंद ७७६।
६. 'सूरसागर', पद १-२६८।
७. 'सारावली', छंद ७८०

सूरदास भीषम परतिज्ञा, अस्त्र गहावन पैज करी[1] ।

परंतु इतने से कवि को संतोष नहीं होता। अतएव दूसरे पद मे वह पुन: कहता है—

आजु जौ हरिहि न सस्त्र गहाऊँ ।
तौ लाजौ गंगा जननी कौ सातनु-सुत न कहाऊँ[2] ।

'सारावली' के अगले दो छंदो मे युद्ध का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

चढे प्रबल दल दोऊ ओर के बिच अर्जुन रथ ठाढो ।
इत पारथ गागेय बली उत जुरो जुद्ध अति गाढो ।।
दस दिन लरे बली गंगासुत स्याम प्रतिज्ञा जानी ।
सत्य बचन हरि कियो भक्त को निगम झूठ करि बानी[3] ।।

उक्त छंदो मे से प्रथम मे 'बिच अर्जुन रथ ठाढ़ौ' और द्वितीय छंद मे 'स्याम प्रतिज्ञा जानी', दोनो उपवाक्य सर्वथा निरर्थक हैं। इनमें से प्रथम युद्धारंभ का है जो इस प्रसंग में अनावश्यक है और द्वितीय, प्रसंग से संबंधित होते हुए भी बहुत उपयुक्त नही है। इसी प्रकार 'दस दिन लरे बली गंगा-सुत' भी प्रसंग के उत्कर्ष मे किसी प्रकार सहायक नही होता। 'सूरसागर' मे केवल इसी प्रसंग का युद्ध इस प्रकार वर्णित है—

सुरसरी-सुवन रनभूमि आए ।
बान-बरषा लगे करन अति क्रुद्ध ह्वै, पार्थ-अवसान तब सब भुलाए[4] ।

युद्ध के उक्त वर्णन के पश्चात् ही 'सारावली'-कार झटपट श्रीकृष्ण से उनकी प्रतिज्ञा तुड़वा देता है—

धरि रथ चक्र स्याम निज कर मे जबहि भीष्म पर डारो ।
सीतल भई चक्र की ज्वाला जब सिर तिलक निहारो[5] ।।

१. 'सूरसागर', पद १-२६८ ।
२. वही, पद १-२७० ।
३. 'सारावली', छंद ७८१-८२ ।
४. 'सूरसागर', १-२७१ ।
५. 'सारावली', छंद ७८३ ।

कितना अद्भुत वर्णन है ! जिस प्रकार भीष्म का युद्ध आज हो रहा है, वैसा ही वे दस दिन से कर रहे थे, तब जिन श्रीकृष्ण ने इतने दिन उनकी प्रतिज्ञा रखने के लिए अपना प्रण नही तोड़ा, तो आज क्यो तोड़ दिया ? स्पष्ट है कि 'सारावली'-कार ने सामान्य प्रवचन सुना है और जल्दी से जल्दी उसको 'उगल' देना चाहता है। 'भक्त की प्रतिज्ञा-रक्षा' के लिए अपना प्रण तोड़ देना जैसे महत् कार्य के उपयुक्त परिस्थिति भी उपस्थित करके अपनी 'प्रवीणता' का परिचय देने की योग्यता तो उस 'सरमठ बरस प्रवीन' कवि में हैं ही नहीं। इसके विपरीत, 'सूरसागर'-कार 'पार्थ-अवसान भुलाए' जाने की बात ऊपर कहकर पुन: अर्जुन से निवेदन करवाता है— महाराज ! यदि हमें जिताना है, तो अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर हमारी रक्षा कीजिए—

कह्यौ करि कोप, प्रभु अब प्रतिज्ञा तजौ, नही तौ जुद्ध निज हम हराए[1] ।

अर्जुन को यह आर्तवाणी सुनकर श्रीकृष्ण ने पहले तो अपने स्वभाव की इस प्रकार व्याख्या की—

हम भक्तनि के, भक्त हमारे।
सुनि अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह ब्रत टरत न टारे।
भक्तनि काज लाज जिय धरि कै, पाइ पियादे धाऊँ।
जहँ-जहँ भीर परै भक्तनि कौं, तहँ-तहँ जाइ छुड़ाऊँ।
जो भक्तनि सौं बैर करत है, सो बैरी निज मेरौ।
देखि बिचारि भक्ति-हित-कारन, हाँकत हौं रथ तेरौ।
जीतैं जीति भक्त अपनै के, हारैं हारि बिचारौं।
सूरदास सुनि भक्त-बिरोधी, चक्र सुदरसन जारौं[2] ।

और तदुपरात, अर्जुन अर्थात् भक्त-पक्ष की रक्षा के उद्देश्य से अपना प्रण तोड़कर चक्र धारण किया—

क. गोबिद कोपि चक्र कर लीन्हौ।
छाँड़ि आपनौ प्रन जादवपति, जन कौ भायो कीन्हौ।
रथ तै उतरि अवनि आतुर ह्वै, चले चरन अति धाए[3] ।

१. 'सूरसागर', पद १-२७१ ।
२. वही, पद १-२७२ ।
३. वही, पद १-२७३ ।

ख. बरु मेरी परतिज्ञा जाउ।
इत पारथ कोप्यौ है हम पर, उत भीषम भट-राउ।
रथ तै उतरि चक्र कर लीन्हौ, सुभट सामुहैं आए[1]।

दोनो ग्रंथो के उक्त अवतरणो मे जो अंतर है क्या उससे यह नहीं सिद्ध होता कि 'सरसठ बरस' के उस 'प्रवीन' कवि मे किसी भी विषय को हृदयंगम करने की योग्यता ही नही है, 'कविता' जैसी रचना करना तो बहुत दूर की बात है ? यदि कहा जाय कि 'सारावली-कार ने उक्त छंद स्वतंत्र रूप से लिखा है, 'सूरसागर' उसका आधार नही है, तो भी ठीक नही है, क्योंकि उक्त छद मे उसने जो कुछ लिखा है, वह अष्टछापी कवि की ही शब्दावली मे है। 'सूरसागर' की ये पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं—

आइ निकट श्रीनाथ निहारे, परी तिलक पर दीठि।
सीतल भई चक्र की ज्वाला, हरि हँसि दीन्ही पीठि[2]।

'सूरसागर' की उक्ति 'हरि हँसि दीन्हो पीठ' में जो गंभीर व्यंजना है, उसकी आशा तो हम 'सारावली'-कार से कभी कर ही नही सकते थे; हाँ, उसकी प्रामाणिकता के पोषको से यह अवश्य जानना चाहते हैं कि 'आधार' के उपयोग की स्वतंत्रता के उक्त रूप का समर्थन वे किस 'सिद्धांत' द्वारा करना उचित समझेंगे।

'सारावली' के अगले दो छंदों में भीष्म और श्रीकृष्ण का संवाद इस प्रकार दिया गया है—

धन्य धन्य कहि परे आय पग गुननिधान गागेव।
तब हरि कहेउ बिपुल बल तुम्हरो जीति लिये सब देव ॥
तब उन कहेउ चरन आपन मे राखौ निसि दिन ध्यान।
मोरि प्रतिज्ञा तुम राखी है मेटि बेद की कान[3] ॥

'सारावली' के भीष्म श्रीकृष्ण की कृपा देखकर, युद्ध छोड़-छाड़ कर, उनके पैरो पर आ गिरते है। न उन्हें युद्ध की मर्यादा का ध्यान रह जाता है, न अपने सेनापति-पद के दायित्व का और न दुर्योधन की जय-पराजय या उसकी प्रसन्नता-अप्रसन्नता का। संभवतः उनके इस व्यवहार का

१. 'सूरसागर', पद १-२७४।
२. वही, पद १-२७४।
३. 'सारावली', छंद ७८४-८५।

कारण यह हो कि कृष्ण की प्रतिज्ञा टूटने से वे अत्यंत गद्गद् हो गये और उनको यह ध्यान ही न रहा कि उनके ऐसे आचरण से युद्धभूमि मे कैसा हास्यास्पद दृश्य उपस्थित हो जायगा जब सेनापति ही शत्रु-पक्ष के किसी व्यक्ति के चरणो पर जाकर गिर पड़ेगा। परंतु 'सारावली' कार को इन सब बातो से क्या मतलब ? उसने तो यह देखा कि 'सूरसागर' मे भी भीष्म कुछ-कुछ ऐसी ही बात श्रीकृष्ण से कहते हैं—

तुम्हरै चरन-कमल मेरे मस्तक . .. .[1]।

और यह समझने की उस 'सरसठ वर्षीय बाल' मे बुद्धि हो भी कैसे सकती थी कि 'सूरसागर' का कथन शर-शैया पर पडे भीष्म का है जिसे सेनापति भीष्म के मुख से कहलाना तक तो किसी सीमा तक क्षम्य भी हो सकता था, परंतु तदनुसार आचरण भी करा देना सभी दृष्टियो से अस्वाभाविक है।

'सूरसागर' मे भी इस अवसर पर भीष्म और श्रीकृष्ण का संवाद इस प्रकार मिलता है जिसके सामने 'सारावली' का संवाद सर्वथा सारहीन है—

जय-जय-जय चिंतामनि स्वामी, सांतनु-सुत यौं भाखै।
तुम बिनु ऐसौ कौन दूसरौ, जो मेरौ प्रन राखै।
साधु-साधु सुरसरी-सुवन तुम, नहिं प्रन लागि डराऊँ।
सूरजदास भक्त दोऊ दिसि, कापर चक्र चलाऊँ[2]॥

अगले छंद में 'सारावली'-कार ने भीष्म के शर-शैया पर सोने और सूर्य के उत्तरायण होने पर देह तजने का वर्णन किया है—

डारि सस्त्र सर-सेज्या सोये हरि चरननि चित लायो।
उत्तर दिसि रबि जानि देह तजि महाँ परम पद पायो[3]॥

'सूरसागर' मे अर्जुन भीष्म से उनके मरने का उपाय पूछता है[4] और तदनुसार शिखंडी को आगे करके भयंकर युद्ध करता है, तब भीष्म शर-शैया पर गिरते है, परंतु दक्षिणायण सूर्य को देखकर प्राण नही तजते—

१. 'सूरसागर', पद १-२७८।
२. वही, पद १-२७४।
३. 'सारावली', छंद ७८६।
४. 'सूरसागर', पद १-२७५।

पारथ भीषम सौं मति पाइ। कियौ सारथी सिखंडी आइ।
भीषम ताहि देखि मुख फेरयौ। पारथ जुद्ध-हेत रथ प्रेरयौ।
कियौ जुद्ध अनिहीं बिकरार। लागी चलन रुधिर की धार।
भीषम सर सज्या पर परयौ। पै दच्छिनाइनि लखि नहि मरयौ[1] ॥

'सारावली' के अगले दो छंदो मे युधिष्ठिर के राजा होने और श्रीकृष्ण के द्वारका पहुँचने पर आनंद होने की बात बहुत साधारण ढंग से कही गयी है—

नृपति जुधिष्ठिर राजतिलक दै मारि दुष्ट की भीर।
द्रोन कर्न अरु सल्य मुक्त करि मेटी जग की पीर ॥
गोबिंद आय द्वारिका निज गृह अति आनंद बढायो।
घर घर मंगल महा कुलाहल जदुकुल होत बधायो[2] ॥

'सूरसागर' मे भी इस संबंध मे संकेत किये गये हैं यद्यपि उनको विस्तार नहीं दिया गया है—

राजा सिंहासन बैठाए।
हरि पुनि द्वारावती सिधाए[3] ॥

'सारावली' के अगले छह छंदों में शाल्व-वध की कथा इस प्रकार कही गयी है—

साल्व नृपति तप किय पंचानन तापै यह बर पायो।
दियो बनाय नगर गोपुर मे काहु न जान लिवायो ॥
आय द्वारिका सोर कियो उन हरि हस्तिनपुर जाने।
प्रदुमन लरे सप्त दस दो दिन रंच हार नहि माने ॥
हरि अपसगुन जानि हस्तिनपुर बैठि तुरत रथ धाये।
बहुत देस को पावन करि करि साँझ द्वारिका आये ॥
कीन्हों जुद्ध आय सालव सो उन बहु माया कीन्हीं।
जल में थल थल मे जल देख्यो स्याम दूर करि दीन्हीं ॥
माया दूर करी नँदनंदन चक्र दियो सिर डारि।
छिनहीं माँझ दुष्ट संहारो भुव को भार उतारि[4] ॥

१. 'सूरसागर', पद १-२७६।
२. 'सारावली', छंद ७८७-८८।
३. 'सूरसागर', पद १ २८०।
४. 'सारावली', छंद ७८६ से ७६३।

जयजयकार करत देवागन बरसति कुसुम अपार।
कियो प्रबेस द्वारिका मोहन घर घर मँगल-चार[1] ॥

'सूरसागर' में यह प्रसंग बहुत विस्तार से एक लंबे पद मे वर्णित है जिसकी निम्नलिखित पंक्तियो में उक्त वर्णन की सभी मुख्य-मुख्य बातें आ गयी हैं—

सुभट साल्व करि क्रोध हरि-पुरी आयौ।

+ + +

प्रद्युम्न सात्यकि निकसि सम्मुख भए, बंधु सारन सुनत बेगि धाए।

+ + +

हस्तिनापुर गए हुते हरि पाडु-गृह, तहाँ तैं चले यह बात जानी।
साल्व उत्पात न्यिौ द्वारिका माहि बहु, हाँकि रथ कह्यौ सारंगपानी।

+ + +

लख्यौ भगवान करि कपट इन यह कियौ, तासु माया तुरत हरि निवारी।

+ + +

गदा जुद्ध साल्व कीन्हौ बहुत बेर लौ, बहुरि हरि साँग ताकौ चलाई।
लगत ताकै गए प्रान वाके निकसि, सुरनि आकास दुंदुभि बजाई[2]।

'सारावली' के उक्त वर्णन मे दो बाते ऐसी कही गयो है जिनका उल्लेख 'सूरसागर' के उक्त पद में नहीं है। पहली बात है शाल्व का तप करके पशुपति को प्रसन्न करके 'गोपुर' मे नगर बनवा लेना जिसका स्पष्ट उल्लेख 'श्रीमद्भागवत' मे मिलता है जिसमें 'नगर' के स्थान पर इच्छाचारी विमान मिलने की बात कही गयी है[3]। दूसरी बात है प्रद्युम्न

१. 'सारावली', छंद ७६४।
२. 'सूरसागर', पद १०-४२२१।
३. इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम्।
आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद् ग्रसन् ॥४॥
संवत्सरान्ते भगवानाशुतोष उमापतिः।
वरेणच्छन्दयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥५॥
देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥६॥

आदि के 'सप्त दस-दो' अर्थात् सत्ताइस दिन युद्ध करने की जिसका आधार भी 'श्रीमद्भागवत्' ही है[1]।

'सारावली' का अगला छंद है—

राजसूय करवाय स्यामघन जरासंध मरवायो।
दंतबक्र महिपाल महाबल बिदुरथ प्रान नसायो[2] ॥

पहले उक्त छंद का प्रथम चरण लीजिए। युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ और शिशुपाल वध का वर्णन 'सारावली'-कार पीछे कर चुका है[3], परंतु पचास-साठ छंद और लिखने के बाद जैसे उसे ध्यान आया कि राजसूय यज्ञ हो गया, महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया, युधिष्ठिर राजा हो गये, परंतु जरासंध का मारा जाना लिखना अभी तक बाकी ही है। बस उसने झटपट अपनी भूल सुधार दी और उक्त छंद के पहले चरण मे जरासंध को मरवा डाला। अब बताइए कि कौन ऐसा होगा जो 'सारावली'-कार की इस सावधानी (!) की प्रशंसा न करेगा ?

'सारावली' के उक्त छंद के दूसरे चरण में दंतवक्र और विदूरथ-वध की जो बात लिखी गयी है, वह 'सूरसागर' के भी एक पद में इस प्रकार मिलती है—

हरि निकट सुभट दंतबक्र आयौ।

× × ×

बहुरि लै गदा परहार कियौ स्याम पर, लग्यौ ज्यौं लगे अंबुज पहारै।

तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरञ्जयः।
पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥७॥
स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम्।
ययौ द्वारवती शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥८॥
—'श्रीमद्भागवत', दशंम स्कंध, अध्याय छिहत्तर, श्लोक ४ से ८।

१. एवं यदूना शाल्वाना निघ्नतामितरेतरम्।
युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥
—'श्रीमद्भागवत' दशंम स्कंध, अध्याय सतहत्तर, श्लोक, ५।

२. 'सारावली', छंद ७९५।

३. 'सारावली', छंद ७३२ से ७५६।

हरि-गदा लगत ही गए प्रान ताके निकसि, बहुरि हरि निज बदन माहि धारे।
अनुज ताको बिदूरथ लग्यौ फिरन पुनि, चक्र सौ सीस ताको प्रहारयौ[1]।

'सारावली' के अगले दोनों छंदों मे देवकी का मृतक शिशुओ को मॉगना, श्रीकृष्ण का उनको ला देना और देवकी का उनको 'स्तन-पान' कराना वर्णित है—

बालक मृतक देवकी माँगे सो छिन मे हरि लाये।
दीन्हों दरस भक्त नृप बलि को तन के ताप नसाये॥
बालक आय देवकी जाने अस्तन पान कराये।
हरि को सेष-पान करिकै वे हरि के पद पहुँचाये[2]॥

यह प्रसंग भी 'सूरसागर' मे वर्णित है और उसमे कितनी सांगोपांगता है, 'सारावली' को अष्टछापी कवि की कृति माननेवाले स्वयं देखें और अपने 'निर्णय' पर पुन: विचार करें—

श्री गुपाल तुम कहौ सो होइ।
तुमहीं कर्ता तुमही हर्ता, तुम तै और न कोइ॥
अबलौ मै तुमकौं नहि जान्यो, पुत्र भाव करि मान्यौ।
तुम हौ देव सकल देवनि के, अब तुमकौ पहिचान्यौ॥
गुरु-सुत आनि दिए तुम जैसै, कृपा करौ जदुराई।
मम सुतहू जे कंस सँहारे, ते प्रभु देहु जिवाई॥
मेरै जिय यह बड़ी लालसा, देखौ नैननि जोइ।
दूध पिवाइ हृदै सौं ल्यावौं, पाछै होइ सु होइ॥
यह सुनि हरि पाताल सिधारे, जहॉ हुते बलि राइ।
करि प्रनाम बैठारि सिहासन, हित करि धोए पॉइ॥
तासौं कह्यौ देवकी के सुत, षष्ठ कंस जे मारे।
नैंकु मॅगाइ देहु ते हमकौ, ह्वै है लोक तिहारे॥
तहॅ तै आनि दिये हरि बालक, माता लाड लडाए।
सूरदास प्रभु दरस परस करि, ते बैकुंठ सिधाए[3]॥

'सारावली' के अगले पॉच छंदो मे श्रीकृष्ण का मिथिला जाकर जनक, श्रुतदेव आदि से मिलना कहा गया है—

१. 'सूरसागर', पद १०-४२२२।
२. 'सारावली', छंद ७९६ ९७।
३. 'सूरसागर', पद १०-४२९६॥

एक दिना जदुनाथ सग सब बिप्र मंडली लीन्हे।
मिथिला चले जनक राजा पै दरस कृपा करि दीन्हे ॥
तहाँ बसत स्रुतिदेव महा मुनि सुनि दरसन को धायो।
तब उन कहेउ चलौ मेरे गृह हरि स्वीकार करायो ॥
नृपति कह्यउ मेरे गृह चलिए करौ कृतारथ मोय।
ताहू के हरि आपु पधारे प्रगट धरे बपु दोय ॥
देखि चरित्र बिनोद लाल के बिस्मित भे द्विजराय।
अद्‌भुत केलि कृपा करि कीन्हीं द्विज को ज्ञान दृढ़ाय ॥
बहुत दिवस लौ कृपा करी हरि जनकराय सुख दीन्हों।
बहुरि पधारे पुरी द्वारिका जदुकुल मे सुख कीन्हों[1] ॥

'सूरसागर'-कार ने इस प्रसंग का भी वर्णन किया है—

स्रुतदेव ब्राह्मण सुमिर्‌यौ हरी। ताकी भक्ति हृदै हरि धरी।
तब जनक हरि सुमिरन कीनौ। हरि जू सोउ हृदै धरि लीनौ।
'तब हरि रिष बहुतक सँग लए। तिनके देस प्रीति बस गए।
'द्वै' स्वरूप धरि दुहुँ को मिले। तोषि तिन्है पुनि निजपुर चले[2] ॥

इसके पश्चात् 'सारावली'-कार ने सुभद्रा-विवाह का वर्णन चार छंदो मे किया है—

बहिनि सुभद्रा ब्याह बिचारौ हरि अर्जुन कौ चित धारो।
श्री बलदेव कह्यउ दुर्जोधन नीको दुलह बिचारो ॥
हरि को भेद पायकै अर्जुन धरि दंडी को रूप।
भिच्छा को निज भवन बुलायो श्री बलभद्र अनूप ॥
नयननि मिलत लई कर गहिकै फाल्गुन चले पराय।
सुनि बलदेव क्रोध अति बाढ्यो कृष्न सात किये आय ॥
फेरि बुलाय ब्याह करि दीन्ही बिजय बहुत सुख पायो।
हरि आये हस्तिनपुर पारथ मघवाप्रस्थ बसायो[3] ॥

उक्त वर्णन मे केवल एक विशेषता है और वह है 'फाल्गुन' शब्द के प्रयोग मे जिसका तात्पर्य 'अर्जुन' से है। 'सारावली' के समर्थको ने 'कृष्ण'

१. 'सारावली', छंद ७६८-८०२।
२. 'सूरसागर', पद १०-४३०५।
३. 'सारावली', छंद ८०३-८०६।

के अनेक मधुर नामों के स्थानों पर 'हरि' शब्द के प्रयोगो की अधिकता की पुष्टि अनेक प्रकार से की है। हम जानना चाहते हैं कि अर्जुन के लिए 'फाल्गुन' जैसे प्रयोग 'सूरसागर' मे न मिलने का क्या कारण है ? 'सारावली' का शेष वर्णन 'सूरसागर' के निम्नलिखित पद मे और भी विस्तार से मिल जाता है—

अर्जुन तीरथ करन सिधाए। फिरत-फिरत द्वारावति आए।।
सुन्यौ बिचार करत बल येइ। दुर्जोधनहि सुभद्रा देइ।।
तब अर्जुन के मन यह आइ। याकौ मै लै जाउँ दुराइ।।
भेस तापसी कौं तिन गह्यौ। चारि मास द्वारावति रह्यौ।।
बलदेव ताकौं नेवति बुलायौ। भोजन हेतु सो बल-गृह आयौ।।
लख्यौ सुभद्रा इहि संन्यासी। राज-कुँवर कोउ भेष उदासी।।
मेरे मन मे यह उत्साह। मेरौ या सँग होइ बिवाह।।
इक दिन सो हरि मंदिर गई। तहाँ भेट पारथ सों भई।।
देखि ताहि रथ ठाढौ कियौ। हरि दुहुँ कौ हिरदै लखि लियौ।।
धनुष बान अपने तब दए। अर्जुन सावधान ह्वै लए।।
पारथ लै सो रथहि परायौ। रथ के तुरँगनि बेगि चलायौ।।
यह सुनि कै हलधर उठि धाए। तब हरि अर्जुन नाम सुनाए।।
बल कह्यौ तुम मन ऐसी आई। तौ तुम क्यो कीनी न सगाई।।
हरि कह्यौ अबहुँ बुलावहु ताहि। भली भाँति सौं करौ बिवाह।।
तब बल पारथ तुरत बुलायौ। सोधि महूरत लगन धरायौ।।
करि बिबाह अर्जुन घर आए। सूरदास जन मंगल गाए[1]।।

'सारावली' के अगले पंद्रह छंदो (८०७ से ८२१) में सुदामा की कथा है जिसका प्रारंभ इस प्रकार है—

एक दिना एक बिप्र भक्तपति, हरि कौ सखा कहावै[2]।

कितने सुदर ढंग से प्रसंग छेड़ा गया है कि उसमें 'सुदामा' का नाम तक लिखने की 'कवि' आवश्यकता नहीं समझता ! और 'कहावै' का क्या अर्थ लिया जाय जिसकी ध्वनि से तो यही जान पड़ता है कि वह 'सखा कहलाता या प्रसिद्ध था;' था भी वह उनका सखा या नहीं, यह

१. 'सूरसागर', पद १०-४३०३।
२. 'सारावली', छंद ८०७।

निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर उसकी पत्नी ने दरिद्रता के दुख से बहुत दुखी देखकर उसको समझाना चाहा तब किस कारण ? उनको श्रीकृष्ण का सखा जानकर या उनका दुख देखकर अथवा स्वयं उस दुख को सहने मे असमर्थ होकर ? 'सारावली' जैसी स्वतंत्र रचना में इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ना व्यर्थ है। अब जरा देखिए कि 'सूरसागर' मे यह प्रसंग कितने पूर्ण और सुंदर ढंग मे उठाया गया है—

बिप्र सुदामा परम कुलीन। बिष्नु भक्ति सौ अति लवलीन ।।
भिच्छा वृत्ति उदर नित भरै। अह-निसि हरि हरि सुमिरन करै ।।
नाम सुसीला ताकी नारि। पतिब्रता पति आज्ञाकारि ।।
पति जो कहै सो करै चित लाइ। सूर कह्यौ इक दिन या भाइ[1] ।।

'सारावली' के दूसरे छंद मे सुदामा की पत्नी का उपदेश या उसकी सम्मति है—

जाहु नाह तुम पुरी द्वारिका कृष्नचंद्र के पास।
जिनके दरस परस परस करुना ते दुख-दरिद्र को नास[2] ।।

इस छंद से तो यही ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण और सुदामा के 'सखा-संबंध' की कोई सूचना इसकी पत्नी की नहीं है। तब वह पति को उनके पास क्या इसी लिए भेज रही है कि रोज तो साधारण व्यक्तियो के यहाँ माँगने जाँचने जाते थे, आज जरा ऐसे के यहाँ चले जाओ 'जिसके दरस-परस-करुना' से दुख-दरिद्रता का नाश हो जाता है ? जरा उक्त वर्णन को 'सूरसागर' से मिलाइए और तब निर्णय कीजिए कि दोनो कृतियाँ एक ही व्यक्ति की हो सकती है या नहीं—

क. कहि न सकति सकुचति इक बात।
केतिक दूरि द्वारिका नगरी, क्यौं नाहीं जदुपति लौं जात ।।
जाके सखा स्याम सुंदर से, श्रीपति सकल सुखनि के दात।
तिनहि अछत तुम अपने आलस, काहैं कत रहत कृस गात ।।
कहियत परम उदार कृपानिधि, अंतरजामी त्रिभुवन-तात।
सर्बस देत रीझि भक्तनि कौं, रुचि मानत तुलसी के पात[3] ।।

१. 'सूरसागर', १०-४२२४।
२. 'सारावली', छंद ८०८।
३. 'सूरसागर', पद १०-४२२५।

ख. कंत सिधारौ मधुसूदन पै सुनियत है वे मीत तुम्हारे।
बाल सखा अरु बिपति-बिभंजन, संकट-हरन मुकुंद मुरारे ।।
और जु अतिसय प्रीति देखियै, निज तन मन की प्रीति बिसारे।
सरबस रीझि देत भक्तनि कौं, रंक नृपति काहू न बिचारे ।।
जद्यपि तुम संतोष भजत हौ, दरसन सुख तैं होत जु न्यारे[1] ।

'सारावली' के अगले छंद में सुदामा की यात्रा का प्रारंभ इस प्रकार होना बताया गया है—

तंदुल माँगि जाँचि के लाई सो दीन्हो उपहार।
फाटे बसन बाँधिकै द्विजबर अति दुर्बल तन हार[2] ।।

फटे-पुराने वस्त्र में भेंट के तंदुल बाँधकर देने की जो बात सुदामा की कथा मे बहुत प्रसिद्ध है, वही 'सारावली' के उक्त छंद मे कवि ने मनोयोग से लिखी है। 'सूरसागर' मे भी इसकी ओर संकेत किया गया है—

छाँडौ सकुच बाँधि पट-तंदुल, सूरज समै चलौ उठि प्रात[3] ।

परंतु कैसा विचित्र है 'सारावली' का सुदामा जो यात्रा भर मे एक बार न श्रीकृष्ण की पिछली मित्रता के संबंध मे सोचता है, न यही ख्याल करता है कि वे मुझसे किस प्रकार मिलेंगे। 'सूरसागर' का कवि इस संबंध मे भी लिखना नहीं भूलता और भले 'सगुनो' द्वारा शुभ स्वागत के लिए आश्वस्त भी कर देता है—

सुदामा सोचत पंथ चले।
कैसै करि मिलिहै श्रीपति, भए तब सगुन भले[4] ।

पश्चात्, 'सारावली' मे सुदामा का द्वारका पहुँचना और श्रीकृष्ण से भेंट होना लिखा गया है—

आये देव द्वारिका हरि पै जाइ चरन सिर नायो।
हरि भेंटे भ्राता की नाईं पूजा बिबिध करायो ।।
अपने पुनि आसन बैठारे, हँसि हँसि बूझत बात[5] ।

१ 'सूरसागर', पद १०-४२२६।
२. 'सारावली', छंद ८०९।
३. 'सूरसागर', पद १०-४२२५।
४. वही, पद १०-४२२७।
५. 'सारावली', छंद ८१०-११।

यहाँ 'जाय चरन सिर नायौ' किसके लिए कहा गया है ? यदि यह सुदामा के लिए है—और निश्चय ही है उन्ही के लिए—तब कितना विचित्र है उस विप्र का श्रीकृष्ण के चरणों मे सिर नवाना ! यदि यह कृष्ण के लिए है, तब भी अद्भुत है, क्योंकि उन्हीं के लिए आगे लिखा है—हरि भेंटे भ्राता की नाईं । इस प्रसंग में सुदामा का नाम सुनते या दर्शन पाते ही श्रीकृष्ण का बड़ी उतावली से उनका स्वागत करने को नंगे पैर भागना, बड़े प्रेम से उनको गले लगा लेना, उसकी दशा देखकर नयनो में आँसू भर लाना, कुशल-प्रश्न करना आदि-आदि बातो की, जो अत्यंत प्रसिद्ध हैं, 'सारावली' मे कहीं चर्चा ही नही है, जब कि 'सूरसागर'-कार ने कई पदो मे उनकी ओर संकेत करके अपने आराध्य की आदर्श मित्रता का परिचय दिया है—

क. मन मै अति आनंद कियौ हरि, बाल-मीत पहिचान ।
धाए मिलन नगन पग आतुर, सूरज-प्रभु भगवान[1] ॥

ख. दूरिहि तै देख्यौ बलवीर ।
अपने बालसखा जु सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर ॥
पौढे हे परजंक परम रुचि, रुकमिनि चौर डुलावति तीर ।
उठि अकुलाइ अगमने लीन्हे, मिलत नैन भरि आए नीर[2] ॥

ग. जदुपति दीख सुदामा आवत ।
बिह्वल बिकल भयौ दारिद बस, करि बिलाप रुकमिनी सुनावत[3] ॥

घ. ऐसी प्रीति की बलि जाउँ ।
सिहासन तजि चले मिलन कौ, सुनत सुदामा नाउँ[4] ॥

ङ. दीन द्विज द्वारै आइ भयौ ठाढौ ।
नाम सुदामा कहत नाथ जू, दुखी आहि अति गाढौ ॥
सुनतहि बचन कमलदल लोचन, कमलापति उठि धाए ।
त्रिभुवन-नाथ जानि आपनौ प्रिय, हित सौं कंठ लगाए ॥
आदर करि मंदिर मै ल्याए, कनक पलँग बैठाए[5] ।

१. 'सूरसागर', पद १०-४२२७ ।
२. वही, पद १०-४२२८ ।
३. वही, पद १०-४२२९ ।
४. वही, पद १० ४२३० ।
५. वही, पद १० ४२४५ ।

'सूरसागर' के चौथे उदाहरण में स्पष्ट मिलता है कि सुदामा को विप्र समझकर हरि ने हाथ जोड़े और उनके चरण पखारे। 'सारावली' में दूसरी बात यह कही गयी है कि हरि ने सुदामा को भ्राता की नाईं भेंटा। यह बात भी 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्ति के आधार पर कही गयी है—

भेंटे हृदय लगाइ अंक भरि, उठि अग्रज की नाइ[१]।

श्रीकृष्ण द्वारा सुदामा के आदर-सत्कार की भी एक रूपरेखा 'सूरसागर' में मिलती है—

हरि कौं मिलन सुदामा आयौ।
बिधि सौं अरघ पाँवड़े दीन्हे, अंतर प्रेम बढायौ।
आदर बहुत कियौ कमलापति, मर्दन करि अन्हवायौ।
चंदन अगर कुमकुमा केसर, परिमल अंग चढायौ[२]॥

परंतु 'सारावली'-कार इस संबंध मे मौन रहता है और उसके कृष्ण तीन छंदो के चार चरणों में ही अपने सहपाठी से छात्र-जीवन के संस्मरण सुना डालते हैं—

कहौ बिप्र हम गये ऽवन्तिका गुरु के सदन बिख्यात॥
बन मे बहु बर्षा जब आई ताकी सुधि करि लैहौ।
गुरु आये आपुन को बोलन मत्र थकायो मेहौ॥
ता दिन की यह कथा तुम्हारी बिसरति नाहिन मोहि[३]।

'सूरसागर' में यह प्रसंग भी बहुत सुंदर ढंग से उठाया गया है। अपने परम प्रतिष्ठित और सर्वपूज्य पति को एक दीन-हीन ब्राह्मण का अत्यंत स्वागत-सत्कार करते देखकर रुक्मिणी बड़ी उत्सुकता से उनका परिचय पूछती है। और तब श्रीकृष्ण उनका समाधान करते हैं—

अर्धंगी पूछति मोहन सौं, कैसे हितू तुम्हारे।
तन अति छीन मलीन देखियत, पाउँ कहाँ तैं धारे॥
संदीपन कै हमऽरु सुदामा, पढे एक चटसार[४]।

१. 'सूरसागर', पद १०-४२४१।
२. वही, पद १०-४२३२।
३. 'सारावली', छंद ८११-१२ १३।
४. 'सूरसागर', पद १० ४२३०।

'सूरसागर' के श्रीकृष्ण इतना कहकर जैसे लक्ष्य करते हैं कि मेरे उक्त कथन से रुक्मिणी आदि को संतोष नहीं हुआ है, तब वे और विस्तार से अपने छात्र-जीवन की बाते सुदामा से करने लगते हैं—

क. गुरु-गृह हम जब बन कौ जात।
तोरत हमरे बदलै लकरी, सहि सब दुख निज गात ॥
एक दिवस बरषा भई बन मै, रहि गए ताही ठौर।
इनकी कृपा भयौ नहि मोहि स्रम, गुरु आए भऐ भोर ॥
सो दिन मोहि बिसरत न सुदामा, जो कीन्हौ उपकार।
प्रति उपकार कहा करौं सूरज, भाषत आप मुरार[1] ॥

ख. वह सुधि आवत तोहि सुदामा।
जब हम तुम बन गए लकरिअनि, पठये गुरु की भामा ॥
चपल समीर भयौ तिहि रजनी, भीजे चारौ जामा।
काँपत हृदय बचन नहि आवत, आए सत्वर धामा[2] ॥

अपने बाल्य जीवन के संस्मरण सुनाते-सुनाते 'सारावली' के श्रीकृष्ण बड़े स्पष्ट शब्दो मे सुदामा से पूछ बैठते हैं—

किधौ कौन कारण कौ आए सो पूछत हौं तोहिं[3]।

कैसी शिष्टता का परिचय दिया है यहाँ 'सारावली'-कार ने ! इस 'सरसठ वर्षीय प्रबीन' को इतना तक ज्ञात नहीं है कि नागरिक ही नहीं, ग्रामीण समाज मे भी व्यवहार की इस प्रकार की अशिष्टता कही नहीं देखी जाती कि वर्षों बाद और वह भी पहली बार अपने घर आये हुए व्यक्ति से इस प्रकार का लट्ठमार प्रश्न पूछ लिया जाय। इस प्रकार की एक ही पंक्ति किसी रचना को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है; परंतु संभव है कि 'सारावली' की प्रामाणिकता के समर्थक कोई स्वतंत्र सिद्धांत खोजकर उसका भी जोरदार समर्थन कर दें। 'सूरसागर'-कार की पहुँच इतनी दूर तक नहीं हो सकी है और उक्त पंक्ति का आधार 'सारावली'-कार की ही 'प्रबीनता' है।

१. 'सूरसागर', पद १०-४२३१।
२ वही, पद १०-४२३३।
३. 'सारावली', छंद ८१३।

आगे के तीन छंदों में 'सारावली' के कृष्ण उपहार की बात पूछते हैं, फटे-पुराने वस्त्र में बँधे तंदुल स्वयं 'छोरते' और खाने लगते हैं। पहली मुट्ठी खाने तक तो कोई रोकना-टोकना नहीं, दूसरी मुट्ठी लेते ही कमला आगे बढ़कर हाथ पकड़ लेती है। फिर भी श्रीकृष्ण अपने मित्र को 'मघवा का वैभव' दे ही देते हैं, जिससे उनका यश बढ़ जाता है—

कछु हमको उपहार पठायो भाभी तुम्हरे साथ।
फाटे बसन सकुच अति लागति काढत नाहिन हाथ॥
हरि अपने कर छोरि बसन को तंदुल लीन्हे हाथ।
मुट्ठी एक प्रथम जब लीन्हे खान लगे जदुनाथ॥
द्वितीय मुष्टिका लेन लगे जब कमला गहि लियो हाथ।
दियो द्विजहि मघवा को बैभव बाढ्यो जस बिख्यात[१]॥

'सूरसागर' मे ये सब बाते बहुत सामान्य रूप से इस प्रकार वर्णित हैं—

क. ल्याए हौ सु देहु किन हमकौ कहा दुरावन लागे चीर।

— — —

सूर सुमति तंदुल चाबत ही, कर पकरयौ कमला भई धीर[२]।

ख. मूठिक तदुल बाँधि कृष्न कौं, बनिता बिनय पठायौ।
पूरब प्रीति जानिकै मोहन, तातै कछु इक खायौ[३]।

ग. पट तै छोरि लिए कर तंदुल, हरि समीप रुक्मिनी जहाँ ती।
देखि सकल तिय स्याम-सुंदर गुन, पट दै ओट सबै मुसक्याती[४]।

घ. लीन्हे छोरि चीर तैं चाउर, कर गहि मुख मै मेले[५]।

ङ. खैबे कौ कछु भाभी दीन्हौ, श्रीपति श्रीमुख बोले।
फेंट उपर तैं अंजुल तंदुल, बल करि हरि जू खोले।
द्वै मूठी तंदुल मुख मेले, बहुरौ हाथ पसारयौ।
त्रिभुवन दै करि कह्यौ रुक्मिनी, अपनौ हाथ निवारयौ[६]।

१. 'सारावली', छंद ८१४-१५-१६।
२. 'सूरसागर', पद १० ४२२८।
३. वही, पद १० ४२३२।
४. वही, पद १०-४२४०।
५. वही, पद १०-४२४१।
६. वही, पद १०-४२४५।

'सूरसागर' के उक्त अवतरणों मे प्रथम दो कृष्ण-सुदामा-मिलन प्रसंग के हैं जिनमें कवि ने तंदुल खाने के बदले मे कुछ लेने-देने की बात न कहकर पाठक की उत्सुकता बढ़ाने का कौशल दिखलाया है। अंतिम तीन उद्धरण सुदामा के घर लौट आने और त्रैलोक्य की संपदा प्राप्त कर लेने के पश्चात् के हैं जब वह पत्नी के प्रश्नो के उत्तर में उक्त वाक्य कहता है। उक्त उदाहरणो मे से तीसरे और पॉचवे मे सारे व्यापार का जो चित्र सा खीच दिया गया है, उसकी तो हम 'सारावली'-कार से आशा ही नही करते, किस बात का वर्णन कब और किस प्रसंग में किया जाना चाहिए, इसका भी उसे कोई ज्ञान नहीं है।

इसी प्रसंग में 'सूरसागर' की ये पंक्तियॉ कितनी भावपूर्ण हैं, सहृदय ही समझ सकते हैं—

तंदुल देखि अधिक आनंदित, मॉगि सुदामा जो मन भावत।
मन ही मन मै कहत गहौ कर, सो दीजै जो चित्त न डुलावत[1]।

परंतु, जैसा पीछे अनेक बार दिखाया जा चुका है, 'सारावली'-कार को न किसी प्रसंग के मार्मिक स्थलों की पहचान है न उसमें इतनी भावुकता ही है कि वह किसी पात्र के हृदय का चित्रण कर सके, वह तो संभवत. ऐसी स्वतंत्र रचना प्रस्तुत करना चाहता है जो काव्य के भाव और विभाव, दोनो पक्षों से सर्वथा मुक्त हो। इसी से भोर होते ही वह सुदामा को श्रीकृष्ण के यहॉ विदा करा देता है और वह संतोषी ब्राह्मण बिना कुछ पाये इस प्रकार सोचता हुआ अपने घर पहुँचता है—

भोर भये उठि चले भवन को हरि कछु इनहि न दीन्हों।
ताको हर्ष सोक निज मन मे मुनिवर कछू न कीन्हों ॥
भली भई हरि दरसन पायो तन को ताप नसायो।
दुर्बल बिप्र कुचैल सुदामा ताको कंठ लगायो ॥
धन्य धन्य प्रभु की प्रभुताई मोपै बरनि न जाई।
सेष सहस मुख पार न पावत निगम नेति कहि गाई[2] ॥

उक्त छंदों के संबंध मे दो बातें ध्यान देने की हैं। पहली तो यह कि जिस सुदामा की कथा को लेकर 'सारावली'-कार ने पंद्रह छंद लिखे हैं; उसका नाम पहली बार बारहवें (अर्थात् उक्त दूसरे) छंद में पहली

१. 'सूरसागर', पद १०-४२२६।
२. 'सारावली', छंद ८१७-१८-१६।

बार आया है। इसके पूर्व उसके लिए कहीं 'बिप्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है और कहीं मुनि'; 'सुदामा' शब्द लिखने की आवश्यकता कवि ने क्यों नहीं समझी अथवा उसका लोप किस स्वतंत्र सिद्धांत की रक्षा के लिए किया गया—इसका कारण उसके समर्थक ही खोज सकते हैं।

दूसरी बात यह कि 'सारावली' का सुदामा मुनि-वत् ही आचरण करता है जिसको कुछ न मिलने पर भी हर्ष-शोक नहीं होता। वह क्षण भर के लिए यह भी नहीं सोचता कि जिस पत्नी ने दरिद्रता के दुख से दुखी होकर मुझे द्वारका भेजा था, वही जब मुझे खाली हाथ लौटता देखेगी तब क्या कहकर उसको संतोष दूँगा। 'सारावली' के इस 'मुनि' को 'सूरसागर' के जरा 'मनुष्य' सुदामा से मिलाइए जिसका हृदय कभी तो यह सोचकर भर आता है कि पत्नी के आगे क्या रखूँगा जाकर और कभी श्रीकृष्ण के आदर-सत्कार की बात याद करके मन-ही-मन संतुष्ट हो जाता है—

सुदामा गृह कौं गमन कियौ।
प्रगट बिप्र कौं कछु न जनायौ, मन मैं बहुत दियौ।
वेई चीर कुचील वहै बिधि, मोकौं कहा भयौ।
धरिहौं कहा जाइ तिय आगैं, भरि-भरि लेत हियौ॥
सो संतोष मानि मन ही मन, आदर बहुत लियौ।
सूरदास कीन्हे करनी बिनु, को पतियाइ बियौ[1]॥

सुदामा अपने गाँव पहुँचा। अपनी फूस की झोपड़ी की जगह उसने मणिमय महल, स्फटिक का गोपुर और कनक की भूमि देखी। फिर भी 'सारावली'-कार के अनुसार न उसे किसी प्रकार का आश्चर्य हुआ, न उसको मार्ग भूलने भटकने की चिंता हुई, न उसे अपनी झोपड़ी जाने का दुख हुआ और न पत्नी के ही संबंध में उसने कुछ सोचा-विचारा। वह तो सब कुछ विलक्षण देखकर भी मुनि-वत् खड़ा रहा—

ऐसे कहत गये अपने पुर सबहिं बिलच्छन देख्यो।
मनिमय महल फटिक गोपुर लखि कनकभूमि अवरेख्यो[2]।

अब इस 'मुनि' से 'सूरसागर' के 'मानव' सुदामा का मिलान करने के लिए निम्नलिखित पदांश देखिए—

१. 'सूरसागर', पद १०-४२३४।
२. 'सारावली', छंद ८२०।

क. सुदामा मंदिर देखि डरयौ।
इहाँ हुती मेरी तनक मड़ैया, को नृप आनि छयौ ॥
सीस धुनै दोऊ कर मींड़ै, अंतर सोच परयौ[1]।

ख. देखत भूलि रह्यौ द्विज दीन।
मन सुधि परै समुझि नहि आवै, मेरौ गृह प्राचीन ॥
किधौं देवमाया मति मोह्यौ, किधौं अनत ही आयौ।
त्रिनहु की छाँह गई निधि माँगत, बहुत जतन हौ छायौ ॥
चितवत चकित चहूँ दिसि बाम्हन, अद्भुत लीला रीति।
ऊँचे भवन मनोहर छाजे, मनि-कंचन की भीति[2] ॥

ग. भूलौ द्विज देखत अपनौ घर।
औरहि भाँति रची रचना रुचि, देखतही उपज्यौ हिरदै डर ॥
कै वह ठौर छुड़ाइ लियौ किहुँ, कोऊ आइ बस्यौ समरथ नर।
कै हौ भूलि अनतही आयौ, यह कैलास जहाँ सुनियत हर ॥
बुध-जन कहत दुबल घातक बिधि, सो हम आजु लही या पटतर।
ज्यौं नलिनी बन छाँड़ि ससै जल. दाहै हेम जहाँ पानी-सर[3] ॥

घ. हौ फिरि बहुरि द्वारिका आयौ।
समुझि न परी मोहि मारग की, कोउ बूझौ न बतायौ ॥
कहिहैं स्याम सत्त इन छाँड्यौ उतौ राँक ललचायौ।
तृन की छाँह मिटी निधि माँगत, कौन दुखनि सौ छायौ ॥
सागर नही समीप कुमति कै, बिधि कह अंत भ्रमायौ।
चितवत चित्त बिचारत मेरौ, मन सपनै डर छायौ ॥
सुरतरु, दासी, दास, अस्व, गज, बिभौ बिनोद बनायौ[4]।

उक्त पदों से 'सूरसागर' के सुदामा के जिस मानव-हृदय का परिचय मिलता है, उसकी छाया भी 'सारावली' के वर्णन मे नही है। और यह उस सुदामा के हृदय का एक पक्ष है; दूसरा पक्ष अष्टछापी सूरदास के एक अन्य पद मे मिलता है जिसमे उस निर्धन ब्राह्मण को अपने 'सामान' की सूची गिनाते और उसके लिए चिंतित होते देखते हैं—

१. 'सूरसागर', पद १०-४२३५।
२. वही, पद १०-४२३६।
३. वही, पद १०-४२३७।
४. वही, पद १०-४२३८।

कहा भयौ मेरौ गृह माटी कौ ।
हौं तौ गयौ गुपालहि भेटन, और खरच तंदुल गाँठी कौ ।
बिनु ग्रीवा कल सुभग न आन्यौ, हुतौ कमंडल दृढ काठी कौ ।
घुनौ बाँस जुत बुनौ खटोला, काहु कौ पलँग कनक पाटी कौ ॥
नूतन छीरोदक जुवती पै, भूषन हुतौ न लोह माटी कौ[1] ।

इस प्रसंग के अंतिम छंद मे 'सारावली'-कार ने पत्नी से मिलकर 'मुनि' सुदामा के 'परम सुख' पाने की बात लिखी है—

पतिनी मिली परम सुख पायो कृष्नचंद्र आराधे ।
मघवा को सुख भयो सुदामहि तऊ कछुक नहि बाधे[2] ॥

यहाँ भी प्रसंग की अपूर्णता किस सहृदय को न खटकेगी ? कितनी स्वार्थिनी है 'सारावली' के सुदामा की पत्नी जो 'मघवा का सुख' पाकर भी उसके दाता के संबंध मे कुछ नही जानना चाहती। और कैसा है यह 'मुनि' सुदामा जो उनके जिस आदर-सत्कार से अत्यंत संतुष्ट था, उसके संबंध मे एक शब्द नहीं कहता ! 'सूरसागर' के निम्नलिखित पद मे पति-पत्नी का संवाद पढ़कर कौन यह कहने का दुस्साहस कर सकता है कि उसी कवि की लेखिनी ने 'सारावली' के सुदामा दंपति का वर्णन किया है ?

कैसै मिले पिय स्याम सँघाती ।
कहियै कंत कौन बिधि परसे, बसन कुचील छीन अति गाती ।
उठिकै दौरि अंक भरि लीन्हौ, मिलि पूछी इत-उत कुसलाती ।
पट तैं छोरि लिए कर तंदुल, हरि समीप रुकमिनी जहाँ ती ॥
देखि सकल तिय स्याम-सुँदर गुन, पट दै ओट सबै मुसक्याती ।
सूरदास-प्रभु नवनिधि दीन्हीं, देते और जो तिय न रिसाती[3] ॥

इतना ही नहीं, 'सूरसागर' का सुदामा और भी बहुत-कुछ कहता है । वह 'सारावली' के सुदामा की तरह 'मघवा का सुख' पाते ही कृष्ण के उपकार को सर्वथा भूलकर अपनी कृतघ्नता का परिचय नही देता; प्रत्युत चार-पाँच पदो में अपनी हार्दिक कृतज्ञता भी व्यक्त करता है—

१. 'सूरसागर', पद १०-४२३६ ।
२. 'सारावली', छंद ८२१ ।
३. 'सूरसागर', पद १०-४२४० ।

क. ऐसैं और कौन पहिचानै ।
सुनु सुदरि वा दीनबंधु बिन, कौन मित्रई माने ॥
कहँ हम कृपन, कुचील, कुदरसन, कहँ जदुनाथ गुसाईं ।
भेटे हृदय लगाइ अंक-भरि, उठि अग्रज की नाईं ॥
निज आसन बैठारि परम रुचि, निज कर चरन पखारे ।
पूछी कुसल स्याम-घन-सुंदर, सब संकोच निवारे ॥
लीन्हे छोरि चीर तै चाउर, कर गहि मुख मै मेले ।
पूरब कथा सुनाइ सूर-प्रभु, गुरु-ग्रह बसे अकेले[1] ॥

ख. हरि बिनु कौन दरिद्र हरै ।
कहत सुदामा सुनि सुंदरि, हरि मिलन न मन बिसरै ॥
और मित्र ऐसी गति देखत, को पहिचान करै ।
बिपति परैं कुसलात न बूझैं, बात नहीं बिचरै ॥
उठि भेटे हरि तंदुल लीन्हे, मोहि न बचन फुरै ।
सूरदास लछि दई कृपा करि, टारी निधि न टरै[2] ॥

ग. और को जानै रस की रीति ।
कहँ हौ दीन कहाँ त्रिभुवनपति, मिले पुरातन प्रीति ॥
चतुरानन तन निमिष न चितवत, इती राज की नीति ।
मोसौ बात कही हिरदय की, गए जाहि जुग बीति ॥
बिन गोबिद सकल सुख सुंदरि, ज्यौ भुस पर की भीति ।
हौ कह कहौ सूर के प्रभु की, निगम करत है कीति[3] ॥

घ. बिनु गुपाल और मोहि, ऐसो को सँभारे ।
आपु हँसत दौरि मिले, उर तै नहि टारे ॥
छीन अंग जीर्न बसन, दीन मुख निहारे ।
मम तन रज पथहि लगी, पीत पट सु झारे ॥
सुखद सेज आसन दै, स्वहथ पग पखारे ।
हरि हित हर गंग धरे, पग जल सिर धारे ॥
कहि-कहि गुरु - गेह कथा, सकल दुख निवारे ।
कहत बिप्र सूरदास, प्रभु ऊपर वारे[4] ।

१. 'सूरसागर', पद १०-४२४१ ।
२. वही, पद १०-४२४२ ।
३. वही, पद १०-४२४३ ।
४. वही, पद १०-४२४४ ।

'सारावली' के अगले दो छंदों में राजा नृग की कथा है। यह प्रसंग बीच में कहाँ से आ टपका, यह प्रश्न तो उठाना ही व्यर्थ है, क्योंकि 'स्वतंत्र रचना' का रचयिता सब बातों में स्वतंत्र रहता है। दोनों छंद इस प्रकार हैं—

नौ लख धेनु दई राजा नृग बहुतहि दान देवायो।
कृष्न-भक्ति बिन बिप्र-साप ते गिरगिट की गति पायो॥
ताको चरन परसि कै माधौ दुःखित साप छुटायो।
कृपा करी जदुनाथ महानिधि निज बैकुंठ पठायो[1]॥

'सूरसागर' के भी कुछ पदों में राजा नृग की कथा की ओर संकेत किया गया है—

क. नृग नृप कूप उधारे[2]।

ख. नृग राजा नित गऊ सहस दै, करत हुतौ जल पान।
तनक चूक तै गिरगिट कीन्हौ, को करि सकै बखान॥
कूप माँहँ तिहि देखि बालकनि हरि सौं कह्यौ सुनाइ।
कृपानिधान जानि अपनौ जन, आए तहँ जदुराइ॥
अँधकूप तै काढि बहुरि तेहि, दरसन दै निस्तारा।
सूरदास सब तजि हरि भजियै, जब तब करै उधारा[3]।

'सारावली' कार ने इस प्रसंग मे 'कूप' का उल्लेख नही किया है यहाँ भी उसने अपनी स्वतंत्रता दिखायी है। शेष वर्णन सामान्य है।

तदनंतर चार छंदों में बलदेव की ब्रज-यात्रा का वर्णन 'सारावली' में इस प्रकार हुआ है—

बलदाऊ ब्रजमंडल आये ब्रजबासिनि को भेटे।
बहुत दिननि के बिरह ताप दुख मिलत छिनक मे मेटे॥
सघन निकुंज सुभग बृंदाबन कीन्हे बिबिध बिहार।
गोपिनि संग रास-रस खेले बाढ्यो स्रम सुकुमार[4]॥

१. 'सारावली', छंद ८२२-२३।
२. 'सूरसागर', पद १-१५८।
३. वही, पद १०-४१९९।
४. 'सारावली', छंद ८२४-२५।

कालिंदी को निकट बुलायो जल-क्रीड़ा के काज।
लियो अकर्षि एक छिन मे हरि अति समरथ जदुराज ॥
बिबिध भाँति क्रीड़ा हरि कीन्ही ब्रजबासिनि सुख दीन्हों।
द्वादस बन अवलोकि मधुपुरी तीरथ को चित कीन्हों[1] ॥

अंतिम दो छंदो मे 'सारावली'-कार ने बलराम के लिए 'हरि' शब्द का प्रयोग करने की स्वतंत्रता किस 'सहस्रनाम' के आधार पर और क्यो दिखायी है, इसकी खोज का दायित्व उसकी प्रामाणिकता के पोषको पर है, हम तो उस ओर आलोचको का ध्यान आकृष्ट करना ही पर्याप्त समझते है।

'सूरसागर' मे यह प्रसंग पाँच छह पदों में वर्णित है[2] जिनमे पहला बहुत लंबा है। 'सारावली' के उक्त छंदो की सारी बातें तो 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदांशो मे देखी जा सकती है, साथ ही व्रजवासियो के अतिरिक्त बलराम के हृदय का भी कुछ परिचय इनसे मिल सकता है—

क. एक बार ... . हलधर जी बृंदाबन गए।
रथ देखत लोगनि सुख पाए। जान्यौ स्याम-राम दोउ आए।
नंद-जसोमति जब सुधि पाई। देह-गेह की सुरति भुलाई।
आगे ह्वै लैबे कौ धाए। हलधर दौरि चरन लपटाए।
बल कौ हित करि गरै लगाए। दै असीस बोले या भाए।

— — — —

इहि अंतर आए सब ग्वार। भेंटे सबनि जथा ब्यौहार।
नमस्कार काहू कौ कियौ। काहू कौं अंकम भरि लियौ।
पुनि गोपी जुरि मिलि सब आईं। तिन हित साथ असीस सुनाईं।
हरि सुधि करि सुधि बुधि बिसराई। तिनकौ प्रेम कह्यौ नहि जाई।

— — — —

बल तहँ बहुरि रहे द्वै मास। ब्रजवासिनि सौं करत बिलास[3]।

ख. सूर सुभाग उदित गोपिनि के हरि मूरति भेंटे हलधारी[4]।

१. 'सारावली', छंद ८२६ ८२७।
२. 'सूरसागर', पद १०-४२०० से ४२०५ तक।
३. वही, पद १०-४२००।
४. वही, पद १०-४२०२।

ग कालिंदी करि कह्यौ हमारौ।
बोली बेगि चलौ बन बिहरत तोहि अन्हाइ जाइ स्रम भारौ ॥
अतिही सतर होइ जनि सरिता, छाड़ि गर्व या गुन कौ गारौ।
आपनि सौंह कृष्न की कानी, राखत हौं जस मान तुम्हारौ ॥
इतौ महातम मोहि दिखावति, भँवर तरंग प्रबाह पसारौ।
इन खुनसनि गोपाल दुहाई, हल करि खैचि करौं नदि नारौ[1] ॥

'सारावली' और 'सूरसागर' के उक्त वर्णनों का मिलान करने पर दो मुख्य अंतर दिखायी पड़ते हैं। पहला तो यह कि बलराम के व्रज आने पर कोई, यहाँ तक कि नंद-यशोदा नक, उनसे श्रीकृष्ण के संबंध मे एक शब्द नही पूछते, जैसे वे उनके नाम से भी परिचित न हो। क्या श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम भाव रखनेवाले व्रजवासियो का यह सही चित्रण है और क्या ऐसा वर्णन अष्टछापी सूरदास का हो सकता है? यदि श्रीकृष्ण के प्रति व्रजवासियों की यह उदासीनता या व्यवहार की हृदयहीनता भी 'सारावली' की प्रामाणिकता के समर्थकों को न खटकती हो तो वे क्या यह बताने की कृपा करेंगे कि किस सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिए 'सारावली'-कार ने वैसा वर्णन किया है?

दूसरी बात है 'सारावली' मे बलराम का 'रास-रस' खेलना जिसका वर्णन 'सूरसागर' मे नही है। 'श्रीमद्भागवत्' मे यद्यपि बलराम के रात्रि-विहार का वर्णन मिलता है[2], परतु 'रास' का उल्लेख कहीं नही है? 'सारावली' में गोपियो के साथ श्रीकृष्ण की रास-लीला का जो वर्णन पीछे मिलता है[3], उसमे भी बलराम के साथ रहने की बात नही कही गयी है

१. 'सूरसागर', पद १०-४२०३।
२. द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च।
रामः क्षपासु भगवान् गोपीना रतिमावहन् ॥१७॥
पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना।
यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥१८॥
एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे।
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥३२॥
—'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अध्याय पैंसठ, श्लोक १७-१८ और ३२।
३. 'सारावली', छंद ४७७।

और न सूरदास, नंददास के रास-वर्णन में ही कहीं उनका नाम आया है। तब क्या यह मान लिया जाय कि 'सारावली'-कार, अपने स्वतंत्र सिद्धांत के अनुसार, निशि-विहार को ही 'रास-लीला' समझता है और तदनुसार वर्णन करने को स्वतत्र है ?

'सारावली' के अगले चार छंदो मे बलदेवजी की तीर्थ यात्रा का वर्णन इस प्रकार मिलना है—

सुभ कुरुक्षेत्र अजोध्या मिथिला प्राग त्रिबेनी न्हाये।
पुनि सतरुद्र और चंद्रभागा गंगा ब्यास न्हवाये॥
निमिषारन आये बल जू जब सकल बिप्र सिर नायो।
करी अवज्ञा कथा कहत द्विज अपने लोक पठायो॥
तब द्विज कहउ कथा कहिकै यह हमको सुख उपजायो।
हम कापै अब कथा सुनैगे बलदाऊ समझायो॥
इनको पुत्र होय जो बालक ताको बेगि बिठावौ।
धरेउ हाथ सिर दीन्हीं बिद्या नित प्रति कथा सुनावौ[1]॥

उक्त छंदो मे से प्रथम मे तीर्थों की जो सूची दी गयी है, वह 'सारावली'-कार की प्रवृत्ति के ही अनुरूप है। यह सूची 'सूरसागर' मे नहीं है, 'श्रीमद्भागवत्' मे अवश्य वैसी सूची मिलती है, यद्यपि तीर्थों के नाम उसमें भिन्न है[2]। शेष प्रसंग 'सूरसागर' में इस प्रकार वर्णित है—

रामगंगादि, जमुनादि अस्नान करि, नैमिसारण्य पुनि जाइ न्हाए॥
सूत तहँ कथा भागवत की कहत हे, रिषि अठासी सहस हुते स्रोता॥
राम कौ देखि सनमान सबहीं कियौ, सूत नहि उठे निज जानि वक्ता॥
राम तिहि हत्यौ तब सब रिषिन मिलि कह्यौ, बिप्र हत्या तुम्हे लगी भाई।
सूत सुत थापि सब तीर्थ अस्नान करि, पाप जो भयौ सो सब नसाई[3]॥

१. 'सारावली', छंद ८२८ से ८३१ तक।
२. पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम्।
विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम्॥१९॥
यमुनामनु यान्येव गङ्गामनु च भारत।
जगाम नैमिषं यत्र ऋषय सत्रमासते॥२०॥
— 'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अध्याय अठहत्तर, श्लोक १९-२०।
३. 'सूरसागर', पद १०-४२२३।

दोनो ग्रंथों के वर्णन में सामान्य बातो के अतिरिक्त. एक मुख्य अंतर यह दिखायी देता है कि बलराम जो द्वारा 'सूत' जी के मारे जाने पर 'सूरसागर' के ऋषि उनको ब्रह्महत्या का पातक लगने की बात कहते हैं, परंतु 'सारावली' के श्रोता इस संबंध में बिलकुल मौन रहते हैं। 'सारावली'-कार को यह बात तीन छंदो मे 'एक असुर' को मरवा देने के बाद याद आती है जब वह लिखता है—

बिनती करी बहुत बिप्रनि ने राम बिप्र तुम मारेउ।
तीरथ न्हाय सुद्ध तन को करि हरि द्विज बचन बिचारेउ[1] ॥

'एक असुर' के मारे जाने की कथा तीन छंदो मे लिखने के पश्चात् 'विप्र-हत्या' की बात उठाने से पाठक इस भ्रम में पड़ जाता है कि कहीं वह 'असुर' ही तो विप्र नहीं था जिसकी हत्या के पश्चात् उक्त छद लिखा गया है। परंतु 'सारावली'-कार की दृष्टि मे क्रम के इस प्रकार उलट-पलट जाने का कोई महत्व नही है; और अपनी 'स्वतंत्र' रचना मे वह जो चाहे और जब चाहे लिखने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है।

'एक असुर' को मारने की जिस बात की ओर ऊपर संकेत किया गया है, 'सारावली' मे वह इस प्रकार मिलती है—

पुनि द्विज बिनती करि यह भाष्यो असुर एक इहँ आवै।
जज्ञ करत मै जान परत वह आय रुधिर बरसावै ॥
यह सुनिकै बलदेव गुसाइं हल मूसल लियो हाथ।
लियो पकरि हल नभ मंडल ते कर मूसल सों घात ॥
जयजयकार भयो सुर-लोकनि देव दुंदुभी बाजै।
अस्तुति करत बहुत पूजा द्विज अति आनंद समाजै[2] ॥

'सूरसागर' मे यह प्रसंग भी अपेक्षाकृत अधिक सुचारु रूप से वर्णित है—

पुनि कह्यौ रिषिन दानव महा प्रबल ह्याँ. हमै दुख देत सो सदा आई।
ताहि जौ हतौ तौ होइ कल्यान तुव, हम करैं जज्ञ सुख सौं सदाई ॥
राम दिन कितक ता ठौर औरौ रहे, आइ यल्वल तहाँ दई दिखाई।
रुधिर औ माँस की लग्यौ बरषा करन, रिषि सकल यह देखि गए डराई ॥

१. 'सारावली', छंद ८३५।
२. वही, छंद ८३२-३३-३४।

राम हल सौं पकरि मुसल सौं हत्यौ नेहि, प्रान तजि नेहि सकल सुधि
बिसारी।
सुरनि आकास तै पुहुप बरषा करी, रिषिन आसीस जय धुनि उचारी[1] ।।

आगे तीन छंदो में[2] बलराम का तीर्थ-यात्रा करके द्वारका लौटने का और दो छंदो मे[3] श्रीकृष्ण के परिवार का सामान्य वर्णन 'सारावली'-कार ने किया है। अगले छंद मे पुन: युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की चर्चा है[4] जिसका वर्णन वह पहले दो बार कर चुका है। तत्पश्चात् यदुकुल के शाप[5], उद्धव के ज्ञान, दत्तात्रेय के चौबीस गुरु[6], हंस-धर्म[7], सांख्य तत्व[8] आदि का वणन केवल चार छंदो मे किया गया है। इन सबमे कोई उल्लेखनीय बात न होने के कारण इनको उद्धृत करना अनावश्यक है। अगले छंद मे वह कहता है—

सदा बसत हरि पुरी द्वारका, बहुबिधि भोग बिलासी।
आदि-अनंत-अघट्ट अनूपम, है अबिगत अबिनासी[9]।

इस कथन के संबंध मे दो प्रश्न स्वभावत: उठते हैं। पहला तो यह है कि जब 'सारावली'-कार अपने काव्य के प्रारंभिक छंदो मे श्रीकृष्ण के नित्य ब्रजवास की बात कहता है—

जहँ बृन्दाबन आदि अजिर जहँ कुंजलता बिस्तार।
तहँ बिहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार ।।
जहँ गोबर्धन पर्वत मनिमय सघन कदरा सार।
गोपिनमंडल मध्य बिराजत निसि दिन करत बिहार[10] ।।

१. 'सूरसागर', पद १०-४२२३।
२. 'सारावली', छंद ८३६-३७-३८।
३. वही, छंद ८३९-४०।
४. वही, छद ८४१।
५. वही, छद ८४२।
६. वही, छंद ८४३।
७. वही, छंद ८४४।
८. वही, छंद ८४५।
९. वही, छंद ८४६।
१०. वही छंद २ और ४।

और आगे चलकर पुन: उसकी पुष्टि करता है—

सदा बिलास करत गोकुल मे धनि धनि जसुमति मात।
ज्यो दीपक ते दीपक कीन्हो भये द्वारिका नाथ॥
नित प्रति मंगल रहत महर के नित प्रति बजत बधाई।
नित प्रति मंगल कलस धरावत नित प्रति बेद पढाई॥
श्री बृषभान राय के आँगन नित प्रति बजत बधाई।
नित प्रति मिलि मुनि-राज मंडली मंगल घोष कराई[1]॥

\+ + +

बृंदाबन गोबर्धन कुंजनि जमुना पुलिन सुदेस।
नित-प्रति करत बिहार मधुर रस स्यामा स्याम सुबेस[2]॥

\+ + +

चौरासी ब्रजकोस निरंतर खेलत है बल मोहन।
सामबेद रिगबेद जजुर मे कहेउ चरित ब्रजमोहन[3]॥

\+ + +

बृंदाबन हरि यहि बिधि क्रीडत सदा राधिका संग।
भोर निसा (न) कबहुँ जानत (है) सदा रहत इक रंग[4]॥

इतना ही नहीं, स्वयं श्रीकृष्ण भी बार-बार अपने नित्य ब्रजवास की बात कहते है—

तब हरि कह्यो सुनो उद्धव जू ब्रजबासी तन मोर।
तिनको सपने कबहुँ न छाँड़ौ सत्य कहत हौं तोर॥
बृंदाबन मे धेनु चरावत गोप सखनि के संग।
बेनु बजावत मोद बढावत क्रीड़ा कोटि अनंग॥
अरु गोपिनि सों अंग संग करि नित प्रति करौ बिनोद।
दुष्ट कंस मारन यहँ आयौ, सदा जसौदा गोद[5]॥

१. 'सारावली', छद ८६६-७०-७१।
२. वही, छंद १०१०।
३. वही, छंद १०६०।
४. वही, छंद १०६६।
५. वही, छंद ५८३-८४-८५।

\+ \+ \+

जमुनातीर भीर खग मृग की मोहि नित-प्रति सुधि आवै।
बृंदा बिपिन राधिका मंदिर नित-प्रति लाड़ लडावै[1] ॥

तब स्वभावत. यह प्रश्न होता है कि इस लोक मे हरि का 'नित्य लोक' या परम धाम व्रज है या द्वारका ? व्रज के 'नित्य विहार' का जो 'सारावली'-कार पॉच-सात बार उल्लेख करता है वह केवल एक स्थान पर द्वारका मे हरि के 'सदा वास' करने की बात क्यो कहता है ? क्या उसकी दृष्टि में व्रज और द्वारका, दोनो 'नित्य धाम' हैं ?

दूसरा प्रश्न यह है कि क्या 'सूरसागर' का रचयिता भी अपने उस वृहत् काव्य मे कहीं भी द्वारका के 'नित्य धाम' होने की बात कहता है ? व्रज—वृंदावन और गोकुल उसी के अतर्गत आ जाते है—के नित्य या परम धाम होने की बात तो अवश्य उसने अनेक बार कही है, जैसे—

क. सब तै धन्य-धन्य बृंदाबन, जहॉ कृष्न कौ बास[2] ।
ख. नित बिहार गोपाललाल-सँग बृंदाबन रजधानी[3] ।
ग. बृंदाबन निज धाम कृपा करि तहॉ दिखायौ[4] ।
घ. श्री बृंदाबन कुंज कुंज प्रति अति बिलास आनंद[5] ।

'सूरसागर' के श्रीकृष्ण स्वयं भी वृंदावन की महिमा बखानते नही अघाते; अपने सखाओ से वृंदावन की प्रशंसा मुक्तकंठ से करते हुए वे कहते है—

क बृंदाबन मौकौ अति भावत ।
सुनहु सखा तुम सुबल, श्रीदामा, ब्रज तै बन गौ-चारन आवत ।
कामधेनु सुरतरु सुख जितने, रमा सहित बैकुंठ भुलावत ।
इहि बृंदाबन, इहि जमुना तट, ये सुरभी अति सुखद चरावत[6] ।
ख. ब्रज तै तुमहि कहूँ नहि टारौ, यहै पाइ मैं हूँ ब्रज आवत ।
यह सुख नहिं कहुँ भुवन चतुर्दस, इहि ब्रज यह अवतार बतावत[7] ।

१. 'सारावली', छंद ८६३ ।
२. 'सूरसागर', पद १०-१०४४ ।
३. वही, पद १०-१०५५ ।
४. वही, पद १०-११७५ ।
५. वही, पद १० ११८३ ।
६. वही, पद १०-४४६ ।
७. वही पद १०-४५० ।

इतना ही नहीं, मथुरा और द्वारका, दोनो स्थानो के सुख, ब्रज की तुलना मे फीके लगने की बात उन्होने स्वयं बार-बार कही है—

क. यह मथुरा कचन की नगरी, मनि-मुक्ताहल जाहीं।
जबहि सुरति आवति वा (ब्रज) सुख की जिय उमगत तन नाहीं[1]।

ख. ब्रज-सुधि नैकहूं नहि नाइ।
जदपि मथुरापुरी मनोहर, बिरद जादौराइ[2]।

ग. जदपि कनक मनि रची द्वारिका, बिषय संकल संभोग।
तद्यपि मन जु रहत बंसी-बट, ललिता कै सजोग[3]।

घ. जद्यपि सुख-निधान द्वारावति, गोकुल के सम नाहीं[4]।

ङ. सुनि सतभामा सौंह तिहारी।
जब जब मोहि घोष सुधि आवति, नैननि बहत पनारी[5]।

'सूरसागर' की उक्त पंक्तियो का ध्यान से अध्ययन करके निर्णय कीजिए कि जिस अष्टछापी सूरदास ने श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भाव रखते हुए वृंदावन को इस प्रकार उनका नित्य या परम धाम कहा है, क्या 'सारावली' उन्हीं की रचना हो सकती है जिसमे ब्रज या वृंदावन के साथ-द्वारका को भी 'नित्य धाम' कहा गया है ?

'सारावली' के अगले चौदह छंदो में[6] कृष्ण विप्र की कथा है जिसके दस सुत जन्मते ही अंतर्धान हो गये थे और अतिम की रक्षा करने मे असफल होने पर अर्जुन को बहुत दुख हुआ था। अंत में श्रीकृष्ण की कृपा मे वे पुत्र ब्राह्मण को पुन. प्राप्त हो गये। 'सूरसागर' में यह कथा एक लंबे पद मे मिलती है[7]। दोनो कथाओं में सामान्य अंतर अवश्य है, परंतु कोई उल्लेखनीय विशेषता न होने से उनको उद्धृत करना अनावश्यक जान पड़ता है।

१. 'सूरसागर', पद १०-४१५७।
२. वही, पद १०-४१५८।
३. वही, पद १० ४२७१।
४. वही, पद १०-४२७२।
५. वही, १०-४२७४।
६. 'सारावली', छंद ८४७ से ८६० तक।
७. 'सूरसागर', पद १०-४३०६।

'सारावली' के अगले सात छंदो मे श्रीकृष्ण को व्रज-वास का स्मरण हो आना कहा गया है और वे रुक्मिणी से कहते हैं—

एक दिन रुक्मिनि सो माधव करत बात सुखदाई।
सुनु रुक्मिनि राधिका बिना मोहि पल सम कल्प बिहाई॥
कनक भूमि रचि खचित द्वारिका कुंजन की छबि नाहीं।
गोबर्धन पर्बत के ऊपर बोलत मोर सुहाहीं॥
जमुनातीर भीर खग मृग की मोहि नित-प्रति सुधि आवै।
बृंदा बिपिन राधिका मंदिर नित-प्रति लाड लड़ावै॥
राति दिवस रस स्रवत सुधा मे कामधेनु दरसाई।
लूटि लूटि दधि खात सखनि सँग तैसो स्वाद न पाई॥
षटरस भोजन नाना बिधि के करत महल के माहीं।
छाके खात ग्वाल-मंडल में वैसो मो सुख नाही॥
जन्मभूमि देखन के कारन मेरो मन ललचावै।
धौरी धेनु बुलावन कारन मधुरे बेनु बजावै॥
रास-बिलास बिबिध मै कीन्हें संग राधिका लीन्हें।
कीन्हे केलि बिबिध गोपिनि सो सबहिनि को सुख दीन्हे[1]॥

उक्त सात छंदो मे 'सारावली'-कार ने जो कुछ कहा है, वह विविध प्रसंगो मे कवि पहले भी कह चुका है[2]। केवल तीन बातें—१. कनक भूमि ...कुंजन की छबि नाहीं, २. षटरस भोजन...... सुख नाहीं, और ३. जन्मभूमि देखन के कारन मेरौ मन ललचावै—उक्त छंदों में इसने नयी कही हैं जिनका आधार 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियाँ हो सकती है—

क. जदपि कनक मनि रची द्वारिका बिषय सकल संभोग।
तद्यपि मन जु हरत बंसी-बट ललिता कै संजोग[3]।
ख. जद्यपि सुख-निधान द्वारावति, गोकुल के सम नाही[4]।
ग. रुकमिनि चलौ जन्मभूमि जाहि[5]।

१ 'सारावली', छंद ८६१ से ६७।
२. वही, छंद १ से ४, ४७१ से ४८०, ५८४ से ५८६ और ७२२ से ७२६।
३. 'सूरसागर', पद १०-४२७१।
४. वही, पद १०-४२७२।
५. वही, पद १०-४२७३।

इसके पश्चात् 'सारावली' मे व्रज की निकुंज-लीला का आरंभ होता है जिसकी प्रस्तावना प्रारंभिक पाँच छंदो में इस प्रकार है—

बल मोहन फिर ब्रजहि पधारे ऊधो को सँग लीने।
दीन्हों बास चरन रज गोपिनि गुल्म लता रस भीने ॥
सदा बिलास करत गोकुल मे धनि धनि जसुमति मात।
ज्यों दीपक ते दीपक कीन्हों भये द्वारिका नाथ ॥
नित प्रति मंगल रहत महर के नित प्रति बजत बधाई।
नित प्रति मंगल कलस धरावत नित प्रति बेद पढाई ॥
श्री बृषभान राय के आँगन नित प्रति बजत बधाई।
नित प्रति मिलि मुनि राज मंडली मंगल घोष कराई ॥
बाल केलि क्रीड़त ब्रज आँगन जसुमति को सुख दीनो।
तरुन रूप धरि गोपिनि के हित सबको चित हरि लीनो[1] ॥

'सूरसागर' मे द्वारका-लीला के अनंतर इस निकुंज-लीला का वर्णन तो नहीं है, परंतु कुरुक्षेत्र मे व्रजवासियो से भेट होने पर श्रीकृष्ण ने उनको इतना आश्वासन अवश्य दिया है—

कहा भयौ जो देस द्वारिका, कीन्हौ दूरि बसेरौ।
आपुन ही या ब्रज के कारन करिहौ फिरि फिरि फेरौ[2] ।

हो सकता है कि 'सारावली'-कार को निकुंज-लीला का वर्णन द्वारका-लीला के पश्चात् करने की प्रेरणा श्रीकृष्ण के उक्त वचनो से मिली हो। यो ध्यान से देखा जाय तो इस सारे प्रसंग मे 'सारावली'-कार ने जो कुछ लिखा है, वह प्राय: सब का सब 'सूरसागर' के गोपी-कृष्ण-संयोग-वर्णन में मिल जाता है।

इस प्रसंग मे ध्यान देने की बात यह है कि निकुंज-लीला की नायिका राधा है, यद्यपि अन्य गोपियो को भो संयोग-सुख का लाभ बराबर मिलता रहता है। परंतु 'सारावली' मे इस प्रसंग के प्रारंभिक बत्तीस छंदों मे (८६८ से ६०६ तक) केवल एक बार राधा का नाम आता है और वह भी इंद्रा, वृंदा तथा चंद्रावली के साथ[3]। किस स्वतंत्र सिद्धांत

१. 'सारावली', छंद ८६८ से ७२ तक।
२. 'सूरसागर', पद १०-४२९५।
३. 'सारावली', छंद ८६५।

के प्रतिपादन के लिए 'सारावली'-कार ने ऐसा किया है, यह उसकी प्रामाणिकता के पोषकों की ही खोज का विषय होना चाहिए, क्योंकि हमारी सम्मति मे तो इसका एकमात्र कारण रचयिता की असावधानी तो कम, अनभिज्ञता ही अधिक हो सकता है।

'सारावली' के अगले चार छंदों में श्रीकृष्ण के प्रति चंद्रावली के प्रेम और मिलन-प्रयास का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

चंद्रावली गोप की कन्या चंद्रभाग गृह जाई।
भई किसोर स्याम ने देखी अदभुत प्रीति बढ़ाई॥
तब ललिता पूछ्यो नीके करि केहि बिधि स्याम मिलाई।
अब न परत मोकूँ कल छिनहू जिय में अति अकुलाई॥
तब उन कहेउ सीस गोरस लै बेचन के मिस आओ।
गोबर्धन पर गोबिंद खेलत निरखि परम सुख पाओ॥
करि सिंगार चली चंद्रावलि नख सिख भूषन साजे।
ज्यों करिनी गजराज बिलोकति ढूढति है अति गाजे[1]॥

'सारावली'-कार ने यहाँ 'चंद्रावली' नाम देने में ही अपनी मौलिकता का परिचय दिया है, शेष वर्णन 'सूरसागर' के उन अनेक पदों जैसा है जिनमे गोपियां, विशेष कर राधा, की मिलन-उत्कंठा और प्रयास का वर्णन है। फिर उक्त छंद इतने साधारण हैं कि 'सूरसागर' से तद्विषयक पंक्तियाँ देना अनावश्यक ही जान पड़ता है।

अगले दो छंदों मे दान-लीला के लिए श्रीकृष्ण की तैयारी का वर्णन 'सारावली' मे किया गया है—

गोबर्धन के सिखर चारु पै सखा बृंद सँग लीन्हे।
गोपिनि देखि टेरि हरि कीन्हों दान लेन मन कीन्हे॥
राखौ घेरि सकल जुवतिनि को सखा बृंद सो भाख्यो।
आपु जाय पकर्यो कोमल कर दधि अमृत रस चाख्यो॥
देवौ दधि को दान नागरी गहर न लावौ चित्त।
तुमरे काज नित्य हम ठाढे अरपे अपनो बित्त[2]॥

१. 'सारावली', छंद ८७३ से ७६ तक।
२. वही, छंद ८७७-७८-७६।

'सूरसागर' में यह प्रसंग बहुत विस्तार से वर्णित है। दोनों के मिलान के लिए कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा—

क. सुनत हँसी सुख होहीं, स्याम दान दही कौ लाग्यौ।
निसि दिन मथुरा बेचैं, स्याम दान अब माँग्यौ।
प्रात होत उठि कान्ह, टेरि सब सखा बुलाए।

— — —

पेड़ पेड़ तर कै लगे ठाटि ठगनि के ठाट।
इहाँ ग्वालि बनि बानि, जुरी सब सखी-सहेली।
सिरनि लिए दधि-दूध, सबै जोबन अलबेली।
हँसति परस्पर आपु मै, चली जाहि जिय भोर।
जबहिं आनि घातहि परी, छेकि लिए चहुँ ओर[1]।

ख. ब्रज-जुवती नित-प्रति दधि-बेंचन बनि मथुरा जाति।

— — —

कालिंदी तट काल्हि प्रातही, द्रुम चढि रहौ लुकाइ।
गोरस लै जबहीं सब आवैं, मारग रोकौ जाइ[2]।

ग. ग्वालनि सैन दई तब स्याम।

— — —

कूदि कूदि सब परे धरनि मै घेरि लई ब्रज-बाल।
नित प्रति जाति दूध-दधि बेचन, आजु पकरि हम पाई।
सूर-स्याम कौं दान देहु तब जैहौ नंद-दुहाई[3]।

'सूरसागर' की तुलना मे. स्पष्ट है कि, 'सारावली' के उक्त छंद अत्यंत सामान्य है। इसके आगे के तेरह छंद भी इसी कोटि के हैं जिनमें श्रीकृष्ण और गोपियो के वाद-विवाद का प्रारंभ इस प्रकार होता है—

बृंदाबन में धेनु चरावत माँगत गो-रस दान।
नाना खेल सखनि सँग खेलत तुम पायो नृप यान॥
अरी ग्वालि मदमत्त बचन की बोलति बिना बिचार।
अचल राज गोबर्धन मेरो बृंदाबन मझार[4]॥

१. 'सूरसागर', पद १०-१४६१।
२. वही, पद १०-१४६२।
३. वही, पद १०-१५०३।
४. 'सारावली', छंद ८८०-८१।

जो तुम राजा आप कहावत बृंदाबन की ठौर।
लूटि-लूटि दधि खात सबनि को सब चोरनि के मौर॥
चोरी करत भगत के चित की अरु दधि अरु नवनीत।
सखा बृंद सब मीत हमारे बडे राज राजनीत॥
जो तुम राजनीत सब जानत बहुत बनावत बात।
जब तुम जन्म लियो मथुरा में आये आधी रात॥
सुन री ग्वारि गँवार बात की बोलत बिना बिचार।
कमल कोष मे बसत मधुप ज्यो त्यो भुव रहै मुरार॥
दूध दही के नात बनावत बाते बहुत गोपाल।
गढि गढ़ि छोलत कहा रावरे लूटत हो ब्रजबाल[१]॥

उक्त उत्तर-प्रत्युत्तर का मिलान 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदांशों से किया जा सकता है, यद्यपि 'सारावली' के उक्त छंदो में अष्टछापी सूरदास के काव्य कौशल की छाया भी ढूँढना व्यर्थ है—

क. कान्हिहि घर-घर डोलते, खाते दही चुराइ।
राति कछू सपनो भयौ, प्रात भई ठकुराइ।

— — —

बन मै राखी रोकि कै नारि पराई स्याम[२]।

ख. नंद महर के सुत करत अचगरी।
बन-बन फिरत गो चारत बजाइ बेनु, बातैं वै भुलाईं दानी भए गहि डगरी[३]।

ग. यह जानति तुम गाइ चरावन जात सदा बन बर कौ[४]।

घ. यह जानति तुम नंदमहर-सुत।
धेनु दुहत तुमकौं हम देखति, जबहि जाति खरिकहि उत॥
चोरी करत यहौ पुनि जानति, घर-घर ढूढ़त भाँडे।
मारग रोकि भए अब दानी, वे ढँग कब तै छाँडे॥
और सुनौ जसुमति जब बाँधे, तब हम कियौ सहाइ।
सूरदास-प्रभु यह जानति हम, तुम ब्रज रहत कन्हाइ[५]॥

१. 'सारावली', छंद ८८२ से ८८६।
२. 'सूरसागर', पद १०-१४६१।
३. वही, पद १०-१४७८।
४. वही, पद १०-१५१४।
५. वही, पद १०-१५१६।

ङ. कहा बड़ाई इनकी सरि मे।
नंद-जसोदा के प्रतिपाले, जानति नीके करि मै।
— — —
बसुद्यौ डारि राति ही भागे, आए हैं सुभ घरि मैं[१]।

च. काँधे कामरि, हाथ लकुटिया, गाइ चरावन जाते।
दही-भात की छाँक मँगावत, ग्वालनि सँग मिलि खाते[२]।

छ. जौ तुमही हौ सबके राजा।
तौ बैठौ सिंहासन चढ़िकै, चँवर छत्र सिर आजा[३]।

ज. सखा लिए तुम घेरत पुनि पुनि बन-भीतर सब नारि पराई[४]।

झ. वै दिन भूलि गए हरि तुमकौ, चोरी माखन खाते[५]।

ञ. अरी ग्वालि मदमंत बचन बोलत जु अनेरो।
— — —
कमल कोष अलि भुरै त्यौं, तुम भुरयौ गोपाल।
— — —
गढ़ि गढ़ि छोलत लाडिले, भली नही यह स्याम[६]।
— — —

'सूरसागर' मे दानलीला को लेकर डेढ़ सौ भी अधिक पद लिखे गये हैं[७]। उन सबको यदि ध्यान से देखा और उद्धृत किया जाय तो 'सारावली' का, अन्य प्रसंगो की भाँति, संभवत: इस प्रसंग मे भी, एक वाक्यांश तक उसके रचयिता का नही मिलेगा। ऊपर दिये गये उदाहरणों में से कुछ इस कथन की पुष्टि करते हैं. जैसे अंतिम पदांश के तीनो चरण कुछ हेर-फेर के साथ 'सारावली'-कार ने अपना लिये हैं।

१. 'सूरसागर', पद १०-१५३५।
२. वही, पद १०-१५४३।
३. वही, पद १०-१५४६।
४. वही, पद १५५४।
५. वही, पद १०-१५५९।
६. वही, पद १०-१६१८।
७. वही, पद १०-१४६० से १६१८ तक।

इसके पश्चात् के छंद में ग्वाल बालो ने श्रीकृष्ण के अवतार धरने का कारण इस प्रकार बताया है—

जो प्रभु देह धरे नहि भुव पर दीन अधम को तारै।
बढे असुर पुहुमी पर खल अति तिन्है तुरत को मारै[1] ॥

आगे के दो छंदो मे और स्वयं श्रीकृष्ण भी श्रीमुख से कहते हैं—

जोग जुक्ति करि ध्यान लगावत जोग सिद्ध कर ज्ञान।
नेति नेति करि निगम बतावत ताहि होत निरमान ॥
जोग साख्य अरु ज्ञान भामिनी माया हृदय बिनास।
प्रेम भगत मेरो जस गावै तेहि घट मेरो बास[2] ॥

ध्यान से देखने पर तो यही स्पष्ट होता है कि 'सारावली'-कार ने उक्त छंदो में कोई नही बात नही कही है, पीछे कही गयी बातें ही दोहरा दी है, फिर भी उसको इन वाक्यो के रचने की प्रेरणा 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियो से मिली जान पड़ती है—

क मै पूरन अबिगत अबिनासी, माया सबनि भुलाए[3] ।

ख. भक्त-हेत अवतार धरौं।
कर्म-धर्म कै बस मै नाहीं, जोग-जज्ञ मन मै न करौं[4] ।

ग. जो मोकौं जैसैहि भजै री, ताकौं तैसैहि मानौं[5] ।

घ. आपु कर्ता आपु हर्ता आपु त्रिभुवन-नाथ।
आपुही सब घट कौ व्यापी, निगम गावत गाथ[6] ।

ङ. प्रबल असुर पुहुमी बढे, बिधि कीन्हे ये ख्याल।

जौ प्रभु देह न धारै, दीन कौं कौन उधारै।

१. 'सारावली', छंद ८८७।
२. वही, छंद ८८८-८९।
३. 'सूरसागर', पद १०-१५२०।
४. वही, पद १०-१५२२।
५. वही, पद १०-१५६३।
६. वही, पद १०-१६०३।

कहा निगम कहि गावतौ, कह मुनि धरते ध्यान।

— — —

जोग-जुगुति तप ध्यावही, तिन गति कौन दयाल।

— — —

तजि अभिमान जु गावहीं, गद्गद् सुरहि प्रकास।
इहि रस मगन जु ग्वालिनी, ता घट मेरौ बास।

— — —

सिव बिरंचि सनकादि आदि तिनहूँ नहि जानी।
सेस सहस फन थक्यौ, निगम कीरतिहि बखानी।

— — —

परम पुरुष अवतार, जिनहि की माया दासी[1]।

'सारावली' और 'सूरसागर' के उक्त अवतरणों का मिलान कीजिए। आप देखेंगे कि प्रथम ग्रंथ के रचयिता ने सब कुछ 'सूरसागर' के आधार पर ही लिखा है, यहाँ तक कि अंतिम पदांश के 'प्रबल असुर पुहुमी बढ़े', 'जौ प्रभु देह न धरै, दीन कौ कौन उबारै', 'ता घट मेरौ बास' आदि वाक्य और उपवाक्य तो 'सारावली'-कार ने ज्यौं के त्यौं अपना—या चुरा—लिये हैं।

'सारावली' के आगे के तीन छंदों में पुनः श्रीकृष्ण और गोपियों का उत्तर-प्रत्युत्तर इस प्रकार मिलता है—

मुख ऊपर कह कहौ लायकै अनउत्तर को खोरि।
जब जसुमति ने ऊखल बाँधे हमही दीन्हें छोरि॥
बालक निपट अजान ग्वालिनी कछु सुधि जानि न जाय।
लैकर चीर कदम पर बैठ्यौ सबहिनि हाहा खाय॥
बहुत भये हौ ढीठ साँवरे मुख पर गारी देत।
तुम्हरे डर हम डरपति नाहिन कहा कँपावत बेत[2]॥

उक्त कथनों का भी आधार 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदांशों में देखा जा सकता है—

क. सूधैं दान न काहै लेत।
और अटपटी छाँड़ि नंद-सुत रहहु कँपावत बेत[3]।

१. 'सूरसागर', पद १०-१६१८।
२. 'सारावली', छंद ८६०-६१-६२।
३. 'सूरसागर', पद १०-१४६८।

ख. भूलि गए सुधि ता दिन की जब बाँधे जसुदा रानी[१] ।

ग. और सुनौ जसुमति जब बाँधे, तब हम कियौ सहाइ[२] ।

घ. अपनी बात खबरि करि देखहु, न्हात जमुन कैं तीर ।
सूर स्याम तब कहत, सबनि के कदम चढाए चीर[३] ।

ङ. सबै रही जल-माँझ उघारी ।
बार-बार हा हा करि थाकीं, मै तट लई हँकारी ॥
आई निकसि बसन बिनु तरुनी, बहुत करी मनुहारी ।
कैसे हाल भए तब सबके, सो तुम सुरति बिसारी ॥
हमहि कहत दधि-दूध चुरायौ, अरु बाँधे महतारी[४] ।

च. जननी ऊखल बाँधती, हमही देतीं छोरि ।
— — —
वह दिन सुमिरौ आपनौ, न्हात जमुन कैं पानि ।
जब सब मिलि हाहा करी, बस्त्र हर्यौ मै जानि ।
बहुत भए हौ ढीठ देत मुख ऊपर गारी[५] ।

'सारावली' के उक्त छन्दो के छह चरणों मे से चार—दूसरा, चौथे, पाँचवें और छठे—की रचना 'सूरसागर' की शब्दावली से ही की गयी है । क्या इस शब्द-दरिद्र कवि को किसी भी दृष्टि से 'सूरसागर' का रचयिता कहा जा सकता है ?

गोपियो से इतना वाद-विवाद करने के पश्चात् 'सारावली' के कृष्ण अपने सखाओ को उनकी 'मटुकी' छुड़ा लेने की आज्ञा देते हैं और स्वयं भी कंकन खोलने (?) और हारावली तोड़ने मे जुट जाते हैं । अंत में पुरस्कार-स्वरूप 'बिमल-बिमल दधि' खाने को मिल जाता है । इतनी बातें 'सारावली'-कार ने अगले तीन छंदो मे लिखी हैं—

स्याम सखनि सो कहेउ टेरि दै घेरौ सब अब जाय ।
बहुत ढीठि यह भई ग्वालिनी मटुकी लेहु छिनाय[६] ॥

१. 'सूरसागर', पद १०-१४७९ ।
२. वही, पद १०-१५१९ ।
३. वही, पद १०-१५६० ।
४. वही, पद १०-१५६१ ।
५. वही, पद १०-१६१८ ।
६. 'सारावली', छंद ८९३ ।

क. ब्रज-जुवती सुनि मगन भई।
यह बानी सुनि नंद-सुवन-मुख, मन ब्याकुल, तन सुधिहु गई[1] ॥

ख. कान्ह माखन खाहु हम मु देखैं।
सद्य दधि दूध ल्याईं अबटि अबहि हम, खाहु तुम सफल करि जनम लेखैं ॥
सखा सब बोलि, बैठारि हरि मंडली, बनहि के पात दोना लगाए।
देति दधि परुसि ब्रज-नारि, जेवत कान्ह, ग्वाल-सँग बैठि अति रुचि बढाए[2] ॥

ग माखन दधि हरि खात ग्वाल-सँग।
पातनि के दोना सब लै लै, पतुखिनि मुख मेलत रँग ॥
मटुकिनि तै लै-लै परुसति है, हरष भरीं ब्रज-नारी।
यह सुख तिहू भुवन कहुँ नाहीं, दधि जेवत बनवारी[3] ॥

घ. गोपिका अति आनंद भरी।
माखन-दधि हरि खात प्रेम सौ निरखति नारि खरी[4] ॥

ङ. राधा सौं माखन हरि माँगत।
औरनि की मटुकी कौ खायौ, तुम्हरौ कैसौ लागत ॥
लै आई बृषभानु-सुता हँसि सद लवनी है मेरौ।
लै दीन्हौ अपनै कर हरि-मुख, खात अल्प हँसि हेरौ ॥
सबहिनि तै मीठौ दधि है यह, मधुरै कह्यौ सुना[5]।

च. मेरे दधि कौ हरि स्वाद न पायौ।
जानत इन गुजरिनि कौ सौ है, लयौ छिड़ाइ मिलि ग्वालनि खायौ।
धौरी धेनु दुहाइ छानि पय, मधुर आँचि मैं औटि सिरायौ।
नई दोहनी पोछि पखारी, धरि निरधूम खिरनि पै तायौ ॥
तामै मिलि मिस्रित मिसिरी करि, दै कपूर-पुट जावन नायौ।
सुभग ढकनियाँ ढाँकि बाँधि पट, जतन राखि छीकै समुदायौ ॥

१. 'सूरसागर', पद १०-१५८६।
२. वही, पद १०-१५६६।
३. वही, पद १०-१५६६।
४. वही, पद १०-१५६८।
५. वही, पद १०-१५६६।

हौं तुम कारन लै आई गृह, मारग मैं न कहूँ दरसायौ ।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, कियौ कान्ह ग्वालिनि मन भायौ[1] ॥

छ. ब्रज-बनिता यह कहति स्याम सौं, दूध दह्यौ अरु ल्यावै ।
मटुकिनि तै हम देहि खाहु तुम, देखि देखि सुख पावै[2] ॥

इतना ही नही, श्रीकृष्ण के प्रति अपनी प्रीति को गुप्त रखकर गोपियो ने उनसे जो वाद-विवाद किया था, उसके लिए वे क्षमा भी माँगती है—

स्याम सुनहु इक बात हमारी ।
ढीठौ बहुत दई हम तुमसौं, बकसौ चूक हमारी ॥
मुख जो कही कटुक सब बानी, हृदय हमारै नाही ।
हँसि-हँसि कहति, खिझावति तुमकौ, अति आनँद मन माही ॥
दधि माखन कौ दान और जो, जानौ सबै तुम्हारौ ।
सूर स्याम तुमकौ सब दीन्हौ, जीवन प्रान हमारौ[3] ॥

और प्रेममयी गोपियो का यह प्रेममय व्यवहार, 'सूरसागर'-कार के शब्दो मे, श्रीकृष्ण से भी यह कहला लेता है—

सुनहु बात जुवती इक मेरी ।
तुमतै दूरि होत नहि कबहूँ, तुम राख्यौ मोहि घेरी ॥
तुम कारन बैकुंठ तजत हौ, जनम लेत ब्रज आइ ।
बृंदावन राधा गोपी सँग, यह नहि बिसर्यौ जाइ ॥
तुम अंतर-अंतर कह भाषति, एक प्रान द्वै देह ।
क्यौ राधा ब्रज बसैं बिसारौं, सुमिरि पुरातन नेह ॥
अब घर जाहु दान मै पायौ, लेखौ कियौ न जाइ ।
सूर स्याम हँसि-हँसि जुवतिनि सौं, ऐसी कहत बनाइ[4] ॥

'सूरसागर' और 'सारावली' के दान-लीला-प्रसंग के अंतिमांश मे जो अंतर ऊपर दिखाया गया है, वही दोनों ग्रंथों के रचयिताओ के दृष्टि-कोण और भिन्न आदर्श को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है । 'सारावली' की रचना के समय उसके रचयिता की आयु सभी आलोचको ने 'सरसठ'

१. 'सूरसागर', पद १०-१६०० ।
२. वही, पद १० १६१० ।
३. वही, पद १०-१६१२ ।
४. वही, पद १०-१६१४ ।

वर्ष की तो मानी ही है। अब यदि वह रचयिता 'सूरसागर'-कार ही है तो इसके कुछ पदों की शब्दावली तक 'सारावली' के उक्त छंदों में मिल जाने से यह तो सभी को मानना पड़ेगा कि सूरदास दानलीला-प्रसंग उस आयु तक अवश्य लिख चुके होंगे, कम से कम तद्विषयक अधिकांश पदों की रचना तो हो ही चुकी होगी। ऐसी स्थिति में भी उस प्रसंग की जैसी महत्वपूर्ण और सिद्धांत-गर्भित समाप्ति 'सूरसागर' में मिलती है, 'सारावली' में उसकी छाया भी न मिलने का क्या कारण है ? क्या 'सारावली' के अंतिम छंदों से यह नहीं सिद्ध होता कि उसका रचयिता दानलीला में निहित सिद्धांत को न जानता है और न 'सूरसागर' पढ़ (?) लेने पर भी वह उसे समझ सका है ? सच पूछिए तो 'सारावली' में वर्णित उक्त प्रसंग में किसी प्रकार की सैद्धांतिकता की छाया तक नहीं है। और यह बात केवल इसी प्रसंग में नहीं, प्राय: सभी प्रसंगों में देखी जा सकती है। इतने पर भी कोई 'सारावल ' को अष्टछापी सूरदास की ही रचना मानने पर तुला हो तो उसके दुराग्रह के लिए क्या कहा जा सकता है ?

इसके उपरांत श्रीकृष्ण (किसी की ?) 'बहियाँ' पकड़ कर सघन कुंज के द्वार पर ले जाते हैं जहाँ सखियों ने कुसुम-सेज पहले ही से सँवार कर रख छोड़ी है। पश्चात्, कुंज-लीला प्रारंभ होती है और अगले छंद में ही श्रम-जल बिंदु आनन पर झलकने लगते हैं। 'सारावली'-कार ने इतना सब केवल तीन छंदों में लिख दिया है—

गहि बहियाँ लै चले स्याम घन सघन कुंज के द्वारि।
पहिले सखी सबै रचि राखी कुसुमनि सेज सँवारि ॥
नाना केलि सखिनि सँग बिहरत नागर नंदकुमार।
आलिगन चुम्बन परिरंभन भेंटत भरि अँकवार ॥
स्रम जल बिंदु इंदु आनन पर राजत अति सुकुमार।
मानो बिबिध भाव मिलि बिलसत मगन सिंधु रससार[१] ॥

उक्त छंदों में चार बातें ध्यान देने की है। पहली तो यह कि श्याम किसको 'बहियाँ' गहकर सघन कुंज के द्वार पर ले गये, स्पष्ट नहीं होता। इसके पूर्व 'इन्दा, बिंदा, राधिका और चंद्रावली' के नाम कवि ने गिनाये हैं और फिर समूहवाची 'सबन' का प्रयोग किया है। तब बहियाँ उन्होंने

१. 'सारावली', छंद ८९६ ६७ ९८।

किसी एक की गही या सबकी और किसी एक को कुंज-द्वार पर ले गये या सबको ? दूसरे, यदि सभी सखियाँ कुंज-द्वार तक चली गयी तो सखाओ का क्या हुआ ? उनसे वही रुकने को कहा गया या उनके श्रम का पुरस्कार दधि-माखन के रूप मे चुकाकर उनको घर लौट जाने को कहा गया और स्वयं, उनके देखते-देखते, एक या सबको पकड़कर कुंज मे ले गये ? तीसरे, जो गोपो या गोपियाँ, अभी-अभी मामूली दही-माखन के दान का इतना विरोध कर रही थी कि न वह देना था और न खुशी से दिया ही, केवल एक ही छंद बाद, 'बहियाँ गही' जाते ही रति-दान के लिए कैसे तत्पर हो गयी ? अथवा उनके विरोध करने पर भी श्रीकृष्ण सब देखते देखते उनको कुंज मे घसीट ले गये ? चौथे, दान-लीला-प्रसंग का प्रारंभ प्रात.काल होने पर हुआ माना जाता है, क्योकि तभी गोपियाँ दूध-दही बेचने जाती है। 'सूरसागर' के निम्नलिखित पदांशो मे इसका स्पष्ट उल्लेख भी है—

क. प्रात होत उठि कान्ह, टेरि सब सखा बुलाए।
— — —
इहाँ ग्वालि बनि बानि, जुरीं सब सखी सहेली[1]।

ख. भोर होत नितहीं प्रति करत रहत झगरौ[2]

ग. कालिंदी-तट काल्हि प्रातहीं, द्रुम चढ़ि रहौ लुकाइ।
गोरस लै जबही सब आवै, मारग रोकौ जाइ[3]।

घ. प्रातही उठी गोप-कुमारि।
परस्पर बोली जहाँ जहँ, यह सुनी बनवारि[4]।

ङ. भली करी उठि प्रातहि आए।
मैं जानत सब ग्वालि उठीं जब, तब तुम मोहिं बुलाए[5]।

च. ब्रज जुवती मिलि करति बिचार।
चलौ आजु प्रातहि दधि-बेचन, नित तुम करति अबार[6]।

१. 'सूरसागर', पद १०-१४६१।
२. वही, पद १०-१४८६।
३. वही, पद १०-१४६२।
४. वही, पद १०-१४६३।
५. वही, पद १०-१५६४।
६. वही, पद १०-१४६७।

छ. प्रात ही लै जाति गोरस, बेचि आवति राति[1]।

ज. हमकौ जान देहु दधि बेंचन, पुनि कोऊ नहि लैहै।
गोरस लेत प्रातही सब कोउ, सूर धरयौ पुनि रैहै[2]॥

इसी प्रकार के कुछ और भी उदाहरण 'सूरसागर' से निकाले जा सकते है जिनसे 'दान-लीला' के प्रात काल ही होने की पुष्टि होती है। अब प्रश्न यह है कि जिस सूरदास ने उक्त पदांश लिखे हैं, यदि 'सारावली' उसी की रचना है तो एक बार भी वह वैसा उल्लेख क्यो नहीं करता? अथवा उल्लेख न किया तो न सही, उस समय को सर्वथा भुलाकर 'कुसुमनि-सेज' सँवारे जाने की बात कैसे कहता है? क्या यह सेज रात को ही तैयार कर रखने का आदेश दिया जा चुका था और अब बासी फूलो का आनंद लेना था? या प्रात काल उठते ही सारी योजना बनाकर, कुछ सखियो को सेज तैयार कर रखने का निर्देश देकर श्रीकृष्ण चले थे? अथवा कुछ सखियाँ स्थायी रूप मे इस कार्य के लिए नियुक्त थीं जिन्हें हर समय 'कुसुम-सेज' तैयार रखने का स्थायी आदेश था? अथवा जिनसे गोरस दान लिया गया था, उन्ही में से कुछ को संकेत करके सेज की तैयारी के लिए भेज दिया गया था? इस प्रकार की जिन असंगतियो से 'सारावली' भरी पड़ी है, क्या वे 'सूरसागर' मे भी है? यदि नही तो क्या इनसे 'सूरसारावली' की अप्रामाणिकता नही पुष्ट होती?

अब उक्त छंदो का 'सूरसागर' के वर्णन से मिलान करने के लिए केवल एक उदाहरण देखिए—

बंसीबट की छाहँ, गही हरि मेरी बाहीं।
हौ सकुचनि बोली नही, बहु सखियन की भीर।
गहि बहियाँ मोहि लै चले, हँस-सुता कै तीर[3]।

यह कथन एक गोपी का है। इसमे वह श्रीकृष्ण के किसी दिन के व्यवहार का उलाहना देने यशोदा के पास आयी है। 'सारावली'-कार सारे संदर्भ को भुलाकर, या नासमझी मे छोड़कर, अंतिम पंक्ति उड़ाकर, थोड़ा हेर-फेर करके उक्त छंदो मे से प्रथम का पहला चरण बना देता है।

१. 'सूरसागर', पद १०-१५०४।
२. वही पद १०-१५०६।
३. वही, पद १०-१४६१।

'सारावली' के अगले ढाई छंद भी उक्त प्रसंग से ही संबंधित हैं, जैसे—

कंज-रंध्र अवलोकि सहचरी अपनो तन मन वारे।
निरखि निरखि दम्पत्ति नेत्रनि सुख तोरि तोरि तृन डारे ॥
यह अवलोकि देव गंध्रव मुनि बरसत कुसुम अपार।
जय जय करत बार नीराजन बोलत जय जयकार ॥
गोबर्धन की सघन कंदरा कीनो रैनि निवास[1]।

'सूरसागर' में यह प्रसंग इतनी बार और इतने विस्तार से वर्णित है कि 'सारावली' की उक्त पंक्तियों की तुलना के 'सूरसागर' से उदाहरण छाँटना अनावश्यक है।

तदनंतर 'सारावली' कार ने किसी विशेष सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिए श्रीकृष्ण के बाल-जीवन का वर्णन नौ छंदों मे इस प्रकार किया है—

नंद-धाम हरि बहुरि पधारे पौढि रहे निज सैन।
जसुमति मात जगावति भोरहि जागे अम्बुज नैन ॥
करी मुखारी और कलेऊ कीनो जल असनान।
करि सिगार चले दोउ भइया खेलन को सुखदान ॥
कहुँ खेलत मिलि ग्वाल मंडली आँख मीचनी खेल।
चढा-चढी को खेल सखनि मे खेलत है रस-रेल ॥
कहूँ आमरू डार बिपट की खेलत सखनि मझार।
कूदि कूदि धरनी सब धावत दाँव देत किलकार ॥
भोजन समय जान जसुमति ने लीने दुहुँनि बुलाय।
बैठे आय गोद जसुमति की आनँद उर न समाय ॥
बहु बिधि के पकवान बनाये परसति जसुमति माय।
आरोगत बल मोहन दोऊ सुख देखत ब्रजराय ॥
कबहूँ कौर खात मिरचनि को लागी दसन टकोरि।
भाजि चले तब गहे रोहनी लाई बहुत निहोरि ॥
भोजन करि नाना बिधि दोऊ लीनो मठा सलोनो।
अँचवन करि ब्रजराज पधारे बल मोहन सुख मोनो ॥
बीरी खाय चले खेलन को बीच मिली ब्रजनार।
लै चलि पकरि बाँह राधा पै सघन कुंज के द्वार[2] ॥

१. 'सारावली', छंद ८६६-६००-६०१।
२. वही, छंद ६०२ से ६१० तक।

उक्त वर्णन में 'मिरचन की टकोर' लगने की बात बड़ी रोचक है। 'सूरसागर' में भी यह बात लगभग इन्हीं शब्दो मे वर्णित है और वह उदाहरण प्रस्तुत पुस्तक मे पीछे उद्धृत भी किया जा चुका है। अनजान ही, 'मिर्च' कुतर लेने की भूल छोटे बच्चे किया करते हैं, परंतु 'सारावली' के जो कृष्ण अभी-अभी सखी की 'बहियाँ' पकड़कर कुंज-लीला में सानंद भाग ले रहे थे, वे 'मिर्च' कुतरते और (संभवत: मुँह पीटते) 'भाज चलते हैं' तब रोहिनी उनको पकड़ कर लाती है। 'सारावली' कार की इस 'प्रवीणता' पर किसको आश्चर्य न होगा ? परंतु जो कवि अपने को 'सरसठ वर्ष' की अवस्था मे 'लघुमति दुर्बल बाल' लिख सकता है, वह यदि कुंज-लीला-विहारी को इतना भोला बना दे कि मिर्च कुतरने से उनको 'भाजना' पड़े और माता रोहिणी को 'निहोर' करके उन्हें मनाना पड़े तो क्या उसकी 'प्रवीणता' से मेल खानेवाला ही वर्णन नही समझा जाना चाहिए ?

उक्त प्रसंग भी 'सूरसागर' में अनेक बार वर्णित है और तत्संबंधी पद उसके सारे दशम स्कध मे बिखरे हैं। अतएव तुलना के लिए केवल एक उदाहरण हो यहाँ दिया जा रहा है जो 'सूरसागर' मे इसी प्रसंग में मिलता है—

कान्ह उठे अति प्रातहीं, तलबेली लागी।
स्याम उठत अवलोकि कै, जननी तब जागी।
सुंदर बदन बिलोकि कै, अँग-अँग अनुरागी॥
माता पूछति सुअन कौं, बलि गई मेरे बारे।
कहा आजु अचरज कियौ, तुम उठे सबारे॥
उत्तम जल लै प्रेम सौं, सुत-बदन पखारयौ।
झारी जल, दँतुवनि दियौ, छबि पर तनु वारयौ॥
करी मुखारी अतुराइ, नागरि-रस छाके[१]।

'सारावली'-कार ने आगे 'मान-लीला' का वर्णन किया है जिसकी प्रस्तावना निम्नलिखित तीन छंदो में है—

राधा सों मिलि अति सुख उपज्यो उन पूछी इक बात।
कहौ जु आज रैनि कहँ सोये हम देखे तुम जात[२]॥

१. 'सूरसागर', पद १०-१६८५।
२. 'सारावली', छंद ६११।

तब हरि कहेउ सुनौ मृगनैनी गाय गई इक दौरि।
ताको लेन गयो गोबर्धन सोय रहेउँ तेहि ठौर ॥
कंद मूल फल दीने गोधन सो निसि को मै खायो।
भोर भये उठि तेरे आयो चरन कमल परसायो[१] ॥

सारा प्रश्नोत्तर कितना कृत्रिम और अस्वाभाविक है ! 'सूरसागर' में श्रीकृष्ण ने अनेक बार इस प्रकार के बहाने बताये है; परंतु वैसा उन्होंने केवल माता यशोदा को समझाने के लिए कहा है और पुत्र के प्रति असीम स्नेह रखनेवाली वात्सल्यमयी माता का उन बातो पर विश्वास कर लेना स्वाभाविक भी है। 'सारावली'-कार कितना अबोध है कि वैसी बात श्रीकृष्ण के मुख से राधा के प्रश्न के उत्तर मे कहलाने की अज्ञता दिखाने मे भी नही सकुचाता ! यहाँ भी 'सूरसागर' का उदाहरण देना निरर्थक है।

तत्पश्चात् 'सारावली'-कार राधा के मान का कारण इस प्रकार अगले छंद में बताता है—

निज प्रतिबिब बिलोकि राधिका हरि नख मंडल माँह।
दुतिय रूप देखे अबला को मान बढ्यो तन छाँह[२] ॥

'सूरसागर' मे सात-आठ पद ऐसे मिलते है जिनमे राधा दर्पण मे अपने प्रतिबिब को दूसरी नारी समझकर कभी 'रिस' करती है कभी श्रीकृष्ण के उस पर रीझ जाने की बात सोचकर डरती है, जैसे—

क. कबहुँ केसरि-आड़ रचित दर्पन हेरि, कबहुँ भ्रुव निरखि रिस करि सकारै।
निरखि अपनौ रूप आपु ही बिबस भई, सूर परछाँहिं कौ नैन जोरै[३] ॥

ख. यह सुंदरी कहाँ तैं आई।
बार बार प्रतिबिंब निहारति, नागरि मन मन रही लुभाई ॥
कर तैं मुकुर दूरि नहि डारति, हृदय माँझ कछु रिस उपजाई।
देखैं कहूँ नैन भरि याकौं नागर सुंदर कुँवर कन्हाई ॥

१. 'सारावली', छंद ६१२-१३।
२. वही, छंद ६१४।
३. 'सूरसागर', पद १०-२१६०।

मेरी कहा चलै या आगै, यह धौं आजु अरस तैं आई।
सूरदास याकौ या ब्रज मै, ऐसी को बैरिनि जो ल्याई[1] ॥

तदुपरांत वह कृष्ण के उन 'गुनो' का बखान करती है जिनके कारण ब्रजनारियो पर ही नही, स्वयं उस पर भी 'बिपत्ति' पड़ चुकी है और उस 'छाँह' या 'प्रतिबिब' की शुभचिंतिका बनकर समझाती है कि शीघ्र से शीघ्र यहाँ से चले जाने में ही तेरी कुशल है—

क. कहति छाँह सौ नागरी, को है तू माई।
मिली नही ब्रज-गाँव मै, री कहँ तै आई ॥
नाम कहा है सुंदरी, कहि सौह दिवाई।
कहौ न मेरैं साध है, मुख बचन सुनाई ॥
दिननि हमहुँ तुम सरबरी, तुव छबि अधिकाई।
और संग नहि कोउ लई, यह कहि डरपाई ॥
जानति हौं यह नहि सुनी ह्याँ की अधमाई।
अभरन लेत छँड़ाइ कै, ब्रज ढीठ कन्हाई ॥
सदन जाहु मेरे कहैं, पट अंग छपाई।
सूर स्याम जौ देखिहैं, करिहै बरियाई[2]।

ख. मै उनके गुन नीकै जानति।
सदन जाहु मरजादा जैहै, कह्यौ न काहैं मानति ॥
अपनी दसा कहौ तव आगै, जैसी बिपति बनाई।
मथुरा चली जाति दधि बेचन, घेरि लई उन आई ॥
गोरस लियौ, अभूषन छीने, हम अनेक तुम एक।
सूर स्याम जौ देखन पैहै, करिहै अपनी टेक[3] ॥

ग. तेरे हित कौ कहति हौं, मानै जनि मानै।
तू आई है आजु ही, उनकौ का जानै ॥
ऐसौ ढीठ नही कहूँ, त्रिभुवन मैं माई।
नारि पराई देखि कै, हँसि लेत बुलाई ॥
सो अपने सहजहि मिलै, उनके गुन ऐसे।
भूषन लेत नगाइ कै, औरौ गुन नैसे ॥

१. सूरसागर', पद १०-२१६१।
२. वही, पद १०-२१६३।
३. वही, पद १०-२१६४।

काहू कौं नहि डरपहीं, मथुरा-पति धरकै।
मन कौ भायौ करत है, कबहूँ नहि हरकै॥
तुम सुंदरि काकी बधू, घर जाहु सवारी।
सूर स्याम सुनि-सुनि हँसै, मनहीं मन भारी[१]॥

राधा के भोलेपन को लेकर 'सारावली'-कार ने उसके मान का कारण उक्त छंद में बताया है; परंतु 'सूरसागर' मे जिस रूप मे राधा की 'अजानता' की पुष्टि की गयी है, वह 'सारावली' मे कहाँ !

'सूरसागर' में प्रियतम के उर मे अपनी छाया देखकर राधा का मान करना कहा गया है—

क. पियहि निरखि प्यारी हँसि दीन्हौ।
रीझे स्याम अंग अँग निरखत, हँसि नागरि उर लीन्हौ॥
आलिगन दै अधर दसन खँडि, कर गहि चिबुक उठावत।
नासा सौं नासा लै जोरत, नैन नैन परसावत॥
इहि अंतर प्यारी उर निरख्यौ, झझकि भई तब न्यारी।
सूर स्याम मोकौं दिखरावत, उर ल्याए धरि प्यारी[२]॥

ख. सुनत स्याम चकित भए बानी।
प्यारी पिय मुख देखि कछुक हँसि, कछुक हृदय रिस मानी।
नागरि हँसत हँसी उर-छाया, तापर अति झहरानी।
अधर कंप रिस भौंह मरोरचौ, मनहीं मन गहरानी॥
इकटक चितै रही प्रतिबिंबहि, सौति-साल जिय जानी।
सूरदास प्रभु तुम बड़भागी, बडभागिनि जिहिं आनी[३]॥

'सारावली' की राधा के समान 'सूरसागर' की राधा चुपचाप मान न करके अपने 'रूठने' का कारण भी बता देती है—

अब जानी पिय बात तुम्हारी।
मोसौं तुम मुख ही की मिलवत, भावति है वह प्यारी॥
राखे रहत हृदय पर जाकौं, धन्य भाग है ताके।
ऐसी कहूँ लखी नहि अब लौं, बस्य भए हौ जाके॥

१. 'सूरसागर', पद १०-२१६५।
२. वही, पद १०-२४१२।
३. वही, पद १०-२४१४।

भली करी यह बात जनाई, प्रगट दिखाई मोहि।
सूर स्याम यह प्रान पियारी, उर में राखी पोहि[1] ॥

इतना ही नही, श्याम जब कामातुर होकर उसकी भुजा पकड़ना चाहते है—

सूर स्याम भए काम आतुरे, भुजा गहन पिय लागे[2]।

तब राधा उनका हाथ छटककर उनको झिड़कती हुई कहती है—

मोहि छुवौ जनि, दूर रहौ जू।
जाकौ हृदय लगाइ लयौ है, ताकी बाहँ गहौ जू ॥
तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी अरु दासी।
मैं देखत हिरदय वह बैठी, हम तुमकौं भई हाँसी ॥
बाहँ गहत कछु सरम न आवति, सुख पावत मन माहीं।
सुनहु सूर मो तन वह इकटक, चितवति, डरपति नाहीं[3] ॥

राधा के मान का कारण सुनकर 'सूरसागर' के कृष्ण उसके भ्रम का निवारण भी करते हैं—

कहा भई धनि बावरी, कहि तुमहि सुनाऊँ।
तुम तैं को है भावती जिहि हृदय बसाऊँ ॥
तुमहि स्रवन, तुम नैन हौ, तुम प्रान-अधारा।
वृथा क्रोध तिह क्यौं करौ, कहि बारंबारा ॥
भुज गहि ताहि बतावहू, जेहि हृदय बतावति।
सूरज प्रभु कहैं नागरी, तुम तैं को भावति[4] ॥

इस प्रसंग में 'सूरसागर' मे और भी कई पद हैं जिनमे सारा वर्णन सांगोपांगता के साथ मिलता है, परंतु 'सारावली' मे राधा बिना कुछ कहे सुने मान करके एकांत कुंज-भवन में जा बैठती है और श्रीकृष्ण उसके विरह से पीड़ित होकर ललिता से अपनी दशा का वर्णन करते और राधा को मना लाने का निवेदन करते हैं—

१. 'सूरसागर', पद १०-२४१३।
२. वही, पद १०-२४१५।
३. वही, पद १०-२४१६।
४. वही, पद १०-२४१७।

चली रिसाय कुंज मृगनयनी जहँ अलि करत गुँजार।
बैठी जाय एकात भवन मे जहाँ मान गृह चार॥
नंद कुँवर बिरहन राधा के बिरह भये भरिपूर।
बैठे जाय एकात कुंज मे सखा किये सब दूर॥
ललिता बोलि कही मृदु बानी कृष्न बिमल दल नैन।
बिन राधा मोहि कल न परति है कहत मधुर मृदु बैन॥
बेगि जाय परि पायँ राधिका बिनती करौ सुनाय।
दरसन देउ सकल दुख मेटौ तुम बिन रह्यउ न जाय॥
तुम बिन खान पान नहि भावत गोचारन सिगार।
रैन नीद नहि परत निरंतर सम्भाषन ब्यवहार॥
करि दंडवत चली ललिता जो गई राधिका गेह।
पायँनि परि परि बहुत बिनय करि सफल करन को नेह[1]॥

'सूरसागर' के कृष्ण इतने विस्तार से अपनी विरह-दशा का वर्णन नहीं कर पाते, उनकी दशा देखकर सखी स्वयं ही सब-कुछ समझ लेती है—

ब्याकुल बचन कहत है स्याम।
बृथा नागरी मान बढायौ, जोर कियौ तनु काम॥
यह कहतहि लोचन भरि आए, पायौ बिरह सहाइ।
चाहत कह्यौ भेद ता आगैं, बानी कही न जाइ॥
और सखी तिहि अंतर आई ब्याकुल देखि मुरारी।
सूर स्याम-मुख देखि चकित भई, क्यौं तनु रहे बिसारी[2]॥

उसी अवसर पर दूसरी सखियाँ भी आ जाती हैं। इनसे भी श्रीकृष्ण को कुछ नही कहना पड़ता, दूतिका ही सब सखियो को वस्तु-स्थिति से परिचित करा देती है—

कहति दूतिका सखिनि बुझाइ।
आजु राधिका मान कर्यौ है, स्याम गए कुम्हिलाइ॥
कर सौ कर धरि लाल गई लै, सखिनि सहित बन धाम।
सुख दै कह्यौ, लिये आवति हौं, सँग बिलसाऊँ बाम[3]॥

१. 'सारावली', छंद ६१५ से ६२० तक।
२. 'सूरसागर', पद १०-२४२४।
३. वही, पद १०-२४२५।

'सारावली' की दूतिका तब एक लंबा वक्तव्य देकर राधा से श्रीकृष्ण को विरह-दशा का इस प्रकार वर्णन करती है—

बेगि चलौ बृषभानुनंदिनी बोलत नंदकुमार।
तुम बिन पल छिन कल न परति है भोजन सुख ब्यवहार।।
नव निकुंज मे मिलौ स्याम सो भेंटौ भरि अँकवार।
कुसुम सेज पर करौ केलि प्रिय गिरिधर परम उदार।।
तो बिन पियहि कछू नहि भावै तोसो पिय आधीन।
तो बिन स्याम रहत है ऐसे जैसे जल बिन मीन।।
कहा सुभाव परयौ सखि तेरो यह बिनवत हौ तोह।
मान करति गिरिवरधर पिय सो मानति नाहिन मोह।।
करि सिंगार सकल ब्रज सुंदरि नीलाबर तन साज।
रैनि अँधेरी कछू न दीखत नूपुर धुनि निज बाज।।
कुबलय दल कुसुमनि सेज्या रचि पंथ निहारत तोर।
सपन जाग अरु सयन सुमृति तुव बचन सत्य है मोर।।
सित अरु पीत जूथिका बेनी गूँथौ बिबिध बनाय।
रचौ भाल निज तिलक मनोहर अंजन नयन सोहाय।।
तू छबि-सिधु बिरह ब्रजनायक छुद्र नदी नहि भावै।
जबतै नाम सुन्यो स्रवननि तुव रैनि नींद नहि आवै।।
हरि राधा राधा रटत जपत मंत्र दुर दाम।
बिरह बिराग महा जोगी ज्यों बीतत हैं सब जाम।।
कबहुँक किसलय सेज सँवारत तेरे ही हित लाल।
कबहुँक अपने हाथ सँवारत गूँथत कुसुमनि माल।।
तुव बिन बट सकेत सदन बन देखत लगत उदास।
बिरह अगिनि चहुँ दिसि ते धावति फूले दिखत पलास।।
सारस हंस मोर पारावत बोलत अमृत बानि।
बैठ रहे दुरि सदन सघन बन धुनि नहि सुनियत कानि।।
कालिदी तट बिमल कदम तर करत बदन तुव ध्यान।
सुहृदय सखा त्यागि मनमोहन करत मधुर तुव गान।।
गुंजत मधुप स्रवननि सुनत है तुव स्तुति की सुधि आवै।
कंचन बरन जानि तेरो बपु पीताबर पहिरावै।।

१. 'सारावली', छंद ६२१ से ६३४ तक।

सुनत कोकिला सब्द मधुर धुनि कमल नयन अकुलात ।
तेरे बोल करत सुधि जिय मे बिरह मगन ह्वै जात ॥
तुव नासा पुट गत मुक्ताफल अधर बिंब उरमान ।
गुंजाफल सबके सिर धारत प्रगटी मीन प्रमान[1] ॥

× × ×

कबहुँक सेज रचत बेंदी कर हृदय होमि घृत नैन ।
बिप्र भोज बोलन तुव देखियत अंग कृस नहि चैन ॥
अब तू बेगि बिचारि बचन मम सुनु बृषभानु कुमारि ।
मिलिहौ बेगि कमल-दल-लोचन सुनु मेरी मनुहारि ॥
गौर बरन ह्वै जात सॉवरो ध्यान करत तुव अंग[2] ।

'मारावली' के उक्त सभी छंद कितनी लचर भाषा में लिखे गये है ! एक एक बात को कितनी बार दोहराया गया है ! एक 'सेज रचने' की बात ही चार-पाँच बार कही गयी है । और मबसे हास्यास्पद बात यह है कि राधा सब कुछ उलटी-सीधी बातें सुनती है, फिर भी किसी का उत्तर नहीं देती जैसे अपनी भूल मन ही मन स्वीकार कर रही हो । उनकी तुलना क्या किसी भी दृष्टि से 'सूरसागर' के इसी प्रसंग के निम्नलिखित पदों से की जा सकती है जिनमे दूती और रधिका का उत्तर-प्रत्युत्तर कितने भावपूर्ण शब्दो में वर्णित है -

क. आजु कछू घर कलह भयौ री ।
तबै आजु अनमनौ बत्यानी, यह कछु मान ठयौ री ॥
मोकौं कछू कह्यौ नहि मोहन, सहज पठाई लैन ।
कहा पुकार परी हरि आगै, चलौ न देखौ नैन ॥
तेरौ नाम लेन हरि आगै, कहत सुनाइ-सुनाइ ।
सूर सुनहु काकौ-काकौ गथ, तै धौं लियौ छुड़ाइ[3] ॥

ख. बृंदाबन हरि बैठे धाम ।
काहे कौ गथ हरयौ सबनि कौ, काहैं अपनौ कियौ कुनाम ॥
डारि देहु कह लियौ परायौ, मेरौ कह्यौं मानि री बाम ।
तबहीं तैं उन सोर लगायौ, तोकौ बोली है इहि काम ॥

१ 'सारावली', छंद ६३५-३६ ।
२. वही, छंद ६६७-६८-६६ ।
३. 'सूरसागर', पद १०-२४२६ ।

चलौ तुरत जनि फेर लगावहु, अबही आइ करौ बिस्राम।
सूर स्याम तेरी घों झगरत, तू काहे तिनसौं करै ताम[1]॥

ग. यह कछु नोखी बात सुनावति।
काकौ गथ धौं मै लीन्हौ है, बार-बार बन मोहि बुलावति॥
मेरी घों हरि लरत कौन सौं, इती मया मोहि कीन्ही।
जैसे है हरि तेरे माई, मै नीकै करि चीन्ही॥
की बैठौ, की जाहु भवन कौं, मै उनपै नहि जाउँ।
सूरदास-प्रभु कौ री सजनी, जनम न लैहौ नाउँ[2]॥

घ मै कह तोहि मनावन आई?
प्रगट लिये सबकौ ब्रज बैठी, कहा करति अधिकाई॥
जाइ करौ ह्वाॅ बोध सबनि कौ, मोपर कत सतरानी।
स्याम लरत तबहीं तै उनसौं, तिनपर अतिहि रिसानी॥
बार बार तू कहा कहति री, ब्रज काकौ मै लीन्हौ।
सूरदास राधा, सहचरि सौं, ज्वाब निदरि करि दीन्हौ[3]॥

ङ. जिनि जिनि गाइ स्याम के आगै, तेरी चुगली बहुत करी।
बार-बार तिनसौं हरि खीझे, तेरी घों ह्वै महूॅ लरी॥
स्माम भेद करि मोहि पठाई, तू मोहीं पर खरी परी।
जाइ करौ रिस बैरिनि आगैं, जाके-जाके गथहि हरी॥
फरनि, अकास, बनहुॅ तै काए, देखत तिनकौं अतिहि डरी।
सूर स्याम बिनु न्याउ चुकै क्यौ, तिन पर तू अतिही झहरी[4]॥

च. तेरे नैन अरी अनियारे। किधौं बान खरसान सँवारे॥
भौंह कमान तानि यौ मारे। क्यौ करि राखै प्रान पियारे॥
घायल जिमि मर्छित गिरधारी। अमी-बचन अब सींचि पियारी॥
बहुनायक वै तू नहि जानै। तिनसौं कहा इतौ दुख मानै॥
बाहँ गहैं हरि कौं ढिग ल्यावै। अब वै निज अपराध छमावै॥
गहति बाहँ तुमही किन जाई। मोसौं बाहँ गहावन आई॥
काल्हिहि सौंह मोहि उनि दीनी। आजुहि यह करनी पुनि कीनी॥

१. 'सूरसागर', पद १०-२४३०।
२. वही, पद १०-२४३१।
३. वही, पद १०-२४३२।
४. वही, पद १०-२४३४।

देखि चुकी उनके गुननि, निज नैननि सुख पाइ ।
तिन्है मिलावति मोहि अब, बाहँ गहावति आइ ।।
मिलौ न तिनसौं भूल, अब जौलौं जीवन जियौं ।
सहौ बिरह की सूल, बरु ताकी ज्वाला जरौं ।।
मै अब अपनैं मन यह ठानी । उनकैं पंथ न पीवौं पानी ।।
कबहुँ नैन न अंजन लाऊँ । मृगमद भूलि न अग चढाऊँ ।।
हस्त-बलय पट नील न धारौं । नैननि कारे घन न निहारौं ।।
सुनौं न स्रवननि अलि-पिक-बानी । नील जलज परसौं नहि पानी[1] ।।

छ. मान करौ तुम और सवाई ।
कोटि करौ एकै पुनि ह्वैहौ, तुम अरु मोहन माई ।।
मोहन सौ सुनि नाम स्रवनहीं, मगन भई सुकुमारी ।
मान गयौ, रिस गई तुरतहीं, लज्जित भई मन भारी ।।
धाइ मिली दूतिका कंठ सौं, धन्य-धन्य कहि बानी ।
सूर स्याम बन धाम जानिकै, दरसन कौं अतुरानी[2] ।।

'सूरसागर' मे इस प्रसंग के और भी कई पद बड़े सुन्दर है, परंतु यह दिखाने के लिए कि अन्य अनेक प्रसंगो की भॉति मान-लीला वर्णन मे भी 'सारावली'-कार का आदर्श 'सूरसागर'-कार से कितना भिन्न है, उक्त पद ही पर्याप्त हैं । अष्टछापी सूरदास की दूतिका कितनी चतुरता से बात छेड़ती है, श्रीकृष्ण के साथ-साथ राधा को भी किस प्रकार मान-रक्षा करती है, साथ-साथ कभी विनम्र होकर, कभी शुभचिंतिका बनकर और कभी तनकर किस प्रकार अपनी बात को प्रभावशालिनी बनाती है कि देखते ही बनता है । इसी प्रकार राधा भी 'सारावली' की नायिका के समान नकली मान का अभिनय करती नही जान पड़ती, प्रत्युत सबल स्वर मे उत्तर देकर अपने मान के कारण की पुष्टि करती है । इन सब बातों की तुलना मे 'सारावली' का वर्णन 'लघुमति बाल'-जैसा नहीं तो और क्या है ?

'सारावली' की ललिता (दूतिका) अंत में अपने प्रयत्न में असफल होकर हरि के पास लौट आती और कहती है—

१. 'सूरसागर', पद १०-२८२८ ।
२. वही, पद १०-२४३७ ।

पुनि ललिता हरि के ढिग आई बैठे सॉवल रंग ॥
बेगि चलौ तुम स्याम मनोहर आपु काज महँ काज।
लेहु मनाइ प्रानप्यारी को प्रगट्यो कुंज समाज ॥
रितु बसंत अब आय देखियत फूले कुसुम सुरंग।
मानो मदन बसंत मिले दोउ खेलन है रस-रंग ॥
वेगि चलौ अब पिया मनावन नैक बिलंब न लावै।
मेरी कही बात नहि मानति ताको ज्ञान दृढावै ॥
परौ पॉय अपराध छमावन सुनति मिलैगी धाय[1] ।

'सूरसागर' मे राधा की मध्यम मान-लीला में दूती के असफल होकर लौटने की बात कही गयी है। परंतु 'सारावली' की ललिता के समान न वह श्रीकृष्ण को वसंत ऋतु की याद दिलाती है और न पैर पडकर अपराध क्षमा कराने की सीख देती है। उसने तो 'रिस से कृस' हो गयी राधा की दशा का वर्णन करके, परोक्ष रूप से उसका उत्तरदायी उन्हें ठहराकर, शीघ्र ही प्रिया को मनाने के लिए जाने की प्रबल प्रेरणा उनको दी है। इस प्रसंग के कई पदो में से केवल तीन यहाँ उद्धृत हैं—

क. नैकु निकुंज कृपा करि अइयै।
अति रिस कृस ह्वै रही किसोरी, करि मनुहारि मनाइयै ॥
कर कपोल अंतर नहि पावत, अति उसास तन ताइयै।
छूटे चिहुर बदन कुम्हिलानौ, सुहथ सॅवारि बनाइयै ॥
इतनौ कहा गॉठि कौ लागत, जौ बातनि सुख पाइयै।
रूठेहि आदर देत सयाने यहै सूर जस गाइयै[2] ॥

ख. काहि मनाऊँ स्यामलाल जू बाल न नैकहुँ दीठि।
मुखहू जौ बोलै तौ लहिए, मन की ऐस तुम्हारी हीठि ॥
अपनी सी मै बहुत कही पै, बारू बूँद कहा करे बसीठि।
सूरदास-प्रभु अपुहि जैयै जैसी बयारि तैसी दीजै पीठि[3] ॥

ग. बिहरति मान-सर सुकुमारि।
कैसैहू निकसति नहीं, हौ रही करि मनुहारि ॥
मौन पार अपार रचि, अवगाहि ऑसु जु बारि।
प्रगट ह्वै वै डरति नाही थकित प्रगट पुकारि ॥

१. 'सारावली', छंद ६६६ से ६७३।
२. 'सूरसागर', पद १०-२५७०।
३. वही, पद १०-२५७१।

सूल स्वास, सरोज लोचन डुलनि, जनु जलचारि।
काम ग्राहक प्रान चाहक, तरति तहँ डर डारि ॥
चिकुर सेवार निकर अरुझति, सकति नहि निरुवारि।
नील अंचल पत्र पद्मिमी, उरज जलज निहारि ॥
रच्यौ रचि रुचि-मान, मानिनि-मन-मराल मुरारि।
सूर आपुन आनियै, गहि बाहँ नारि निकारि[1] ॥

इन पदों की गंभीर भाव-व्यंजना की छाया भी क्या 'सारावली' के उक्त छंदो में मिलती है? और इनको देखकर कौन कह सकता है कि उक्त छंद भी इसी कवि के रचे हुए हैं?

इसके पश्चात् 'सारावली'-कार कहता है कि श्रीकृष्ण अकुलाकर राधा को मनाने चल दिये—

सुनत बचन दूतिका-बदन तैं, स्याम चले अकुलाय[2]।

अब जरा देखिए कि दूती के वचन सुनकर 'सूरसागर' के श्रीकृष्ण की क्या दशा होती है और दूती किस प्रकार उन्हें प्रोत्साहन देकर सम्हालती है—

यह सुनि स्याम बिरह भरे।
कहुँ मुकुट, कहुँ कटि पितांबर, मुरछि धरनि परे ॥
जुवति भरि अँकवारि लीन्हौ, है कहा गिरिधारि।
आपुही चलि बाहँ गहियै, अंक लीजै नारि ॥
अतिहि ब्याकुल होत काहैं, धरौ धीरज स्याम।
सूर प्रभु तुम बड़े नागर बिबस कीन्हे काम[3] ॥

श्रीकृष्ण की यह दशा देखकर 'सूरसागर' की दूती उनसे राधा के पास जाने को न कहकर पुनः स्वयं लौट आती है—

स्यामहि धीरज दै पुनि आई।
बानी यहै प्रकासति मुख सौं, ब्याकुल बड़े कन्हाई ॥
बारंबार नैन दोउ ढारत, परे मदन-जंजाल।
धरनि रहे मुरझाइ बिलोके, कहा कहौं वे हाल ॥

१. 'सूरसागर', पद १०-२५७५।
२. 'सारावली', छंद ६७३।
३. सूरसागर, पद १०-२५७६।

बैठी आइ अनमनी ह्वै कै, बार-बार पछितानी।
सूर स्याम मिलि कै सुख देहि न, जौ तू बड़ी सयानी[१] ॥

तत्पश्चात् वह पुनः पचीस-तीस पदो में[२] श्रीकृष्ण की अधीरता का राधा से वर्णन और उससे मान छोड़ने का निवेदन करती है। 'बड़ी मान-लीला' प्रसंग मे भी इसी विषय के लगभग बीस पद हैं[३]। इस अवसर पर भी जब दूती निराश होकर लौटती है, तब वह विरह-व्याकुल श्रीकृष्ण को इस दशा मे पाती है—

हरि-मुख राधा राधा बानी।
धरिनी परे अचेत नही सुधि, सखी देखि अकुलानी॥
बासर गयौ, रैनि इक बीती, बिनु भोजन बिनु पानी।
बाहँ पकरि तब सखिनि जगायौ, धनि-धनि सारँगपानी॥
ह्यॉ तुम बिबस भए हौ ऐसे, ह्यॉ तौ वै बिबसानी।
सूर बने दोउ नारि पुरुष तुम, दुहुँ की अकथ कहानी[४] ॥

श्रीकृष्ण की ऐसी दशा देखकर वह 'सारावली' कार की दूती की तरह उनको मनाने जाने को न कहकर स्वयं पुनः प्रयत्न करने को प्रस्तुत होती और इस प्रकार उनका हौसला बढ़ाती है—

लाल अनमने कतहि होत हो तुम देखौ धौ देखौ, कैसै कैसै करि तिहि ल्याइहौ।
जलहि निकट की बारू जैसै, ऐसी कठिन त्रिया की प्रकृतिहि कर ही कर पघिलाइहौं।
रिस अरु रुचि हौं समुझि देखि वाकी, वाके मन की ढरनि देखि पुनि भावति बात चलाइहौं।
सूरदास प्रभु तुमहि मिलैहौं, नेकु न ह्वैहौ न्यारे, जैसैं पानी रंग मिलाइ हौं[५] ॥

'सूरसागर' की दूती जब लौटकर अपनी असफलता की सूचना

१. 'सूरसागर', पद १०-२५७७।
२. वही, पद १०-२५७८ से २६०६ तक।
३. वही, पद १०-२७३५ से २७५७ तक।
४. वही, पद १०-२७५९।
५. वही, पद १०-२७६०।

देती है, तब भी कृष्ण की विरह-दशा का मर्मिक वर्णन सूरदास ने किया है—

सुनि यह स्याम बिरह भरे।
बार बारहि गगन निरखत, कबहुँ होत खरे॥
मानिनी मान मोच्यौ, दूसरी निसि आजु।
तब परे मुरछाइ धरनी, काम कर्यौ अकाजु॥
सखिनि तब भुज गहि उचाए, कहा बावरे होत।
सूर-प्रभु तुम चतुर मोहन, मिले अपनै गोत[1]॥

इस अवसर पर भी 'सूरसागर' की दूतिका बड़ी चतुरता से उनको प्रोत्साहित करती हुई कहती है—

स्याम चतुरई कहाँ गँवाई।
अब जाने घर के बाढे हो, तुम ऐसै कह रहे मुरझाई॥
बिना जोर अपनी जाँघनि के, कैसै सुख कीन्हौ तुम चाहत।
आपुन दहत अचेत भए क्यौं, उत मानिनि मन काहै दाहत॥
उहँई रहौ कहैगी तुमकौं, कतहूँ जाइ रहे बहुनायक।
सूर स्याम मनमोहन कहियत, तुम हौ सबही गुन के लायक[2]॥

'सूरसागर' के इन सब वर्णनो को 'सारावली' से यदि मिलाकर देखा जाय तो किस सहृदय को दोनो मे कंचन-मिट्टी-सा अंतर न दिखायी देगा और कौन यह कहने का साहस करेगा कि दोनों वर्णन एक ही कवि के हैं ?

'सारावली' के अगले दो छंदो मे श्रीकृष्ण का मौन धरकर राधा के यहाँ आना, इसके पैरो पर उनका 'पड़ना', राधा का मान छूट जाना और श्रीकृष्ण का 'काम-रस' लूटने लगना इस प्रकार वर्णित है—

जहँ बैठी बृषभानुनंदनी तहँ आये धरि मौन।
परे पाँय हरि चरन परस करि छिम अपराध सलौनि॥
सुनि हरि-बचन बिलोकति सोभा मान गयो सब छूट।
मिले धाय अकुलाय स्याम घन प्रेम काम रस लूट[3]॥

१. 'सूरसागर', पद १०-२८११।
२. वही, पद १०-२८१२।
३. 'सारावली', छंद ६७४-७५।

'सारावली' के राधा-कृष्ण का यह व्यवहार क्या उन कठपुतलियों जैसा नहीं है जिनको सूत्रधार मनमाने ढंग से चलाया फिराया करता है? 'सूरसागर' मे राधा का मान छुड़ाने के लिए बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। दूती के असफल होने पर श्रीकृष्ण स्वयं दूती-रूप बनाकर राधा के पास पहुँचते है—

तब हरि रच्यौ दूती-रूप।
गए जहँ मानिनी राधा, त्रिया स्वाँग अनूप॥
जाइ बैठे कहत मुख यह, तू इहाँ बन स्याम?
मै सकुचि तहँ गई नाही, फिरी कहि पति बाम॥
सहज बातैं कहति मानौ, अब भई कछु और।
तू इहाँ वै उहाँ बैठे, रहत एकहि ठोर॥
कहौ मोसौ कहा उपजी, वै रटत तुम नाम।
सुनति है कछु बचन राधा, सूर-प्रभु बन-धाम[1]॥

और दस-बारह पदो मे[2] सामान्य दूतिका जैसे तर्क देकर राधा को समझा-बुझाकर उसका मान छुड़ाने का प्रयास करते हैं। अंत मे एक बहुत लंबे पद मे दूती-वेश धारी श्रीकृष्ण से राधा का उत्तर-प्रत्युत्तर होता है। यह अकेला पद ही 'सारावली' के ग्यारहवे अंश के बराबर है। इसके उत्तरार्द्ध मे श्याम से निम्नलिखित वक्तव्य देने और शपथ खाने पर राधा अपना मान छोड़ती है—

प्रेम पतंग परै पावक मै, प्रेम कुरंग बँधे से।
चातक रटै, चकोर न सोवै, मीन बिना जल जैसे॥
जहाँ प्रेम तहँ मान न मानिनि, प्रेम न गनियै ऐसे।
प्रेम माहि जो करहि रूसनौ, तिनहि प्रेम कहि कैसे॥
काँपति रिसनि, पीठि दै बैठी, मनि माला तन हेरौ।
निरखि आपु-आभास सयानी, बहुरि नैन रुख फेरौ॥
लिये फिरत उर माँझ दुराए, जानत लोग अँधेरो।
एते मान भावती तौ बत, मान मनावन मेरौ॥
तेरी सौ आभास तिहारौ, इहाँ और को जो है।
दै दरपन मनि धरयौ पाइ तर, देखि दुहुँनि मै को है॥

१. 'सूरसागर', पद १०-२८१३।
२. वही, पद १० २८१४ से २८२५ तक।

बिनु अपराध दास कौं त्रासै, ठाकुर कौं सब सोहै।
निरखि-निरखि प्रतिबिब वहै तन, नैन-नैन मिलि मोहै ।।
नैकु भौंह मुसुकात जानि, मनमोहन मन सुख आन्यौ ।
मानौ दव द्रुम जरत आस भइ, उनयौ अबर पान्यौ ।।
जो भाई सो सौंह दिवाई, तब सूधैं मन मान्यौ ।
दियौ तमोर हाथ अपनै करि, तब हरि जीवन जान्यौ[1] ।।

'मान' का यह प्रसंग 'सूरसागर' में इतने विस्तार से वर्णित है कि उसका संकलन संपूर्ण 'सारावली' के लगभग बराबर ही होगा। यदि 'सूरसागर' के ही रचयिता ने 'सारावली' भी रची होती तो कम से कम इस प्रसंग मे राधा के उसी व्यक्तित्व की झलक तो इस 'द्वै तुकिए' काव्य मे मिलनी ही चाहिए थी और श्रीकृष्ण के दूती रूप के संबंध मे भी कम से कम एक संकेत तो किया ही जाना चाहिए था। इन्ही उल्लेख मे तो 'मानलीला'-प्रसंग का सारा गौरव है और 'सारावली' मे वे ही सब नही मिलते। इतने पर भी 'सारावली' का रचयिता कोई 'सूरसागर'-कार को ही मानने पर तुला हो तो क्या यह शुद्ध दुराग्रह नही कहा जायगा ?

'सारावली' मे अगले तीन छंदो मे श्रीकृष्ण द्वारा राधा का शृंगार किया जाना इस प्रकार वर्णित है—

रच्यो सिगार स्याम अपने कर नख-सिख प्रिया बनायो ।
सीस फूल बेनी नकबेसरि तिलक भाल करवायो ।।
जुग ताटंक चिबुक दसनावलि कर कंकन उर माल ।
नूपुर पद कटि छुद्रघंटिका सब सिगार रसाल ।।
सकल सिगार करत बरनन को कृपा जथा मति मोरि ।
होत बिलंब मिलन के कारन ताते बरनत थोरि[2] ।।

मोहन द्वारा मोहिनी का शृंगार किये जाने की बात 'सूरसागर' के निम्नलिखित पद मे मिलती है—

मोहन मोहिनि-अंग सिगारत ।
बेनी ललित ललित कर गूँथत, सुंदर माँग सँवारत ।।

१. 'सूरसागर', पद १०-२८२६ ।
२. 'सारावली, पद ६७६-७७-७८ ।

सीस फूल धरि, पाटी पोंछत, फूँदनि झबा निहारत।
बंदन बिंद जराइ की बैंदी, तापर बनै सुधारत॥
तरिवन स्रवन, नैन दोउ अंजन नासा बेसरि साजत।
बीरा मुख भरि, चिबुक डिठौना, निरखि कपोलनि लाजत॥
नख-सिख सजत सिंगार भाव सौं, जावक चरननि सोहत।
सूर स्याम तिय-अंग सँवारत, निरखि आपु मन मोहत[1]॥

'सूरसागर' के इस प्रसंग के अन्य पदों में राधा का शृंगार इतने विस्तार से वर्णित है कि उसके सामने 'सारावली' के उक्त छंदों का वर्णन नगण्य ही है।

'सारावली' के अगले बारह छंदों में कुंज-विहार का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

चले धाय नवकुंज दोउ मिलि किसलय सेज बिराजे।
परिरंभन सुख रास हास मृदु सुरति केलि सुख साजे॥
नाना बंध बिबिध रस क्रीड़ा खेलत स्याम अपार।
रस रस तत्व भेद नहि जानत दंपति अंग सँभार॥
सुरति समुद्र मगन दंपति रस झेलत अति सुख झेल।
निरवधि रमन अपरिमित अच्युत मनुज माँय बहु खेल॥
नूपुर संचित किंकिनि की धुनि सुनत मधुर किलकार।
मदन सिंधु मधुमत्त मधुपगन फूले करत गुँजार॥
मधुप जूथ मिलि सबनि चंद्रमा तड़ित लिये आकास।
खंजन मीन बजावति गावति निरतति सुख सुबिलास॥
जलद समूह खसत उडुगन गन पय-समुद्र के बीच।
मकर कपोल बोलि मृदु कोकिल अमृत सुधा रस सीच॥
मोहन बेल सिंगार बिटप सों उरझी आनँद बेलि।
कंचन बेल तमालहि लपटी रसिक रंग भरि रेलि॥
जुगुल कमल सो मिलत कमल जुग जुगल कमल लै संग।
पाँच कमल मधि जुगल कमल लखि मनसा भई अपंग॥
किरन कदंब मंजुका पूरन सौरभ उड़त अबेस।
अगर धूप सौरभ नासा सुख बरषत परम सुदेस॥

१. 'सूरसागर', पद १०-२६२८।
२. 'सारावली' छंद ९७९ से ९८७ तक।

कुंद कुमुद बंधूक मिलत पुनि मीन देखि ललचात।
ता पर चंद्र देखि संज्ञा-सुत तन मे बहुत डेरात॥
बरना-भख कर मे अवलोकत केस-पास कृत बंद।
अधर समुद्र सदल जो सहसा धुनि उपजति सुख फंद॥
मुदित मराल मिलत मधुकर सों खंजन मिलत कुरंग।
कीर कीर रनधीर मिलत सम रति-रस लहर तरंग[1]॥

'सूरसागर' में इस विषय को लेकर पचीसों सुंदर पद लिखे गये हैं बानगी केवल एक पद से देखी जा सकती है—

नागरि नागर करत बिहार।
काम नृपति सैना दुहुँ अगनि, सोभा वार न पार॥
अधर-अधर, नैननि नैननि, भ्रुव भाल कियौ इक ठौर।
मनु इंदीबर कमल कुसेसय, चारि भवर रँग और॥
बंदन भाल चिन्ह सम दोऊ, अरस-परस बर नारि।
मनु बिबि चंद चकोर परस्पर, कमल अरुन रबि धारि॥
रति-आगम हित अति उपजायौ, पिय प्यारी मन एक।
सूरदास-स्वामी-स्वामिनि मिलि, कोक-कलानि अनेक[2]॥

'सूरसागर' के संगठित वर्णन के सामने 'सारावली' के इस उखड़े-उखड़े-से वर्णन के संबंध में कुछ कहना हमें तो अनावश्यक ही जान पड़ता है। हाँ, इतना संकेत करना यहाँ जरूरी है कि 'कुंज-विहार-लीला'-प्रसंग का प्रत्येक बार वर्णन करते समय अष्टछापी सूरदास ने 'सूरसागर' में 'रति-संग्राम' का रूपक अवश्य बाँधा है, जैसे—

रुपे संग्राम रति खेत नीके।
एक तै एक रन बीर जोधा प्रबल, मुरत नहिं नैकु अति सबल जीके॥
भौह कोदंड, सर नैन, धानुषि काम, छुटनि मानौ कटाच्छनि निहारै।
हँसनि दुज-चमक करवरनि लौं है झलक नखनि-छत-घात नेजा सम्हारै॥
पीत पट डारि, कंचुकी मोचित करन, कवच सन्नाह सौ छुटे तन तै।
भुजा-भुज धरत, मनु द्विरद सुंडनि लरत, उर उरनि भिरे दोउ जुरे मन तै॥

१. 'सारावली', छद ६८८-८६-६०।
२. 'सूरसागर', पद १०-२०३२।

लटकि लपटानि मानौ सुभट लरि परे खेत, रति सेज, रुचि ताम कीन्हे।
सूर प्रभु रसिक प्रिय राधिका रसिकिनी, कोक गुन सहित सुख लूटि लीन्हे[1] ॥

प्राय: प्रत्येक बार के मिलन-प्रसंग का वर्णन करते समय 'सूरदास' ने उक्त 'रति-संग्राम' की ओर अवश्य संकेत किया है। परंतु उसी की चर्चा में 'सारावली' मे तद्विषयक एक भी पंक्ति न मिलना क्या आश्चर्य की बात नही है ?

'सारावली' के अगले ग्यारह छंदो में पुन: अनेक विषयो का उलटा-सीधा वर्णन हुआ है जिसमे कभी कवि श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व का बखान करता है, कभी दंपति-विहार का वर्णन करता है, कभी उसका महत्व बतलाता है; कभी शेष, चतुरानन, पंचानन, 'षट-आनन', सहसानन, शारदा आदि की, उसके वर्णन मे असमर्थता सूचित करता है और कभी परम-धाम वृंदावन की चर्चा करने लगता है—

सुरति समुद्र कहत दम्पति कै निरवधि रमन अपार।
भयो सेष मन मूढ़ कहन को राधा कृष्न-बिहार ॥
सोभा अमित अपार अखंडित आप आत्माराम।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम सब बिधि पूरन काम ॥
आदि सनातन एक अनूपम अबिगत अल्प अहार।
ॐकार आदि बेद असुरहन निर्गुन सगुन अपार ॥
चतुरानन पंचानन अरु पुनि षटआनन सम जान।
सहसानन बहु आनन गावत पार न पाय बखान ॥
सघन कुंज में अमित केलि लखि तनु सुगंध की रेल।
मधुकर निकट आय पीवत रस सुखद सदा रस भेल ॥
मलिन भये रस मानसरोवर मुनिजन मानस हंस।
थकित बिलोकि सारदा बरनन करिबे बहुत प्रसंस ॥
वृंदाबन निज धाम परम रुचि बरनन कियो बढाय।
व्यास पुरान सघन कुंजनि मे जब सनकादिक आय ॥[2]

१. 'सूरसागर', पद १०-२१२६।
२. 'सारावली', छंद ६६१ से ६६७।

धीर समीर बहति तेहि कानन बोलत मधुकर मोर।
प्रीतम प्रिया बदन अवलोकत उठि उठि मिलत चकोर॥
अमित एक उपमा अवलोकत जिय में परत बिचार।
नहिं प्रबेस अज सिव गनेस पुनि कितक बात संसार॥
सहस रूप बहु रूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय।
कुमुदकली बिकसित अंबुज मिलि मधुकर भागी सोय॥
नलिन पराग मेत्र माधुरि सों मुकुलित अंब कदंब।
मुनिमन मधुप सदारस लोभित रोवत अज सिव अंब[1]॥

'सारावली' के उक्त छंदो में किस प्रकार का अटपटापन है, केवल एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। प्रथम छंद में कवि कहता है—राधा-कृष्ण का विहार वर्णन करने में 'शेष' मन में मूढ़ हो गया; इसके छह चरण बाद ही उसका फिर यह कहना कि—सहसानन अर्थात् शेष बहुत मुखों से (सब से नहीं ?) गाता है फिर भी पार नहीं पाता—किसको अटपटा न लगेगा ?

'सूरसागर' में निकुंज-विहार और रासलीला-प्रसंग मे इस प्रकार के भाव से युक्त कई पद मिलते हैं जिनमे से चार-पॉच के अंश यहाँ उद्धृत हैं—

क. बृंदाबन निज धाम, कृपा करि तहॉ दिखायौ[2]।

ख. नव निकुंज सुख-पुंज मै ·········· नित बिहार ·········[3]।

ग. सहसानन कहत न आवै, जिहिं निगम नेति नित गावै।
सुख-आनंद पुंज बढ़ायौ, क्यों जात सूर पै गायौ[4]।

घ. श्री बृंदाबन कुंज कुंज प्रति अति बिलास आनंद।
अनुरागी पिय प्यारी कै सँग रस रॉचे सानंद[5]।

ङ. सूर सो क्यौं बरनि गावै, रूप-रस-सुख सार[6]।

१. 'सारावली', छंद ९९८ से १००१ तक।
२. 'सूरसागर', पद १०-११७५।
३. वही, पद १०-११८०।
४. वही, पद १०-११८२।
५. वही, पद १०-११८३।
६. वही, पद १०-२४६४।

संयोग-लीला और कुंज-विवाह को लेकर कई सौ पद 'सूरसागर' मे लिखे गये है। उन सबकी एक-एक पंक्ति को 'सारावली' से मिलाना है तो बड़ा रोचक कार्य, परंतु 'सूरसागर' के सामान्य से सामान्य पद के सामने 'सारावली' की तुकबंदियाँ इतनी बचकानी हैं कि मन बार बार तुलना के विचार से खिन्न हो जाता है। ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, वे सूरसागर के द्वितीय और तृतीय श्रेणी के पदो के हैं; परंतु उनकी भी तुलना में समकक्ष बैठनेवाली 'सारावली' की एक भी पंक्ति, कम से कम, हमें तो नही मिलती।

'सारावली' के अगले छंद मे गुरु-प्रसाद से निकुंज-लीला का दर्शन कवि को होने की बात कही गयी है—

गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरष प्रबीन।
सिव बिधात तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहि लीन[1] ॥

यह उल्लेख बीच मे क्यो आ गया, निकुंज-लीला के आरंभ या अंत में क्यो नही दिया गया—'सारावली' से इस प्रश्न का उत्तर पाने की कोई आशा नही है; क्योंकि सारी की सारी रचना में इसी प्रकार की अस्तव्यस्तता मिलती है। उक्त छंद के आगे फिर निकुंज लीला का वर्णन इस प्रकार चलने लगता है—

सुख परजंक अंक भुव देखियत कुसुम कुंद द्रुम छाय।
मधुर मल्लिका कुसुमित कुंजनि दंपति लगत सोहाये ॥
गोबर्धन गिरि रतन सिहासन दंपति रस सुख मान।
निबिड़ कुंज जहँ कोउ न आवत रस बिलसत सुखसान ॥
निसा भोर कबहूं नहि जानत प्रेम मत्त अनुराग।
ललितादिक सींचति सुख नैननि जुरि सहचरि बड़भाग[2] ॥

उक्त छंदो मे कवि ने प्राय: वे ही बातें दोहरा दी है जो पूर्वोक्त छंदों में आ चुकी हैं। इनके पश्चात् तीन छंदो में 'स्रुति'-रूप गोपियो के सौभाग्य की बात कही गयी है—

यह निकुंज को बरनन करिबे बेद रहे पचि हार।
नेति नेति करि कहेउ सहस बिधि तऊ न पायो पार[3] ॥

१. 'सारावली', छंद १००२।
२ वही, छंद १००३ से १००५ तक।
३. वही, छंद १००६।

दरसन दियो कृपा करि मोहन बेगि दियो बरदान।
आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान॥
सो स्तुति रूप होय ब्रजमंडल कीनो रास बिहार।
नवल कुंज मे अंस बाहु धरि कीन्ही केलि अपार[1]॥

यह प्रसंग 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियो के आधार पर लिखा गया जान पड़ता है—

स्तुतिनि कह्यौ कर जोरि, सच्चिदानंद देव तुम।
जो नारायन आदि रूप तुम्हरो सो लखै हम।
— — —
बृंदाबन निज धाम कृपा करि तहाँ दिखायौ॥
— — —
स्तुतिनि कह्यौ ह्वै गोपिका केलि करै तुम संग।
एवमस्तु निज मुख कह्यौ, पूरना परमानंद।
— — —
बेद रिचा ह्वै गोपिका, हरि सँग कियौ बिहार[2]।

'सारावली' के अगले तीन छंदों में पुन: कुंज-विहार का वर्णन है—

पुनि रिषि रूप राम बर पायो हरि से प्रीतम पाय।
चरन प्रसाद राधिका देवी उन हरि कंठ लगाय॥
बृंदाबन गोबर्धन कुंजनि जमुना पुलिन सुदेस।
नित-प्रति करत बिहार मधुर रस स्यामा स्याम सुबेस॥
निरखि निरखि सुख दंपति को यह कविकुल सब पचि हारे।
भूषन खसे सुरति बस दोऊ केस न आपु सँवारे[3]॥

इन पंक्तियों में भी 'सारावली'-कार ने 'सूरसागर' के उक्त छंद के ही कुछ चरणों का सहारा लिया है जो प्रारंभिक वर्णन की तुलना में पीछे उद्धृत किये जा चुके हैं। और 'सारावली' को सैद्धांतिक रचना माननेवाले जरा 'राधिका देवी' प्रयोग पर भी विचार करके निर्णय करें कि दिवस-लीला में सखा-विशेष और निशा-लीला में सखी विशेष के रूप में मान्य सूरदास का ही यह प्रयोग हो सकता है या नहीं।

१. 'सारावली', छंद १००७-८।
२ 'सूरसागर', पद १० ११७५।
३. 'सारावली', छंद १००९-१०-११।

आगे के सात छंद छोड़कर 'सारावली' मे 'सुरतांत' का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

जागे प्रात निपट अलसाने भूषन सब उलटाने।
करत सिगार परस्पर दोऊ अति आलस सिथिलाने ॥
जालरंध्र ह्वै सहचरि देखति जन्म सुफल करि लेखे।
जानि प्रभात उछंगन दंपति लेत प्रान रस पेखे ॥
औटयौ दूध कपूर मिलायो लै ललिता तहँ आई।
पहिले स्यामा को अँचवायौ पाछे पिवत कन्हाई ॥
करि सिगार सघन कुंजनि मे निसि दिन करत बिहार।
नीराजन बहु बिधि वारति है ललितादिक ब्रजनार ॥
कबहुँक केलि करत जमुना जल सुंदर सरद तड़ाग।
कबहुँक मधुर माधुरी झूलत आनँद अति अनुराग[1] ॥

उक्त छंदों मे दो बाते ऐसी हैं जो 'सूरसागर' में नहीं मिलतीं। पहली बात दूसरे छंद मे है—सहचरियों का जाल-रंध्र से श्याम श्यामा का कुंज-विहार देखना। 'सूरसागर' की सखियाँ उनका दर्शन इस प्रकार न करके दोनो के प्रकृतिस्थ हो जाने पर सामने आकर करती हैं। अष्टछापी सूरदास ने यह बात कई पदो मे लिखी है; जैसे—

क. सँग राजति बृषभानु-कुमारी।
कुंज-सदन कुसुमनि सेज्या पर, दंपति सोभा भारी ॥
आलस भरे मगन रस दोऊ, अंग अंग-प्रति जोहत।
मनहुँ गौर स्यामल ससि नव तन, बैठे सन्मुख सोहत ॥
कुंज-भवन राधा-मनमोहन, चहुँ पास ब्रजनारी।
सूर रहीं लोचन इकटक करि, डारति तन मन वारी[2] ॥

ख. इकटक रहीं नारि निहार।
कुंज-घर श्री स्याम स्यामा, बैठे करत बिहार ॥
नैन सैन कटाच्छ सौ मिलि, करत रंग-बिलास।
नहीं सोभा पार पावत, बचन मुख सुख हास ॥
तरुनि श्री बृषभानु-तनया, तरुन नंद-कुमार।
सूर सो क्यौं बरनि गावै, रूप-रस-सुख-सार[3] ॥

१. 'सारावली', छंद १०१६ से २३ तक।
२. 'सूरसागर', पद १०-२४६३।
३. वही पद १०-२४६४।

ग.
दंपति कुंज-द्वार खरे।
सिथिल अग मरगजे अंबर, अतिहि रूप भरे ।।
सुरतही सब रैनि बीती, कोक पूरन रग।
जलद दामिनि सग सोहत, भरे अलास अग ।।
चकृत ह्वै ब्रजनारि निरखति, मनौ चंद चकोर।
सूर-प्रभु बृषभानु-तनया बिलसि रति-पति-जोर[१] ।।

दूसरी बात 'सारावली'-कार ने तीसरे छंद में लिखी है—ललिता द्वारा औटे हुए दूध मे कपूर मिलाकर पहले श्यामा को और फिर श्याम को पिलाने की। 'सूरसागर' में बालक कृष्ण को माता द्वारा औटा दूध पिलाये जाने की बात तो मिलती है, जैसे—

आछौ दूध औटि धौरी कौ लै आई रोहिनि महतारी[२]।

परंतु रति-विहार के पश्चात् वैसा किये जाने का वर्णन शायद कहीं नही हुआ है। जो लोग 'सारावली' को अष्टछापी सूरदास की रचना मानते हैं, संभव है, इसका कारण वे यह बतायें कि रति-क्रीड़ा के पश्चात् पुन. शक्ति-संचय का यह नुस्खा उनको 'सूरसागर' के रचना-काल में नहीं, उसको समाप्त करने के पश्चात् ज्ञात हुआ था जिसको उन्होंने 'सारावली' में, दूसरों के भी लाभार्थ दे दिया और यों परोपकार-सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

जो हो, सुरति के अनंतर श्यामा-श्यामा का वर्णन 'सूरसागर' में इस प्रकार मिलता है—

पिय प्यारी तनु स्रमित भए।
सकुचि उठि नागरि पट लीन्हौ, स्याम लजाइ गए ।।
सावधान रति-अंत भए पिय, प्यारी-तन नहि हेरत।
नागरि कुटिल कटाच्छनि हेरति, भृकुटी बंकट फेरत ।।
ऐसे गुन किनि तुमहि सिखाए, तिरनी कटि कसि दीन्ही।
सूर कहति पिय सौं तिय बातैं, आजु तुमहि मै चीन्ही[३]।।

उक्त कुंज-विहार के बीच मे 'सारावली'-कार ने दो प्रसंग और भी

१. 'सूरसागर', पद १०-२४७१।
२. वही, पद १०-८४५।
३. वही, पद १० २६२६।

जोड़े हैं। प्रथम है 'दृष्टकूट-सूचनिका' जो नौ सौ सैंतीसवें छंद से आरंभ होती है और छाछठवें पर 'संपूर्ण' होती है। इन दृष्टकूट छंदों में 'सूरसागर' की ही शब्दावली कुछ हेर-फेर का साथ प्रयुक्त हुई जान पड़ती है। 'सारावली' की अप्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए ऊपर जो कुछ लिखा गया है, वही पर्याप्त समझकर हमने 'दृष्टकूट' छंदो का 'सूरसागर' के वैसे पदों से मिलान करना अनावश्यक समझा है। फिर भी हमारा उक्त अनुमान केवल कल्पना पर आधारित नहीं है, प्रत्युत कुछ पंक्तियों का मिलान करके हमने वैसा लिखा है। उदाहरण के लिए 'सारावली' की एक पंक्ति का पूर्वार्द्ध इस प्रकार है—

सारंग रिपु की बदन ओट दे[1]।

जिसको 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियो से मिलाने पर उक्त अनुमान की ही पुष्टि होती है—

क. सारग रिपु की नैकु ओट करि[2]।

ख. सारंग रिपु की ओट रहे दुरि[3]।

'सारावली' मे दूसरा प्रसंग 'राग-रागिनी' की सूची है जो एक हजार बारहवें पद से आरंभ होकर अट्ठारहवें में समाप्त हुई है। इस सूची में भी कोई विशेषता न होने के कारण उसको यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है।

कुंज-विहार का उपसहार 'सुरति-अंत' मे करने के पश्चात् 'सारावली'-कार ने वसंत-लीला का वर्णन इस प्रकार प्रारंभ किया है—

प्रथम बसंत पंचमी सुभ दिन मंगलचार बधाये।
पंचानन जारयो मन्मथ सो प्रगट भये फिरि आये॥
जसुमति मात बधाई बाँटति फूली अँग न समाई।
उबटि नहवाय स्यामसुंदर को आभूषन पहिराई॥
घर घर ते आईं ब्रज सुंदरि मंगल साज सँवारे।
हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मंत्र उपचारे[4]॥

१. 'सारावली', छंद ६४५।
२. 'सूरसागर', पद १०-१७१४।
३. वही, पद १०-२७७१।
४. 'सारावली', छंद १०२४-२५-२६।

अबिर गुलाल अरगजा सोधौं लीन्हो सौज बनाय।
मन में किये मनोरथ बहु बिधि मिलवत सब मन भाय॥
भीर जानि सिहपौर तियनि की जसुमति भवन दुराई।
ढूँढि सकल तिय दौरि मात को पकरि बाँह लै आईं॥
केसर चंदन और अरगजा सीस महर के नाये।
जो जो बिधि उपजी जाके जिय सोइ सोइ भाँति कराये॥
फगुआ दियो महर मन भायो जसुमति परम उदार।
पकरि लिये घनस्याम मनोहर भेंटे भरि अँकवार॥
पहिली जान बसंत पंचमी जसुमति बहुत खिलाये[1]।

उक्त छंदों मे से प्रथम चार में तो 'बसंत-लीला' की प्रस्तावना है, पाँचवें से उसका प्रारंभ होता है। अपने द्वार पर गोपियो को आता हुआ देखकर माता यशोदा भवन मे छिप जाती हैं, व्रजनारियाँ उनको ढूँढ़ती और बाँह पकड़ कर ले आती हैं। इसके बाद यशोदा के साथ उन्होने कैसा व्यवहार किया, इसका वर्णन करने का 'सारावली'-कार को ध्यान नहीं रहता और वह 'केसर, चंदन और अरगजा' महर अर्थात् नद जी के 'सीस' पर नाये जाने का वर्णन करने लगता है। इतना ही नहीं, उन स्त्रियो के मन मे जो-जो आता है, वे सब नंद जी के साथ करती हैं और तब वे 'फगुआ' देकर अपना पीछा छुड़ाते हैं। इसके अनंतर सब सखियाँ श्याम को 'अँकवार' भेंटती है। सोचने की बात है कि यशोदा के द्वार पर एकत्र होनेवाली वे व्रज-सुन्दरियाँ किस अवस्था की हैं और वहाँ किसके साथ होली खेलने आयी हैं? नंद-यशोदा से या श्याम से? क्या इसका ध्यान 'सारावली'-कार को है? यशोदा का उनको देखकर छिपना और व्रज-नारियो को उनको ढूँढकर छोड़ देना, फिर नंद के साथ जो-जो मन में आया करना—किस सिद्धांत की दृष्टि से उपयुक्त वर्णन है?

यशोदा के पास 'सूरसागर' की गोपियाँ न पहुँचती हों, सो बात भी नही है, परंतु उनके वहाँ जाने का उद्देश्य अष्टछापी सूरदास ने इस प्रकार बताया है—

सब सखियाँ मिलि गईं महरि पै, मोहन माँगै देहु।
दिना चारि होरी कैं अवसर, बहुरि आपनौ लेहु[2]।

१. 'सारावली', छंद १०२७ से ३१ तक।
२. 'सूरसागर', पद १०-२८६५।

यदि 'सारावली' का रचयिता अष्टछापी सूरदास ही है तो वह एक भी पद मे वैसा कोई संकेत क्यो नहीं करता ? 'सूरसागर' मे तो 'वसंत-लीला' का प्रारंभ श्रीकृष्ण के प्रति व्यक्त की गयी गोपियो की इस कामना से होता है—

क. कुहू कुहू कोकिला सुनाई । सुनि सुनि नारि परम हरषाई ॥
बार बार सो हरिहि सुनावति । रितु बसंत आयी समुझावतिं ॥
फागु-चरित-रस साध हमारै । खेलहि सब मिलि संग तुम्हारै ॥
सुनि सुनि सूर स्याम मुसुकाने रितु बसंत आयौ हरषाने[1] ॥

ख. आयौ आयौ पिय रितु बसंत । दंपति मन सुख बिरह अंत ॥
फागु खेलावहु संग कंत । हा हा करि तृन गहति दंत[2] ॥

गोपियों को उनकी साध पूरी करने का आश्वासन देकर श्रीकृष्ण पिना के पास पहुँचकर होली खेलने की आज्ञा और पिचकारी माँगते हैं—

नंदराइ सौं बिनती कीनी । स्याम एक की आज्ञा लीनी ।
अगनित तव पिचकारि गढाई । कंचन रतन बबा पै पाई ।
मन सहसक केसरि लै दीन्हौं । असित सुगंध अरगजा लीन्हौ[3] ।

एक हैं ये 'सूरसागर' के नंद जिनसे 'सारावली' के उक्त नंद से तुलना कीजिए और तब निष्पक्षता से निर्णय कीजिए कि क्या दोनों 'नंदों' का चित्रण एक ही कवि ने किया है ।

पिचकारी, रंग आदि तैयार हो जाने पर 'सूरसागर' की व्रजबालाएँ इस प्रकार सजधज और बनठन कर फाग खेलने आती हैं—

क. सब बनिठनि आई व्रज की बाल[4] ।

ख. सारी पहिरि सुरंग, कसि कंचुकि काजर दै दै नैन ।
बनि बनि निकसि-निकसि भई ठाढी सुनि माधौ के बैन[5] ।

१. 'सूरसागर', पद १०-२८४३ ।
२ वही, पद १०-२८५१ ।
३. वही, पद १० २८६२ ।
४ वही, पद १०-२४४६ ।
५. वही, पद १० २८६० ।

ग. सकल सिंगार कियौ ब्रज-बनिता नखसिख लौं भल ठानि[1] ।

घ. सुनि सब नारि निकसि ठाढी भई, अपनै अपनैं द्वारि ।
नवसत सजे प्रफुल्लित आनन, जनु कुमुदिनी कुमारि[2] ।

'सारावली' की ब्रज-सुंदरियाँ नंद-यशोदा से 'मनभाया' करने के पश्चात् कृष्ण की ओर ध्यान देती हैं जिनके साथ उनके होली खेलने का वर्णन यों हुआ है—

केसर चोवा और अरगजा स्याम अंग लपटाये ॥
ता पाछे गोपिनि ने छिरिके कनक कलस भरि डारे ।
मानो सीस तमाल अमृत घन सरस सुधा निधि धारे ॥
चंदन चोवा मथति हाथ करि नील जलद तनु अरप्यो ।
मानो प्रगट करी अपने चित पिय को प्रान समरप्यो ॥
किये मनोरथ नाना बिधि के मेवा बहु बिधि लाई ।
सो हरि ने स्वीकार कियो सब निरखि परम सुख पाई ॥
सुबल सुबाहु तोक श्रीदामा सकल सखा जुरि आये ।
रतन चौक मे खेल मचायो सरस बसंत बधाये ॥
करत परस्पर गोप ग्वाल मिलि क्रीड़ा अति मन भाई ।
सुरँग अबीर गुलाल उड़ावत रह्यो गगन सब छाई ॥
फगुआ देन कह्यो मन भायो सबै गोपिका फूली ।
कंठ लगाय चली प्रीतम को अपने गृह अनुकूली ॥
करति आरती बिबिध भाँति सों जसुमति परम सुहाई ।
सखा बृंद सब चले जमुन तट खेलन कुँवर कन्हाई[3] ॥

उक्त छंदो मे से चौथे के द्वितीय चरण में कितनी विचित्र बात कही गयी है ! जिन गोपियो को होली खेलने के उपलक्ष में नंद जी 'मनभाया फगुवा' देते हैं और यशोदा जिनको 'बहुत खिलाती' हैं, वे ही श्याम से होली खेलने जब आती हैं तब बहु बिधि मेवा लाती हैं जिसे श्रीकृष्ण स्वीकार कर उन्हें कृतार्थ करते है। सारे वर्णन से स्पष्ट होता है कि नंद, यशोदा से होली खेलने के बाद उसी दिन और उसी समय कृष्ण का नंबर आया है। तब यह 'बहु विधि मेवा' क्या 'नंद-यशोदा' के दिये हुए 'फगुवा'

१. 'सूरसागर', पद १०-२८६१ ।
२. वही, पद १०-२८६६ ।
३. 'सारावली', छंद १०३१ से ३८ तक ।

में से गोपियो ने निकाल ली थी या अपने घर से लेकर चली थी ? जो होली खेलने आये, वही मेवा-मिठाई भी बॉध कर लाये ! कितनी अटपटी बात है ! 'सूरसागर' मे तो पचासो पदो मे नंद, यशोदा, कृष्ण और बलराम के द्वारा मेवा-मिठाई गोपियो को दिये जाने की बात कही गयी है। परंतु 'सारावली'-कार को किसी बात के औचित्य-अनौचित्य से क्या लेना देना है ? वह तो स्वतंत्र (!) रचना रच रहा है, इसलिए हर बात के वर्णन में पूर्ण स्वतन्त्रता से काम लेने का अधिकारी है।

'सारावली' के उक्त छंदो मे से अतिम का वर्णन भी अधूरा है— श्रीकृष्ण ने मनभाया फगुवा देने को कहा तो गोपियॉ फूल गयीं और प्रियतम को कठ लगाकर अपने-अपने घर चली गयी। गोपियो के फूलने का कारण कवि ने फगुवा दिये जाने का वचन मात्र बताया है, देने-लेने की आवश्यकता न श्रीकृष्ण समझते है, न गोपियॉ और कवि ही कुछ दिये-लिये जाने की बात कहता है। 'सारावली' के 'प्रवीण' कवि की लीला श्री कृष्ण को भी कैसा 'प्रवीण' बना देती है। भला जब कोई कोरी बात से ही फूल जाय तो कुछ देना कहाँ की 'प्रवीणता' है ?

'सारावली' के उक्त छंदो के वर्ण्य विषय से 'सूरसागर' के पदो से तुलना क्रमबद्ध-रूप मे आगे की जायगी। यहाँ तो पहले 'सारावली' के अगले नौ छंदो को देखना है जो इस प्रकार हैं—

बैठे जाय सघन कुंजनि मे जमुना तीर गोपाल।
सखी एक तहँ आय निकट ही बोली बचन रसाल ॥
बृंदाबन फूल्यो नँदनंदन सघन कुंज बहु भाँति।
हरित पीत मुकुलित द्रुम पल्लव मुखरित मधुकर पाँति ॥
ठौर ठौर झिल्ली धुनि सुनियत मधुर मेघ गुंजार।
मानो मन्मथ मिलि कुसुमाकर फूले करत बिहार ॥
अपनो सब गुन तुम्है दिखावन स्मर बसंत मिलि आयो।
मधुर माधुरी मुकुलित पल्लव लागत परम सुहायो ॥
गोबर्धन के सिखर सुभग पर फूले कुसुम पलास।
सहज सुरति सुख देत सँजोगिनि बिरहिनि करत उदास[1] ॥

[1] 'सारावली', छंद १०३६ से १०४३ तक।

पुहुप पराग परस मधुकरगन मत्त करत गुंजार।
मनो कामिजन देखि जुवतिजन बिषयासक्त अपार।।
बीथिनि बिपिन बिलोकि बिबिध द्रुम मंडित कुसुमित कुंज।
मनहुँ हेम मंडपिका मुखरित कल्पलता रस पुंज।।
बेगि चलौ बृंदाबन-नायक राधा मारग जोवति।
हिलिमिलि खेलौ मन्मथ क्रीड़ा क्यो बसत दिन खोवत।।
सुनति बचन ललिता के मोहन तुरत चले उठि धाय।
कियो बसंत खेल बृंदाबन अद्भुत फागु मचाय[१]।।

'सारावली' के कृष्ण गोपियो को फगुवा देने के वचन से 'फुलाकर' सघन कुंज मे जा बैठे। क्यो ? अपने वचन से 'फूली हुई' गोपियो को फगुवा देने से बचने के लिए या वसंत लीला के साथ-साथ निकुंज-लीला का भी आनंद लेने के लिए ? क्योकि 'सारावली' कह चुका है कि उसके लिए 'भोर-निशा' आदि का कोई भी प्रतिबध नहीं है ? अथवा सखी को वसंत वर्णन का अवसर देने के लिए ? 'सारावली' के वर्णन से तो दूसरा कारण ही ठीक जान पड़ता है। तब प्रश्न यह है कि वसंत लीला का गान पंद्रह छंदों में करने के पश्चात् अब ऋतु-वर्णन उसे क्यो सूझा ? पहले क्या उसे 'वसंत की खबर' नही थी ? 'सूरसागर' में तो यह प्रसंग वसंत-लीला के प्रारंभ में ही बीस से भी अधिक पदो मे वर्णित है जिनमे से केवल चार यहाँ उद्धृत हैं—

क. राधे जू आजु बरनौ बसंत।
मनहुँ मदन बिनोद बिहरत नागरी-नवकंत।।
मिलत सनमुख पटल पाटल भरति मानहि जुही।
बेलि प्रथम समाज-कारन, मेदिनी कच गुही।।
केतकी कुच-कलस कंचन, गरे कंचुकि कसी।
मालती मद चलित लोचन, निरखि मुख मृदु हँसी।।
बिरह-ब्याकुल मेदिनी कुल, भई बदन-बिकास।
पवन-परिमल सहचरी, पिक गान हृदय हुलास।।
उत सखा चंपक चतुर अति, कुंद मनु तन-माल।
मधुप मनि-माला मनोहर, सूर श्री गोपाल[२]।।

१. 'सारावली', छंद १०४४ से १०४७ तक।
२. 'सूरसागर', पद १०-२८४४।

ख. कोकिल बोली, बन - बन फूले, मधुप गुँजारन लागे।
सुनि भयौ भोर, रोर बंदिनि कौ, मदन-महीपति जागे ।।
ते दूने अंकुर द्रुम पल्लव जे पहिले दव दागे।
मानहुँ रति पति रीझि जाचकनि, बरन बरन दए बागे ।।
नई प्रीति, नई लता, पुहुप नए, नयन नए रस पागे।
नए नेह, नव नागरि हरषित, सूर सुरँग अनुरागे[1] ।।

ग देखत बन ब्रजनाथ आजु, अति उपजत है अनुराग।
मानहुँ मदन बसंत मिलि दोउ खेलत फूले फाग ।।
झाँझ झिली निर्झर निसान डफ, भेरि भँवर-गुंजार।
मानहुँ मदन मंडली रचि पुर बीथिनि बिपिन बिहार ।।
द्रुम-गन-मध्य पलास मंजरी, उदित अगिनि की नाईं।
अपनै-अपनै मेरनि मानौ, होरी हरषि लगाईं ।।
केकी, कोक, कपोत और खग, करत कुलाहल भारी।
मानहुँ लै लै नाउँ परस्पर, देत दिवावत गारी ।।
कुंज-कुंज प्रति कोकिल कूजति, अति रस बिमल बढी।
मनु कुल बधू-निलज भईं गृह गृह गावति अटनि चढी ।।
प्रफुलित लता जहाँ जहँ देखत, तहाँ तहाँ अलि जात।
मानहुँ बिट सबहिनि अवलोकत, परसत गनिका गात ।।
लीन्हे पुहुप-पराग पवन कर, क्रीडत चहुँ दिसि धाइ।
रस अनरस संजोगिनि बिरहिनि, भरि छाँडत मन भाइ ।।
बहु बिधि सुमन अनेक रंग छबि, उत्तम भाँति धरे।
मनु रति नाथ हाथ सौं सबही, लै लै रंग भरे ।।
और कहाँ लगि कहौं रूप निधि, बृंदा बिपिन बिराज।
सूरदास प्रभु सब सुख क्रीड़त, स्याम तुम्हारै राज[2] ।।

घ. कुसुमित बन देखन चलहु आजु। जहँ प्रगट भयौ रितु-रंग-राज ।।
अति बिबिध कुसुम परिमल बहाइ। बन सुवा सहित पंचम सुहाइ ।।
केकी बोलत पिक-सुर सनेहि। जुवती-मन अति आनंद देहि ।।
श्री मदन मोहन सुंदरता पुंज। श्री राधा सँग राजत निकुंज ।।
गावै सुर गन दंपति-बिलास। तहँ सदा रहै मन सूरदास[3] ।।

१. सूरसागर', पद १०-२८४८।
२. वही, पद १०-२८५३।
३. वही पद १०-२८५५।

'सूरसागर' के उक्त वसंत-वर्णन में उल्लास की जो भावना समा नही रही है क्या उसका लेश भी 'सारावली' के उक्त वर्णन में है ?

दूसरी बात यह कि 'सारावली' मे राधा का उल्लेख इस प्रसंग मे पहली बार पूर्वांतिग पद मे हुआ है। यह राधा नंद, यशोदा और श्याम से होली खेली जाते समय कहाँ थी ? उक्त छंद के 'राधा मारग जोवत' उपवाक्य को लेकर क्या यह अर्थ लगाया जाय कि उस दिन भर वह उसी प्रकार प्रतीक्षा करती और 'इंतजार का मजा' लेती रही ? इस प्रसंग के बीस-इक्कीस (१०२४ से १०४५ तक) छंद लिखते समय कवि को उसका ध्यान क्यो नहीं आया जब कि 'सूरसागर' के बसंत और होली लीला-वर्णन के प्राय: प्रत्येक पद में उसका स्पष्ट उल्लेख होता है ? जैसे—

क. स्यामा स्याम बिलास एक, सुखदायक गोपी अनेक[१]।

ख. सुंदर बर सँग ललना बिहरति बसंत सरस रितु आई[२]।

ग. पिय प्यारी खेलै जमुन तीर, भरि केसर कुमकुम अरु अबीर[३]।

घ. खेलत नवल किसोर किसोरी।
नदनंदन बृषभानु सुता चित लेत परस्पर चोरी[४]।

ङ. जमुना कै तट खेलति हरि-सँग राधा लिए सब गोपी[५]।

च. गोकुल सकल गुवालिनी, घर घर खेलत फाग।
तिनमै राधा लाडिली, जिनकौ अधिक सुहाग[६]।

परंतु, जान पड़ता है, स्वतंत्र रचना 'सारावली' के स्वतंत्र रचनाकार के स्वतंत्र सिद्धांत के अनुसार बेचारी राधा उस दिन वसंत लीला में भाग लेने को स्वतंत्र नहीं थी।

जो हो, आगे के तीन छंदो मे पुन वसंत खेल का वर्णन 'सारावली'-कार करता है—

१. 'सूरसागर', पद १०-२८५२।
२. वही, पद १०-२८५४।
३. वही, पद १०-२८५६।
४. वही, पद १०-२८५८।
५. वही, पद १०-२८६१।
६. वही, पद १०-२८६४।

लता लता बन बन कुंजनि मे खेलत फिरत बसंत।
मनहुँ कमल मंडल मे मधुकर बिहरत है रसमंत ॥
उत स्यामा इत सखा-मंडली उत हरि इत ब्रजराज।
मनो तामरस पारस खेलत मिलि मधुकर गुंजार ॥
खेल बसंत बहुत सुख मान्यो हरषे गोपी ग्वाल।
बिहँसि गये ब्रजराज भवन सब चंचल नैन बिसाल[1] ॥

कैसे विचित्र खिलाड़ी हैं 'सारावली' के कि खेल जमने नहीं पाता और उसका अंत हो जाता है। उक्त छंदों में से प्रथम में खेल की प्रस्तावना हुई, दूसरे में दो दल बने और तीसरे में खेल खतम!

अब जरा 'सूरसागर' के पदों के आधार पर देखिए कि उन बिखरे हुए स्फुट पदों में खेल के क्रम की निरंतरता का निर्वाह कवि ने किस कौशल से किया है। अष्टछापी सूर फाग के खेल का आरंभ इस प्रकार करता है—

क. इत श्री राधा उत श्री गिरिधर, इत गोपी उत ग्वाल।
खेलत फागु रसिक ब्रज-बनिता, सुंदर स्याम तमाल[2]।

ख. एक कोध गोबिंद ग्वाल सब, एक कोध ब्रजनारि[3]।

ग. उतहि संग सब ग्वाल लिये सुंदर नंदकुमार।
इत स्यामा नवजोबना अंबुज लोचन चारु[4]।

घ. इत गोपिनि कौ झुंड, उतहि हरि-हलधर-जोरी[5]।

दोनो दल बन गये। उनके फाग खेलने का सामान इस प्रकार पहले ही तैयार हो चुका है—

क. कनक कलस केसरि भरे[6]।

ख. कंचन मॉट भराइ कै सौंधै भरयौ कमोर[7]।

१. 'सारावली', छंद १०४८ से ५० तक।
२. 'सूरसागर', पद १०-२८५४।
३. वही, पद १०-२८६०।
४. वही, पद १०-२८६७।
५. वही, पद १०-२८७०।
६. वही, पद १०-२८६४।
७. वही, पद १०-२८६६।

तदनन्तर खेल आरंभ होता है और बड़े उल्लास से होता है—

क. एक गुलाल अबीर लिए कर, इक चंदन इक रोरी।
उपराउपरि छिरकि रस-रस भरि.कुल की परिमित फोरी[१]।

ख. माधव नारि नारि माधव कौ छिरकत चोवा चंदन[२]।

ग. आजु परब हँसि खेलिऐ, मिलि सँग नंदकुमार[३]।

'सूरसागर' की गोपियो का खेल इतने उत्साह से होता है कि श्याम को छिपने की आवश्यकता जान पडती है। तब गोपियो को उनसे इस प्रकार कहना और व्यवहार करना पड़ता है—

क. मोहन, दरस दिखावहु, दुरहु तो नद की आन[४]।

ख. दुरत स्याम धरि पाइयो, राधा भरि अकवारि।
कनक कलस केसरि भरे, लै धाईं ब्रज-नारि।
भरहु भरहु सखि स्यामही पीत पिछौरी पाग।
देह-गेह-सुधि बीसरी नँदनंदन अनुराग[५]।

यदि किसी अवसर पर गोपियो के नद-धाम पहुँचने पर श्याम किसी प्रकार 'प्रकट' नही होते और गोपियो को 'फागुवा' नही मिलता तब वे 'गाली' गाना शुरू कर देती है जिस पर यशोदा को उन्हें रोककर कहना पड़ता है—

अब कहँ दुरे साँवरे ढोटा, फगुवा देहु हमार।
हँसि हँसि कहति जसोदा रानी, गारी मत कोउ देहु।
सूरज दास स्याम के बदलै, जो चाहौ सो लेहु[६]।

होली खेलने का जो विस्तृत वर्णन 'सूरसागर' मे मिलता है, उसको यहाँ देने की आवश्यकता नही है। फिर भी इतना कहने का लोभ संवरण नहीं होता कि गोपियाँ हरि को पकड़कर उनकी जो 'गत' बनाती है, उसके बखान मे सूरदास ने बड़ी रुचि ली है। उनके तत्संबंधी वर्णन का कुछ अनुमान नीचे लिखे पदांशो मे हो सकता है—

१. 'सूरसागर', पद १०-२८५८।
२. वही, पद १०-२८६१।
३. वही, पद १०-२८६४।
४. वही, पद १० २८६४।
५. वही, पद १०-२८६४।
६. वही, पद १०-२८६५।

क. पाछे तैं ललिता चंद्रावलि, हरि पकरे भुज भरि कौरी की।
ब्रज-जुवती देखतहीं धाईं, जहाँ तहाँ तैं चहुँ ओरी की॥
इक पट पीतांबर गहि झटक्यौ, इक मुरली लई कर मोरी की।
इक मुखसौं मुख जोरि रहति, इक अंक भरति रतिपति ओरी की॥
तब तुम चीर हरे जमुना तट, सुधि बिसरे माखन चोरी की।
अब हम दाउँ आपनो लैहैं, पाइ परौ राधा गोरी की॥
अपन अपने मन-सुख कारन, सब मिलि झकझोरा-झोरी की।
नीलांबर पीतांबर सौं लै, गाँठि दई कसि कै डोरी की॥
कनक कलस केसरि भरि ल्याईं डारि दियौ हरि पर ढोरी की।
अति आनंद भरी ब्रज-जुवती, गावति गीत सबै होरी की[1]।

ख. दुरि रही इक खोरि ललिता, उत तैं आवत स्याम।
धरे भरि अँकवारि औचक, धाइ आईं बाम॥
बहुत ढीठौ दै रहे हौ, जानबी अब आजु।
राधिका दुरि हँसति ठाढ़ी, निरखि पिय मुख लाज॥
लियौ काहू मुरलि कर तैं, कोउ गह्यौ पट पीत।
सीस बेनी गूँथि, लोचन आँजि, करी अनीत॥
गए कर तैं छूटकि मोहन, नारि सब पछिताति।
सीस धुनि कर मींजि बोलति, भली लै गए भाँति॥
दाउँ हम नहि लैन पायौ, बसन लेतीं लाल।
सूर प्रभु कहँ जाहुगे अब, हम परीं इहि ख्याल[2]॥

ग. सीला नामक ग्वालि, अचानक गहे कन्हाई।
सखिनि बुलावति टेरि, दौरि आवहु री माई॥
एक सुनत गई धाइ, बीस तीसक तहँ आईं।
टूटि परीं चहुँ पास, घेरि लीन्हौ बल-भाई॥
इक पट लीन्हौ छीनि, मुरलिया लई छिड़ाई।
लोचन काजर आँजि, भाँति सौ गारी गाई॥
जबहि स्याम अकुलात, गहति गाढ़ै उर लाई।
चंद्रावलि सौं कह्यौ, गूँधि कच सौंह दिवाई॥

१. 'सूरसागर', पद १० २८७२।
२. वही, पद १०-२८७६।

हा हा करियै लाल, कुँवरि के पाइ छुवाई ।
यह सुख देखत नैन, सूर जन बलि बलि जाई[1] ॥

इसी प्रकार हरि स्वयं जब युवती का वेश धर कर राधा से मिलने की योजना बनाकर गोपियों के बीच में जा पहुँचते हैं और अपनी मनोकामना पूरी करके राधा को भी सुख देते हैं, उसका भी वर्णन सूरदास ने बड़े चाव से किया है—

तब हरि भेष धर्यौ जुवती कौ । सुंदर परम भावतौ जी कौ ।

— — —

तब हरि कहत सुनहु ब्रजबाला । बोलत हँसि हँसि बचन रसाला ॥
हम तुम मिलि खेलहि सब जानति । राधा आजी मोहि पहिचानति ॥
हौं हूं संग तिहारै खेली । जानति हौ है जान सहेली ॥
अबही कीरति महरि पठाई । राधा इकली खेलन आई ॥
अब इक बात कहौं हौं जी की । हौं जानति हौं छल हरि पी की ॥
सघन बिपिन ऐसै महँ पावहु । सब मिलि एक संग जनि धावहु ॥
सुनत सोर कत रहिहै नेरैं । कोटि करौ पावहु नहि हेरैं ॥
द्वै द्वै न्यारी न्यारी डोलहु । तनक गूँदि कर मुख जनि बोलहु ॥
जाइ अन्चानकही गहि ल्यावहु । सखी एक ज्यौं त्यौं करि पावहु ॥
राधा कौं भुज गहि कै लीन्ही । ऐसै सब कौं द्वै द्वै कीन्ही ॥
मौन लिये प्रबेस कियौ बन मैं । हरि कौ रूप राखि निज मन मैं ॥
और सखी खोजति सब कुंजनि । राधा हरि बिहरत सुख पुंजनि[2] ॥

'सूरसागर' के इन सब रोचक प्रसंगों के संबंध में एक भी पंक्ति 'सारावली' में न मिलना स्पष्ट रूप से सूचित करता है कि यह रचना सूरदास की हो ही नहीं सकती ।

'सारावली' में आगे के छंदों में दैनिक क्रम से होलिकोत्सव का पुन: वर्णन हुआ है । प्रथम पक्ष का वर्णन इस प्रकार है—

होरीडाँडो दिवस जानि कै अति फूले ब्रजराज ।
बैठे सिंहद्वार पै आपुन जुरि कै गोप समाज[3] ॥

१. 'सूरसागर', पद १०-२८८१ ।
२. वही, पद १०-२८६२ ।
३. 'सारावली', छंद १०५१ ।

बिप्र बुलाय बेद बिधि करिकै होरी डाँडो रोपि ।
आनंदे सब गोप मंडली मनमथ कियो प्रकोप ॥
परिवा प्रथम दिवस होरी को नंदराय गृह आई ।
सकल सौज गोपी कर लैकै खेलन को मन भाई ॥
दुइज दुहूँ दिसि ते होरी मचि सुरँग गुलाल उडायो ।
मनो अनुराग दुहुँनि के अतर सबहिनि प्रगट करायो ॥
तीज तरुनि मिलि पकरे मोहन गहि कर अंजन दीनो ।
मत्त मधुप बैठ्यो अंबुज पर मुखरित है सुर भीनो ॥
चम्पक लता चौथ दिन जान्यो मृगमद सीर लगायो ।
मनहुँ नील जलधर के ऊपर कृष्नागर लपटायो ॥
पाँचैं प्रमदा परम प्रीति सो केसर छिरकी घोरि ।
मनहुँ सुधानिधि बरसत घन पर अमृत धार चहुँ ओरि ॥
छठि छरागनी गाय रिझावत अति नागर बलबीर ।
खेलत फाग संग गोपिनि के गोप बृंद की भीर ॥
सातै सजि सुगंध सब सुंदरि लै आई उपहार ।
बल मोहन को हँसत खेलावत रीझि भरति अँकवार ॥
आठै अति आतुर अबला प्रिय चुम्बन दीन्हो गाल ।
नाना बिधि सिंगार बनाये बेंदा दीन्हो भाल ॥
नवमी नौसत साजि राधिका चंद्रावलि ब्रजनार ।
हो हो करत पलास कुसुम रँग बरसत हैं जो अपार ॥
दसमी दसौ दिसा पूरति सुरंग अबीर गुलाल ।
मनु प्रीतम मिलिबे के कारन फूले नयन बिसाल ॥
एकादसी एक सखि आई डारयो सुभग अबीर ।
एक हाथ पीतांबर पकरयो छिरकति कुमकुम नीर ॥
द्वादसि मची दुहू दिसि होरी इत गोपी उत ग्वाल ।
इत नायक बल मोहन दोऊ उत राधा नव लाल ॥
तेरस तरुनी सब मिलि कै यह कीन्हो कछुक उपाय ।
तोक सुबल मधु-मंगल बोल्यो सबहिनि मतो सुनाय ॥
चौदसि चहूं दिसा सो मिलि कै गठजोरो गहि भोर ।
मनमोहन पिय दूलह राजत दुलहिनि राधा गोर[1] ॥

१. 'सारावली', छंद १०५२ से ६६ तक ।

देखि कुहू कुसुमाकर फूल्यौ मधुप करत गुंजार।
चद्रावलि केसर लै आई छिरके नंदकुमार[१] ॥

'सूरसागर' मे भी इसी प्रकार का दैनिक क्रम से वर्णन दो पदो मे मिलता है[२] जिनमें से प्रथम मे 'हरि होरी है' या 'अहो हरि होरी है' की आवृत्ति के साथ प्रत्येक तिथि का विस्तार से वर्णन किया गया है। दोनो ग्रंथो के वर्णनो में जैसा अंतर प्रत्येक प्रसंग मे मिलता है, वही यहाँ भी है। अतएव 'सूरसागर' का पद देना यहाँ भी आवश्यक नहीं जान पड़ता।

'सारावली' मे उक्त पक्ष का वर्णन करने के पश्चात् पुन: दूसरे पक्ष का वर्णन उन्नीस छंदो में (१०६८ से १०८६ तक) किया गया है। इनके बीच के पाँच छंदो मे (१०७२ से ७६ तक) वाद्ययंत्रो की सूची मिलती है। इस पक्ष का वर्णन भी पूर्वोद्धृत जैसा है। अतएव उसे और उसके मिलान के लिए 'सूरसागर' के पद देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

'सारावली'-कार के जिस वसंत-वर्णन की चर्चा ऊपर की गयी है, उसके संबंध मे दो-एक बातें और कहनी है। 'सारावली' में व्रज की होली का वर्णन है—इसको तो कोई अस्वीकार नही कर सकता और वहाँ की होली की दो विशेषताएँ है—गाली गाना और 'बाँस' की मार करना। पहली बात का चलन तो भारत के अन्य स्थानो मे भी है, परंतु 'बाँस' के बिना तो व्रज की होली का वर्णन सभी को अपूर्ण मानना पड़ेगा। और 'सारावली' के साठ से भी अधिक छंदो के सवा सौ से अधिक चरणो में व्रज की होली का जो विस्तृत वर्णन हुआ है, उनमे एक भी शब्द तद्विषयक संकेत करनेवाला नही है। और फिर मजा यह है कि सारी 'सारावली' होली के रूपक को लेकर रची गयी है। क्या यह केवल एक बात ही सिद्ध नही करती कि 'सारावली' किसी भी दृष्टि से अष्टछापी सूरदास की तो रचित हो ही नहीं सकती, किसी व्रजवासी कवि की भी रचित नहीं हो सकती और जिस कवि की वह रचित है उसने व्रज की होली कभी देखी-सुनी भी नहीं थी ?

१. 'सारावली', छंद १०६७।
२. 'सूरसागर', पद १०-२६१४-१५।

'सूरसागर' में उक्त दोनों बातों का उल्लेख अनेक पदों में मिलता है। पहले 'गाली' का उल्लेख वाले पदांश देखिए—

क देति परस्पर गारि मुदित मन तरुनी बाल सयानी[१]।

ख. छाँड़ि सकुच सब देति परस्पर अपनी भाई गारि[२]।

ग. झुकि झुकि परति है कुँवरि राधिका, देति परस्पर गारि[३]।

घ. गावत दै दै गारि परस्पर, उत हरि, इत बृषभानु किसोरी[४]।

ड. गावति दै दै गारि, परस्पर भामिनि भोरी[५]।

च. उतहि सखा कर जेरी लीन्हे, गारी देहि सकुच थोरी की[६]।

छ. पढत होरी बोलि गारी निरखि कै ब्रजबाल[७]।

ज. गारि नारि सब देहि सुहानी, नंद महर लौं जाति बखानी[८]।

झ. ग्वालनि जेरी हाथ, गारि दै तियनि सुनाई[९]।

ञ. उत होरी पढत ग्वार, इत गारी गावत ये।
नंद नाहिं जाये तुम, महरि गुननि भारी।
कुलटी उनतै को है, नंदादिक मन मोहै,
बाबा बृषभानु की वै, सूर सुनहु प्यारी[१०]।

ट. बाँह उचाइ कहत हो होरी, लै लै नाम देत प्रभु गारी[११]।

इसी प्रकार 'बाँस' की मार की बात भी अनेक पदों में कही गयी है—

क. लै लै छरी कुमारि राधिका कमल नैन पर धाई[१२]।

१. सूरसागर', पद १०-२८५४।
२. वही, पद १०-२६८०।
३. वही, पद १०-२८६५।
४. वही, पद १०-२८६८।
५. वही, पद १०-२८७०।
६. वही, पद १०-२८७१।
७. वही, पद १०-२८७६।
८. वही, पद १०-२८७८।
९. वही, पद १०-२८८१।
१०. वही, पद १०-२८८९।
११. वही, पद १०-२८९३।
१२. वही, पद १०-२८५४।

ख. इतहि सखी कर बाँस लिए बिच, मार मची झोरा-झोरी की[1]।
ग. उत जेरी धरे ग्वार, बाँसनि इत परी मार[2]।
घ. कनक लकुट करनि लिए धाई सब हरषि हिए ब्रज-ललना [3]।
ङ. मारति बाँस लिए उन्नत कर भाजत गोप त्रियनि सौं हारी[4]।
च. इत लिए कनक-लकुटिया नागरि, उत जेरी धरे ग्वार[5]।
छ. बाँसनि मार मची कर आडे। ग्वाल टिके पग एक न छाँडे[6]।
ज. बाँस धरे, जेरी धरे, बिच मार मची, भई भीर[7]।
झ. बाँसनि मार मची मनौ रुपे सुभट रनधीर[8]।

ऐसे महत्वपूर्ण उल्लेखो के अभाव में भी 'सारावली' को कोई अष्टछापी सूरदास की ही रचना मानता रहे, तो सिवा उसके दुराग्रह की सराहना के और क्या कहा जा सकता है ?

वसंत-लीला के अंत मे 'सारावली'-कार ने यमुना-विहार का वर्णन एक छंद मे किया है—

जमुना-जल क्रीड़त ब्रजबासी संग लिये गोबिंद।
सिंहद्वार आरती उतारति जसुमति आनँद कंद[9]॥

'सूरसागर' मे फाग के पश्चात् यमुना विहार को लेकर कई पद लिखे गये हैं जिनके सामने 'सारावली' का उक्त छंद बहुत सामान्य है। यशोदा द्वारा आरती किये जाने का वर्णन अवश्य 'सूरसागर' मे नहीं है और न इस अवसर पर वह आवश्यक ही है।

'सारावली' के अगले दो छंदो (१०८८-८९) मे ब्रज के वनों के नाम गिनाये गये हैं और तदनंतर छह छंदो में (१०९० से ९५ तक) ब्रज-

१. 'सूरसागर', पद १०-२८७२।
२. वही, पद १०-२८८६।
३. वही, पद १०-२८९०।
४. वही, पद १०-२८९३।
५. वही, पद १०-२८९५।
६. वही, पद १०-२९०१।
७. वही, पद १०-२९०३।
८. वही, पद १०-२९०५।
९. 'सारावली', छंद १०८७।

मोहन के चरित्र की परंपरा का उल्लेख हुआ है। 'सूरसागर' मे भी वैसे संकेत कहीं-कहीं मिलते है। उक्त सभी छंद बहुत साधारण हैं।

'सारावली' का अगला छंद इस प्रकार है—

बृंदाबन हरि यहि बिधि क्रीड़त सदा राधिका संग।
भोर निसा (न) कबहुँ जानत है सदा रहत इक रंग[1] ॥

उक्त छंद का दूसरा चरण थोड़े हेर-फेर के साथ 'सारावली'-कार पहले भी लिख चुका है—

निसा-भोर कबहूं नहि जानत प्रेम-मत्त अनुराग[2]।

अगले दो छंद 'सारावली'-कार की 'प्रवीणता' की देन हैं—

सघन कुंज मे खेलत गिरिधर मथुरा की सुधि आई।
राखे बरजि राधिका रानी अब न सकौगे जाई ॥
राखौ कंठ लगाय लाल को पलक ओट नहि करिहौं।
जुग कुच बीच भुजा दोउन मिलि सदा प्रेम रँग भरिहौं[3] ॥

प्रश्न है कि जब वृंदावन निज धाम का उल्लेख श्रीकृष्ण स्वयं अनेक बार श्रीमुख से कर चुके हैं, तब मथुरा का स्मरण उन्हें होता ही किस कारण है ? स्वयं 'सारावली' कार ने इस कारण की ओर कोई संकेत नहीं किया है और उक्त छंद लिखने की प्रेरणा उसको संभवत: 'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियो से मिली है—

अब न जान गृह देउँ पियारे, जब आए तब भाग।
ता दिन तै बृषभानु-नंदनी अनत जान नहि दीन्हे।
सूरदास प्रभु प्रीति पुरातन, इहि बिधि रस-बस कीन्हे[4]।

'सारावली' के अगले तीन छंदों में से पहले और तीसरे मे तो पिछली बातें ही दोहरायी गयी हैं, दूसरे में संकर्षण के मुख से निकली हुई अग्नि से सारे ब्रह्मांड में मानो होली 'पजार' दिये जाने की बात कही गयी है—

१. 'सारावली', छंद १०९६।
२. वही, छंद १००५।
३. वही, छंद १०९७-९८।
४. 'सूरसागर', पद १०-२७३४।

सदा एकरस एक अखंडित आदि अनादि अनूप ।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत बिहरत जुगुल स्वरूप ॥
संकर्षन के बदन अनल तें उपजी अगिनि अपार ।
सकल ब्रह्माड तुरत तेज सो मानो होरी दई पजार ॥
सकल तत्व ब्रह्माड देव पुनि माया सब बिधि काल ।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन सब है अंस गोपाल[१] ॥

'सूरसागर' मे प्रथम और तृतीय छंद की बाते तो मिलती ही हैं, द्वितीय छंद मे 'सारावली'-कार की स्वतंत्र कल्पना है ।

'सारावली'-कार के अगले दो छंद इस प्रकार हैं—

कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो ।
श्री बल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो ॥
ता दिन ते हरि-लीला गाई एक लच्छ पद बंद ।
ताको सार सूर सारावलि गावत अति आनंद[२] ॥

'सूरसागर' मे इन पंक्तियो का आधार नही मिलता । इनकी विस्तृत समीक्षा पीछे की जा चुकी है[३] ।

'सारावली' के अंतिम चार छंद ये हैं

तब बोले जगदीस जगतगुरु सुनो सूर मन गाथ ।
तू कृत मम जस जो गावैगो सदा रहै मम साथ ॥
धरि जिय नेम सूर सारावलि उत्तर दच्छिन काल ।
मन बाछित सबही फल पावै मिटै जन्म जंजाल ॥
सीखै सुनै पढै मन राखै लिखै परम चित लाय ।
ताके संग रहत हौं निसि दिन आनंद जन्म बिहाय ॥
सरस सम्मतसर लीला गावै जुगल चरन चित लावै ।
गरभ बास बंदीखाने मे सूर बहुरि नहि आवै[४] ॥

उक्त छंदों मे से प्रथम तीन में जगद्गुरु जगदीश का सूरदास के लिए एक प्रकार का वरदान वर्णित है । इसकी चर्चा कहीं 'सूरसागर' में

१. 'सारावली', छंद १०९९-११०० और ११०१ ।
२. वही, छंद ११०२-३ ।
३. प्रस्तुत पुस्तक, पृ० ९२ से ९६ ।
४. 'सारावली', छंद ११०४ से ७ ।

नहीं है। तब क्या यह समझा जाय कि उस काव्य की रचना करने पर तो 'जगदीश' ने प्रसन्न होकर सूर को वरदान देने की आवश्यकता नहीं समझी, 'सारावली' की रचना के पश्चात् इतने संतुष्ट हुए कि बिना उक्त वरदान दिये उनसे रहा ही नहीं गया ? दूसरी बात यह कि तीसरे छंद में सीखने, सुनने, पढ़ने, और मन मे रखने तक तो ठीक, 'लिखने' से क्या तात्पर्य है ? यह शब्द 'लीला-गान' या 'काव्य-रचना' की ओर संकेत करता है या दूसरो के रचे कृष्ण-काव्य की 'सूचनिका' बनाने से अथवा उसकी प्रतिलिपि तैयार करने से ? निष्पक्षता से देखा जाय तो यह शब्द 'सारावली'-कार की 'करतूत' की ओर ही स्पष्ट संकेत करता है।

'सूरसागर' मे भी इमसे मिलते जुलते कथन कई पदो मे मिलते हैं जिनमे से दो की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

क. सूरदास यह लीला गावै। हरि-पद-सरन अछै फल पावै[1]।

ख. राधा-कृष्न-केलि कौतूहल, स्रवन सुनै, जो गावै।
तिनकै सदा समीप स्याम, नितहीं आनंद बढावै।
कबहुँ न जाहि जठर पातक जिनकौं यह लीला भावै।
जीवन मुक्त सूर सो जग मै, अंत परम पद पावै[2]।

सोचने की बात है कि जो कवि 'सूरसागर' जैसी रचना में केवल सुनने गाने पर ही श्याम का कृपापात्र हो जाने का आश्वासन देता है, वह 'सारावली' की तरह वहाँ भी विस्तार से अन्य बातों का उल्लेख क्यों नहीं करता ?

अंतिम छंद में 'सारावली'-कार का कथन है जिसके दूसरे चरण का 'गरभवास बंदीखाने' का प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष संबंध 'सूरसागर' के द्वितीय उद्धरण के 'जठर पातक' से स्थापित किया ही जा सकता है।

ऊपर 'सारावली', 'सूरसागर' और 'श्रीमद्भागवत्' के अवतरणों को उद्धृत करके तुलनात्मक दृष्टि से उन पर जो विचार किया गया है, उसका एक निश्चित क्रम है। प्रथमतः दोनो ग्रंथो के रचयिताओ की विचार-धारा, उद्देश्य-आदर्श, चरित्रचित्रण, वर्ण्य विषय आदि की परस्पर तुलना करके हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि 'सारावली' में वर्णित

१. 'सूरसागर', पद १०-२४७३।
२. वही, पद २८२६।

अधिकांश प्रसंग 'सूरसागर' के कथा-क्रम के अनुसार और उसी के आधार पर हैं। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि 'सारावली'-कार ने अपने ग्रंथ का जिस रूप मे 'नामकरण' किया है और 'दृष्टिकूट-सूचनिका' लिखकर जिसकी ओ पुनः सकेत किया है, वह बिलकुल ठीक है और वस्तुतः 'सारावली' उतने 'सूरसागर' का सूचीपत्र है—उतने 'सूरसागर' का नहीं जितना अवस्था अथवा संवत् विशेष तक लिख गया था, प्रत्युत उतने का जितना वह कवि प्राप्त कर सका था और उसमे भी उतने भाग का—जितना वह हृदयंगम कर सका था। 'सूरसागर' के अनेक पद, वाक्यांश, उपवाक्य और वाक्य तक उसमे मिलने के दो कारण हैं—एक तो यह कि 'सारावली'-कार अपनी 'सूची' को अधिक से अधिक प्रामाणिक रूप देना चाहता था और दूसरा यह कि शब्द-संपत्ति की दृष्टि से, अष्टछापी सूरदास की तुलना म, वह बिलकुल कंगाल था और जो महान दायित्व उसने उठाया था, उसका निर्वाह इस प्रकार उधार माँगे-जाँचे—'चोरी किए' न कहना चाहें यो मत कहिए—चल ही नहीं सकता था।

सारे ग्रंथ की रचना में, 'सारावली'-कार ने केवल आठ-दस स्थलों पर, प्रसंग या वर्ण्य-विषय का आधार 'सूरसागर' को छोड़कर 'श्रीमद्-भागवत्' को बनाया है। सप्रदाय में परम मान्य इस 'भागवत्' का इतना कम उपयोग अष्टछापी सूरदास तो कर नहीं सकता जो बार बार उसका आधार लेने की घोषणा करता है ऐसा तो कोई भिन्नादर्श वाला व्यक्ति ही हो सकता है और स्पष्टतः वह व्यक्ति ऐसा है जिसे न सस्कृत' का ज्ञान है, न जिसने 'श्रीमद्भागवत्' पढ़ी है और न जिसमें उसे हृदयंगम करने की बुद्धि ही है। वस्तुत वह अवस्था मे 'सरसठ बरस' का होने पर भी, बौद्धिक योग्यता की दृष्टि से 'लघुमति दुर्बल बाल' जैसा ही है। अतएव आठ-दस स्थलो पर 'श्रीमद्भागवत' के जिन कथा-प्रसंगो या भावो का समावेश 'सारावली' मे करने को वह प्रवृत्त हुआ है, वे भी उसने कथा प्रवचनों जैसे अवसरों पर ही कुछ ध्यान से सुने होंगे।

इस प्रकार 'सारावली' का मुख्य आधार 'सूरसागर' ही है और उसकी 'सूची' या 'सारावली' प्रस्तुत करना ही लेखक का मुख्य उद्देश्य है। प्रायः प्रत्येक प्रसंग को लेकर दोनों ग्रंथों के उदाहरण इसी बात को सिद्ध करने के लिए विस्तार से दिये गये हैं। 'श्रीमद्भागवत' के उदाहरण सर्वत्र केवल उन्हीं प्रसंगों में दिये गये है जो 'सूरसागर' मे नही हैं, अथवा भिन्न रूप में हैं। दो-एक प्रसंग 'सारावली' में ऐसे भी हैं जो 'सूरसागर' और 'श्रीमद्भागवत', दोनो ग्रंथो मे नहीं हैं।

ऐसे उल्लेखों का स्रोत या आधार खोजने का हमने प्रयत्न ही नहीं किया है, यद्यपि वैसा करना भी बहुत कठिन नहीं था। इसका प्रमुख कारण यह है कि 'सारावली' में ऐसे जो दो-तीन स्थल मिलते हैं, जिनके संबंध में पीछे लिखा जा चुका है, वे इतने सामान्य हैं कि उनके न होने से न 'सारावली' का महत्व घटता था और न, होने से बढ़ा ही है। 'सारावली'-कार ने भी ऐसे उल्लेख किसी प्रतिष्ठित ग्रंथ आदि का आधार लेकर नहीं लिखे होंगे। कारण, जिस व्यक्ति ने संप्रदाय में अत्यंत मान्य 'श्रीमद्-भागवत' की ही उपेक्षा की, वह अन्य कोई ग्रंथ क्या देखेगा? अतएव स्पष्ट है कि उन दो-तीन पौराणिक प्रसंगों को साधारण अंतर के साथ प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता लेने का साहस उस सामान्य ज्ञान के बल पर उसमें आया होगा जिसका संचार यदा-कदा पौराणिक प्रवचन सुनने से उसमें हुआ होगा।

'सारावली'-कार की वर्णन-संबंधी असावधानियाँ—

'सूरसागर' की तुलना में 'सारावली' स्पष्टतः बहुत छोटी रचना है। अतएव इस बात से तो सभी सहमत होंगे कि उसके रचयिता को न किसी विषय का वर्णन विस्तार से करने का अवकाश है, न उसको दोहराने का ही। साथ-साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कोई कैसी भी स्वतंत्र रचना करे, किसी प्रसिद्ध कथा के किसी महत्वपूर्ण अंग या उल्लेख को उड़ा कर उसे पंगु बना देने का अधिकार रचयिता को नहीं होता। परंतु अष्टछापी सूरदास के नाम पर प्रचारित 'सारावली' से खटकनेवाली बातें अनेक स्थलों पर मिलती हैं जिनसे कवि की सर्वथा असावधानी ही सिद्ध होती है, रचना की स्वतंत्रता की रक्षा करने अथवा उसमें किसी प्रकार का सैद्धांतिक सार देने का प्रयत्न नहीं सूचित होता। तीनों प्रकार की असावधानियों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१. अनावश्यक विस्तार से वर्णित प्रसंग—

'सारावली' की रचना का उद्देश्य है—चौबीस अवतारों की कथा के साथ निकुंज लीला का वर्णन। चौबीस अवतारों में कपिल, ऋषभदेव, नृसिंह, राम और कृष्ण—इन पाँच अवतारों के साथ ऐसी कथा है जिसको विस्तार से लिखा जा सकता है और 'सारावली' में दो-एक अन्य प्रसंगों के साथ इन्हीं को विस्तार से लिखा भी गया है। परंतु किसी भी विषय को विस्तार देने के पूर्व आवश्यक यह होता है कि रचना के मुख्य उद्देश्य से उसके संबंध की घनिष्ठता देख लेनी चाहिए, अथवा उसकी स्थापना कर लेनी

चाहिए। 'सारावली'-कार ने इस ओर कहीं ध्यान नहीं दिया है और यह बात सबसे अधिक खटकती हे राम और कृष्ण के ही वर्णनों मे। और कवि की यह असावधानी तब कितने आश्चर्य में डालती है जब हम देखते हैं कि चौबीस अवतारों मे सबसे अधिक विस्तार इन्ही दो को दिया गया है।

श्रीराम की बाललीला का वर्णन 'सारावली'-कार उस रूप मे विस्तार से लिखता है जिस प्रकार 'सूरसागर' में श्रीकृष्ण लीला वर्णित है। यह सारा विस्तार अनावश्यक है और विशेष कर उस स्थिति में तो यह बड़ा दोष भी हो जाता है जब पाठक देखता है कि निकुंज लीला मे भाग लेनेवाले उन श्रीकृष्ण का वर्णन 'सारावली' में इससे चौथाई भी नहीं मिलता जिनके संबंध मे 'सूरसागर' मे इस प्रसंग को लेकर लगभग पॉच सौ पद लिखे गये है। बाल-राम का शृंगार-वर्णन करते हुए कवि दस-बारह छंद लिखता है और बाल-कृष्ण को लेकर एक भी छंद नही—यह कितनी अद्भुत बात है! क्या इसका समर्थन किसी भी सिद्धांत की आड़ लेकर किया जा सकता है?

इसी प्रकार श्रीकृष्ण की ब्रजलीला को छोड़कर, जिसका घनिष्ठतम संबंध निकुंज-लीला से है, उनकी मथुरा और द्वारका की अनेक लीलाओं का—जैसे मुचकुंद-कथा, शिशुपाल-वध-प्रसंग आदि—विस्तार से वर्णन करना भी असगत प्रतीत होता है।

२. 'सारावली' मे दोहराये गये प्रसंग—

यो तो, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, ग्रंथ के मुख्य विषय से प्रत्यक्ष संबंध न रखनेवाले प्रसगो को अनावश्यक विस्तार देना खटकने वाली ही बात है, फिर भी, परोक्ष संबंध की ओर सकेत करके उनके समावेश को, किसी सीमा तक, क्षम्य सिद्ध किया जा सकता है, परंतु अनेक सामान्य प्रसंगो का 'सारावली' मे दोहराया जाना तो निश्चय ही उसका बहुत बड़ा दोष है और उसके स्वतंत्र-पक्ष की मान्यता को सहज ही असिद्ध कर देता है। इस प्रकार की असावधानी के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है—

क. उन्नीसवें बीसवें छंदो के एक-एक चरण मे 'सारावली'-कार ने कपिलदेव के अवतार की कथा लिखी है। यही बात आगे पचपन संख्यक छंद मे दोहरायी गयी है।

ख. बाईसवें-तेईसवे छंद मे 'ध्रुव' की जो कथा है, वही आगे विस्तार से इकहत्तर से बयासी संख्यक छंदो में लिखी गयी है।

ग. चौबीसवें छंद में 'पृथु' अवतार की कथा है। यही पुन: चौरासी संख्यक छंद में कही गयी है।

घ. सैंतीसवें-अड़तीसवें छंदों मे स्वायंभुव मनु और शतरूपा की जो कथा है, वही पुन. एक सौ सैंतीसवें छंद मे मिलती है।

ङ. तेंतालीसवें छंद मे 'सनकादिक' अवतार की कथा है। यही कुछ विस्तार मे तिरसठ-चौंसठ संख्यक छंद मे वर्णित है।

च. दत्तात्रेय के चौबीस गुरु करने का उल्लेख पहले बासठवें छंद मे मिलता है; फिर इसको आठ सौ तेंतालीसवें छंद मे दोहराया भी गया है।

छ. परशुराम का अवतार भी दो स्थानो पर वर्णित है—पहले एक सौ उनतालीसवें छंद मे और फिर तीन सौ सत्रहवें छंद मे।

ज. 'बन मै मित्र हमारौ एक है" कहकर जिस बात का उल्लेख पाँच सौ बावनवें छंद में किया गया है, वही फिर छब्बीस छंद बाद 'मित्र एक बन बसत हमारौ' कहकर दोहराया गया है।

प्रसगो की आवृति के इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी 'सारावली' मे मिल सकते है। 'सारावली' के समर्थकों से हम पूछना चाहते हैं कि क्या इनमे से कोई भी उल्लेख ऐसा है जिसका दोहराया जाना सैद्धांतिक दृष्टि से आवश्यक हो ? यदि नही तो क्या इससे 'सारावली'-कार की असावधानी नही सिद्ध होती ? और क्या वे 'सूरसागर' के रचयिता से इस प्रकार की असावधानी की आशा करते है ?

३. प्रसिद्ध कथाओ के महत्वपूर्ण प्रसंगो का लोप—

राम और कृष्ण, दोनो की कथाएँ 'सारावली' मे बहुत विस्तार से वर्णित है—प्रथम, लगभग दो सौ छंदो मे और द्वितीय, लगभग छह सौ छंदों में। 'सारावली'-कार ने दोनो ही कथाओ के अनेक मर्मस्पर्शी स्थलो का लोप करके जिस हृदयहीनता का परिचय दिया है उसको देखकर भी यदि कोई आलोचक उसे ही 'सूरसागर का रचयिता भी कहता है तो हमारी सम्मति में तो इससे बढ़कर हृदयहीनता की बात हो ही नहीं सकती। दोनों प्रसंगों के उन मर्मस्पर्शी स्थलों की ओर, जो 'सारावली'-कार ने उड़ा दिये हैं, पीछे संकेत किया जा चुका है; जैसे राम कथा में लक्ष्मण-शक्ति और रावण वध, दोनों महत्वपूर्ण बातो का उल्लेख ही नहीं हुआ है। इसी प्रकार कृष्ण-कथा के भी अनेक मार्मिक प्रसंग 'सारावली' मे नहीं है।

उक्त प्रसंगो का 'सारावली' में न होना क्या यह नहीं सूचित करता कि महाकवि सूरदास की प्रतिभा की बात तो बहुत दूर, उसके रचयिता मे तो सामान्य से सामान्य मानवोचित सहृदयता और कविजनोचित भावुकता तक का सर्वथा अभाव है ?

४. वर्णन-संबंधी अन्य असावधानियाँ—

'सारावली'-कार की वर्णन-संबंधी जिन असावधानियों की चर्चा ऊपर की गयी है, उनके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार की खटकनेवाली बातें उसम मिलती हैं जिनमें मे कुछ इस प्रकार हैं—

क. उनचासवें छद में यज्ञाग्नि मे भस्म हो जाने के पश्चात्, 'दच्छ' प्रजापति की पुत्री सती के, पुन: 'दच्छ'-गृह मे जन्म लेने की बात कही गयी है—बहुरि दच्छ-गृह जाई', जब कि उनका पुनर्जन्म 'हिमाचल' के यहाँ होना सर्वप्रसिद्ध है।

ख. पचासवें छंद के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध में 'आकुती दई रुचि प्रजापति' का 'जज्ञपुरुष अवतार' से स्पष्ट संबंध न होने से वैसा लिखना भी कवि की असावधानी ही सूचित करता है।

ग. राम-कथा मे धनुष टूटने पर परशुराम का आगमन बताया गया है; परंतु वहाँ आकर भी न वे कुछ कहते है, न करते हैं और दर्शक मात्र बनकर रह जाते हैं। फलस्वरूप बरात के विदा होने के समय तक उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ती है जिसमे मार्ग मे सबको रोककर अपना 'पार्ट अदा' कर सकें।

घ. राम वनवास के समय सीता के तो साथ चलने की बात कवि कहता है, परंतु लक्ष्मण भी साथ आये है, इसका उल्लेख पहली बार उस समय किया जाता है जब चित्रकूट में भरत-मिलन समाप्त हो जाता है, अयोध्यावासी लौट जाते हैं और राम दंडकवन की ओर बढ़ने की योजना बनाते हैं।

ङ. पिता दशरथ की अंत्येष्टि करनेवाले भरत और उनकी माताओं का स्वरूप और वेश-विन्यास 'सारावली'-कार ने पूर्ववत् सामान्य ही चित्रित किया है—न उनका सिर मुंडित है और न माताओ का वेश विधवाओ जैसा है—तभी तो राम सबसे मिलते-भेंटते हैं और उसी प्रकार पिता से भी मिलने की आशा अंत तक रखते हैं, परंतु जब वे सामने नहीं आते, तब उनको पिता की अनुपस्थिति का कारण पूछने पर वस्तुस्थिति ज्ञात होती है!

च. 'सारावली' का विभीषण श्रीराम से मिलने के लिए उस समय आता है जब ये लंका पहुँच जाते है और रावण की सभा में दूतत्व करने जाकर अंगद लौट भी आता है।

छ. राम को पुष्पक विमान लौटाने की याद उस समय आती है जब उनका तिलक हो जाता है, वेद उनकी स्तुति कर जाते हैं और 'सिव-बिरंचि नारद-सनकादिक' आदि उनके दर्शन करके लौट जाते हैं।

ज. बुद्ध अवतार, अन्य अनेक अवतारों के ही नहीं, वामन और कृष्ण अवतारों के पूर्व वर्णित है।

झ. कल्कि अवतार का उल्लेख 'सारावली'-कार ने इस रूप मे किया है जैसे यह अवतार हो चुका है, कल्कि भगवान म्लेच्छों को मारकर धर्म की स्थापना कर चुके हैं और जग मे उनका जयजयकार हो चुका है।

इस प्रकार की असावधानी के पचीसों उदाहरण 'सारावली' में मिलते हैं। इस पर भी उसे महाकवि सूरदास की रचना ही मानने का आग्रह किया जाय तो क्या कहा जा सकता है ?

'सारावली' में सूचियाँ—

'सारावली' एक छोटी सी रचना है जिसके रचयिता में यदि जरा भी बुद्धि होती तो स्थान स्थान पर अनावश्यक सूचियाँ न देकर, उपयोगी सैद्धांतिक बातें दे सकता था, परंतु स्वतंत्र रचना में, किसी का अंकुश न मान कर, अनेक छंदों में तरह-तरह की सूचियाँ देकर अपनी स्वतंत्रता के अधिकार को वह अक्षुण्ण रखता है। 'सारावली' की सूचियों मे निम्न-लिखित उल्लेखनीय है—

क. अट्ठाईस तत्व—

पृथिवी अप तेज वायु नभ संज्ञा सब्द परस अरु गन्ध।
रस अरु रूप और मन बुधि चित अहंकार मति अन्ध ॥
पान अपान ब्यान उद्दान अरु कहियत प्रान समान।
तछक धनजय देवदत्त अरु पौड्रक शंख द्युमान ॥
राजस तामस सात्विक तीनों जीव ब्रह्म सुख धाम।
अट्ठाईस तत्व यह कहियत सो कवि सूरज नाम[1] ॥

१. 'सारावली', छंद ८९-९० ।

ख. लोकपाल—

तेज, अग्नि, जग, मरुत, बरुन औ सूर्य चन्द्र ये नाम ।
मृत्यु, कुबेर, जच्छपति कहियत जहँ संकर को धाम[1] ।।

ग. ग्रह—

मंगल बुध सुक्र अरु सनि अरु राहु केतु ग्रह जान ।
रवि अरु ससि सबहिन को फगुवा दीन्हो चतुर सुजान[2] ।।

घ. पाताल—

अतल बितल अरु सुतल तलातल और महातल जान ।
पाताल और रसातल मिलिकै सातो भुवन प्रमान[3] ।।

ङ. भूमंडल के नौ खंड—

इलावर्त्त औ किम्पुरुष कुरु औ हरिबर्ष केतुमाल ।
हिरनमय रमनक भद्रासन भरत खंड सुखपाल[4] ।।

च. सातो द्वीप—

सातो द्वीप कहे सुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर ।
जंबू, प्लक्छ, क्रौंच, साक, साल्मलि, कुस, पुष्कर भरपूर[5] ।।

छ. योग के अंग—

अनसूया के गर्भ प्रगट ह्वै कियो जोग आराधि ।
जम अरु नियम प्रान प्रत्याहार धारना ध्यान समाधि ।।
आसन के सब सिद्ध जोग कर प्रगट कला जगदीस[6] ।

ज. नवधा भक्ति के प्रकार—

स्रवन, कीरतन, स्मरन पादरत, अरचन, बंदन, दास ।
सख्य और आतमा निवेदन प्रेम लच्छना जास[7] ।।

१. 'सारावली', छंद २१ ।
२. वही, छंद ३० ।
३. वही, छंद ३१ ।
४. वही, छंद ३३ ।
५. वही, छंद ३४ ।
६. वही, छंद ६०-६१ ।
७. वही, छंद ११६ ।

झ. राग-रागिनी—

ललिता ललित बजाय रिझावति मधुर बीन कर लीने।
जानि प्रभात राग पंचम पट मालकोस रस भीने॥
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारँग सुर नट जान।
सुर सॉवत भूपाली ईमन करत कान्हरो गान॥
ऊँछ अड़ान के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।
करत बिहाग मधुर केदारो सकल सुरनि सुख दीन॥
सोरठ गौड मलार सोहनी भैरव ललित बजायो।
मधुर बिभास सुनत बेलावल दंपति अति सुख पायो॥
देवगिरी देसाक देव पुनि गौरी श्री सुखरास।
जैतसिरी अरु पूर्वी टोडी आसावरि सुखरास॥
रामकली गुनकली केतुकी सुर सुघराई गाये।
जैजैवंती जगत मोहिनी सुर सों बीन बजाये॥
सूआ सरस मिलत प्रीतम सुख सिधुबीर रस मान्यो।
जानि प्रभात प्रभाती गायो भोर भयो दोऊ जान्यो[1]॥

ञ. वाद्य यंत्र—

पंचम पंच सब्द करि साजे सजि वादित्र अपार।
रुंज मुरज ढफताल बॉसुरी झालर को झंकार॥
बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत-कंडली जंत्र।
सुर सुरमंडल जल-तरंग मिलि करत मोहनी मंत्र॥
बिबिध पखावज आवज संचित बिच बिच मधुर उपंग।
सुर सहनाई सरस सारंगी उपजति तान तरंग॥
कंसताल कठताल बजावत सृंग मधुर मुहचंग।
मधुर खंजरी पटह प्रनव मिलि सुख पावत रत भंग॥
निपट न फेरी स्रवननि धुनि सुनि धीर न रहे ब्रजबाल।
मधुर नाद मुरली को सुनि कै भेंटे स्याम तमाल[2]॥

ट. ब्रज के वन—

यहि बिधि क्रीड़त गोकुल में हरि निज बृंदाबन धाम।
मधुबन और कुमुदबन सुन्दर बहुलाबन अभिराम[3]॥

१. 'सारावली', छंद १०१२ से १८ तक।
२ वही, छंद १०७२ से ७६ तक।
३. वही, छंद १०८८।

नंदग्राम संकेत खिदरबन और काम बन ग्राम।
लोह बन माठ बेलबन सुन्दर भद्र बृहद बन ग्राम[1] ॥

उक्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि 'सारावली'-कार को सूचियाँ प्रस्तुत करने का शौक है। यह ठीक है कि 'सूरसागर' में भी कुछ पदों में सूचियाँ मिलती हैं; परंतु उतने बड़े ग्रंथ में उनका समावेश खटकता नहीं, रुचिकर ही लगता है। लेकिन 'सारावली' जैसे छोटे ग्रंथ में उनके लिए अवकाश ही कहाँ था ? और विशेषकर उस स्थिति में जब वह सैद्धांतिक रचना है और इन सूचियों से सिद्धांत प्रतिपादन में किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। अतएव इनसे भी दोनों कवियों की रुचियों के अंतर पर ही प्रकाश पड़ता है।

'सारावली' में तिथि आदि का उल्लेख—

'सारावली'-कार को जिस प्रकार सूचियाँ प्रस्तुत करने का शौक है, उसी प्रकार विशिष्ट जयंतियों आदि के शुभ दिन, वार इत्यादि गिनाने में उसे आनंद होता है। इस प्रकार के उल्लेखों में निम्नलिखित मुख्य हैं—

१. श्रीराम की जन्म-तिथि जो 'सूरसागर' में भी है—'भौमवार, नौमी तिथि नीकी' [६-१७] 'सारावली' में इस प्रकार मिलती है—

पुण्य नच्छत्र, नौमी जु जन्म दिन, लगन सुद्ध सुभ बार[2]।

२. राम के विवाह की लगन—

गुरु बसिष्ठ मुनि लगन दियो सुभ, सुभ नच्छत्र, सुभ बार[3]।

३. वामन अवतार की तिथि—

भादौं श्रवण द्वादसी सुभ दिन धरयो बिप्र हरि-रूप[4]।

४. श्रीकृष्ण की जन्म-तिथि—

आठै बुद्ध रोहिनी आई संख-चक्र बपु धारौ[5]।

१. 'सारावली', छंद १०८६।
२. वही, छंद १६०।
३. वही, छंद २३१।
४. वही, छंद ३३१।
५. वही, छंद ३६५।

५. बलराम की जन्मतिथि—

भादौं देवछट्ठ कौ सुभ दिन प्रगट भए बलभाई[1]।

६. कंस वध की तिथि—

नखत उत्तरा आप बिचारयौ, काल कंस कौ आयौ[2]।

७. कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह की तिथि—

चैत्र मास पूनों को सुभ दिन सुभ नछत्र सुभ बार।
ब्याहि लई हरि देव रुक्मिनी बाढ्यो सुख जो अपार[3]॥

८. जांबवती मे विवाह करके घर लौटने की तिथि—

आस्विन सुदि नौमी कौ सुभ दिन हरि आए निज धाम[4]।

'सारावली' का काव्य-कला पक्ष—

'सारावली' को अष्टछापी सूरदास की रचना सिद्ध करनेवालो ने आज तक विस्तार से उसके कलापक्ष के संबंध में विचार ही नहीं किया है, यद्यपि वे उसकी प्रशंसा अवश्य करते हैं। वस्तुत: 'सारावली' की २२१४ पंक्तियो मे अधिक से अधिक सौ पंक्तियाँ ऐसी हैं जहाँ कवि ने किसी प्रकार की कला का प्रदर्शन करने का प्रयत्न किया है और कितने आश्चर्य की बात है कि प्राय: सभी जगह उसने सूरदास की अलंकार-योजना ज्यों की त्यो ग्रहण कर ली है। इस प्रकार की योजना का पहला प्रयत्न बयालीसवें छंद में दिखायी देता है जहाँ पृथ्वी उठाये बाराह भगवान कवि को कमल-कुसुम लेकर चलते गजराज से जान पड़ते हैं—

ते भुव-कमल कुसुम की नाईं चल मनहुँ गजराज।
कछु डर नाहिन जिय मे डरपत अति आनन्द समाज॥

उक्त छंद के लगभग सवा सौ छंद बाद श्रीराम के बाल शृंगार वर्णन के आठ-दस चरणों मे 'सारावली' कार ने पुन: अलंकार-योजना का प्रयास किया है; परंतु जैसा आगे दिखाया जायगा, वे प्राय: सभी वाक्य 'सूरसागर' से ही अपना लिये गये हैं। अतएव उनके लिए 'सारावली'-कार की निंदा ही की जा सकती है, प्रशंसा नहीं।

१. 'सारावली', छंद ४२२।
२. वही, छंद ५२५।
३. वही, छंद ६४१।
४. वही, छंद ६५१।

बाल-लीला के पश्चात् राम चरित्र को लेकर लिखे गये लगभग पौने दो सौ छंदों में एक भी पंक्ति ऐसी नहीं मिलती जिसमे कोई आलंकारिक चमत्कारपूर्ण मनोहर उक्ति या वर्णन पाठक का मन मुग्ध कर सके। इसी प्रकार कितने आश्चर्य की बात है कि श्रीकृष्ण-लीला को लेकर लिखे गये लगभग छह सौ छंदो में से एक भी ऐसा नहीं है जो काव्य के भाव या कला पक्ष की दृष्टि से सुंदर कहा जा सके और जिसको 'सूरसागर' के तद्विषयक पदों में से किसी एक की भी तुलना मे प्रस्तुत किया जा सके।

नित्य विहार-प्रसंग में अवश्य 'सारावली'-कार ने दो-चार छंदों में आलंकारिकता के समावेश का प्रयत्न किया है, परंतु जैसा पीछे उद्धृत छंदों को देखने से स्पष्ट होता है, उनमे भी सूरदास की प्रतिभा की छाया के दर्शन नही होते।

ऐसी निकृष्ट रचना 'सूरदास' के माथे मढ़कर उनकी प्रतिष्ठा घटाने का आयोजन अब तक किस लोभ से होता आया है, क्या कोई इस पर प्रकाश डाल सकता है ?

'सारावली' की भाषा—

इस शीर्षक के अंतर्गत हमे सात बातों की चर्चा करनी है—'सारावली' में 'सूरसागर' के वाक्य और वाक्यांश, 'सारावली' में वाक्यांश-आवृत्ति, विचित्र वाक्य-विन्यास, अटपटे प्रयोग, निरर्थक प्रयोग, विभक्ति प्रयोग, 'सारावली' की यह भाषा क्या सूरदास की हो सकती है।

१. 'सारावली' मे 'सूरसागर' के वाक्यांश और वाक्य—

किसी भी प्रतिष्ठित कवि ने दो स्वतंत्र ग्रंथ लिखने की योजना करने पर एक की शब्दावली के वाक्यांशो और वाक्यो का अपहरण करके अपनी भाषा-संबंधी असमर्थता का परिचय कदाचित् ही कभी दिया हो। परंतु कितने आश्चर्य की बात है कि 'सारावली' के लगभग डेढ़ सौ चरणों में 'सूरसागर' के वाक्यांश ही नहीं, वाक्य तक मिलने पर भी हिंदी के सुधी आलोचक दोनों ग्रंथो को उस महाकवि की रचना कहने में जरा नहीं सकुचाते जिसके समर्थ कवि-रूप के सभी प्रशंसक है। हम स्वीकार करते हैं कि वाक्यांशों की आवृत्ति के दस पाँच उदाहरण 'सूरसागर' में भी मिलेंगे। उदाहरणार्थ उसके प्रथम स्कंध के एक पद मे यह पंक्ति मिलती है—

कामी, कृपिन, कुचील, कुदरसन को न कृपा करि तार्यौ[१]।

दस पदों के बाद ही इस पंक्ति के तीन विशेषण इसी क्रम से दोहरा दिये गये हैं—

कामी, कुटिल, कुचील, कुदरसन अपराधी मतिहीन[२]।

चौदह पदों के बाद इनमे से तीन विशेषण फिर दोहराये गये हैं—

हौं तो कुटिल, कुचील कुदरसन[३]।

नब्बे पदों के बाद फिर सबकी आवृत्ति है—

कपटी कृपन कुचील कुदरसन दिन उठि बिषय बासना बानत[४]।

'सूरसागर' के उक्त वाक्यों में शब्द-समूह की आवृत्ति एक कारण से बहुत खटकती है और वह है विषय की एकता। संभव है, अन्य प्रसंगों में इसी क्रम में प्रयुक्त होने पर भी ये शब्द इतना न खटकते, क्योंकि नये विषय में दृष्टिकोण भी थोड़ा-बहुत अवश्य भिन्न हो जाता। इसी प्रकार प्रथम स्कन्ध के एक पद में युधिष्ठिर अर्जुन से पूछते हैं—

राजा कह्यौ, कहा भयौ तोहि, तू क्यौं कहि न सुनावै मोहि[५]।

लगभग इन्हीं शब्दों को शृंगी ऋषि के पिता अपने पुत्र से दोहराते हैं—

सुत सौं कह्यौ, कहा भयौ तोंहि। क्यौं न सुनावत निज दुख मोहिं[६]।

कुछ पदों में निम्नलिखित उपवाक्य या वाक्य भी ज्यों के त्यों दोहराये गये हैं—

१. अ. तुम सम द्वितिया और न कोई[७]।

आ. ता सम द्वितिया और न कोइ[८]।

१. 'सूरसागर', पद १-१०१।
२. वही, पद १-१११।
३. वही, पद १-१२५।
४. वही, पद १-२१७।
५. वही, पद १-२८६।
६. वही, पद १-२९०।
७. वही, पद २-३५।
८. वही, पद ६-४।

इ. तातैं द्वितिया और न कोई[1] ।
२. अ. सौ बातनि की एकै बात[2] ।
आ. सौ बातनि की एकै बात[3] ।
३. अ. कोउ न आवत नेरे[4] ।
आ. कोउ न आवत नेरे[5] ।
अ. मेरौ कह्यौ मानि करि लीजै[6] ।
आ. मेरौ बचन मानि करि लेहु[7] ।

ऐसे वाक्य थोड़े-बहुत अंतर के साथ कहीं-कहीं एक ही पद में भी मिल जाते है।

आवृत्ति संबंधी ऊपर दिये गये अधिकांश उदाहरण पौराणिक प्रसंगों के हैं जिनमें कवि ने विशेष रुचि नहीं ली है। परंतु जो विषय कवि को विशेष प्रिय है उससे संबंधित पदो में ऐसी आवृत्ति न मिलती हो, सो बात भी नहीं है। नीचे लिखे उदाहरण इस कथन की पुष्टि करते है

१. अ. कापर नैन चढाए डोलति ब्रज मै तिनुका तोर[8] ।
आ. कापर नैन चलावति आवति, जाति न तिनका तोर[9] ।
२. अ. मंदमंद मुसुक्यानि मनौ घन, दामिनि दुरि दुरि देति दिखाई[10] ।
आ. बिकसत बदन दसन अति चमकत, दामिनि दुरि दुरि देति दिखाई[11] ।
३. अ. चमकि चमकि चपला चकचौंधति, स्याम कहत मन धीर[12] ।
आ चपला चमकि चमकि चकचौधति, करति सब्द आघात[13] ।

१. 'सूरसागर', पद ८-२ ।
२. वही, पद ५-२ ।
३. वही, पद ७-२ ।
४. वही, पद १-७६ ।
५. वही, पद १-८५ ।
६ वही, पद ४-५ ।
७. वही, पद ४-५ ।
८. वही, पद १०-३१० ।
९. वही, पद १०-३२० ।
१०. वही, पद १०-६१६ ।
११. वही, पद १०-६३६ ।
१२. वही, पद १०-८७४ ।
१३. वही, पद १०-८७७ ।

परंतु 'सारावली' में तो 'सूरसागर' से शब्दावली का स्पष्ट अपहरण ही किया गया है। शब्दावली की आवृत्ति के 'सारावली' से संकलित निम्नलिखित उदाहरण किसको आश्चर्य में नहीं डाल देंगे ? यहाँ ऐसे केवल सौ उदाहरण दिये जा रहे हैं; अधिक सावधानी से मिलान और खोज करने पर ऐसी और भी बहुत सी पंक्तियाँ 'सारावली' में मिल सकती है जो 'सूरसागर' से अपहृत होगी।

१. क. प्रगट भए नरहरि बपु धरि हरि—सारा.[1]
   ख. निकसे हरि नरहरि-बपु धारि—सागर.[2] ।
२. क. असुर बल डारयो नखन बिदारी—सारा.[3] ।
   ख. नखन सौं उदर डारयौ बिदारी—सागर.[4] ।
३. क. मन्वंतर को राज दियो तुम—सार.[5] ।
   ख. करौ मन्वंतर लौं तुम राज—सागर[6] ।
४. क. निर्गुन सगुन होइ सब देख्यो, तोसों भक्त न पाऊँ—सार.[7] ।
   ख. निर्गुन-सगुन होइ सब देख्यौ, तोसौं भक्त कहूँ नहि पैहौं—सागर.[8] ।
५ क. सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी—सारा.[9] ।
   ख. सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी—सागर.[10] ।
६. क अंतरधान भए हरि तहाँ तें—सारा.[11] ।
   ख. तब नरहरि भए अंतरधान—सागर.[12] ।
७. क. घुटुरुन चलत कनक-आँगन मे—सारा.[13] ।

१. 'सारावली', छंद १२३।
२. 'सूरसागर', पद ७ २।
३. 'सारावली', छंद १२४।
४. 'सूरसागर', पद ७-६ ।
५. 'सारावली', छंद १३१।
६. 'सूरसागर', पद ७-२।
७. 'सारावली', छंद १३२।
८. 'सूरसागर', पद ७-५ ।
९. 'सारावली, छंद १३३।
१०. 'सूरसागर', पद ७-५।
११. 'सारावली' छंद १३५।
१२. 'सूरसागर', पद ७-२ ।
१३. 'सारावली', छंद १६६ ।

ख. घुटुरुन चलत स्याम मनि ऑंगन—सागर.[१] ।

८. क. दतुवन लै आई, करी मुखारी स्याम—सारा.[२] ।

ख. दतुवन लै दुहुँ करी मुखारी—सागर.[३] ।

९. क. तिलक भाल पर परम मनोहर गोरोचन को दीनो ।
मानो तीन लोक की सोभा अधिक उदय सो कीनो—सारा.[४] ।

ख. रुचिर चारु कमनीय भाल पर कुंकुम तिलक दिए ।
मानहुँ अखिल भुवन की सोभा राजति उदय किए—सागर.[५] ।

१०. क. खंजन नैन बीच नासापुट राजत यह अनुहार ।
खंजन जुग मनो लरत लराई, कीर बुझावत रार—सारा.[६] ।

ख. चंचल नैन चहूं दिसि चितवत जुग खंजन अनुहारि ।
मनहुँ परस्पर करत लराई कीर बचाई रारि—सागर.[७] ।

११. क. नासा के बेसर मे मोती बरन बिराजत चार—सारा.[८] ।

ख. बेसरि के मुकता मै झाईं बरन बिराजत चारि—सागर.[९] ।

१२. क. कुंडल ललित कपोल बिराजत—सारा.[१०] ।

ख. कुंडल लोल कपोल बिराजत—सागर.[११] ।

१३. क. कुंडल ललित कपोल बिराजत, झलकत आभा गंड ।
इंदीवर पर मनौ देखियत रवि की किरन प्रचंड- सारा.[१२] ।

ख. मनिमय जटित लोल कुंडल की आभा झलकति गंड ।
मनहुँ कमल ऊपर दिनकर की पसरीं किरनि प्रचंड—सागर.[१३] ।

१. 'सूरसागर', पद १०-९८ ।
२. 'सारावली', छंद १७० ।
३. 'सूरसागर', पद १० ४०७ ।
४ 'सारावली', छंद १७४ ।
५. 'सूरसागर', पद १०-१८२१ ।
६. 'सारावली', छंद १७५ ।
७. सूरसागर , पद १०-२११८ ।
८. 'सारावली', छंद १७६ ।
९. 'सूरसागर', पद १०-२११८ ।
१०. 'सारावली', छंद १७७ ।
११. 'सूरसागर', पद १०-१२४ ।
१२. 'सारावली', छंद १७७ ।
१३. 'सूरसागर', पद १०-१८२१ ।

१४. क. कंठसिरी बिच पदिक बिराजत, बहु माने-मुक्ता-हार।
दहिनावर्त देत ध्रुव तारे सकल नछत्र बहु बार—सारा.[१]।
ख. कठसिरी उर पदिक बिराजत, गजमोतिनि के हार।
दहिनावर्त देति मनु ध्रुव कौ मिलि नछत्र की मार—सागर.[२]।
१५. क. रतनजटित कंकन-बाजूबँद, नगन मुद्रिका सोहै।
डार डार मनु मदन बिटप तरु देखि देखि मन मोहै—सारा.[३]।
ख. रतनजटित गजरा बाजूबँद सोभा भुजनि अपार।
फूँदा सुभग फूल फूले मनु मदन बिटप की डार—सागर.[४]।
१६. क. सूर समुद्र की बूँद भई यह—सारा.[५]।
ख. सूर सिंधु की बूँद भई मिलि—सागर.[६]।
१७. क. गज अरु ग्राह लरे जल-भीतर, तब हरि सुमिरन कीन्हो—सारा.[७]।
ख. जब गज ग्रह्यौ ग्राह जल भीतर, तब हरि कौ उर ध्याए—सागर.[८]।
१८. क. छाँड़ि गरुड सुखधाम साँवरो—सारा.[९]।
ख. छाँडि सुखधाम अरु गरुड तजि साँवरौ—सागर.[१०]।
१९. क. हय गय-हेम-रतन-पाटंबर—सारा.[११]।
ख. हय-गय-रतन हेम-पाटंबर—सागर.[१२]।
२० क. तीन पैड़ बसुधा हम पावै—सारा.[१३]।
ख. तीन पैग बसुधा दै मोकौं—सागर.[१४]।

१. 'सारावली', छंद १७९।
२. 'सूरसागर', पद १०-२६१०।
३. 'सारावली', छंद १८०।
४. 'सूरसागर', पद १०-२६१०।
५. 'सारावली', छंद ३१५।
६. 'सूरसागर', पृ० ११२ वें० प्रे०।
७. 'सारावली', छंद ३२४।
८. 'सूरसागर', पद १-७।
९. 'सारावली', छंद ३२४।
१० 'सूरसागर', पद १-५।
११. 'सारावली', छंद ३३७।
१२. 'सूरसागर', पद १०-४।
१३. 'सारावली', छंद ६३६।
१४. 'सूरसागर', पद ८-१४।

२१. क. नापौ देह हमारी—सारा.[१] ।
ख. मापौ देह हमारी—सागर.[२] ।
२२. क. संख-चक्र-गदा-पद्म-चतुर्भुज—सारा.[३] ।
ख. संख-चक्र-गदा-पद्म-चतुर्भुज—सागर.[४] ।
२३. क. अजन जन्म धरि आयो—सारा.[५] ।
ख. अजन जन्म धरि आयौ—सागर.[६] ।
२४. क. नृप कूँ नाहि पतीजै—सारा.[७] ।
ख. नृप कबहूँ न पतीजै—सागर.[८] ।
२५. क. अहो बसुदेव, जाओ लै गोकुल—सारा.[९] ।
ख. अहो बसुदेव, जाहु लै गोकुल—सागर.[१०] ।
२६. क. सेष सहस फन ऊपर छाये—सारा.[११] ।
ख. सेष सहस फन ऊपर छायौ—सागर.[१२] ।
२७. क. पहुँचे आय महर मंदिर मै नैक न संका कीनी—सारा.[१३] ।
ख. पहुँचे जाइ महर-मंदिर मै मनहि न संका कीनी—सागर[१४] ।
२८. क. बालक धरि लैकै सुरदेवी—सारा.[१५] ।
ख. बालक धरि लै सुरदेवी कौ—सागर.[१६] ।

१. 'सारावली', छंद ३४१ ।
२. 'सूरसागर', पद ८-१४ ।
३. 'सारावली', छंद ३६८ ।
४. 'सूरसागर', पद १०-२४ ।
५. 'सारावली', छंद ३६८ ।
६. 'सूरसागर', पद १० ४ ।
७. 'सारावली, छंद ३७१ ।
८. 'सूरसागर', पद १० ६ ।
९. सारावली', छंद ३७१ ।
१०. 'सूरसागर', पद १० ४ ।
११. 'सारावली', छंद ३७५ ।
१२. 'सूरसागर', पद १०-४ ।
१३. 'सारावली', छंद ३७७ ।
१४. 'सूरसागर', पद १० ४ ।
१५. 'सारावली', छंद ३७७ ।
१६. 'सूरसागर', पद १०-८ ।

२६. क. 'कंस बंस को नास करत है—सारा.[१] ।
ख. कंस बंस कौ नास करत है—सागर[२] ।
३०. क. मोकूँ भई अनाहदबानी, ताते डर नहि जानी—सारा.[३] ।
ख. मोकौ भई अनाहदबानी ताते सोंच न टरई—सागर.[४] ।
३१. क. पटकत सिला गई आकासै—सारा.[५] ।
ख. पटकत सिला गई आकासहि सागर.[६] ।
३२. क. जैसे मीन करत जल-क्रीड़ा, जल मै रहत समोई ।
त्यौं तुव काल प्रगट भयौ कहुँ एक··· ·· ···· ····—सारा.[७] ।
ख. जैसैं मीन जाल मै क्रीड़त, गनै न आपु लखायौ ।
तैसेहिं कंस, काल उपज्यौ है·· ·· ··—सागर.[८] ।
३३. क. मै अपराध किए, सिसु मारे—सारा.[९] ।
ख. मै अपराध कियौ, सिसु मारे—सागर.[१०] ।
३४. क. लिख्यो न मेट्यो जाई—सारा.[११] ।
ख. लिख्यौ न मेट्यौ जाई—सागर[१२] ।
३५. क. पुनि गृह आय सेज पर सोयो, नैक नींद नहि आवै—सारा.[१३] ।
ख. चारि पहर सुख सेज परे निसि, नैकु नींद नहि आई—सागर.[१४] ।
३६. क. जागी महरि पुत्र मुख देख्यो, आनँद उर न समाई—सारा.[१५] ।

१. 'सारावली', छंद ३८१ ।
२. 'सूरसागर', पद १०-४ ।
३. 'सारावली,' छंद ३८१ ।
४. 'सूरसागर,' पद १०-४ ।
५. 'सारावली,' छंद ३८२ ।
६. 'सूरसागर,' पद १०-४ ।
७. 'सारावली,' छंद ३८४ ।
८. 'सूरसागर,' पद १०-४ ।
९. 'सारावली' छंद ३८६ ।
१०. 'सूरसागर,' पद १०-४ ।
११. 'सारावली,' छंद ३८६ ।
१२. 'सूरसागर,' पद १० ४ ।
१३ 'सारावली,' छंद ३८७ ।
१४. 'सूरसागर,' पद १०-४ ।
१५. 'सारावली,' छंद ३८९ ।

ख. जागी महरि पुत्र मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मैं न समाई—सागर.[1]।

३७ क. परबत सात तिलन के कीने—सारा.[2]।

ख. परबत सात रतन के दीने—सागर.[3]।

३८. क. द्वै लख धेनु दईं तेंहि अवसर—सारा.[4]।

ख. द्वै लख धेनु द्विजनि कौं दीनी—सागर.[5]।

३९. क. जसुमति कूख सराहि—सारा.[6]।

ख. जसुमति धन यह कोखि—सागर.[7]।

४०. क. जिन जाँचे ब्रजमति उदार अति, जाचक फिर न कहाए—सारा.[8]।

ख. नंद पौरि जे जाँचन आए, बहुरौ फिर जाचक न कहाए—सागर.[9]।

४१. क. प्रथम पूतना कंस पठाई—सारा.[10]।

ख. प्रथम कंस पूतना पठाई—सागर.[11]।

४२. क. घसिकै गरल लगाय उरोजन—सारा.[12]।

ख घसिकै गरल चढाइ उरोजनि—सागर.[13]।

४३, क. लीन्हे खैंच प्रान बिष पय युत—सारा.[14]।

१. 'सूरसागर,' पद १०-१३ ।
२. 'सारावली,' छंद ३९३ ।
३. 'सूरसागर,' पद १०-३२ ।
४. 'सारावली,' छंद ३९२ ।
५ 'सूरसागर,' पद १०-३२ ।
६. 'सारावली,' छंद ४०२ ।
७. 'सूरसागर,' पद १०-२८ ।
८ 'सारावली,' छंद ४१२ ।
९. 'सूरसागर,' पद १०-३२ ।
१० 'सारावली,' छंद ४१५ ।
११. 'सूरसागर,' पद १०-५१ ।
१२ 'सारावली,' छंद ४१५ ।
१३ 'सूरसागर,' पद १७-४९ ।
१४ 'सारावली,' छंद ४१६ ।

ख. पय सँग प्रान ऐंचि हरि लीन्हौ—सागर.[1] ।

४४. क. छाँड़ि छाँडि कहि परी धरनी पर—सारा.[2] ।

ख. गई मुरछाइ परी धरनी पर—सागर.[3] ।

४५. क. मारी लात स्याम पलना ते, परयो धरनि भहराय—सारा.[4] ।

ख. नैंकु फटक्यौ लात ` गिरयौ भहरात—सागर.[5] ।

४६. क. तृनावर्त बिपरीत महाखल—सारा.[6] ।

ख. अति बिपरीत तृनावर्त—सागर.[7] ।

४७. क. चक्रबात ह्वै सकल घोष मैं—सारा.[8] ।

ख. बातचक्र मिस ब्रज ऊपर परि · सागर.[9] ।

४८. क. चल्यौ उठाय गोपाल व्योम मैं—सारा.[10] ।

ख. ··· स्याम ·· ···· लेत उड़यौ, आकास चढायौ—सागर.[11] ।

४९. क. पटक्यो सिला ·· छिन्न निरजीव करायो—सारा.[12] ।

ख. मारयौ असुर सिला सौं पटक्यौ—सागर.[13] ।

५०. क. कंठ चाँपि बहु बार फिरायो, पटक्यो नृप के पास—सारा.[14] ।

ख. कंठ चाँपि बहु बार फिरायौ, गहि फटक्यौ, नृप पास परयौ—सागर.[15] ।

१ सूरसागर,' पद १०-५१ ।
२. 'सारावली,' छंद ४१७ ।
३. 'सूरसागर,' पद १०-५२ ।
४ 'सारावली,' छंद ४२५ ।
५. 'सूरसागर,' पद १०-६२ ।
६ 'सारावली,' छंद ४२८ ।
७. 'सूरसागर,' पद १० ७७ ।
८. 'सारावली,' छंद ४२८ ।
९ 'सूरसागर,' पद १०-७७ ।
१०. 'सारावली,' छंद ४२९ ।
११ 'सूरसागर,' पद १०-७७ ।
१२ 'सारावली,' छंद ४२९ ।
१३ 'सूरसागर,' पद १०-७७ ।
१४ 'सारावली,' छंद ४३५ ।
१५ 'सूरसागर,' पद १०-५९ ।

५१. क. एक जाम में बचन कह्यौ यह, प्रगट भयो तुव नास—सारा.[१]।
ख. बीतैं जाम बोलि तब आयौ, सुनहु कंस, तव आइ सरयौ—सागर.[२]।

५२. क. इततैं नंद महर बोलत हैं, उततैं जननि बुलावत—सारा.[३]।
ख. इततैं नंद बुलाइ लेत है, उततैं जननि बुलावै—सागर.[४]।

५३. क. सुंदर स्याम खिलौना कीन्हौ—सारा.[५]।
ख. स्याम खिलौना कीन्हौ री—सागर.[६]।

५४. क. मधु-मेवा-पकवान-मिठाई बिबिध खिलौना लावत—सारा.[७]।
ख. मधु-मेवा-पकवान-मिठाई ... ... लेहु मेरे लाल खिलौना—सागर.[८]।

५५. क. सब ब्रज-नारि उराहन आई—सारा.[९]।
ख. ग्वालिनि उरहन कैं मिस आई—सागर.[१०]।

५६. क. मै नाहिन दधि खायौ—सारा[११]।
ख. मै नहि माखन खायौ—सागर.[१२]।

५७. क. जानी बहुत बिकल जननी को, हरि पकराई दीनी—सारा.[१३]।
ख. जब जानी जननी अकुलानी, आपु बँधाये सारँगपानी—सागर.[१४]।

१ 'सारावली,' छंद ४३५।
२ 'सूरसागर,' पद १०-५६।
३ 'सारावली,' छंद ४३८।
४ 'सूरसागर,' पद १०-६८।
५. 'सारावली,' छंद ४३८।
६. 'सूरसागर,' पद १०-६८।
७ 'सारावली,' छंद ४३६।
८. 'सूरसागर,' पद १०-१६२।
६ 'सारावली,' छंद ४४४।
१०. 'सूरसागर,' पद १०-३०३।
११ 'सारावली,' छंद ४४४।
१२. 'सूरसागर', पद १० ३३४।
१३ 'सारावली,' छंद ४५०।
१४. 'सूरसागर,' पद १० ३६१।

५८. क ऊखल दाम बँधे हरि—सारा.[१]।
ख. बाँधे ऊखल स्याम—सागर.[२]।
५६. क. देखि दुखित द्वै सुत कुबेर के—सारा.[३]।
ख. दुखित जानि दोउ सुत कुबेर के—सागर.[४]।
६०. क. परे बृछ भहराय सारा.[५]।
ख. तरु दोउ धरनि गिरे भहराय—सागर[६]।
६१. क. भयौ सब्द आघात—सारा.[७]।
ख. आघात सब्द सुनाय—सागर.[८]।
६२. क. बहु उत्पात रहत है गोकुल—सारा.[९]।
ख. गोकुल होत उपद्रवनि नितप्रति—सागर.[१०]।
६३. क. अब बृंदाबन जाय रहेंगे—सारा.[११]।
ख. बसिऐ बृंदाबन मैं जाई—सागर.[१२]।
६४. क. ग्वाल मंडली मध्य बिराजत—सारा.[१३]।
ख. मध्य गोपाल मंडली मोहन—सागर.[१४]।
६५. क. दावानल को पान कियो—सारा.[१५]।
ख. दावानल कौ पान कीन्हौ—सागर.[१६]।

१. 'सारावली,' छंद ४५१।
२ 'सूरसागर,' पद १०-३७६।
३. 'सारावली,' छंद ४५२।
४. 'सूरसागर,' पद १०-३४६।
५. सारावली,' छंद ४५४।
६ 'सूरसागर,' पद १०-३८७।
७ 'सारावली,' छंद ४५४।
८ 'सूरसागर,' पद १०-३८७।
६ 'सारावली,' छंद ४६०।
१०. 'सूरसागर,' पद १०-४०२।
११ 'सारावली,' छंद ४६१।
१२. 'सूरसागर,' पद १०-४०२।
१३ 'सारावली,' छंद ४६३।
१४. 'सूरसागर,' पद १०-४१६।
१५ 'सारावली,' छंद ४७४।
१६. 'सूरसागर,' पद १०-४६८।

६६. क. लैकै चीर कदंब चढे हरि—सारा.[1] ।
ख. लै सब चीर कदंब चढि बैठे—सागर.[2] ।
६७. क. बरुन लोक मे गये कृपा करि—सारा.[3] ।
ख. बरुन लोक तबही प्रभु आए—सागर.[4] ।
६८. क. आगै मिल्यो सुदामा माली, फूलमाल पहिराई—सारा.[5] ।
ख. बीच माली मिल्यौ… …पुहुपमाला स्याम कंठ धारे—सागर.[6]
६९. क. बंधन छोर पिता-माता के—सारा.[7] ।
ख. माता-पिता बंदि तै छोरे—सागर.[8] ।
७०. क. कुबिजा के घर आप पधारे—सारा.[9] ।
ख. हित कुबिजा कै धाम सिधारे—सागर.[10] ।
७१. क. (ऊधौ) बेग जाव ब्रज—सारा.[11] ।
ख. ऊधौ बेगिही ब्रज जाहु—सागर[12] ।
७२. क. पाती लिखी आप कर मोहन—सारा.[13] ।
ख. स्याम कर पत्री लिखी बनाइ—सागर.[14] ।
७३. क. धौरी धूमरि… … गाय—सारा.[15] ।
ख. धौरी-धूमरि गाय—सागर.[16] ।

१ 'सारावली,' छंद ४७६ ।
२ 'सूरसागर,' पद १०-७८८ ।
३ 'सारावली,' छंद ४८१ ।
४ 'सूरसागर,' पद १०-९८४ ।
५ 'सारावली,' छंद ५०१ ।
६ 'सूरसागर,' पद १०-३०५१ ।
७ 'सारावली,' छंद ५२९ ।
८ 'सूरसागर,' पद १०-३०८७ ।
९ 'सारावली,' छंद ५४४ ।
१०. 'सूरसागर,' पद १० ३१०९ ।
११. 'सारावली,' छंद ५४८ ।
१२ 'सूरसागर,' पद १०-३४२७ ।
१३. 'सारावली,' छंद ५५० ।
१४ 'सूरसागर,' पद १०-३४३६ ।
१५ 'सारावली,' छंद ५५१ ।
१६ 'सूरसागर,' पद १०-३४३८ ।

७४. क. पोष्यो पय प्याय—सारा.[1] ।
ख. बड़े किए पय प्याय—सागर.[2] ।
७५. क. बन मे मित्र हमारौ एक है—सारा.[3] ।
ख. मित्र एक बन (मन) बसत हमारौ (हमारै)—सागर.[4] ।
७६. क. ताकौं पूजि बहुत सिर नइयो—सारा.[5] ।
ख. करि करि समाधान'' ''ताकौं (मोकौ) माथौ नाइहै—सागर.[6] ।
७७. क. अपने रथ बैठाय प्रीति सौं, उद्धव ब्रज पठराये—सारा.[7] ।
ख. अपनौ ही रथ तुरत मँगायौ, दियौ तुरत पलनाइ—सागर.[8] ।
७८. क. तब एक सखी कह्यौ री तू सुनि सुफलक सुत फिर आयौ—सारा[9] ।
ख. बहुरि सखी, सुफलक सुत आयौ—सागर.[10] ।
७९. क. प्रान गयो लै—सारा.[11] ।
ख. प्रान हमारे तबहि लै गयौ—सागर.[12] ।
८०. क. पहिलै ही इन हती पूतना, बाँधे बलि कौ दान—सारा.[13] ।
ख. पय प्यावत पूतना सँहारी, छले जु बलि से दानी—सागर.[14] ।
८१. क. सूपनखा ताड़का सँहारी, स्याम सहज यह बान—सारा.[15] ।

१ 'सारावली,' छंद ५५१ ।
२ 'सूरसागर,' पद १०-३४३८ ।
३ 'सारावली,' छंद ५५२ ।
४ 'सूरसागर,' पद १०-३४४६ ।
५ 'सारावली,' छंद ५५३ ।
६ 'सूरसागर,' पद १०-३४४६ ।
७ 'सारावली,' छंद ५५५ ।
८. 'सूरसागर,' पद १०-३४५१ ।
९ 'सारावली,' छंद ५६२ ।
१०. 'सूरसागर,' पद १०-३४८१ ।
११ 'सारावली,' छंद ५६२ ।
१२. 'सूरसागर,' पद १०-३४८१ ।
१३ 'सारावली,' छंद ५६६ ।
१४ 'सूरसागर,' पद १०-३८३६ ।
१५. 'सारावली,' छंद ५६६ ।

ख. सूपनखा नासिका निपाती, सूर सदा यह बानि—सागर.[1] ।

८२. क. जो तुम्हारे कर सर न गहाऊँ, गंगा-सुत न कहाऊँ—सारा.[2] ।

ख. आजु जौ हरिहि न सस्त्र गहाऊँ ।
लौ लाजौ गंगा-जननी कौं, सांतनु सुत न कहाऊँ—सागर.[3] ।

८३. क. सीतल भई चक्र की ज्वाला जब सिर तिलक निहारी—सारा.[4] ।

ख. .. . परी तिलक पर दीठि ।
सीतल भई चक्र की ज्वाला . .. ... —सागर.[5] ।

८४. क. बढे असुर पुहुमी पर—सारा.[6] ।

ख. प्रबल असुर पुहुमी बढे—सागर.[7] ।

८५. क. जौ प्रभु देह धरै नहि भुव पर, दीन अधम को तारै—सारा.[8] ।

ख. जौ प्रभु देह न धरै, दीन कौं कौन उधारै—सागर.[9] ।

८६. क. तेहि घट मेरो बास—सारा.[10] ।

ख. ता घट मेरौ बास - सागर.[11] ।

८७. क. जब जसुमति नै ऊखल बाँधे हमहीं दीन्हे छोर—सारा.[12] ।

ख. जसुमति जब ऊखल सौं बाँध्यौ, हमहीं छोरयौ जाइ सागर.[13]

८८. क. कहा कँपावत बेंत—सारा.[14] ।

ख. रहहु कँपावत बेत—सागर.[15] ।

१. 'सूरसागर,' पद १०-३८३६ ।
२. 'सारावली', छंद ७०८ ।
३. 'सूरसागर', पद १-२७० ।
४ 'सारावली', छंद ७८३ ।
५. 'सूरसागर', पद १ २७४ ।
६. 'सारावली', छद ८८७ ।
७. 'सूरसागर , पद १०-१६१८ ।
८. 'सारावली', छंद ८८७ ।
९. 'सूरसागर', पद १०-१६१८ ।
१०. 'सारावली', छंद ८८९ ।
११. 'सूरसागर', पद १०-१६१८ ।
१२ 'सारावली', छंद ८९० ।
१३. 'सूरसागर', पद १०-१५५९ ।
१४. 'सारावली', छंद ८९२ ।
१५. 'सूरसागर', पद १०-४६८ ।

ख. बिरह बियोग महाजोगी ज्यौं जागत ही बीतत जुग जाम—
सागर.[1]।

६७. क. कबहुँक किसलै सेज सँवारत—सारा.[2]।
ख. कबहुँक किसलै पीठ रुचिर रचि—सागर.[3]।

६८. क. बृंदाबन निज धाम—सारा.[4]।
ख. बृंदाबन निज धाम — सागर.[5]।

६६. क. प्रथम बसंत पंचमी—सारा.[6]।
ख. प्रथम बसंत पंचमी सागर.[7]।

१००. क. उत स्यामा, इत सखा मंडली, उत हरि इत ब्रजनार—सारा.[8]।
ख. इत श्रीराधा, उत श्री गिरिधर, इत गोपी, उत ग्वाल—
सागर.[9]।

ऊपर 'सारावली' और 'सूरसागर' के जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें तो दोनों ग्रंथों का लगभग एक-एक शब्द मिलता है; इनके अतिरिक्त, 'सारावली' में अनेक पंक्तियाँ ऐसी मिलती हैं जिनमें उक्त उदाहरणों - जैसा ठीक-ठीक शब्द-साम्य न रहने पर भी इतना ज्ञात होता है कि 'सारावली'-कार ने 'सूरसागर' की ही शब्दावली का अपहरण किया है; जैसे

१. क. इतनो कहि हरि नृप देखत ही भए जु अंतर्ध्यान— सारा.[10]।
ख. यहै कहि भए अँतरध्यान तब मत्स्य प्रभु—सागर.[11]।

२. क. असुर बल डारयो नखन बिदारी—सारा.[12]।

१. 'सूरसागर', पद १०-२७८१।
२. 'सारावली', छंद ६३०।
३. 'सूरसागर', पद १० २७८१।
४. 'सारावली', छंद ६६७।
५. 'सूरसागर', पद १०-११७५।
६. 'सारावली', छंद १०२४।
७. 'सूरसागर', पद १०-२८५४।
८. 'सारावली', छंद १०४६।
६. 'सूरसागर', पद १०-२८५४।
१०. 'सारावली, छंद ६५।
११. 'सूरसागर', पद ८-१६।
१२. 'सारावली' छंद १२४।

ख. नख-प्रहार तिहि उदर बिदार्यौ—सागर.[1]।

३. क. प्रबेस कियो कपि लंका नगर मँझार—सारा.[2]।

ख. हनुमंत ······ पहुँच्यौ नगर मँझार—सागर.[3]।

४. क. असरन सरन उदार—सारा.[4]।

ख. जानि असरन सरन सूर के प्रभु कौं—सागर.[5]।

५. क. जब नृप भुअ संकल्प कियो है लागे देह पसारन—सारा.[6]।

ख. जब ही उदक दियौ बलि राजा, बामन देह पसारी—सागर.[7]।

६. क. भई अकासबानी, सुरदेवी कंस यहाँ अब आई।
तेरो सत्रु प्रगट कहूँ ब्रज में, काहु लख्यो नहि जाई—सारा.[8]।

ख. गगन गई बोली सुरदेवी, कंस मृत्यु नियराई।

— — —

तैसेहिं कंस काल उपज्यो है, ब्रज मैं जादवराई—सागर.[9]।

७. क. निज कुल बृद्ध जानि इक ढाढी, गोबर्धन तै आयौ—सारा.[10]।

ख. ·· ···· (मैं) गोबर्धन तै आयौ

— — —

हौं तो तेरे घर को ढाढी ·· ···· ··· —सागर.[11]

८. क. बाजत हुरुक-मजीरा-नूपुर, नाना भाँति नचायौ—सारा.[12]।

ख ठाढ़ी औ ढाढिनि गावै, ढाढे हुरके बजावै—सागर.[13]।

१. 'सूरसागर', पद ७-२।
२ 'सारावली', छंद २७९।
३. 'सूरसागर', पद ९ ७५।
४. 'सारावली', छंद २९०।
५. 'सूरसागर', पद ९ १११।
६. 'सारावली, छंद ३३९।
७. 'सूरसागर', पद ८ १४।
८. सारावली', छंद ३८३।
९. 'सूरसागर', पद १० ४।
१०. 'सारावली', छंद ४०६।
११. 'सूरसागर', पद १०-३५।
१२. 'सारावली', छंद ४०७।
१३. 'सूरसागर', पद १० ३१।

९. क. कंस नृपति नैं सकट बुलायो, लै कर बीरा दीन्हों—सारा.[1] ।
ख. यह सुनि नृपति हरष मन कीन्हौ, तुरतहिं बीरा दीन्हौं—सागर.[2] ।

१०. क. आय नंद-गृह द्वार नगर मैं, रूप सकट को कीन्हों—सारा.[3] ।
ख. सकट कौ रूप धरि असुर लीन्हौ—सागर.[4] ।

११. क. सनमुख जाय नयन दोउ जोरे—सारा.[5] ।
ख. तुरत आइ नैननिहिं अरयौ—सागर.[6] ।

१२. क. चोरी करत हरत दधि-माखन—सारा.[7] ।
ख. दधि-माखन चोरी कर लै हरि—सागर.[8] ।

१३. क. फोरयौ भाँड, दही आँगन में फैल परयो—सारा.[9] ।
ख. भाजन फोरि, दही सब डारयौ—सागर.[10] ।

१४. क. लै कै चीर कदब चढे हरि—सारा.[11] ।
ख. लै करि चीर कदम पर बैठे—सागर.[12] ।

१५. क. गोबर्धन धरि सब ब्रज राख्यो—सारा.[13] ।
ख. स्याम धरयौ गिरि गोबर्धन कर—सागर.[14] ।

१६. क. जज्ञ करत ब्राह्मन मथुरा के ओदक स्याम मँगायो—सारा.[15] ।

१. 'सारावली', छंद ४२४ ।
२. 'सूरसागर', पद १०-६१ ।
३. 'सारावली', छंद ४२४ ।
४ 'सूरसागर', पद १०-६२ ।
५. 'सारावली', छंद ४३४ ।
६. 'सूरसागर', पद १०-५६ ।
७. 'सारावली', छंद ४४३ ।
८. 'सूरसागर,' पद १०-२७२ ।
९. 'सारावली,' छंद ४४६ ।
१०. 'सूरसागर,' पद १० ३४२ ।
११. 'सारावली,' छंद ४७६ ।
१२. 'सूरसागर,' पद १०-७६४ ।
१३. 'सारावली,' छंद ४७८ ।
१४. 'सूरसागर,' पद १०-९३९ ।
१५ 'सारावली,' छंद ४८२ ।

ख. हरि कह्यौ, जग्य करत तहँ बाम्हन। जाहु उनहि ढिग भोजन मँागन—सागर.[१]।

१७. क. नारद आय कह्यौ नृप सौं—सारा.[२]।

ख. नारद कह्यौ, सुनौ हो राव—सागर.[३]।

१८. क. करो उपाय बचो जो चाहो—सारा.[४]।

ख. कहा बैठ, कछु करहु उपाव—सागर.[५]।

१९. क. कच गहि आप बहुत वह खैन्यौ, हरि जमुना लौ आये—सारा.[६]।

ख. केस गहे पुहुमी घिसटायौ। जारि जमुन के बीच बहायौ —सागर.[७]।

२०. क. गुरु दच्छिना देन जब लगे—सारा.[८]।

ख. दच्छिना कहौ सो देउँ मँगाई सागर.[९]।

२१. क. ... ... गुरु पतिनी यह माँग्यो।
बालक बह्यो सिंधु में हमरो सो नितप्रति चित लाग्यो—सारा.[१०]।

ख. गुरु-पतिनी कह्यौ, पुत्र हमारे मृतक भए सो देहु जिवाई —सागर.[११]।

२२. क. पीतांबर अपनो पहिरायो, श्रुति-कुंडल पहिराये—सारा.[१२]।

ख अपने अंग अभूषन करि करि आपुन ही परिराई—सागर.[१३]।

२३. क. तब ऊधौ कह्यौ धन्य-धन्य तुम, धन्य धन्य ब्रज नार।
तुम्हरे सुबस सदा हरि खेल्यो, ब्रज में करत बिहार—सारा.[१४]।

१ सूरसागर,' पद १०-८००।
२ 'सारावली,' छंद ४८५।
३ 'सूरसागर,' पद १०-२९२२।
४ 'सारावली,' छंद ४८७।
५. 'सूरसागर,' पद १०-२९२२।
६ 'सारावली,' छंद ५२८।
७. 'सूरसागर,' पद १० ३०९२।
८. 'सारावली,' छंद ५३९।
९. 'सूरसागर,' पद १०-३४११।
१०. 'सारावली,' छंद ५३९।
११. 'सूरसागर,' पद १०-३४११।
१२ 'सारावली,' छंद ५५५।
१३. 'सूरसागर,' पद १०-३४५१।
१४ 'सारावली,' छंद ५७६।

ख. धन्य ग्वाल-गोपी जु खिलाए गोदहि सारँगपानि।
धनि ब्रजभूमि, धन्य बृंदाबन, जहँ अबिनासी आए—सागर.[1]।

२४. क. मोहि खोजत षटमास बीत गये, तबहुँ न आयौ अंत—सारा.[2]।
ख. समुझि परी षटमास बितीते सागर.[3]।

२५. क. तब हरि कह्यौ, सुनौ ऊधो जू, ब्रजवासी तन मोर।
तिनकों सपन कबहुँ नहि छाँड़ौं, सत्य कहत हौं तोर—सारा.[4]।
ख. सुनि ऊधौ, मोहिं नैकु न बिसरत वै ब्रजवासी लोग—सागर.[5]।

२६. क. महासिंह निज भाग लेत ज्यौं—सारा.[6]।
ख. सिंह बलि अपनौ लीन्हौ—सागर.[7]।

२७. क. एक दिवस मृगया कौं निकस्यो कंठ महामनि लाय।
तब उन मारि सिंह गहि लीन्हौ, रीछ मिल्यो इक ताहि—सारा.[8]।
ख. इक दिन तासु अनुज लै सो मनि, गयौ अखेटक काज।
ताकौ मारि सिंह मनि लै गयौ, सिंह हतौ रिछराज—सागर.[9]।

२८. क. बन मैं बहु बर्षा जब आई, ताकौं सुधि करि लैहौ।
गुरु आए आपुन कौं बोलत, मंत्र थकायो मै हौं—सारा[10]।
ख. एक दिवस बरषा भई बन मै, रहि गए ताही ठौर।
इनकी कृपा भयौ नहि मोहि सम, गुरु आए भएँ भोर—सागर.[11]।

२९. क. ता दिन की यह कथा तुम्हारी बिसरत नाहिन मोय—सारा.[12]।

१. 'सूरसागर,' पद १०-४०६२।
२. 'सारावली', छंद ५८१।
३. 'सूरसागर', पद १०-४१४६।
४. 'सारावली', छंद ५८३।
५. 'सूरसागर', पद १०-४१५५।
६. 'सारावली', छंद ६३७।
७. 'सूरसागर, पद १०-४१८२।
८. 'सारावली', छंद ६४४।
९. 'सूरसागर', पद १०-४१९०।
१०. 'सारावली', छंद ८१२।
११. 'सूरसागर', पद १०-४२३१।
१२ 'सारावली', छंद ८१३।

ख. सो दिन मोहि बिसरत न सुदामा, जो कीन्हौ उपकार
— सागर.[१]।

३०. क. जब सुत भयो कह्यौ ब्राह्मण नैं, अर्जुन गए गृह ताह।
सर-पिंजर रोप्यो चहुँ दिस तैं, जहाँ पवन नहि जाह—सारा.[२]।

ख. पुत्र प्रसूत समय जब आयौ, बिप्रार्जुन सौं आइ सुनायौ।
अर्जुन तब सर पिंजर कियौ, पवन सँचार रहन नहि दियौ
—सागर.[३]।

३१. क. लै निज संग चले पच्छिम कौं लोकालोक सुहायो—सारा.[४]।

ख. ... पहुँचे लोकालोकहि जाय सागर.[५]।

३२. क. बहुत निबिड़तम देखि चक्रधर, धरयौ हाथ समुझायो—सारा.[६]।

ख. अंधकार मग नहि दरसाइ ... ।
चक्र-सुदरसन आगैं कियौ .. . ... —सागर.[७]।

३३. क. लै दस पुत्र द्वारिका आये, दीन्हें बिप्र बुलाय—सारा.[८]।

ख. तहँ तै पुनि द्वारावति आए, ब्राह्मन के बालक पहुँचाए
—सागर.[९]।

३४. क. जब जसुमति नै ऊखल बाँधे हमहीं दीन्हें छोरि—सारा.[१०]।

ख. जननी ऊखल बाँधती, हमहीं देतीं छोरि—सागर.[११]।

३५. क. श्रम-जल-बिंदु इंदु-आनन पर—सारा.[१२]।

ख. छिटक रही श्रम-बूँद बदन पर सागर.[१३]।

१. 'सूरसागर', पद १०-४२३१।
२. 'सारावली', छंद ८५१।
३. 'सूरसागर', पद १०-४३०६।
४ 'सारावली,' छंद ८५४।
५ 'सूरसागर,' पद १०-४३०६।
६ 'सारावली,' छंद ८५५।
७ 'सूरसागर,' पद १०-४३०६।
८ 'सारावली,' छंद ८५६।
९ 'सूरसागर,' पद १०-४३०६।
१० 'सारावली,' छंद ८६०।
११. 'सूरसागर,' पद १०-५६१८।
१२ 'सारावली,' छंद ८६८।
१३ 'सूरसागर,' पद १०-२८२६।

३६. क. बेग चलो बृषाभानुनंदनी बोलत नंदकुमार—सारा.[१] ।
ख. राधे बोलत नंदकिसोर—सागर.[२] ।

ऊपर 'सारावली' की लगभग डेढ़ सौ पंक्तियाँ हमने उद्धृत की हैं। 'सूरसागर' की पंक्तियों से उनका मिलान करने पर पूर्णतया स्पष्ट होता है कि 'सारावली'-कार ने यह अपहरण-कार्य जान-बूझकर किया है। इनके अतिरिक्त भाव-सम्य के लगभग पाँच सौ उदाहरण हम पीछे दे आये हैं। हिंदी के आलोचकों ने इस साम्य को लक्ष्य न किया हो, सो बात भी नहीं है। डा० गुप्त[३] और डा० मुंशीराम शर्मा[४] इस प्रकार के सात-सात, आठ-आठ उदाहरण अपने प्रसिद्ध ग्रंथा में बहुत पहले दे चुके थे; परंतु उन्होंने इस साम्य से 'सारावली' की प्रामाणिकता ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया। श्री द्वारकादास परीख और श्रीप्रभुदयाल मीतल ने हिंदी आलोचकों में पहली बार 'सूर-निर्णय' में, 'सारावली' और 'सूरसागर' के साम्य संबंधी उदाहरण श्रम से एकत्र किये[५], यद्यपि बहुत से उदाहरण उनसे छूट भी गये। अंत में उन्होंने अपना 'निर्णय' दिया—इनसे भी 'सारावली' के कर्ता सूरदास हैं, इस बात की पुष्टि होती है[६]। तदनंतर मीतल जी ने स्व-संपादित 'सारावली' की भूमिका में पुन: वे उदाहरण उद्धृत कर दिये जिनमें से 'सूरसागर' के कुछ के साथ नंबर नहीं हैं, कुछ के नंबर गलत है और कुछ उदाहरण छूट भी गये है। मीतल जी सुधी आलोचक हैं; अतएव 'सारावली' और 'सूरसागर' की इस 'समानता' को उन्होंने 'आश्चर्य-जनक' तो कहा, परंतु अंत मे लिखा यही कि इस आश्चर्यजनक समानता से यही सिद्ध होता है कि दोनो रचनाएँ एक ही कवि की हैं[७]।

इस संबंध में 'सारावली' के समर्थकों से हम दो बातें पूछना चाहते हैं। सूरदास की महाकवि रूप मे प्रतिष्ठा का एक कारण यह है या नहीं

१ 'सारावली,' छंद ६२१।
२. 'सूरसागर,' पद १०-२७३५।
३. 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', पृ० २८७।
४. 'सूर-सौरभ', भाग दो, पृ० ४४।
५. 'सूर-निर्णय', पृ० ११२।
६. वही, पृ० १२०।
७. 'सारावली', (मीतल), भूमिका, पृ० ४३।

कि किसी भी समर्थ कवि के समान उनके पास शब्दों का अक्षय भांडार है ? तब 'सारावली' की कुल २२१४ पंक्तियों में डेढ़ सौ के लगभग ऐसे उदाहरण क्यों मिलते हैं जो 'सूरसागर' से ज्यों के त्यों उठाकर रख लिये गये हैं ? आखिर इस आवृत्ति से किस 'स्वतंत्र सिद्धांत' का प्रतिपादन हुआ है ? क्या ऐसी प्रवृत्ति कवि सूर की प्रकृति के अनुकूल है ? क्या इस प्रकार की आवृत्ति के मूल में शब्दावली के अपहरण की स्पष्ट भावना नहीं है ? और क्या यह आवृत्ति, किसी भी दृष्टि से, समर्थ प्रतिभा के अनुरूप जान पड़ती है ?

दूसरा प्रश्न उन सुधी आलोचकों से पूछना है जिन्होंने इस प्रसंग मे गो० तुलसीदास, स्व० अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि का नाम स्वयं लिया है। क्या इन कवियों—और केवल इनके ही नहीं, किसी भी प्रतिष्ठित कवि—के दो स्वतंत्र ग्रंथों में, विस्तार अनुपात मे शब्दो और वाक्यों की वैसी पुनरावृत्ति मिलती है जैसी 'सारावली' और 'सूरसागर' मे आदि से अंत तक दिखायी देती है ?

अतएव हमारी सम्मति में तो शब्दावली की उक्त समानता वस्तुतः 'सारावली'-कार का साहित्यिक क्षेत्र में किया गया एक भयानक अपहरण-कार्य है जिससे 'सारावली' की सर्वथा अप्रामाणिकता ही सिद्ध होती है।

हम मानते हैं कि किसी भी कवि के विविध ग्रंथो में भावों और आदर्शों की समानता रहना तो अनिवार्य है, परंतु शब्दो, वाक्यांशों और वाक्यो की समानता और पुनरावृत्ति क्या सूचित करती है ? केवल ११०७ पद्बंदों के इस छोटे से ग्रंथ मे 'सागर' की अनेक पंक्तियाँ मिल जाना क्या इस बात का प्रमाण नहीं है कि 'सारावली' किसी ऐसे असमर्थ कवि की स्वभावतया सर्वथा असफल रचना है जिसके पास शब्दावली का भी अभाव है ? क्या एक ही विषय पर लिखे गये 'सूरसागर' के पचासों पदो में वैसी शब्द-समानता या आवृत्ति के इसके चौथाई उदाहरण भी मिल सकते हैं ? वाक्य योजना की तो बात दूर, क्या सारे 'सूरसागर' के पदों में 'तुकांत' भी उस प्रकार दोहराये गये हैं जिस प्रकार 'सारावली' में ?

२ 'सारावली' में ही शब्दों की आवृत्ति—

'सूरसागर' का सामान्य से सामान्य पाठक जानता है कि कवि सूर ने एक ही प्रसंग को लेकर अनेक पद लिखे हैं और उनका प्रत्येक आलोचक स्वीकारता है कि उन पदो की अनेक विशेषताओं में एक यह है कि प्रसंग

की एकता होते हुए भी प्रत्येक पद की शब्दावली भिन्न है और प्रत्येक पद के तुकांत तक अलग हैं; यहाँ तक कि जिन लंबे पदों में वर्णनात्मकता की प्रधानता सूचित करती है कि कवि सूर की वृत्ति उनमें रम नहीं सकी है, उनमें भी प्रत्येक चरण में शब्दावली के परिवर्तित होते रहने के कारण ही उनकी नीरसता बहुत-कुछ कम हो जाती है। इसके विपरीत, 'सारावली' जैसी छोटी रचना में पचीसों शब्दों और वाक्यांशों को पचीसों बार दोहराया गया है। क्या यह बात भी कवि सूर की प्रकृति या प्रतिष्ठा के अनुकूल है ? क्या ऐसे निम्नलिखित उदाहरणों से 'सारावली'-कार की शब्द-दरिद्रता नहीं प्रमाणित होती ?

क. अवतार—

यह शब्द प्रथम बार पाँचवें छंद में प्रयुक्त हुआ है और अंतिम बार ७०५वें में। इन सात सौ छंदों के बीच यह शब्द सैंतीस बार प्रयुक्त हुआ है[1]।

ख. उचार या उचार—

यह शब्द पहली बार नवासी संख्यक छंद मे मिलता है और अंतिम बार १०६२ में। इनको मिलाकर 'सारावली' मे यह शब्द ग्यारह बार प्रयुक्त हुआ है[2]।

ग. विस्तार—

यह शब्द सबसे पहले दूसरे छंद में दिखायी देता है। इसके पश्चात् ३६२वें छंद तक चौदह बार आया है[3]।

घ. एक दिन या एक दिना—

यह शब्द 'सारावली' के लगभग सवा चार सौ छंदों मे ग्यारह बार

१. 'सारावली', छंद ५, ११, १६, २३, ३६, ४४, ५०, ५२, ६७, ७२, ८८, ८६, १००, १२६, १३७, १३६, १४०, १४५, १५४, १५६, १६०, १६६, २५२, २६२, ३२०, ३२१, ३२३, ३२७, ३४६, ३५३, ३५६, ३६०, ४३२, ६०६, ६१२, ६२७ और ७०५।

२. वही, छंद ८६, १५२, १५५, २३०, २४५, ६६५, ६६६, ६७५, ७६७, ६६३ और १०६२।

३. वही, छंद २, ५, १६, २०, ३७, ४६, ५७, ६३, ६६, १५२, २३२, ३२१, ३२५, ३६२।

प्रयुक्त हुआ है—छह बार केवल पाँचवें शतक में और पाँच बार आठवें-नवें मे[1]।

ऊपर के उदाहरणों में तो शब्द-विशेष की प्रयोग संख्या देना ही पर्याप्त समझा गया है, परंतु नीचे के उदहरणों के साथ पंक्ति या चरण के उदाहरण भी इस उद्देश्य से दिये जा रहे हैं कि पाठक स्वयं उनको देखकर निर्णय करें कि क्या यह भाषा अष्टछापी सूरदास की हो सकती है—

ड. न पायौ पार—

यह उपवाक्य 'सारावली' के निम्नलिखित चौदह चरणों में थोड़े-बहुत हेर फेर के साथ मिलता है—

१. नाभि कमल मे बहुतहिं भटक्यौ, तऊ न पायौ पार[2]।
२. सेस सहस मुख रटत निरंतर, तऊ न पावत पार[3]।
३. अवगाहन करिकै सब देख्यौ, तऊ न पायौ पार[4]।
४. सतकोटी रामायन कीनीं, तऊ न लीनौ पार[5]।
५. बरनत चरित्र बिस्तार कोटि सत, तऊ पार नहिं पाये[6]।
६. लीला कथत सहस-मुख तौऊ अजहूँ पार न पायौ[7]।
७. तब हरि कह्यौ जन्म मेरे बहु, सेष न पावै पार[8]।
८. बेद-पुरान रटत जस जाकौ, तऊ न पावत पार[9]।
९. सेस सहस मुख पार न पावैं, कछु एक 'सूर' जु गायौ[10]।
१०. मैं सब ठौर फिरयौ तुम देखे, कतहूं पार न पायौ[11]।

१ 'सारावली,' छंद ४२१, ४२७, ४३३, ४३७, ४४५, ४४८, ७२३, ७६८, ८०७, ८४७ और ८६१।
२. वही, छंद ११।
३. वही, छंद १४६।
४. वही, छंद १४७।
५. वही, छंद १५५।
६. वही, छंद ३१४।
७. वही, छंद ५७३।
८. वही, छंद ६०६।
९. वही, छंद ६१३।
१०. वही, छंद ६८१।
११. वही, छंद ६८२।

११. इन सबहिनि मिलि पार न पायौं, द्वारावती नरेस[1] ।
१२. चीर बढाय दियौ बहु तेहि छिन, ऐंचत पार न पायौ[2] ।
१३. सेस सहस मुख पार न पावत, निगम नेति कहि गाई[3] ।
१४. नेति-नेति कर कह्यौ सहस बिधि तौऊ न पायौं पार[4] ।

च. नाना, नाना बिधि, बहुत नाना बिधि, बहु या बहुत बिधि—

यह वाक्यांश 'सारावली' में लगभग तीस बार प्रयुक्त हुआ है; जैसे—

१. चौदह लोक करे नाना बिधि, रचि बैंकुंठ पताल ।
नाना रचना रची विधाता, हौरी खेल रसाल[5] ।
२. पाछैं पृथु कौ रूप हरि लीन्हौ, नाना रस दुहि काढे ।
तापर रचना रची बिधाता, बहु विधि जतनन बाढे[6] ।
३. उनसौ कह्यौ सृष्टि नाना बिधि, रचना करो बनाय[7] ।
४. बीत्यौ प्रलै, बिबिध नाना कर सृष्टि रची बहु भाँति[8] ।
५. बिश्वामित्र सिखाई बहु बिधि, बिद्या धनुष प्रकार[9] ।
६. मुनि अगस्त्य आस्रम जु गए हरि, बहु बिधि पूजा कीन्हीं[10]
७. लागी भूख, चले उपवन मैं, नाना बिधि फल खायं[11] ।
८. माया करी बहुत नाना बिधि, सब कूँ राम निवारे[12] ।
९. अस्तुति करी बहुत नाना बिधि रिझये कौसल-भूप[13] ।

१. 'सारावली,' छंद ६८४ ।
२. वही, छंद ७६८ ।
३. वही, छंद ८१६ ।
४. वही, छंद १००६ ।
५. वही, छंद १७ ।
६. वही, छंद २४ ।
७ वही, छंद ६४ ।
८. वही, छंद ९८ ।
९. वही, छंद २०३ ।
१०. वही, छंद २५८ ।
११. वही, छंद २८३ ।
१२. वही, छंद २९१ ।
१३. वही, छंद ३०३ ।

१०. कबहुँक अगर धूप नाना बिधि, लिय सुगंध सुखभारी[1]।
११. राम बिहार कह्यौ नाना बिधि, बालमीक मुनि गाये[2]।
१२. अंस कला अवतार बहुत बिधि राम-कृष्ण अवतारी[3]।
१३. नाना बिधि उपहार, दूध-दधि आगै धरि सिर नाये[4]।
१४. नाना बिधि के बिबिध खिलौना, रतनन अधिक अमोले[5]।
१५. नाना बिधि क्रीड़ा हरि कीन्ही, ब्रजबासिन सुख पायौ[6]।
१६. तब हरि भिरे मल्ल-क्रीड़ा करि, बहु बिधि दाव दिखाये[7]।
१७. तब नृप अस्तुति बहु बिधि कीन्हीं, जन्म-मर्म-गुन गाय[8]।
१८. हरि कौ दरसन करि सुख पायौ, पूजा बहु बिधि कीन्ही।
अति आनंद भए तन मन मैं, सौंज बहुत बिधि दीन्हीं[9]।
१९. ऐसे ख्याल करे इन बहु बिधि, कहत जु आवै लाज[10]।
२०. बहुत प्रीति करि गोपिन जाने बहु बिधि लाड़ लड़ायौ[11]।
२१. बेद-पुरान-तंत्र-भारत मै, कही बहुत बिधि भाखी[12]।
२२. नाना बिधि कीन्हीं हरि क्रीडा, जदुकुल स्राप दिवायौ[13]।
२३. सदा बसत हरि पुरी द्वारका, बहु बिधि भोग बिलासी[14]।
२४. बहु बिधि के पकवान बनाये, परसति जसुमति माय[15]।

१. 'सारावली', छंद ३१३।
२. वही, छंद ३१४।
३. वही, छंद ३६०।
४. वही, छंद ३९७।
५. वही, छंद ४१३।
६. वही, छंद ४८०।
७. वही, छंद ५२१।
८. वही, छंद ६११।
९. वही, छंद ७१५।
१०. वही, छंद ७४२।
११ वही, छंद ७५१।
१२. वही, छंद ७७०।
१३. वही, छंद ८४२।
१४ वही, छंद ८४६।
१५. वही, छंद ९०७।

२५. भोजन करि नाना बिधि दोऊ, लीनौ मठा सलोनौ[1] ।
२६. नीराजन बहु बिधि बारत हैं, ललितादिक ब्रज-नार[2] ।
२७. मन मै किये मनोरथ बहु बिधि, मिलवत सब मनभाय[3] ।
२८. किये मनोरथ नाना बिधि के, मेवा बहु बिधि लाई[4] ।
२९. नाना बिधि श्रृंगार बनाये, बेदा दीन्हौ भाल[5] ।
३०. नाना बिधि पकवान बनायौ, जेंबन अति सुख पायौ[6] ।

छ. भुव या भू भार—

यह वाक्यांश 'सारावली' में चौदह चरणों मे दिखायी देता है-

१. नर-नारायन भये प्रगट बप, तिन मेटयौ भुव भार[7] ।
२. परसुराम ह्वै कै द्विज थापे, दूर कियौ भू-भार[8] ।
३. नारायन भुव-भार हरयौ है, अति आनंद स्वरूप[9] ।
४. द्वादस बरष बिराजे बालक, फिर भू-भार हरौ[10] ।
५. यह भू-भार उतारन रघुपति, बहुत ऋषिन सुख दैन[11] ।
६. बन मै जाय बहुत मुनि तारै, दूर करै भुव-भार[12] ।
७. कीन्हे काज सकल सुर मुनि के, भुव के भार उतारे[13] ।
८. दसकंधर कौ बेगि संहारो, दूर करो भुव-भार[14] ।

१. 'सारावली,' छंद ९०६ ।
२. वही, छंद १०२२ ।
३. वही, छंद १०२७ ।
४. वही, छंद १०३४ ।
५. वही, छंद १०६० ।
६. वही, छंद १०७७ ।
७. वही, छंद ६७ ।
८. वही, छंद १३६ ।
९. वही, छंद १४५ ।
१०. वही, छंद २४१ ।
११. वही, छंद २४३ ।
१२. वही, छंद २५२ ।
१३. वही, छंद २५७ ।
१४. वही, छंद २५६ ।

९. छिन मै भुव कौ भार उतारयौ, परसुराम द्विज-भार[1]।
१०. तैसे ही भुव-भार उतारन, हरि हलधर अवतार[2]।
११. यह भुव-भार उतारन कारन, हलधर कूँ सँग लायौ[3]।
१२. छ्न ही माँझ दुष्ट संहारौ, भुव कौ भार उतार[4]।
१३. भली भई भुव-भार उतारयौ, मेरी हू सुधि लीनीं[5]।
१४. कीनीं केलि बहुत बल मोहन, भुव कौ भार उतारयौ[6]।

ऊपर के उदाहरण ऐसे है जो अनेक बार दोहराये गये हैं। इनके अतिरिक्त अनेक वाक्यांश और उपवाक्य ऐसे भी हैं जिनका 'सारावली'-कार ने दो-दो, तीन-तीन बार ही प्रयोग किया है; जैसे—

१. राजस-तामस-सात्विक त्रिगुन, प्रकृति पुरुष कौ संग[7]।
२. राजस-तामस-सात्विक तीनों, जीव-ब्रह्म सुख धाम[8]।
३. नाभि कमल नारायण की, सा बेद गरभ अवतार[9]।
४. नाभि-कमल मे बहुतहि भटक्यौ, तऊ न पायौ पार[10]।
५. नाना रचना रची बिधाता, होरी खेल रसाल[11]।
६. तापर रचना रची बिधाता, बहुबिधि जतनन बाढे[12]।
७. जहाँ-जहाँ भीर परत भक्तन कौं, तहाँ-तहाँ होत सहाय[13]।
८. जहाँ-जहाँ भीर परत भक्तन कौं, तहाँ प्रगट होय आऊँ[14]।

१. 'सारावली', छंद ३१७।
२. वही, छंद ३२३।
३. वही, छंद ३६६।
४. वही, छंद ७६३।
५. वही, छंद ८५८।
६ वही, छंद ८६०।
७. वही, छंद ६।
८. वही, छंद १०।
९. वही, छंद ११।
१०. वही, छंद ११।
११. वही, छंद १७।
१२. वही, छंद २४।
१३. वही, छंद १३०।
१४. वही, छंद १३२।

९. सहस वर्ष लौं ध्यान करत हौं, राम-कृष्ण सुख केरे[१] ।
१०. तामै राम समाधि करी अब, सहस वर्ष लौं बाम[२] ।
११. कृपा करि मोकूँ यह कहियै, अमर होहुँ जेहि भाँत[३] ।
१२. तब महादेव कृपा करिकै, यह चरित्र कियौ बिस्तार[४] ।
१३. करत शृंगार च्यार भइया मिल, सोभा बरनि न जाई[५] ।
१४. धन्य-धन्य प्रभु की प्रभुताई, मोपै बरनि न जाई[६] ।
१५. जहाँ तहाँ उझकि झरोखा झाँकत, जनक नगर की नार[७] ।
१६. कहत नारि सब जनक नगर की, बिधि सौं गोद पसार[८] ।
१७. मन क्रम बचन यहै बर दीजो, माँगत गोद पसारी[९] ।
१८. तब उन कह्यौ सकल सुखसागर, सो ये परमानंद[१०] ।
१९. बसन उढाइ, रहे छिपि आपुन, पूरन-परमानंद[११] ।
२०. तैसै ही लछमना बिबाही, पूरन-परमानद[१२] ।
२१. यहि बिधि केलि करत द्वारावति, पूरन-परमानंद[१३] ।
२२. सोभा-सिंधु कहत नहि आवै, बरनन करत उचार[१४] ।
२३. ऐसे बहुत चरित्र कान्ह के, बरनि कहत नहिं आवै[१५] ।
२४. सुनो रुकमिनी कथा घोष की मो पै कहिय न जाय[१६] ।

१. 'सारावली,' छंद १४९ ।
२. वही, छंद १५० ।
३. वही, छंद १५१ ।
४. वही, छंद १५२ ।
५. वही, छंद १७२ ।
६. वही, छंद ८१९ ।
७. वही, छंद २०८ ।
८. वही, छंद २११ ।
९. वही, छंद २२० ।
१०. वही, छंद २१९ ।
११. वही, छंद ६०५ ।
१२. वही, छंद ६५७ ।
१३. वही, छंद ६९९ ।
१४. वही, छंद २३० ।
१५. वही, छंद ५७५ ।
१६. वही, छंद ७२२ ।

२५. ताकी कथा कहा कहौ तुम सौं, मो पै कहिय न जाय[1] ।
२६. गुरु बसिष्ठ मुनि लगन दियौ सुभ, सुभ नछत्र, सुभ बार[2] ।
२७. चैत्र मास पून्यौ कौ सुभ दिन, सुभ नक्षत्र, सुभ बार[3] ।
२८. अस्तुति करो बहुत, नाना बिधि, रिझये कौसल-भूप[4] ।
२९. क्रीड़ा करी बहुत नाना बिधि निगम बात दृढ चीन्हीं[5] ।
३०. अस्तुति करी बहुत नाना बिधि, निरभै करि सिर धारे[6] ।
३१. अस्तुति करी बहुत नाना बिधि रूप चतुरभुज देख्यौ[7] ।
३२. अस्तुति करी बहुत नाना बिधि, मधुरे बेनु बजाये[8] ।
३३. औट्यौ दूध कपूर मिलायौ, प्यावत कनक कटोरे[9] ।
३४. औट्यौ दूध कपूर मिलायौ, लै ललिता तहाँ आई[10] ।
३५. मधु मेवा-पकावान-मिठाई, बिबिध खिलौना लावत[11] ।
३६. मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, जो भायौ सो लीनौ[12] ।
३७. मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, अपने हाथ जेवावत[13] ।
३८. संख चक्र गदा-पद्म चतुर्भुज, सुंदर स्याम स्वरूप[14] ।
३९. संख-चक्र-गदा-पद्म-चतुरभुज अजन जन्म लै आयौ[15] ।
४०. ऊधौ भक्त संग लैकै अति, आनँद भक्तन दीनौ[16] ।

१. 'सारावली,' छंद ७२५ ।
२. वही, छंद २३१ ।
३. वही, छंद ६४१ ।
४. वही, छंद ३०३ ।
५. वही, छंद ३५८ ।
६. वही, छंद ५४३ ।
७. वही, छंद ३६६ ।
८. वही, छंद ४८६ ।
९. वही, छंद ४४२ ।
१०. वही, छंद १०२१ ।
११. वही, छंद ४३६ ।
१२. वही, छंद ५०६ ।
१३. वही, छंद १६५ ।
१४. वही, छंद ६०७ ।
१५. वही, छंद ३६८ ।
१६. वही, छंद ५४४ ।

४१. ऊधौ भक्त बुलाय संग लै, हरि एकांत यह भाख्यौ[1] ।
४२. तुम अब बेगि जाओ हथनापुर, कमल नैन जिय राख्यौ[2] ।
४३. तब अक्रूर बैठि हरि के रथ, हथनापुर जु सिधारे[3] ।
४४. विप्र बुलाय वेद-धुनि कीन्हीं, स्वस्ती बचन पढायौ[4] ।
४५. विप्र बुलाय वेद-धुनि कीन्हीं, रक्षा बहुत कराई[5] ।
४६. पूजा करी बहुत नाना बिधि, नपति जनायौ नेह[6] ।
४७. सबहिंन कह्यौ प्रथम पूजा अब, कहौ कौन की कीजै[7] ।
४८ तब सहदेव कह्यौ सबहिंन सौं, सुनौ नृपति मन लाय[8] ।
४९. सबहिन कह्यौ साधु यह बानी, सुर-मुनि-मनुज सराई[9] ।
५०. मन मै किये मनोरथ बहुबिधि, मिलवत सब मनभाय[10] ।
५१. किये मनोरथ नाना बिधि के, मेवा बहुबिधि लाई[11] ।
५२. बल-मोहन कौ हँसत खेलावत, रीझि भरत अँकवार[12] ।
५३. पकरे आय स्याम नट सुंदर, भेंटत भरि अँकवार[13] ।
५४. नौमी नौसति साजि राधिका, चंद्रावलि ब्रजनार[14] ।
५५. नौमी नवसत साजि राधिका, हरि सौं खेलत फाग[15] ।

१. 'सारावली', छंद ५४५ ।
२. वही, छंद ५९० ।
३. वही, छंद ५९१ ।
४. वही, छंद ३९१ ।
५. वही, छंद ४२० ।
६. वही, छंद ६२२ ।
७. वही, छंद ७३६ ।
८. वही, छंद ७३७ ।
९. वही, छंद ७३८ ।
१०. वही, छंद १०२७ ।
११. वही, छंद १०३४ ।
१२. वही, छंद १०५९ ।
१३. वही, छंद १०७० ।
१४ वही, छंद १०६१ ।
१५. वही, छंद १०७९ ।

इसी प्रकार 'सारावली'-कार ने प्रथम छंद में जिन शब्दों मे ब्रह्म का स्मरण किया है—

अबिगत आदि अनंत अलख पुरुष अबिनासी ।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम नित निज लोक बिलासी[१] ।

आगे भी ये थोड़े-बहुत अंतर के साथ अनेक बार दोहराये गये हैं; जैसे—

क. तुमहीं आदि अखंड अनूपम असरन सरन मुरार ।
देव देव परब्रह्म परिपूरन भक्त हेतु अवतार[२] ॥

ख. नित्य अखंड अनूप अनागत अबिगत अनघ अनंत ।
जाको आदि कोउ नहि जानत कोउ न पावत अंत[३] ॥

ग. रूप अनंत आदि अबिनासी दरसन प्रेम बढ़ावौ[४] ॥

घ. जित तित देखौ तुम परिपूरन आदि अनंत अखंड।
लीला प्रगट देव पुरुषोत्तम ब्यापक कोटि ब्रह्मंड[५] ॥

ङ. सदा बसत हरि पुरी द्वारिका बहु बिधि भोग बिलासी ।
आदि अनंत अघट्ट अनूपम है अबिगत अबिनासी[६] ॥

च. सोभा अमित अपार अखंडित आप आत्माराम ।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम सब बिधि पूरन काम ॥
आदि सनातन एक अनूपम अबिगत अल्प अहार ।
ॐकार आदि बेद असुरहन निर्गुन सगुन अपार[७] ॥

छ. सदा एकरस एक अखंडित आदि अनादि अनूप ।
कोटि कल्प बीतत नहि जानत बिहरत जुगुल स्वरूप[८] ॥

यह ठीक है कि 'सूरसागर' मे भी ब्रह्म के वर्णन की शब्दावली

१. 'सारावली,' छंद १ ।
२. वही, छंद १२६ ।
३. वही, छंद ३६१ ।
४. वही, छंद ६६१ ।
५. वही, छंद ६८३ ।
६. वही, छंद ८४६ ।
७ वही, छंद ६६२-६३ ।
८. वही, छंद १०६६ ।

अनेक स्थलों पर समान है; परंतु उतने बड़े ग्रंथ मे वैसा होना उतना नहीं खटकता जितना 'सारावली'-जैसे छोटे काव्य में अटपटा लगता है।

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं वे विभिन्न छंदो में शब्द या पदावृत्ति के हैं। उनके अतिरिक्त 'सारावली' मे अनेक छंद तो ऐसे मिलते हैं जिनके दोनों चरणों में आवृत्ति के उदाहरण विद्यमान हैं; जैसे—

क. नाभिकमल नारायन की सो बेद गर्भ अवतार।
नाभिकमल में बहुतहि भटक्यो तऊ न पायो पार[1]॥

ख. तब आज्ञा भई यह हरि की अज करो परम तप आप।
तब ब्रह्मा तप कियो वर्ष सत दूरि भये सब पाप[2]॥
तब दरसन देखि भयो अज सब बातन निःसोक[3]॥

ग. मंगल बुध सुक्र अरु सनि अरु राहु केतु ग्रह जान।
रवि अरु ससि सबहिन को फगुवा दीन्हों चतुर सुजान[4]॥

घ. अतल बितल अरु सुतल तलातल और महातल जान।
पाताल और रसातल मिलिकै सातो भुवन प्रमान[5]॥

ङ. आसन के सब सिद्ध जोग कर प्रगट कला जगदीस।
दीन्हो भोग सहस नृप को बहु करुनानिधि जगदीस[6]॥

च. अस्तुति करी बहुत ध्रुव सब बिधि सुनि प्रसन्न भये आप।
दियो राज भूमंडल को सब बिधि थिर करि थाप[7]।

छ. आठों सिद्धि भईं सन्मुख जब करी न अंगीकार।
जय जय जय श्री ऋषभदेव मुनि परब्रह्म अवतार॥
ब्रह्म सभा मे जज्ञ कियो जब करन बेद उच्चार।
प्रगट भये हयग्रीव महानिधि परब्रह्म अवतार[8]॥

१. 'सारावली,' छंद ११।
२. वही, छंद १२।
३. वही, छंद १३।
४. वही, छंद ३०।
५. वही, छंद ३१।
६. वही, छंद ६१।
७. वही, छंद ७९।
८. वही, छंद ८८-८९।

उक्त उदाहरण 'सारावली' के केवल प्रथम शतक के हैं। अन्य शतकों से भी इस प्रकार के उदाहरण संकलित किये जायँ तो उनकी संख्या पचास के आसपास तो सरलता से पहुँच ही जायगी।

३. अटपटे प्रयोग—

'सारावली' में कुछ प्रयोग ऐसे भी मिलते हैं जो बहुत अटपटे-से जान पड़ते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पदांशो मे क्रमशः ध्रुव की विमाता का उसके लिए 'जब मेरे अवतार' (अर्थात् मेरे गर्भ से अवतार लेते), प्रथम चरण मे नयनो को 'खंजन' कहकर दूसरे में दोहराना, कौशिक मुनि का सभा मे छवि से पधारना, नाना जल-बिहार बिहरना, उद्धव का गोद पसार कर विधि से माँगना, 'उब्बारना' (प्रयोग), हरि का रुक्मिणी-हरण करके आतुर होकर भागना, 'बियाय', कुंज में जाकर राधा द्वारा कृष्ण का 'लड़ाया जाना' ('लड़ायौ'), 'बहु भारी' विप्रों का जुड़ना आदि प्रयोग कितने अटपटे लगते हैं—

क. नृप के पास गये गोदी मे बैठन को सुकुमार।
तब लघु मात कह्यो तब बैठो जब मेरे अवतार[१] ॥
ख. खंजन नैन बीच नासापुट राजत यह अनुहार।
खंजन जुग मनो लरत लराई कीर बुझावत रार[२] ॥
ग. कौसिक मुनि तहँ छबि सो पधारे लिये सिष्य सँग सात[३]।
घ. नाना जल बिहार बिहरत है संत जननि सुख दीन्हे[४] ॥
ङ. गुल्म-लता मे जन्म माँगि तब बिधि सों गोद पसारी।
उद्धव कहत सदा मोहि दीजै चरन-रेनु ब्रजनारी[५] ॥
च. मारि फौज सबही मागध की जरासंध उब्बारे[६] ॥
छ. तब हरि आय बैठि रथ नीके आय मिले बड़ भाग।
कर गहि बाँह लई रथ नीके अति आतुर चले भाग[७] ॥

१. 'सारावली', छंद ७२।
२. वही, छंद १७५।
३. वही, छंद २१६।
४. वही, छंद ३११।
५. वही, छंद ५७८।
६. वही, छंद ६०४।
७. वही, छंद ६३४।

ज. श्र. एकहि लग्न सबनि कर पकरेउ एक मुहूर्त्त बिताये[1] ॥
था. तब उन कहेउ दरस को आयो बहुत रूप धरि ब्याये[2] ॥
झ. भाँति भाँति करि मोहि लड़ायो सघन कुंज मे जाय[3] ।
ञ. बड़ो जज्ञ रजसूय रचायो जुरे बिप्र बहु भारी[4] ।

'सारावली' में अनेक उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उसके रचयिता को सामान्य व्यवहार तक का ज्ञान नहीं है। एक उदाहरण देखना ही पर्याप्त होगा—

करी प्रतिज्ञा कह्यो भीष्म मुख, पुन पुन देव मनाऊँ।
जो तुम्हरे कर सर न गहाऊँ, गंगा-सुत न कहाऊँ[5] ।

यह भीष्म का कथन है जो उन्होने श्रीकृष्ण की 'महाभारत के युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊँगा' वाली प्रतीज्ञा जानकर, उनको ही संबोधित करके कहा है। अपने प्रयास मे असफल रह जाने पर भीष्म 'गंगा-सुत' न माने जाने की कितनी विचित्र बात कहते है! संसार में माता तो ज्ञात ही रहती है तब उसका 'सुत' न कहाकर कोई किसका कहायगा ? प्रश्न तो 'असली' या 'नकली' पिता का होता है, इसीसे ऐसी शपथ या प्रतिज्ञा 'पिता' के लिए की जाती है। 'असल बाप के हो तो' जैसी चुनौती किसने नहीं सुनी है ? परंतु 'सारावली'-कार को इस 'लौकिकता' से क्या लेना-देना है ? उसे तो कुछ कहना है और उसने जो चाहा, वही कह भी दिया। संगत है उसका कथन या नही, यह 'सारावली' की प्रामाणिकता के पोषक जानें !

अब प्रश्न है कि 'सारावली'-कार को उक्त असंगत बात सूझी कैसे ? 'सूरसागर' मे उसको उल्लेख मिला—

आजु जौ हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ,
तौ लाजौं गंग जननी को, सांतनु-सुत न कहाऊँ[6] ।

'सारावली'-कार ने उक्त दूसरी पंक्ति का पूर्वार्द्ध मात्र पढ़ा, उत्तरार्द्ध

१. 'सारावली,' छंद ६५८ ।
२. वही, छंद ६६० ।
३. वही, छंद ७२५ ।
४. वही, छंद ७३५ ।
५. वही, छंद ७८० ।
६. 'सूरसागर', पद १-२७० ।

का महत्व उसकी समझ में आया नहीं और उसने 'गंगा जननी' को लेकर 'गंगा-सुत न कहाऊँ' लिख कर स्वतंत्र सिद्धांत की स्थापना कर डाली !

इसी प्रसंग मे 'सारावली' के उक्त दूसरे चरण के 'सर' शब्द की ओर भी उसकी प्रामाणिकता के पोषक एक दृष्टि डालना चाहें तो डाल सकते हैं। 'सूरसागर'-कार ने 'सस्त्र' लिखना उचित समझा है जिसके व्यापक अर्थ-क्षेत्र में 'चक्र' भी आ जाता है। 'सारावली'-कार की समझ में क्या 'सर' और 'सस्त्र' पर्यायवाची हैं ? और कृष्ण ने जब कर में 'सर' न लेकर 'चक्र' गहा, जिससे भीष्म की प्रतिज्ञा अधूरी ही रह गयी; क्योंकि 'सारावली'- कार स्वयं लिखता है—

धरि 'रथ-चक्र' स्याम निज कर मै जबहि भीष्म पर डारौ[1] ।

तब क्या यह समझा जाय कि 'सारावली' के भीष्म ने उस दिन से 'गंगा-सुत' कहाना छोड़ दिया ? क्या यह एक ही वाक्य 'सारावली'-कार की 'मतिमंदता' और उसकी अप्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नही है ? फिर 'सारावली' से तो ऐसे पचीसो असंगत कथन, जिनके संबंध में पिछले पृष्ठो में अनेक बार लिखा जा चुका है, सहज ही निकाले जा सकते हैं।

४. निरर्थक प्रयोग—

'सारावली' मे बहुत से प्रयोग ऐसे भी मिलते हैं जो अर्थ की दृष्टि से सर्वथा अनावश्यक हैं; जैसे निम्नलिखित उदाहरणो में 'नारी', 'बानि', राजा, उचार, 'सब बिधि', मोहन, स्याम आदि सर्वथा अनावश्यक हैं—

क. तब उन पठई अप्सरा नारी[2] ।
ख. तब बोले हरि बानि[3] ।
ग. राजा मिथल-नरेस[4] ।
घ. बरनन करत उचार[5] ।

१. 'सारावली', छंद ७८३ ।
२. वही, छंद ६८ ।
३. वही, छंद ६२ ।
४. वही, छंद २३४ ।
५. वही, छंद २३० ।

ङ. बहुत भाँति सब बिधि समुझाए[1] ।

च. ब्याकुल भई बँधत नहि मोहन दया स्याम कूँ आई[2] ।

छ. नारद मुनि को साप पाय के स्याम दई गति ताय ।
निकसे बीच अटक ऊखल में स्याम रहे अटकाय[3] ॥

'सारावली' मे इस प्रकार के सौ से भी अधिक उदाहरण मिलते हैं । 'बहुत नाना बिधि' प्रयोग वाले प्रायः सभी उदाहरण इसी वर्ग के हैं । 'सारावली' में जिस छोटे छंद का प्रयोग किया गया है, उसको देखते हुए क्या उक्त 'निरर्थक प्रयोग' 'सूरसागर-कार' के हो सकते हैं ?

५ विचित्र और शिथिल वाक्य विन्यास—

'सारावली' में कहीं-कहीं ऐसा विचित्र वाक्य-विन्यास मिलता है कि पढ़कर हँसी आती है । उसकी प्रामाणिकता के समर्थक क्या निम्न-लिखित उदाहरण सूर-कृत ही मानते है ?

क. जब प्रह्लाद प्रगट ताके गृह पॉच वर्ष के भैहै ।
आदर बहु कीन्हौ राजा ने पढन बिप्र गृह जैहै[4] ॥

ख. सुनो पिता हौ यही पढ्यो हूँ और बात नहि जानूँ ।
इतने और मोहि जो कहियत सो कबहू नहि मानूँ[5] ॥

ग. तब मारीच कह्यो दसकंधर बिनती बहुत करायो[6] ॥

घ. एक दिवस मृगया को निकस्यो कंठ महा मनि लाय ।
तब उन सिह मारि मनि लीन्हों रिच्छ मिल्यो इक ताय[7] ॥

ङ. करी प्रतिज्ञा कहेउ भीष्म मुख पुनि पुनि देव मनाऊँ[8] ।

च. बन मे बहु बर्षा जब आई ताकी सुधि करि लैहौ ।
गुरु आये आपुन को बोलन मंत्र थकायो मेहौ[9] ॥

१. 'सारावली', छंद २५१ ।
२. वही, छंद ४५१ ।
३. वही, छंद ४५३ ।
४. वही, छंद १०६ ।
५. वही, छंद ११७ ।
६. वही, छंद २६१ ।
७. वही, छंद ६४४ ।
८. वही, छंद ७८० ।
९. वही, छंद ८१२ ।

'सारावली' जैसे छोटे काव्य में इस प्रकार के उदाहरण भी सौ से अधिक मिलते हैं जिनमे से कुछ की चर्चा पीछे भी की जा चुकी है। क्या ऐसी शिथिलता और विचित्रतायुक्त रचना 'सूरसागर' कार की कही जा सकती है ?

६ 'सारावली' में 'सूरसागर' से भिन्न परसर्ग—

'सूरसागर' कार की सामान्य प्रवृत्ति परसर्ग लोप की है, प्रयोग की नहीं। इसके विपरीत, 'सारावली'-कार की रुचि उनका अधिक से अधिक प्रयोग करने की है, लोप तो उनका उसने वहीं किया है जहाँ छंदानुरोध से वह वैसा कर नही सका। क्या यह अंतर दोनो रचनाओं को एक ही कवि की सिद्ध करता है ? जो हो, यहाँ हमे केवल दो परसर्गों की चर्चा करनी है—कूँ, और ने या नै। इनके अतिरिक्त 'सूँ' का भी प्रयोग 'सारावली' में कहीं-कहीं मिलता है[1]।

क कूँ—

'सूरसागर' मे 'कूँ' परसर्ग का प्रयोग कहीं नहीं है; उसमें इसके स्थान पर 'कौं' परसर्ग मिलता है। परंतु 'सारावली' में 'कूँ' का प्रयोग लगभग पैंसठ बार हुआ है[2]। इसके उदाहरण पीछे उद्धृत चरणो में देखे जा सकते हैं; यहाँ पुनः उनको देना अनावश्यक है।

ख ने नें या नैं—

समस्त 'सूरसागर' के लगभग पाँच हजार पदो में यह विभक्ति केवल दो चरणो में मिलती है—

१. दियौ सिरपाँव नृपराव नैं महर कौं[3]।

१. 'सारावली' छंद ३००, ७७३ और ६२२।

२. वही, छंद २३, ४८, ५१, ५२, ५४, ६१, ६६, ७०, ८७, ६३, १०८, १११, ११२, १३३, १५१, २०५, २६१, ३४१, ३४६, ३६६, ३७१, ३८१, ४१३, ४१८, ४३६, ४४१, ४५१, ४५५, ४८१, ४८४, ४६४, ५०८, ५१५, ५२०, ५२६, ५५१, ५६१, ५६५, ६०३, ६०६, ६१४, ६५२, ६६०, ६६५, ६७१, ६६५, ७१७, ७१६, ७२३, ७२४, ७४५, ७५५, ७५६, ७७२, ७६६, ८४२, ८४३, ८७४, ६१३ और १०२१।

३. 'सूरसागर', पद १०-५८७।

२. तहाँ ताहि बिषधर नैं खाई[1]।

संभव है, ऐसे एक-दो उदाहरण 'सूरसागर' में और भी हों; परंतु इन इने गिने प्रयोगों को देखकर यही निष्कर्ष निकालना होगा कि अष्टछापी सूरदास की प्रवृत्ति नें या नैं का प्रयोग करने की नहीं है और 'सूरसागर' में इसके प्रयोग अपवाद-स्वरूप ही मिलते हैं। इसके विपरीत, 'सारावली' में यह बिभक्ति तेंतीस चौंतीस बार प्रयुक्त हुई है; जैसे—

१. दीन्हें मार असुर हरि ने तब देवन दीन्हों राज[2]।
२. सातों द्वीप कहे सुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर[3]।
३. तब तब धरि अवतार कृष्न ने कीन्हों असुर सँहार[4]।
४. कीन्हों गर्व महा मघवा ने बर्षा बरषो नाहि[5]।
५. जब तप गयो तबहिं मघबा ने सब संपति गहि लीन्हीं[6]।
६. आदर बहु कीन्हों राजा ने पढन बिप्र गृह जैहैं[7]।
७. जागे भोर दौरि जननी ने अपने कंठ लगायो[8]।
८. कियो सनमान बिदेह नृपति ने उपवन वासी कीन्हों[9]।
९. दिब्य बसन दीने जब मुनि ने फिर यह आज्ञा दीन्हीं[10]।
१०. गयो मारीच आस्रमहिं तबहीं वाने बहु समझायो[11]।
११. तब वाने सब भेद बतायो देखी कपि सब लंक[12]।
१२. क्रिया पंथ स्तुति ने जो भाष्यो सो सब असुर मिटायो[13]।

१. 'सूरसागर', पद १० ७५३।
२. 'सारावली', छंद २७।
३. वही, छंद ३४।
४. वही, छंद ३६।
५. वही, छंद ८६।
६. वही, छंद १०२।
७. वही, छंद १०६।
८. वही, छंद १६३।
९. वही, छंद १६७।
१०. वही, छंद २०६।
११. वही, छंद २५८।
१२. वही, छंद २६१।
१३. वही, छंद २७०।

१३. सोई सूरदास ने बरने जो कहे ब्यास पुरान[1] ।
१४. बिस्मित भये देव ने राख्यो बालक यह सुखकारी[2] ।
१५. कंस नृपति ने सकट बुलायो लै करि बीरा दीन्हों[3] ।
१६. धनुष जज्ञ कीन्हों नृप जू ने सबको बेगि बुलाये[4] ।
१७. उद्धव देखि सकल गोपिनि ने कीन्हों मन अनुमान[5] ।
१८. एक मीन ने भच्छ कियो तब हरि रखवारी कीन्ही[6] ।
१९. सोई मच्छ पकरि मोधुक ने जाय असुर को दीन्ही[7] ।
२०. एक दुष्ट ने बहुत कियो तप सो रीझे त्रिपुरार[8] ।
२१. तब सिव ने उन कृत्या दीन्हीं बाढो क्रोध अपार[9] ।
२२. जुवती धरी जान दुष्टनि ने जब द्रौपदी बुलाई[10] ।
२३. लाख भवन बैठारि दुष्ट ने भोजन में बिष दीन्हों[11] ।
२४. बिनती करी बहुत बिप्रनि ने राम बिप्र तुम मारेउ[12] ।
२५. जब सुत भयो कहेउ ब्राह्मन ने अर्जुन गये गृह ताइ[13] ।
२६. भई किसोर स्याम ने देखी अदभुत प्रीति बढ़ाई[14] ।
२७. जब जसुमति ने ऊखल बाँधे हमहीं दीन्हे छोरि[15] ।
२८. भोजन समय जान जसुमति ने लीने दुहुँनि बुलाय[16] ।

१. 'सारावली', छंद २८० ।
२. वही, छंद ३५२ ।
३. वही, छंद ३५३ ।
४. वही, छंद ४१९ ।
५. वही, छंद ४२४ ।
६. वही, छंद ४९४ ।
७. वही, छंद ५६१ ।
८. वही, छंद ६०८ ।
९. वही, छंद ६९३ ।
१०. वही, छंद ७६३ ।
११. वही, छंद ७७७ ।
१२. वही, छंद ८३५ ।
१३. वही, छंद ८५१ ।
१४. वही, छंद ८७३ ।
१५. वही, छंद ८९० ।
१६. वही, छंद ९०६ ।

२६. ता पाछे गोपिनि ने छिरिके कनक कलस भरि डारे[१] ।
३०. सो हरि ने स्वीकार कियो सब निरखि परम सुख पाई[२] ।

७. 'सारावली' में 'सूरसागर' से भिन्न कुछ शब्द—

'सारावली' मे 'हरि' शब्द इतने बार प्रयुक्त हुआ है कि समस्त 'सूरसागर' में वह उतने बार न मिलेगा । इस आपत्ति का उत्तर देते हुए मीतल जी ने लिखा है—वल्लभ संप्रदाय में परब्रह्म श्रीकृष्ण के अनेक नाम प्रचलित हैं । वल्लभाचार्य जी ने 'श्रीमद्भागवत' मे से ऐसे एक हजार नाम चुनकर 'श्रीपुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना की थी । इन नामो में श्रीकृष्ण, हरि, गिरिधर, गोपाल, श्याम, माधव आदि विशेष प्रचलित हैं । 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' का आरंभ 'श्रीकृष्ण' नाम से और उसका अंत 'हरि' नाम से हुआ है । इससे ज्ञात होता है, 'श्रीकृष्ण' और 'हरि', इन दो नामो की महिमा अधिक है । सूरदास को 'हरि' नाम विशेष प्रिय था । उन्होने कीर्तन के पदों मे सैकड़ों बार 'हरि' नाम का प्रयोग किया है । 'सूरसागर' का आरंभिक पद 'हरि' की वंदना का है । इसके बाद उसमें सैकड़ों ऐसे पद हैं, जिनमें 'हरि' नाम का प्रचुरता से प्रयोग मिलता है । 'सारावली' का आरंभिक पद भी 'हरि' की वंदना का है । यह रचना 'हरि' के ही होली खेलने से आरंभ होती है और इसमें स्थान-स्थान पर 'हरि' नाम का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है । चौबीस अवतारों के वर्णन में तो 'हरि' नाम इतनी अधिकता से मिलता है कि वह प्रत्येक अवतार से ही नही, वरन् प्रत्येक प्रसंग से भी संबंधित है । इससे भी सिद्ध होता है कि 'सूरसागर' और 'सारावली' एक ही कवि की रचनाएँ हैं[३] ।

थोड़ी देर के लिए हम माने लेते हैं कि 'सारावली' की रचना 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' या वैसी ही किसी रचना के अनुकरण पर हुई; परंतु यह पूछना चाहते हैं कि इसके आधार पर उसको 'सूरसागर' कार की रचना मानने का विचित्र निष्कर्ष किस प्रकार निकलता है ? फिर 'सूरसागर' के विनय-पदों मे तो 'हरि' शब्द प्रमुखता के साथ मिलता है, उनकी ब्रज-लीला में नहीं और 'सारावली'-कार ने पूतना-वध के पश्चात् की ब्रज-लीला

१. 'सारावली', छंद १०३२ ।
२. वही, छंद १०३४ ।
३. 'सारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० ४३ ।

का वर्णन केवल चौंसठ छंदों में (४२१ से ४८४ तक) किया है जिसमें श्रीकृष्ण का नाम चालीस बार आया है। इनमें से 'हरि' का प्रयोग बाईस बार[1], 'स्याम' का ग्यारह बार[2], 'मोहन' का चार बार[3] तथा 'गोपाल'[4], 'कृष्ण'[5] और 'कमलनैन'[6] का केवल एक-एक बार हुआ है। व्रजलीला-प्रसंग मे आधे से अधिक बार 'हरि' शब्द के प्रयोग को भी 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' या किसी अन्य ग्रंथ के प्रभाव का फल मान लिया जाय, तब भी क्या गोपाल, कृष्ण का एक-एक बार और कन्हैया, कान्ह, कान्हा आदि मधुर नाम-रूपों का एक बार भी प्रयोग न होने का क्या कारण है ? क्या 'सूरसागर' म अगणित बार इन 'नामो' का प्रयोग करने के पश्चात् केवल 'सहस्रनाम' के प्रभाव से सरसठ वर्ष की अवस्था मे और सो भी व्रज-लीला वर्णन मे ही कवि इनको सर्वथा भुला बैठा ? 'सारावली'-कार इन मधुर शब्दो से परिचित न हो, सो बात भी नहीं है। मथुरा-लीला के अंतर्गत कुब्जा प्रसंग में 'कन्हाई' शब्द मिलता है—

दियो बरदान भवन आवन कौ तहाँ तै चले कन्हाई[6]।

इसी प्रकार ऊधव-गोपी-संवाद में 'कान्ह' शब्द भी मिल जाता है—

ऐसे बहुत चरित्र कान्ह के बरनि कहत नहिं आवै[7]।

इतना ही नहीं, ब्रह्मा के लिए छह: सात बार 'अज' का प्रयोग 'सारावली' में मिलता है और वह भी प्रारंभिक लगभग सवा सौ छंदों में—

१. ताको दरसन देखि भयो अज सब बातन नि:सोक[8]।

१. 'सारावली', छंद ४२१, ४२६, ४३३, ४३६, ४४५, ४४७, ४४८, ४५०, ४५१, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४७० (दो बार) ४७३, ४७६, ४८० (दो बार) और ४८३।
२. वही, छंद ४२५, ४३४, ४३७, ४३८, ४५१, ४५२, ४५३, ४५६ (दो बार) ४७१ और ४८२।
३. वही, छंद ४२६, ४४३, ४४६ और ४५१।
४. वही, छंद ४२६।
५. वही, छंद ४४०।
६. वही, छंद ५०३।
७. वही, छंद ५७५।
८. वही, छंद १३।

२. प्रथम किये स्वायंभुवमनु नृप अज आज्ञा यह दीन्हीं[1]।
३. जल में मगन भये भुव देखे फिर अज पै चलि आये[2]।
४. अज ससि अंस रुद्र दुर्बासा दत्तात्रेय हरिराय[3]।
५. पातंजलि से मुनि पद सेवत करत सदा अज ध्यान[4]।
६. अज सनकादि देव नारद मुनि जा तन रूप निहारो[5]।

'इंद्र' का नाम 'सारावली' में आठ-दस बार आया है जिनमें छह-सात बार उसके लिए 'मघवा' लिखा गया है—

१. कीन्हों गर्व महा मघवा ने बर्षा बरषो नाहिं[6]।
२. गोबर्धन धरि सब ब्रज राख्यौ मघवा मान मिटायो[7]।
३. अभय दान दीन्हों मघवा को नंदराय को राख्यौ[8]।
४. नित प्रति मों सिर मघवा बरसत लागत सीत अपार[9]।
५. फिरि आये हस्तिनपुर पारथ मघवाप्रस्थ बसायो[10]।
६. दियो द्विजहि मघवा को बैभव बाढ्यो जस बिख्यात[11]।
७. मघवा को सुख भयो सुदामहि तऊ कछुक नहि बाधे[12]।

इसी प्रकार भीम के लिए 'पवनसुत', अर्जुन के लिए 'फाल्गुन', और सुग्रीव के लिए 'रविनंदन' शब्द 'सारावली' में मिलते हैं जिनमे से शायद एक भी 'सूरसागर' में नहीं है—

१. अंध-पुत्र लखि हँसे पवनसुत सुनि जिय में रिस मानि[13]।

१. 'सारावली,' छंद ३७।
२. वही, छंद ३८।
३. वही, छंद ५९।
४. वही, छंद ६२।
५. वही, छंद १२६।
६. वही, छंद ८६।
७. वही, छंद ४७८।
८. वही, छंद ४८१।
९. वही, छंद ६१८।
१०. वही, छंद ८०६।
११. वही, छंद ८१६।
१२. वही, छंद ८२१।
१३. वही, छंद ७६०।

२. नयननि मिलत लई कर गहिकै फाल्गुन चले पराय[1]।
३. रबिनदन जब मिले राम को अरु भेंटे हनुमान[2]।
४. दीन्हो राज राम रबिनंदन सब बिधि काज सँवारो[3]।

'सारावली' की भाषा के संबंध में ऊपर जो कुछ भी कहा गया है, वह उन उदाहरणों के आधार पर जो केवल एक बार उसको पढ़कर संकलित कर लिये गये हैं। वस्तुत: ऐसे संकलन-कार्य के लिए दो-तीन पाठों की आवश्यकता होती है; परंतु उसकी चिंता या उसका निर्वाह इसलिए नहीं कियां गया है कि एक बार के पाठ से ही इतने उदाहरण सुगमता से मिल जाते हैं जो 'सारावली' और 'सूरसागर' की भाषाओं के मुख्य अंतरों को स्पष्ट करके उनके रचयिताओं के भिन्न भिन्न व्यक्ति होने के निष्कर्ष की सहज ही पुष्टि कर देने में समर्थ हैं।

'सारावली' और 'सूरसागर' का अनुपात—

विस्तार की दृष्टि से 'सूरसागर' नामक काव्य 'सारावली' से लगभग पचीस गुना बड़ा है। दोनों के विषय में तो इतना साम्य है ही कि 'सारावली' के ११०७ छंदों में से लगभग १००० की कथा का भाव 'सूरसागर' से ही लिया गया सिद्ध होता है और जैसा पिछे दिखाया जा चुका है, 'सारावली' के लगभग डेढ़ सौ चरणों में शब्दावली भी 'सूरसागर' की ही मिलती है। दूसरी बात यह कि 'सारावली' की रचना, रचयिता की आयु के सरसठवें वर्ष में होना उसके सभी समर्थकों ने स्वीकार किया है; इस प्रकार निश्चय ही वह कवि की प्रौढ़ावस्था की कृति है। इस अवस्था के बाद प्रकृति, रुचि, योग्यता आदि के परिवर्तित या विकसित होने का कोई प्रश्न ही नही उठता और न साधारणतया उस प्रौढ़ावस्था के पश्चात् सामान्य आदर्श या सिद्धांत के परिवर्तन ही की संभावना होती है। इन सब बातों को स्वीकार करने पर एक सहज प्रश्न होता है कि ऐसी स्थिति में, 'सारावली' में कोई दोष मिलता है तो 'सूरसागर' में उसके उदाहरण पचीस गुना अधिक के आसपास तो मिलने ही चाहिएँ। परंतु जब हम यह देखते हैं कि पचीस गुना अधिक की तो बात दूर, 'सूरसागर' में

१. 'सारावली', छंद ८०५
२. वही, छंद २७४।
३. वही, छंद २७५।

उक्त दोषों के उतने भी उदाहरण नहीं मिलते जितने 'सागवली' मे सहज ही संकलित कर दिये गये हैं, तब अंतिम रूप से सिद्ध हो जाता है कि यह रचना किसी भी तरह से अष्टछापी सू दास की कृति नही हो सकती और यह सर्वथा अप्रामाणिक है।

तुलना का निष्कर्ष—

'सारावली' में वर्णित कथाओं का आधार 'सूरसागर' कहाँ तक है, यह सिद्ध करने के लिए ही अष्टछापी कवि सूरदास के प्रसिद्ध ग्रंथ के पर्याप्त उदाहरण ऊपर दिये गये हैं जिनमें से अधिकांश सभा के संस्करण से उसकी विषय-सूची देखकर ही ले लिये गये हैं; अधिक छानबीन अनावश्यक समझकर ही नही की गयी है। इसके अतिरिक्त कही-कही 'सूरसागर' के वे पद भी उद्धृत किये गये हैं जो उसके रचयिता के 'सारा-वली'-कार से सर्वथा भिन्न उद्देश्यादर्श पर स्पष्ट प्रकाश डालते है। और प्रत्येक प्रसंग का उतना ही अंश 'सूरसागर' से उद्धृत किया गया है जितना 'सारावली' का आधार हो सकता है। इस प्रकार का तुलनात्मक प्रयत्न हिंदी-संसार के सामने प्रथम बार आ रहा है जिसके आधार पर सहज ही निष्कर्ष निकलता है कि 'सारावली' की समस्त कथाओं की रूपरेखा 'सूरसागर' से ली गयी है और सारे ग्रंथ मे केवल पाँच-सात उल्लेख 'श्रीमद्भागवत' के भी मिलते हैं। यह भी संभव हो सकता है कि अन्य अष्टछापी कवियों के कुछ भाव और शब्द भी 'सारावली' में मिल जायँ। इस प्रकार, हमारी सम्मति में, 'सूरसारावली', 'सूरसागर' का कंकाल मात्र है, उसमें सार ढूढ़ना तो बहुत दूर की बात है, 'सूरसागर' के शरीर का माँस, मज्जा, रक्त, कुछ भी नहीं है और ऐसे कंकाल मात्र में न प्राण-प्रतिष्ठा करने की क्षमता 'सारावली'-कार में थी हो और न वैसा प्रयत्न ही करने का दुस्साहस वह कर सका है। वस्तुतः, वह सूची प्रस्तुत करने जैसा प्रयास भी नहीं है, जैसा 'श्रीमद्भागवत' के प्रथम स्कंध के तृतीय अध्याय में 'भगवान के अवतारों' की गिनाकर या उसके द्वादश स्कंध के बारहवें अध्याय में 'श्रीमद्भागवत' की संक्षिप्त सूची देकर किया गया है। हमारी समझ में तो 'सूर-सारावली'-कार को उक्त अध्याय देखकर ही अपने ग्रंथ की रचना की प्रेरणा मिली होगी। उसे संस्कृत का सामान्य ज्ञान तक रहा हो, इसमें भी हमें संदेह है। 'सारावली' में चार-पाँच स्थलों पर 'श्रीमद्भागवत' के जो प्रसंग मिल जाते हैं, उनके आधार भी तद्विषयक सुने-सुनाये प्रवचन ही होंगे। व्रजभाषा का भी 'सारावली'-कार को सामान्य ज्ञान था और अपने संपूर्ण रूप में 'सूरसागर' भी उसे

उपलब्ध नहीं था। उसका न कोई ध्येय था, न लक्ष्य; न वह सांप्रदायिक तत्व समझा था, न उसके पास दार्शनिक विचार समझने की बुद्धि थी। बस, इसी पूँजी के बल पर 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर रचित माने जाने वाले—एक प्रकार से 'हिंदी श्रीमद्भागवत'—'सूरसागर' की संक्षिप्त सूची बनाने को वह प्रवृत्त हुआ था और जिसमें वह बुरी तरह असफल तो हुआ ही, इतने समय तक 'सूरसागर'-कार की प्रतिष्ठा को भी घटाने के पाप का भागी बना रहा। फिर भी 'सारावली' में भगवान के अवतारों की कथा है और 'उलटा-सीधा नाम' जपने पर भी फल मिलने की आशा हमारे संस्कारों की देन है; जैसा स्वयं 'सारावली' कार भी कहता है—उलटौ नाम जपत अघ बीते,[१] अतएव, अंत में, हम इतना ही कहना चाहते हैं कि ईश्वर उसकी आत्मा को शांति दे।

१. 'सारावली,' छंद १५३।

उपसंहार

सूर की प्रसिद्धि के कारण और 'सारावली'—

अष्टछापी सूरदास की प्रसिद्धि के तीन प्रमुख कारण हैं—कवि रूप, संगीतज्ञ रूप और सिद्धांत व्याख्याता रूप। 'सारावली' में इनमें से किसी रूप के शतांश के भी दर्शन नहीं होते। 'सूरसागर' के जो महत्वपूर्ण प्रसंग उसकी कीर्ति की स्थापना और गौरव की वृद्धि में सहायक हैं, उनमें से तीन ये हैं—श्रीकृष्ण-रूप-वर्णन, मुरली-वादन, और नेत्रोपालंभ संबंधी पद। इन तीनों का संबंध श्रीकृष्ण की व्रज-लीला और गोपियों के अनन्य प्रेम से है जिनका वल्लभ संप्रदायी भक्त अत्यंत श्रद्धापूर्वक उल्लेख करते है। कितने आश्चर्य की बात है कि 'सारावली' में इनमे से एक को लेकर एक भी पंक्ति नहीं लिखी गयी है। क्या इस अभाव का कारण उसकी प्रामाणिकता के पोषक यह बताना चाहेंगे कि सरसठ वर्ष की अवस्था तक सूरदास ने उक्त प्रसंगों को लेकर एक भी पद नहीं रचा था और तद्विषयक पद-रचना की प्रेरणा उन्हें उस अवस्था के बाद मिली थी ?

दूसरी बात यह कि 'सारावली' मे किसी भी कथा का कोई मार्मिक स्थल विस्तार से वर्णित नहीं है; यहाँ तक कि जिस राम कथा को लेकर डेढ़ सौ भी अधिक छंद 'सारावली' मे लिखे गये है, उसके किसी भी मर्मस्पर्शी स्थल को लेकर—यथा राम-वन-गमन पर दशरथ, कौशल्या तथा अयोध्यावासियों का शोक, केवट और ग्रामीणो की सवेदना, हरण के समय सीता-विलाप, युद्ध मे लक्ष्मण-शक्ति और राम का विलाप आदि—'सारावली'-कार एक पंक्ति तक नही लिखता जबकि 'सूरसागर' में इनको तथा अन्यान्य सभी प्रसंगों को लेकर बड़े मार्मिक पद लिखे गये हैं। फिर जो कृष्ण वल्लभ-संप्रदाय के परमाराध्य हैं और जिनकी कथा 'सारावली' के आधे से भी अधिक छंदों मे लिखी गयी है, उनकी भी कथा के अनेक

मार्मिक स्थलों की उसके रचयिता ने सर्वथा उपेक्षा कर दी है। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि 'सारावली' के एक प्रसंग में भी अष्टछापी सूरदास के भावुक हृदय के दर्शन नही होते? इस संबंध मे विस्तार से पिछले पृष्ठो मे अनेक स्थलों पर सोदाहरण लिखा जा चुका है।

तीसरे, अष्टछापी सूरदास की जिस नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने सहृदयो और काव्य-प्रेमियो को इतना मुग्ध कर रखा है कि उनमें से कुछ 'कवि' की दृष्टि से उनको गोस्वामी तुलसीदास से भी ऊँचा पद प्रदान करना चाहते है, उसका समर्थन 'सारावली' की २२१४ पंक्तियों मे से एक भी पंक्ति उद्धृत करके नहीं किया जा सकता। इस ग्रंथ की जिन पंक्तियों मे किसी प्रकार का काव्यात्मक चमत्कार है, वे सब की सब 'सूरसागर' से ही अपहृत हैं और उनमे से भी अधिकांश अष्टछापी सूरदास ने राधिका का शृंगार वर्णित करते समय लिखी हैं, जिन्हें 'सारावली'-कार ने भ्रमवश श्रीराम और श्रीकृष्ण के शृंगार की चर्चा में समाविष्ट करके अपनी कृति को सर्वथा उपहासास्पद बना दिया है। ऐसे उदाहरण भी पिछले पृष्ठो में यथास्थान दिये जा चुके हैं।

'सूरसागर' के प्रमुख रस शृंगार और वात्सल्य हैं तथा गौण हैं अद्भुत और वीर। 'सारावली' मे इनमे से किसी का परिपाक नहीं हो सका है। इसका रचयिता तो 'रुधिर पान करि आँत माल धरि'[1] जैसा वर्णन करने मे भी कभी नहीं सकुचाता। 'सारावली' की प्रामाणिकता के पोषक खोज करें कि इस प्रकार के उदाहरण 'सूरसागर' में कितने मिलते हैं।

काव्यभाषा की सरसता, परिष्कृति, प्रांजलता और प्रवाह आदि जो गुण 'सूरसागर' के प्रमुख प्रसंगो में पाठक का मन मोहने मे समर्थ हैं, 'सारावली' में उनका भी सर्वथा अभाव है। 'सूरसागर' के जिन प्रसंगों में कवि का मन नहीं रमा है और जिनका उसने केवल निर्वाह कर दिया है, उनकी भाषा भी 'सारावली' की तुलना में एक प्रकार से अधिक संगठित और प्रवाहपूर्ण है।

सूरदास के संगीतज्ञ-रूप के दर्शन तो 'सारावली' में होने का प्रश्न ही नहीं उठता। 'सूरसागर' में जिन राग-रागिनियो के अनुसार गये पद

१. 'सारावली,' छद १२४।

रचे गये हैं, 'सारावली'-कार इनकी सूची एकत्र कर देता है और निष्पक्षता से देखा जाय तो जो अंतर कुशल संगीतज्ञ और रागों के सूची-गणक में होता है, वही 'सूरसागर'-कार और 'सारावली'-कार मे सहज ही परिलक्षित किया जा सकता है।

अब रही सिद्धांत-व्याख्याता-रूप की बात। इस दृष्टि से भी 'सारावली' में कोई महत्व की बात नहीं मिलती। अन्य सिद्धांतों को तो जाने दीजिए जिनको अस्पष्ट रूप में 'सारावली'-कार ने 'सूरसागर' से लेकर प्रस्तुत किया है, केवल एक बात पर विचार कर लीजिए जो उसकी स्वतंत्र कल्पना का प्रसाद कहा जाता है। 'सूरसारावली' निश्चय ही होली-लीला के रूप में लिखी गयी है—'खेलत यहि बिधि हरि होरी' से इस ग्रंथ का आरंभ है और होली के खेल की समाप्ति के साथ साथ ग्रंथ भी समाप्त हो जाता है। 'सूरसागर' के सभा के संस्करण मे होली विषयक ७४ पद हैं। यह लीला दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के २८४३ संख्यक पद से आरंभ होकर २९१७ संख्यक पद तक चलती रहती है। जिस प्रकार 'सारावली' में सारी सृष्टि की कल्पना होली के खेल के रूप में की गयी है, उस प्रकार का कोई संकेत 'सूरसागर' के होली-विषयक ७४ पदों में से एक में भी नहीं मिलता। गणना करके देखा जाय तो 'सूरसागर' के होली-विषयक पदों की चरण-संख्या 'सारावली' की चरण-संख्या के बराबर ही होगी। इतने पदों की किसी भी पंक्ति में 'सारावली' के होली-विषयक रूपक का संकेत न होता क्या यह नहीं सूचित करता कि 'सूरसागर' के रचयिता के मस्तिष्क की वह कल्पना ही नहीं है जो 'सारावली' की रचना का आधार है? सूरदास के सभी आलोचक यह स्वीकारते है कि उनका रचना का क्रम जीवन के अंतिम क्षण तक चलता रहा। तब 'सारावली' की रचना किसी भी अवस्था में हुई मानी जाय, उसकी प्रेरक कल्पना न सही, क्या तो छाया लेकर भी सूरदास कोई पद रचना उचित न समझते?

'सारावली' को सैद्धांतिक रचना सिद्ध करनेवालों का एक प्रमुख तर्क यह है कि उसमें वल्लभ-संप्रदाय में मान्य सभी उत्सवों का सांगोपांग वर्णन हुआ है। इस संबंध मे श्रीप्रभुदयाल मीतल का यह वक्तव्य ध्यान देने योग्य है—'अवतारों के अनंतर श्रीकृष्ण के नित्य विहार का वर्णन है। इसी के अंतर्गत पुष्टि संप्रदायी सेवा-भावना के अनुकूल नित्योत्सव और वर्षोत्सव का कथन किया गया है। यह विषय सांप्रदायिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। इसमें वल्लभ संप्रदायी सेवा-भावना का वह रूप है, जो इसे 'सैद्धांतिक

रचना' की संज्ञा प्रदान करता है। इसे 'सारावली' में 'सरस संवत्सर लीला' कहा गया है। इसका आरंभ शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुसार इस प्रकार हुआ है—

सदा बिलास करत गोकुल में, धन-धन जसुमति मात।
ज्यों दीपक तें दीपक कीन्हौं, भये द्वारका-नाथ॥

वल्लभ संप्रदायी सेवा-क्रम का आरंभ जन्माष्टमी से होता है। सारावली में भी इसे जन्म-बधाई के मांगलिक प्रसंग से ही आरंभ किया गया है। इसके बाद नित्योत्सव और वर्षोत्सव की सेवा-भावना का क्रमबद्ध वर्णन है, जिसमें बाल-चरित्र, दान, मान, रास, बसंत, होली, डोल और वन-विहार की आनंददायी लीलाओं का सरस वर्णन है। मान के प्रसंग में दृष्टकूट कथन है, जो गूढ़ शृंगार वर्णन की एक विशिष्ट शैली के अनुसार है। इस प्रकार यह रचना वल्लभ-संप्रदायी सेवा-भावना और सरस काव्य-कौशल की एक महत्पूर्ण कृति है, जिसका रचयिता अष्टछापी सूरदास ही हो सकता है[1]।

मीतल जी का अंतिम वाक्य देखिए। उसकी ध्वनि से तो यही सूचित होता है कि वल्लभ संप्रदायी समस्त सेवा-भावना के वर्णन का पट्टा एकमात्र सूरदास को मिला हुआ था और 'सारावली'-जैसा सरस वर्णन वे और केवल वे ही कर सकते थे, उस संप्रदाय का अन्य कोई भक्त या कवि नहीं। इस संबंध में हमारा मत यह है, जिसे हम पीछे भी लिख चुके है कि 'सारावली' का रचयिता सूरदास तो क्या, व्रज में जन्मा-पला कोई भी व्यक्ति नहीं हो सकता। जो व्यक्ति व्रज की होली का ही अपूर्ण वर्णन करता है, दीपावली, अन्नकूट आदि की अपने काव्य में चर्चा तक नहीं करता, वह जन्म से व्रजवासी रहा हो, और सांप्रदायिक वर्षोत्सवों में भाग लेता रहा हो, ये बातें तो बहुत दूर, उसने सारे जीवन में से पूरा एक वर्ष भी व्रज में बिताया हो, यह कभी संभव हो ही नहीं सकता। व्रजवासी मीतल जी इस दृष्टिकोण से संभवतः हमारा ही समर्थन करेंगे।

'सारावली' का आधार अन्य अष्टछाप-काव्य भी—

सूर-काव्य के आधार पर 'सारावली' की रचना करने की बात तो इसका रचयिता स्वयं कहता ही है और पिछले पृष्ठों मे दिये गये उदाहरणों से इसकी पुष्टि भी होती है, परंतु हमारा अनुमान है कि अन्य अष्टछापी

१. 'सारावली' (मीतल), भूमिका, पृ० ५२-५३।

कवियों के भी भावों का ही नहीं, शब्दावली का भी अपहरण 'सारावली'-कार ने किया होगा। यह बात हम अधिक छानबीन करके नहीं, दो एक उदाहरण देखकर ही कह रहे हैं; जैसे 'सारावली' में एक स्थान पर मिलता है—

रतन-चौक मे खेल मचायौ[1]।

उक्त पंक्ति का भाव और शब्दावली चतुर्भुजदास के एक पद के निम्नलिखित चरण में देखी जा सकती है—

खेल मच्यौ मनिखचित चौक मे[2]।

इस साम्य से स्पष्ट सूचित होता है कि यदि सूरदास के अतिरिक्त अन्य अष्टछापी कवियों की रचनाओं से 'सारावली' के छंदों का मिलान करने की निरर्थक माथा-पच्ची की जाय तो निश्चय ही ऐसे और भी उदाहरण मिलेंगे। क्या यह मनोवृत्ति अष्टछापी सूरदास की कही जा सकती है जिनके संबंध मे 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' में एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि अष्टछापी सूरदास ने कृष्णदास अधिकारी को एक बार इसलिए टोका था कि इनकी रचना मे उनके भावो का छाया आ जाती है। कृष्णदास ने इस पर एक ऐसा पद रचने का निश्चय किया जिसमें उनके किसी पद की छाया न आ सके और वह ऐसे विषय का हो जो सूरदास ने छुआ भी न हो[3]। अब जो सज्जन 'सारावली' को अष्टछापी सूरदास की ही रचना मानते है वे यह बताने की कृपा करें कि जिस सूरदास ने छायापहरण तक के कार्य को अत्यंत हीन समझकर कृष्णदास अधिकारी को टोंका था, क्या उन्होंने ही चतुर्भुजदास का उक्त वाक्य उड़ाकर 'सारावली' में रख लिया और यों 'चोर-शिरोमणि' के सच्चे शिष्यत्व

१. 'सारावली', छंद १०३५।

२ चतुर्भुजदास-पद-संग्रह (कॉंकरौली), पद ७८।

३. 'एक दिन सूरदास जी ने कृष्णदास सों कही जो कृष्णदास तुमने जितने पद किये तामें मेरी छाया आवत है, तब कृष्णदास ने कही जो अब के ऐसो पद करूँ सो तामें तिहारी छाया न आवे। पाछे कृष्णदास एकांत में बैठि कै बिचार किये एकाग्र मन करिकै, जो सूरदास जी वस्तु न गाये होंय सो गावनो यह बिचार।

—'प्राचीन वार्ता-रहस्य' (कॉंकरौली), द्वितीय भाग, पृ. २०५-६।

की सत्यता का सिद्धांत प्रतिपादित किया है ? हमारी सम्मति में तो 'सारावली' रचना ही ऐसे व्यक्ति की है जो चौर कला में निपुण तो है ही, अपने कर्म के लिए लज्जित होने का स्वभाव भी भुला बैठा है। अन्य कवियो की शब्दावली का अपहरण करने की 'सारावली'-कार जैसी वृत्ति अष्टछापी सूरदास की कभी हो ही नहीं सकती; अस्तु।

सूर की प्रारंभिक रचना और 'सारावली'—

'सारावली' में कला और भाव पक्ष, दोनों की उपेक्षा देखकर उसका कोई समर्थक दो बातें और कह सकता है। पहली तो यह कि इस काव्य की रचना कवि ने केवल सिद्धांत-निरूपण के लिए की थी जिसके फलस्वरूप काव्य-पक्ष की अनायास ही सर्वथा उपेक्षा हो गयी। इस संबंध में एक निवेदन तो यह करना है कि स्वभाव से ही जो कवि है और जिसने जीवन भर परमाराध्य और आराध्या की लीला के आनंद का ही वर्णन किया है, क्या वह किसी भी स्थिति मे, अपने दीर्घकालीन स्वभाव और कार्य जन्य संस्कारों को भुलाकर शुष्क सिद्धांत चर्चा मे ही रमा ह सकता है ? दूसरे, सिद्धात-चर्चा भी तो 'सारावली' में प्रधान नहीं है; बहुत थोड़ी पंक्तियों में श्रीकृष्ण लीला की चर्चा है। 'सूरसागर' मे जो कवि श्रीकृष्ण की मथुरा-द्वारका-लीला में अधिक न रम सका, केवल प्रसंग निर्वाह ही करता है, वही 'सारावली' मे पौराणिक प्रसंगों के छिछले रस में आकंठ निमग्न हो जाय, ऐसा कभी संभव हो सकता है ?

'सारावली' में काव्य-पक्ष के अभाव के संबंध में दूसरी बात यह कही जा सकती है कि यह कृति, संभव है, कवि की प्रारंभिक रचना हो और उसमे वर्ण्य विषय की रूपरेखा तैयार करने के उपरांत कवि 'सूरसागर' की रचना करने में प्रवृत्त हुआ हो। यह तर्क भी दो कारणों से संगत नहीं है। एक तो यह कि सारावली' मे ही सरसठ वर्षीय उल्लेख मिलता है जो कवि की प्रौढ़ नहीं, वृद्धावस्था का सूचक है; दूसरे, महाप्रभु वल्लभाचार्य से अष्टछापी सूरदास की भेंट और उनके द्वारा संप्रदाय में दीक्षित होने के समय कवि द्वारा रचित जिन पदों का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है, काव्य के कला और भाव पक्ष की दृष्टि से समस्त 'सारावली' उनसे भी सर्वथा हीन है। 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' के अनुसार महाप्रभु से भेंट के समय सूरदास ने निम्नलिखित दो पद गाये थे—

हों हरि सब पतितन को नायक ।
को करि सके बराबरि मेरी इते मान को लायक ॥
जो तुम अजामेल सों कीनी, सो पाती लिखि पाऊँ ।
होय विश्वास भलो जिय अपने ओरो पतित बुलाऊँ ॥
सिमिटि जहाँ तहाँ सेवक कोऊ आइ जुरे इकठोर ।
अबके इतने आनि मिलाऊँ बेर दूसरी ओर ॥
होड़ा होड़ी मन-हुलास करि, करे पाप भरि पेट ।
सबहिन ले पाइन तर पारों यहे हमारी भेट ॥
ऐसी कितनीक बनाऊँ प्रानपति ! सुमिरन भयो आड़ो ।
अबकी बेर निबेरि लेउ प्रभु ! 'सूर' पतित को ताड़ो'[1] ॥

+ + +

प्रभु ! हों सब पतितन को टीको ।
ओर पतित सब द्योस चारि के हों तो जन्मत ही को ॥
बधिक, अजामिल, गनिका तारी और पूतना ही को ।
मोहि छांड़ि तुम और उधारे मिटे सूल कैसे जी को ॥

१. 'प्राचीन वार्ता-रहस्य', द्वितीय भाग (काँकरौली), पृ० १६ १७ ।

'सभा' के 'सूरसागर' में यह पद इस प्रकार मिलता है—

हरि, हौं सब पतितनि कौ नायक ।
को करि सकै बराबरि मेरी, और नहीं कोउ लायक ।
जो प्रभु अजामील कौं दीन्हौ, सो पाटौ लिखि पाऊँ ।
तौ बिस्वास होइ मन मेरैं, औरौ पतित बुलाऊँ ।
बचन बाहँ लै चलौं गाँठि दै, पाऊँ सुख अति भारी ।
यह मारग चौगुनौ चलाऊँ, तौ पूरौ ब्यौपारी ।
यह सुनि जहाँ तहाँ तैं सिमिटैं, आइ होइ इक ठौर ।
अब कैं तौ आपुन लै आयौ, बेर बहुर की और ।
होड़ा होड़ी मनहिं भावते किए पाप भरि पेट ।
ते सब पतित पाय-तर डारौं, यहै हमारी भेंट ।
बहुत भरोसौ जानि तुम्हारौ, अघ कीन्हे भरि भाँड़ौ ।
लीजै बेगि निबेरि तुरतहीं सूर पतित कौ टाँड़ौ ॥

—पद १-१४६ ।

कोउ न समरथ अघ करिबे कों खेंचि कहत हो लीको ।
मरियत लाज 'सूर' पतितन में कहत सबन में नीको[1] ।।

इन पदो को सुनने के उपरांत महाप्रभु ने सूरदास को 'नाम' सुनाया, 'समर्पण' कराया और 'दशम स्कंध की अनुक्रमणिका' सुनायी । तब सूरदास ने निम्नलिखित पद गया—

चकई री ! चलि चरण सरोवर जहाँ न प्रेम-बियोग ।
जहाँ भ्रम निसा होति नहि कबहूं ते सायर रस जोग ।।
जहाँ सनक सिव हंस, मीन मुनि नख रवि होत प्रकास ।
प्रफुलित कमल निमिष नहिं ससि-डर गुंजत निगम सुवास ।।
जहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल सुकृत विमल जल पीजे ।
सो रस छाँडि कुबुद्धि विहंगम ! इहाँ कहा रहि कीजे ।।
तहाँ श्री-सहस्र सहित नित क्रीड़त सोभित 'सूरजदास' ।
अब न सुहाय विषय रस छीलर वा समुद्र की आस[2] ।।

१. 'प्राचीन वार्ता रहस्य', द्वितीय भाग (काँकरौली), पृ० १७ ।
'सभा' के 'सूरसागर' में यह पद इस प्रकार मिलता है—

प्रभु, हौं सब पतितनि कौ टीकौ ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ जनमत ही कौ ।
बधिक, अजामिल, गनिका तारी और पूतना ही कौं ।
मोहि छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौं जी कौ ?
कोउ न समरथ अघ करिबे कौं, खैंचि कहत हौं लीकौ ।
मरियत लाज सूर पतितनि मै, मोहूं तैं को नीकौ !

—पद १-१३८ ।

२ 'प्राचीन वार्ता रहस्य', द्वितीय भाग (काँकरौल), पृ० २०-२१ ।

'सभा' के 'सूरसागर' में यह पद इस प्रकार मिलता है—

चकई री, चलि चरन-सरोबर, जहाँ न प्रेम-बियोग ।
जहँ भ्रमनिसा होति नहि कबहूं सोइ सायर सुख जोग ।
जहाँ सनक सिव हंस, मीन मुनि, नख रबि-प्रभा प्रकास ।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि-डर, गुंजत निगम सुबास ।
जिहिं सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै ।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै ?

यह पद सुनकर 'श्री आचार्य जी महाप्रभु बोहोत प्रसन्न भए और जानें जो अब लीला को अभ्यास भयो। सो तब आचार्य जी आपु श्रीमुख तें सूरदास सो आज्ञा किये जो सूर, कछु नंदालय की लीला गावो। पाछे सूरदास जी ने नंद-महोच्छव वर्णन कियो। सो पद—

ब्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी।
सुनि आनंदे सब लोग गोकुल गनक गुनी॥
ग्रह-लगन नखत पल सोधि कीन्ही वेद धुनी।
ब्रज पूरव पूरे पुन्य रूपी कुल सुथर थुनी॥
सुनि धाईं सब ब्रज-नारि सहज सिगार किए।
तन पहिरे नौतन चीर, काजर नेन हिए॥
कसि कंचुकी, तिलक लिलार, सोभित हार सिए।
कर कंकन, कंचन थार मंगल साज लिए॥
सुभ स्रवननि तरल तरोन, वेनी सिथिल गुही।
सिर वरषत सुमन सुरेस मानों मेघ फुही॥
उर अंचल उडत न जान्यो सारी सुरंग सुही।
मुख मंडित रोरी रंग सेंदूर माग छुही॥
ते अपने अपने मेल निकसीं भांति भली।
मानों लाल मुनैयनि पांति पिंजरन छूटि चली॥
वे गावे मंगल गीत मिलि दस पाच अली।
मानो भोर भए रवि देखि फूली कमल कली॥
ते पहिले पहुँचीं जाइ अति आनंद भरी।
लईं भीतर भवन बुलाइ, सब सिसु पांइ परी॥
एक बदन उघारि निहारि, देत असीस खरी।
चिरजीवो जसोदा नंद! पूरन काम करी॥
धनि दिन, धनि यह राति, धनि यह पहर, घरी।
धनि धनि महरि की कूखि भाग सुहाग भरी॥
जिन जायो एसो पूत सब सुख फरनि फरी।
थिर थाप्यो सब परिवार मन की सूल हरी॥

(पिछली पाद-टिप्पणी का शेष)

लछिमी-सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सूरजदास।
अब न सुहात बिषय-रस-छीलर वा समुद्र की आस॥
—पद १-३३७।

सुनि ग्वालनि गाइ बहोरि बालक बोलि लिए।
गुहि गुन्जा, घसि घनसार अंग अंग चित्र ठए॥
सिर दधि माखन के माट, गावत गीत नए।
डफ, झाझ मृदंग बजावत सब नंद-भवन गए॥
मिलि नाचत, करत किलोल, छिरकत हरद दही।
मानो बरषत भादों मास नदी दधि दूध वही॥
जाको जहीं जहीं चित जात, कौतिक तहीं तहीं।
रस आनंद मगन गुवाल काहू बदत नहीं॥
एक धाइ नंद जू पे जाइ पुनि पुनि पाइ परे।
एक आपु आपु ही माझ हँसि हँसि अंक भरें॥
एक अभरन लेहि उतारि देत न सक करें।
एक दधि रोचन दूब सबनि के सीस धरें॥
तब नंद न्हाय भए ठाढे अरु कुश हाथ धरे।
नादी-मुख पितर पुजाय अंतर सोच हरे॥
घसि चंदन चारु मगाय, विप्रनि तिलक करे।
द्विज गुरुजन कों पहराय सबनि के पाइ परे॥
गन गैया गनिय न जाय, तरुनी बच्छ बढ़ीं।
ते चरहि जमुना के काछ, दूने दूध चढ़ीं॥
खुर रूपे, तामे पीठि, सोने सींग मढीं।
ते दीनीं द्विजनि अनेक हरषि असीस पढी॥
सब अपने मित्र, सुबंधु हँसि हँसि बोलि लिए।
मथि मृगमद मलय कपूर माथे तिलक किए॥
उर मनिमाला पहिराय, वसन विचित्र दिए।
मानों बरषत मास असाढ दादुर मोर जिए॥
वर बंदी, मागध, सूत आंगन भवन भरे।
ते बोलें ले ले नाम हित कोऊ ना बिसरे॥
जिन जो जांच्यो सो दीनो, अस नंदराय ढरे।
अति दान, मान, परिधान पूरन काम करे॥
तब रोहिनी छँवर मगाइ सारी सुरंग घनी।
ते दीनी बधुनि बुलाइ जेसी जाहि बनी॥
ते अति आनंदित बहुरि निज गृह गोप धनी।
मिलि निकसीं देत असीस, रुचि अपनी अपनी॥

पुर, घर घर, भेरि,मृदंग, पटह, निसान बजे।
वर बाधी वंदनवार अरु ध्वज, कलस सजे॥
ता दिन तें वे ब्रज-लोग सुख, संपति न तजे।
सुनि 'सूर' सबनि की यह गति निज हरि चरन भजे'॥

१. 'प्राचीन' वार्ता रहस्य' द्वितीय भाग (काँकरौली), पृ० ११ से २५ तक।

'सभा' के 'सूरसागर' में यह पद इस प्रकार मिलता है—

ब्रज भयौ महर कैं पूत, जब यह बात सुनी।
सुनि आनंदे सब लोग, गोकुल-गनक-गुनी।
अति पूरन पूरे पुन्य, रोपी सुथिर थुनी।
ग्रह-लगन नषत-पल सोधि, कीन्ही बेद-धुनी।
सुनि धाईं सब ब्रजनारि, सहज सिंगार किये।
तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिये।
कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिये।
कर-कंकन, कंचन-थार, मंगल साज लिये।
सुभ स्रवननि तरल तरौन, बेनी सिथिल गुही।
सिर बरषत सुमन सुदेस, मानौ मेघ फुही।
मुख मंडित रोरी रंग, सेंदुर माँग छुही।
उर अंचल उड़त न जानि, सारी सुरँग सुही।
ते अपनैं-अपनै मेल, निकसीं भाँति भली।
मनु लाल-मुनैयनि पाँति, पिंजरा तोरि चली।
गुन गावत मंगल-गीत, मिलि दस पाँच अली।
मनु भोर भएँ रवि देखि, फूलीं कमल-कली।
पिय-पहिलैं पहुँचीं जाइ अति आनंद भरीं।
लईं भीतर भवन बुलाइ, सब सिसु-पाइ परीं।
इक बदन उघारि निहारि, देहिं असीस खरी।
चिरजीवौ जसुदा-नंद, पूरन-काम करी।
धनि दिन है, धनि यह राति, धनि-धनि पहर घरी।
धनि-धन्य महरि की कोख, भाग-सुहाग भरी।
जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी।
थिर थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी।
सुनि ग्वालनि गाइ बहोरि, बालक बोलि लए।

उक्त चारों पद सभा के 'सूरसागर' में मिलते हैं जिनका संपादित पाठ पाद-टिप्पणी रूप में उद्धृत किया गया है; परंतु यहाँ उन्हें 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' से भी पूरा-पूरा उद्धृत किया गया है; क्योंकि इसका पाठ असंपादित ही है। अब ब्रजभाषा काव्य का कोई भी अध्येता सूरदास

(पिछली पाद-टिप्पणी का शेष)

गुहि गुंजा घसि बनधातु, अंगनि चित्र ठए।
सिर दधि माखन के माट, गावत गीत नए।
डफ झाँझ-मृदंग बजाइ, सब नंद-भवन गए।
मिलि नाचत करत कलोल, छिरकत हरद-दही।
मनु बरषत भादौं मास, नदी घृत-दूध बही।
जब जहाँ-जहाँ चित जाइ, कौतुक तहीं-तहीं।
सब आनँद-मगन गुवाल, काहूँ बदत नहीं।
इक धाइ नंद पै जाइ, पुनि-पुनि पाइ परैं।
इक आपु आपुहीं माहि, हँसि हँसि मोद भरैं।
इक अभरन लेहिं उतारि, देत न संक करैं।।
इक दधि गोरोचन-दूब, सबकैं सीस धरैं।
तब न्हाइ नंद भए ठाढ़, अरु कुस हाथ धरे।
नांदीमुख पितर पुजाइ, अंतर सोच हरे।
घसि चंदन चारु मँगाइ, बिप्रनि तिलक करे।
द्विज-गुरु-जन कौं पहिराइ, सब कै पाइ परे।
तहँ गैयाँ गनी न जाहिं, तरुनी बच्छ बढ़ीं।
जे चरहिं जमुन कै तीर, दूनैं दूध चढ़ीं।
खुर ताँबै, रूपैं पीठि, सोनैं सींग मढ़ीं।
ते दीन्हीं द्विजनि अनेक, हरषि असीस पढ़ीं।
सब इष्ट मित्र अरु बंधु, हँसि-हँसि बोलि लिये।
मथि मृगमद मलय-कपूर, माथैं तिलक किये।
उर मनि माला पहिराइ, बसन बिचित्र दिये।
दै दान-मान-परिधान, पूरन-काम किये।
बंदीजन-मागध-सूत, आँगन-भौन भरे।
ते बोलैं लै-लै नाउँ, नहिं हित कोउ बिसरे।
मनु बरषत मास अषाढ़, दादुर-मोर ररे।

के उन असंपादित पदों से 'सारावली' का मिलान करने पर सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि उक्त पदों की तुलना में इस काव्य के श्रेष्ठतम छंद भी भाव-व्यंजना और भाषा-संगठन की दृष्टि से घटकर ही हैं—बढ़कर होना तो अलग रहा, समकक्ष भी नहीं हैं।

उक्त पदों की रचना सूरदास ने वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित होते ही की थी। डा० दीनदयालुप्त गुप्त ने सूरदास के वल्लभाचार्य जी की शरण में जाने का वर्ष सं० १५६६ माना है जब उनकी आयु ३१ वर्ष की थी[1]। श्री प्रभुदयाल मीतल ने यह शरण-काल संवत् १५६७ सिद्ध किया है[2]। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सूरदास ने उक्त पद ३१ ३२ वर्ष की अवस्था में रचे थे। अब यदि 'सारावली' उन्हीं की सरसठ वर्षीय अवस्था की रचना मानी जाय तो यह भी स्वीकारना होगा कि लगभग ३५ वर्ष तक निरंतर काव्य-साधना करने के उपरांत साहित्य-जगत को सामान्य रूप से और उसकी प्रामाणिकता के पोषकों को विशेष रूप से यह स्वतंत्र कृति भेंट की गयी थी। क्या 'सारावली' में, किसी भी दृष्टि से इस साधना का कोई चिह्न मिलता है? फिर जब वह सूरदास की ३१-३२ वर्षीय रचना की तुलना में नहीं ठहरती, तब ६७ वर्षीय रचना किस प्रकार कहला सकती है?

'सारावली' क्या केशव किशोर की रचना है?

अब अंतिम प्रश्न यह है कि 'सारावली' है किसकी रचना? इस

(पिछली पाद-टिप्पणी का शेष)

जिन जो जाँच्यौ सोइ दीन, अस नँदराइ ढरे।
तब अंबर और मँगाइ, सारी सुरँग चुनी।
ते दीनी बधुनि बुलाइ, जैसी जाहि बनी।
ते निकसीं देति असीस, रुचि अपनी अपनी।
बहुरीं सब अति आनंद, निज गृह गोप-धनी।
पुर घर-घर भेरि-मृदंग, पटह-निसान बजे।
बर बारनि बंदनवार, कंचन कलस सजे।
ता दिन तैं वै ब्रज लोग, सुख-संपति न तजे।
सुनि सबकी गति यह सूर, जे हरि-चरन भजे।
—पद १०-२४।

१. 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', प्रथम भाग, पृ० २१३।
२. 'अष्टछाप-परिचय', पृ० १२८।

संबंध में डा० ब्रजेश्वर वर्मा का मत, जो संक्षेप में पीछे उद्धृत किया जा चुका है[1], इस प्रकार है—

"इस प्रकार 'सारावली' के कवि ने केवल एक बार 'सूरदास', चार बार 'सूर' और छ बार 'सूरज' तथा संदिग्ध 'सूरजु' का प्रयोग किया है। सूरसागर में प्रयुक्त'सूरज' छाप की संख्या का अनुपात इसकी अपेक्षा बहुत कम है। सारावली में सबसे पहले 'सूरज' का ही प्रयोग हुआ है, जहाँ रचयिता ने अपने को कवि कहा है तथा दूसरी बार उसने अपना नाम सूरज कवि बताया है। यह सूरज कवि वह ब्रजवासी बालक अनुमान से जान पड़ता है जो नागरीदास जी के अनुसार ब्रज में 'द्वैतुकिया होरी के भड़ौआ' गाता फिरता था और जिसे श्रीगोस्वामी जी ने 'भगवत् जस' वर्णन करने का उपदेश दिया था। संभव है, गोस्वामी जी का उपदेश मानकर कालांतर में उसी ने 'सारावली' के नाम से होली का वृहद् गान रच दिया हो। पंडित मुंशीराम शर्मा ने नागरीदास जी के कथन को यथार्थ न मान कर अनुमान माना है, पर यह संभावना अधिक है कि यह 'द्वैतुकिया भड़ौआ' गाने वाला कवि नाम-साम्य और विश्वास-साम्य के कारण अपनी रचना को प्रसिद्ध भक्त-कवि सूरदास की रचना के समकक्ष रखने का लोभ न संवरण कर सका हो"[2]।

'सारावली' में मिलनेवाली छापों की चर्चा हम पीछे कर चुके हैं[3]। उसके अनुसार 'सूरज' छाप 'सारावली' में है ही नहीं, उसके स्थान पर 'सूर जी' या 'सूर जु' पाठ मिलता है। स्वयं डा० वर्मा का ध्यान भी 'सूर जु' पाठ की ओर गया था, परंतु उन्होंने उसे संदिग्ध मान लिया। अतएव 'सूरज' छाप के आधार पर उन्होंने जो निष्कर्ष निकाला है, वह भी 'छापों' का निर्णय न होने तक संदिग्ध ही समझना चाहिए, विशेषकर इस कारण भी, जैसा पिछले पृष्ठों में कहा भी जा चुका है कि 'सारावली' किसी ब्रजवासी की रचित हो ही नहीं सकती।

वस्तुतः 'सारावली' के वास्तविक रचयिता के संबंध में कुछ कहना अभी कठिन है। 'श्रीआचार्य महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता' में एक कवि

१. प्रस्तुत पुस्तक, पृ० ८५।
२. 'सूरदास', पृ० १०५।
३. प्रस्तुत ग्रंथ, पृ० २०-२१-२२।

केशव किशोर की रचित 'श्री आचार्य जी की वंशावली' प्रकाशित की गयी है[1]। इस 'वंशावली' में केवल १६० छंद हैं जिन्हें प्रस्तुत ग्रंथ की परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

'सारावली' और 'वंशावली' के विषयों में किसी प्रकार का साम्य नहीं है, परंतु कविता की दृष्टि से दोनों रचनाएँ एक ही कोटि की कही जा सकती हैं। वाक्यांश और उपवाक्य दोहराने की प्रवृत्ति भी दोनों कवियों में एक जैसी है जिसकी पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से होती है—

१. क गूँगे हू गुन गनि कहे, चरन कमल धरि ध्यान[2]।
 ख. रहे मन आनंद मे, चरन कमल धरि ध्यान[3]।
२. क. व्यापक चौदह भुवन मे, भगवान् अगिनि के रूप[4]
 ख. अगिन रूप बोले तबै, डरु तजि सुनि यों बात[5]।
 ग. अगिन रूप ये आपु हैं, ए कछू मानुस नाहि[6]।
३. क. माता के मन मोह भयो, देखन गई तिहि ठाँव[7]।
 ख. जे जे वैष्णव ग्रन्थ हैं, वे करियो एक ठाँव[8]।
 ग. एक माधवाचार्य, संन्यासी तिहि ठाँव[9]।
 घ. संन्यासी चलि कैं गयो, श्रीबल्लभ के ठाँव[10]।
 ङ. पूछत पूछत आइयो, एक श्रीबल्लभ ठाँव[11]।
 च. हस्त नछित्र तैतल करन, ग्रह सब नीकी ठाँव[12]।

१. 'श्री आचार्य महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता', पृ० १२३ स १३७ तक।
२. 'श्री आचार्य जी की वंशावली', छंद १।
३. वही, छंद ४४।
४. वही, छंद ६।
५. वही, छंद १३।
६. वही, छंद ६८।
७. वही, छंद ८।
८. वही, छंद ५१।
९. वही, छंद ६७।
१०. वही, छंद ७१।
११. वही, छंद १०९।
१२. वही, छंद १११।

छ. देखे बहुत बिचारि चित्त, जानत नाहिने ठॉव[१] ।
ज. जाको चित्त हमपें रहै, सो आवै तुम ठॉव[२] ।
झ. चलि अचल आये तबे श्रीबल्लभ के ठॉव[३] ।
४. क. लीजो मोहिं उठाइ कें, ए माता तुम तात[४] ।
ख. लीने तबहिं उठाइ कें ले आए तिहि गॉव[५] ।
५. क. देखत बल्लभ सबन कही, धरिये श्रीबल्लभ नाँव[६] ।
ख. याते परगट होहिगे, अधम उधारन नाँव[७] ।
ग. बाकी मनसा यह भई, वे सुनिहै मोपे नाम[८] ।
घ. अब आज्ञा ऐसे भई, तुमही सुनावो नाम[९] ।
ङ. जहॉ प्रथम कलिजुग प्रगट तहॉ दियो प्रभु नांउ।
विश्व उद्धारयौ कहि कहि कथा, दिए कृपा करि नांउ[१०] ।
च. सेव्य श्री ठाकुर लीजियो, श्रीविट्ठलेशराय जी नाँव[११] ।
छ. देखि मुदित बल्लभ भए, धरयौ श्रीविट्ठल नॉव[१२] ।
ज. जो जानें सेवा मे परिपक्व हैं, ताहि सुनावे नॉव[१३] ।
झ. ताते छॉड़ि अचार बिचार सब, ताहि सुनावे नॉव[१४] ।
६. क. संवत् पंद्रह सौ पेतीस, सुभ नछित्र सुभ वार[१५] ।

१. 'श्री आचार्य जी की बशावली', छंद ११६ ।
२. वही, छंद १२१ ।
३. वही, छंद १२४ ।
४. वही, छंद १३ ।
५. वही, छंद १४ ।
६. वही, छंद १४ ।
७. वही, छंद ५१ ।
८. वही, छंद ६७ ।
९. वही, छंद ७१ ।
१०. वही, छंद ८६ ।
११ वही, छंद १०६ ।
१२. वही, छंद १११ ।
१३. वही, छंद ११६ ।
१४. वही, छंद १२१ ।
१५. वही, छंद १५ ।

ख. संवत् सोरह से अठाईसा, सुभ नछित्र सुभ वार[१] ।

७. क. ब्रह्मचारी के रूप ह्वै, परिकरमा करो जाय[२] ।

ख. बहुरयौ आज्ञा दई प्रभु, परिकरमा करो जाय[३] ।

ग. परिकरमा पृथ्वी करी, जैसे फिरत दिनेस[४] ।

८. क. निरखे बिट्ठलनाथ जी, अङ्ग अङ्ग भरि भाय[५] ।

ख. सुंदर सुभग सुजान अति, अंग अंग भरि भाय[६] ।

ग. तब बोले प्रभु आइकैं, नाना बिधि के भाय[७] ।

घ. श्री लछिमी नरसिंह के, नाना बिधि के भाय[८] ।

ङ. सेवत सब आनंद मे, अपने अपने भाय[९] ।

च. जहाँ तहाँ लीला करे, अपने अपने भाय[१०] ।

छ. दौरि दौरि देखैं सबै, अपने अपने भाय[११] ।

ज. सेवक एक गोपाल को, सेवा करे बहु भाय[१२] ।

झ. अजू हम तुम्हरे रहैं, समुझि ओर ही भाय[१३] ।

९. क. वाकू आज्ञा यह भई, तू चंदन ले आय[१४] ।

ख. तब वाको आज्ञा भई, श्रीबल्लभ कों देह[१५] ।

ग. बहुरयो आज्ञा दई प्रभु, परिकरमा करो जाय[१६]

१. 'श्री आचार्य जी की वंशावली', छंद १३३ ।
२. वही, छंद १७ ।
३. वही, छंद ५० ।
४. वही, छंद १८ ।
५. वही, छंद २० ।
६. वही, छंद १४३ ।
७. वही, छंद ६४ ।
८. वही, छंद १४८ ।
९. वही, छंद १०५ ।
१०. वही, छंद १२६ ।
११. वही, छंद १७६ ।
१२. वही, छंद २१ ।
१३. वही, छंद १२४ ।
१४. वही, छंद २१ ।
१५. वही, छंद २३ ।
१६. वही, छंद ५० ।

घ. अब आज्ञा ऐसे भई, तुम ही सुनावो नाम[1] ।
ङ. अब आज्ञा भई, ताको बहुत बिचार[2] ।
च. अब उनकूं आज्ञा भई, उनके मत अनुसार[3] ।
१०. क. दरसन बद्रीनाथ को, महिमा अपरंपार[4] ।
ख. बालकृष्ण के विसन की, महिमा अपरंपार[5] ।
ग. महाराज के सहज को, महिमा अपरंपार[6] ।
११. क. पुरुमोतम पूरन प्रगट, देख श्री जगन्नाथ[7] ।
ख. श्रीपुरुसोत्तम पूरन प्रगट, सीतलता की खानि[8] ।
१२. क. याते परगट होंहिगे, अधम उधारन नांव[9] ।
ख. श्रीविट्ठलनाथ प्रताप ते, अधम उधारन होय[10] ।
१३. क. मारग के अनुसार के, कहे सबै ब्यौहार[11] ।
ख. करि ग्रहस्त ज्यों हम किए, करें कहा ब्योहार[12] ।
१४. क. तम फूट्यो तिहुँ लोक मे, निकस्यो पूरन चंद[13] ।
ख. फूले भगत चकोर सब निकस्यो पूरन चंद[14] ।
१५. क. विष्णु-स्वामिनी संपदा, तिलकु कियो निजु माथ[15] ।
ख. विष्णुस्वामिनी संपदा, बहुत दिना भई लोप[16] ।

१. 'श्री आचार्य जी की वंशावली', छंद ७१ ।
२. वही, छंद ८० ।
३. वही, छंद १०४ ।
४. वही, छंद ३३ ।
५. वही, छंद १४६ ।
६. वही, छंद १६० ।
७. वही, छद ४३ ।
८. वही, छंद १५१ ।
९. वही, छंद ५१ ।
१०. वही, छंद १८३ ।
११. वही, छद ५३ ।
१२. वही, छंद ८६ ।
१३. वही, छंद ५८ ।
१४. वही, छंद ११४ ।
१५. वही, छंद ७५ ।
१६. वही, छंद ७६ ।

१६. क. श्रीगिरिधर लाल लड़ावहू, नाना बिधि के भोग[1] ।
ख. तब बोले प्रभु आइके, नानाबिधि के भाय[2] ।
ग. श्रीलछिमी नरसिंह के, नानाबिधि के भाय[3] ।
१७. क. मोपे कही न जात है, जो प्रभु आज्ञा दीन[4] ।
ख. श्रीमदसूदन के प्रगटे, सोभा कहिय न जाय[5] ।
ग. श्रीयमुना के पुलिन की, सोभा कहिय न जाय[6] ।

ऊपर के उदाहरण 'वंशावली' का दो तीन बार 'पाठ' करके चुन लिये गये हैं। केवल १६० छंदों में शब्द, वाक्यांश और उपवाक्यों की ऐसी आवृत्तियाँ हमारा ध्यान स्वभावतया 'सारावली'-कार की वैसी ही रुचि की ओर आकृष्ट कर देती हैं। फिर दोनों ग्रंथों में कुछ वाक्यांशों का समान रूप से प्रयोग भी मिलता है; उदाहरणार्थ—

१. क. खेलत बालबिनोद सू, मानो फूली साँझ—'वंशावली',[7] ।
ख. मनो सरस इन्दीवर फूले, ता मधि फूली साँझ—'सारावली',[8] ।
२. क. संवत् पंद्रह सौ पेंतीस, सुभ नछित्र सुभ वार—'वंशावली',[9] ।
ख. गुरु बसिष्ठ मुनि लगन दियो सुभ, सुभ नछत्र सुभ बार।
—'सारावली',[10] ।
३. क. वाकूँ आज्ञा यह भई हू चंदन ले आय - 'वंशावली',[11] ।
ख. तब आज्ञा भई यह हरि की, अज करो परम तप आप।
—'सारावली',[12] ।

१. 'श्री आचार्य जी की वंशावली', छंद ८८ ।
२. वही, छंद ६४ ।
३. वही, छंद १४८ ।
४. वही, छंद ६२ ।
५. वही, छंद १६२ ।
६. वही, छंद १६६ ।
७. 'वंशावली', छंद ५ ।
८. 'सारावली', छंद ७२० ।
९. 'वंशावली', छंद १५ ।
१०. 'सारावली,' छंद २३१ ।
११. 'वंशावली', छंद २१ ।
१२. 'सारावली', छंद १२ ।

४. क. देखि मंदारन मदसूदने, गंगासागर न्हाहिं—'वंशावली',[1] ।
ख. चले मगन ह्वै ब्रह्म ध्यान कर गंगासागर न्हाय—'सारावली',[2] ।
५. क. पुरुसोतम पूरन प्रगट, देख श्रीजगन्नाथ 'वंशावली',[3] ।
ख. पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम नित निज लोक बिलासी—'सारावली',[4] ।
६. क. फूले अंग न मात नृप, बार बार बलि जाय—'वंशावली',[5] ।
ख चले नित्य आह्निक सब करि द्विज, उर आनँद न समात ।
—'सारावली',[6] ।
७. क. श्रीगिरिधर लाल लडावहू, नाना बिधि के भोग—'वंशावली',[7] ।
ख. . . .. . 'यातें लाड़ लड़ायौ—'सारावली',[8] ।

इतना ही नहीं, तिथि-गणना की जैसी रुचि 'सारावली'-कार में दिखायी देती है, वह 'वंशावली'-कार में भी है। 'सारावली' के तो वैसे उदाहरण पीछे दिये जा चुके है[9], 'वंशावली' के चुने हुए उदाहरण नीचे उद्धृत है—

१. संवत् पंद्रह सौ पैंतीम, सुभ नछित्र सुभ वार।
कृष्ण पछि सोमपछि, ता व्रत वैष्णव के सार।
अगिनि रूप चलि प्रगटे, एकादसी बैसाख[10]।

२. संवत् पंद्रह सौ बहत्तर, नोमी पौस बदि प्रात।
शुक्रवार सुभ लगन वृष, है सबहिन कों थान।
हस्त नछित्र तैतल करन, गृह सब नीकी ठाँव।
देखि मुदित वल्लभ भए, धरयो श्रीविट्ठल नाँव[11]।

१ 'वंशावली' छंद ३५ ।
२. 'सारावली', छंद ५६ ।
३. 'वंशावली', छद ४३ ।
४. 'सारावली', छंद १ ।
५. 'वंशावली', छंद ६५।
६. 'सारावली', छंद २१६ ।
७. 'वंशावली', छंद ८८।
८. 'सारावली', छंद ५२६ ।
९. प्रस्तुत ग्रंथ, पृ० ३६०-६१ ।
१०. 'श्री आचार्य जी की वंशावली', छंद १५-१६ ।
११. वही, छंद ११०-११ ।

३. सावन असावल पच्छिता एकादसी अध रात।
श्री गोकुल मे प्रभु कही, श्रीबल्लभ सूँ बात[1]।

४. संवत् सोरह से अठाईसा, शुभ नछित्र सुभ वार।
फागुन बदि सप्तमी सुभ, बसो श्रीगोकुल विस्तार[2]।

इतना ही नहीं, 'वंशावली' की कुछ पंक्तियों पर 'सूरसागर' के पदों का भी प्रभाव दिखायी पड़ता है। उदाहरण के लिए 'वंशावली' के मंगलाचरण का द्वितीय चरण इस प्रकार है—

गूँगे हू गुन गनि कहे, चरन कमल धरि ध्यान[3]।

उक्त पंक्ति का भाव 'सूरसागर' के मंगलाचरण की निम्नलिखित पंक्तियों का ही है—

चरन-कमल बंदौ हरि-राइ।
— — — ।
.... गूँग पुनि बोलै — —[4]।

'वंशावली' के दूसरे छंद का प्रथम चरण—

लीला अगम अगाध है ताको वार न पार[5]।

'सूरसागर' की निम्नलिखित पंक्तियों का स्मरण करा देता है—

अविगति-गति कछु कहत न आवै[6]।

× × ×

सूर के प्रभु की नित्य लीला नई, कहि सकै कौन, यह कछुक गाई[7]।

'वंशावली' के नवें-दसवें छंद में पुत्र के अद्भुत रूप का दर्शन करके माता के 'चकृत' होने की बात कही गयी है—

१. 'श्री आचार्य जी की वंशावली', छंद १२०।
२. वही, छंद १३३।
३. वही, छंद १।
४ 'सूरसागर', पद १-१।
५ 'श्री आचार्य जी की वंशावली', छंद २।
६. 'सूरसागर', पद १-२।
७. वही, पद ८-१६।

देख्यौ अद्भुत रूप उनि, अगिनि-कुंड के माँझ।

× × ×

चकृत ह्वै भयभीत उर बैठ गई धरि ध्यान[1]।

'सूरसागर' में श्रीकृष्ण के मुख मे 'अखिल ब्रह्मांड' का दर्शन करके माता यशोदा की भी यही दशा होती है—

अखिल ब्रह्मांड-खंड की महिमा दिखराई मुख माँहि।
... . . चकित भई मन चाहि[2]।

× × ×

... देखि चकृत भई याकी अकथ कहानी[3]।

'वंशावली' में 'कूँ', और 'सूँ' परसर्ग तो मिलते हैं, 'नें' या 'नैं' का प्रयोग कहीं नही है और शब्द संख्या भी 'सारावली' मे अधिक है; फिर भी उक्त साम्य देखकर अनुमान किया जा सकता है कि संभव है 'वंशावली' कार ने ही कालांतर मे 'सारावली' भी रची हो। यों दोनों ग्रंथो की कविता में अंतर है—'वंशावली' कवि के कविता-काल के पूर्वार्द्ध की रचना ज्ञात होती है; क्योंकि वह बहुत ही साधारण कोटि की कृति है और 'सारावली' उत्तरार्द्ध की जिसकी पुष्टि उसके 'सरसठ वर्षीय' उल्लेख से भी होती है।

अब देखना यह है कि 'सारावली' कार के आत्मकथन 'वंशावली'-कार के संबंध में कहाँ तक ठीक उतरते है। 'सारावली' के तद्विषयक कथनों की चर्चा पीछे विस्तार से की जा चुकी है[4]। उनमें से केवल निम्नलिखित पंक्तियों पर ही विचार करना यहाँ पर्याप्त होगा—

१. गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रबीन[5]।

२. करम, जोग पुनि ज्ञान-उपासन सब ही भ्रम भरमायो।
श्री बल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला-भेद बतायो।

१. 'वंशावली', छंद ६-१०।
२. 'सूरसागर', पद १०-२५५।
३. वही, पद १०-२५६।
४. प्रस्तुत पुस्तक, पृ० ८२ से ९७ तक।
५. 'सारावली,' छंद १००२।

ता दिन दिन ते हरि-लीला गाई एक लच्छ पद-बंद ।
ताको सार सूर-सारावलि गावत अति आनंद[१] ।

दोनों उद्धरणो के बीच मे सौ छंदो का जो अंतर है, वह स्पष्ट सूचित करता है कि दोनो के विषय परस्पर संबंधित नहीं हैं। पहले में 'सारावली'-कार ने सरसठ वर्षीय अवस्था मे गुरु-कृपा से (निकुंज-लीला के) 'दरसन' होने की बात लिखी है। 'वंशावली' के रचयिता केशव किशोर का समय 'प्राकट्य वार्ता' मे सं० १६०० से १६८० के बीच का बताया गया है[२] और श्री गोकुलनाथ जी का सं० १६०८ से १६९७ तक[३]। हो सकता है कि केशव किशोर ने 'गुरु' शब्द का प्रयोग इन्ही श्री गोकुलनाथ जी के लिए किया हो और उन्ही की कृपा से संवत् १६६७ के आसपास 'निकुंज लीला' के दर्शन का सौभाग्य पाया हो। इस सरसठ वर्षीय उल्लेख का प्रत्यक्ष संबंध, जैसा पीछे लिखा जा चुका है[४], 'लीला-दर्शन' से ही है, 'सारावली' की रचना से नहीं।

निष्कर्ष यह कि 'सारावली'-कार, चाहे वह केशव किशोर हो या कोई और, व्रज का निवासी नही है। सरसठ वर्ष की अवस्था में उसे व्रज यात्रा का अवसर मिला था, जहाँ उसे महाप्रभु के तत्कालीन उत्तराधिकारी 'आचार्य' या 'गुरु' की कृपा से 'लीला-दर्शन' का सौभाग्य प्राप्त हुआ। व्रजवासी वह था नहीं, इसलिए व्रजयात्रा के अवसर-विशेष पर ही उक्त सौभाग्य उसे मिल सका जिससे गद्गद् होकर वह उक्त पंक्ति लिख देता है। यह भी संभव है कि इसी समय उसने वल्लभ-संप्रदायी आचार्य से दीक्षा ली हो और तभी उसको 'दर्शन' हुए हों। इस समय तक उसने अष्टछापी सूरदास का नाम भर सुना होगा, उनके कुछ पदों से ही वह परिचित रहा होगा। 'दर्शन' का सौभाग्य प्राप्त करने और 'वंशावली' की रचना कर चुकने पर संप्रदाय के सर्वश्रेष्ठ कवि के काव्य से सुपरिचित होने का उसको स्वभावत. चाव हुआ होगा। और अंतत: व्रज मे कुछ मास रहकर प्राप्त सूर-काव्य के साथ जब वह अपने वास-स्थान को लौटा तब निजी पारायण

१. 'सारावली', छंद ११०२-३।
२. 'श्री आचार्य महाप्रभु जी की प्राकट्य-वार्ता', वक्तव्य, पृ० १।
३. वही, पृ० १।
४. प्रस्तुत पुस्तक, पृ० ८६।

के लिए अथवा किसी धनी-मानी भक्त के लिए उसने 'सूर-सारावली' की रचना की होगी। निजी पारायण से अधिक बल दूसरे के लिए 'सारावली' की रचना किये जाने पर देने का कारण यह है कि यदि उसका उद्देश्य प्रथम जैसा होता तो इस ग्रंथ के साथ अपना नाम देने में उसकी किसी प्रकार की हानि तो थी ही नहीं, उलटे सांप्रदायिक भक्तो मे कुछ सम्मान और लोकप्रियता ही प्राप्त होती, अस्तु।

ऊपर उद्धृत 'सारावली' के दूसरे कथन की प्रथम तीन पंक्तियाँ, जैसा पीछे कहा जा चुका है[1], उन्हीं महाकवि सूरदास से संबंधित हैं जिनमे उनके संबंध मे ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डाला गया है, और अंतिम 'सारावली'-कार ने अपने लिए लिखी है, जिसका भावार्थ है—(कविवर सूरदास के) उस लीला गान का सार 'सूर-सारावली' के नाम से (मै अर्थात् 'सूर-सारावली' का रचयिता) बड़े आनंद से गाता (लिखता) हूँ[2]।

महाप्रभु की 'वंशावली' जिसने रची हो उसकी रुचि उनके शिष्यो के काव्य में भी होना स्वभावतया संगत समझा जायगा। इससे भी हमारे उक्त अनुमान की पुष्टि होती है। फिर भी अधिक प्रमाणो के अभाव में निश्चित रूप से यह नही कहा जा सकता कि 'वंशावली'-कार और 'सारावली'-कार, दोनो व्यक्ति एक ही हैं।

---

१. प्रस्तुत पुस्तक, पृ० ९२ से ९७ तक।

२. प्रस्तुत पुस्तक, पृ० ९६।

परिशिष्ट

श्री आचार्य जी की वंशावली

रचयिता — केशवकिशोर

(समय संवत् १६०० से १६८० तक)

'श्री' वल्लभ चरन प्रताप बल, मुग्ध हू कूं होय ज्ञान।
गूंगे हू गुन गनि कहैं, चरन कमल धरि ध्यान ॥१॥

लीला अगम अगाध है ताको वार न पार।
कछुक कहत हूँ चरण गहि, अपने मत अनुसार ॥२॥

ऐसो कोउ नाहि जगत् में, जासूं दीजे जोर।
श्रीवल्लभ वल्लभ जगत्, बरनें "केसो किसोर" ॥३॥

सोम जग्य जगि मगि रह्यो ज्यों कुल में द्विजराज।
तिनके गंगाधर भए, पूजत सकल समाज ॥४॥

तईलङ्ग तिलक तिनके प्रगट लछिमन भट्ट नरेस।
तिनकी अस्तुति करन कूं, सेसौ मुख नहीं सेस ॥५॥

व्यापक चौदह भवन में, भगवान अगिनि के रूप।
अब श्रीवल्लभ बपु धरयौ प्रगटे पुहिम अनूप ॥६॥

लक्ष्मण भट्ट तीरथ गए, लोक कुटुम्ब सब साथ।
गरभपात पत्नी भयो, पुत्र न आयो हाथ ॥७॥

तहाँ ते आए बहुरि फिरि, बसे आनि तिहि गाँव।
माता के मन मोह भयो, देखन गई तिहि ठाँव ॥८॥

देख्यो अद्भुत रूप उनि, अगिनि कुण्ड के माँझ।
खेलत बाल विनोद सूं, मानों फूली सांझ ॥९॥

चकित ह्वै भयभीत उर, बैठ गई धरि ध्यान।
कोन रूप देख्यो कहा, कहा भई भगवान्॥१०॥
बड़ी बार जब ह्वे गई, तब धायो भरतार।
नारि गई आई नहीं, कहा भई करतार॥११॥
उनि हू देख्यौ रूप जब, उपज्यो मन में त्रास।
नैन मूंदि कें ढिंग गयो, निजु पत्नी के पास॥१२॥
अगिनि रूप बोले तबै, डरु तजि सुनियो बात।
लीजो मोहिं उठाइ कें, ए माता तुम तात॥१३॥
लीने तबहि उठाय के ले आए तिहि गॉव।
देखत वल्लभ सबन कही, धरिये श्रीवल्लभ नाँव॥१४॥
संवत् पंद्रह सौ पेंतीस, सुभ नछित्र सुभ वार।
कृष्ण पछि सोम पछि, तो व्रत वैष्णव के सार॥१५॥
अगिनि रूप चलि प्रगटे, एकादसी वैसाख।
....॥१६॥
बड़े भए वेदौ पढे, तब प्रभु कही समुझाय।
ब्रह्मचारी के रूप ह्वै, परिकरमा करो जाय॥१७॥
परिकरमा पृथ्वी करी, जैसे फिरत दिनेस।
कलिमल तें चढ़ि कालिमा, तेऊ उज्यारे देस॥१८॥
चलिबे को उदिम कियो, फूले तीरथ राय।
अब श्रीवल्लभ परस ही, सकल कालिमा जाय॥१९॥
चले रंगनाथ भरे रंग मे, पंडलपुर पहुँचे आय।
निरखे विट्ठलनाथजी, अङ्ग - अङ्ग भरि भाय॥२०॥
सेवक एक गोपाल को, सेवा करे बहु भाय।
वाकू आग्या यह भई, तू चंदन ले आय॥२१॥
चंदन तो लेकें फिरयौ, और नहीं कोऊ साथ।
पंडलपुर बस्यो आय के, जहाँ श्रीविट्ठलनाथ॥२२॥
तब वाकों आग्या भई, श्रीवल्लभ कों देह।
वे हमकूं पहिराय हैं, तू दरसन करि लेह॥२३॥
उन श्रीवल्लभ कूं दियो, तुम चन्दन ले जाहु।
जेसी रीति तुम्हारी हो तेसें बनाय दे जाहु॥२४॥

वह चंदन लेहौं द्वारिका, फिरि पहुकर के देस ।
फिर मथुरा पहु आयके, जहाँ ब्रजनाथ नरेस ॥२५॥

श्रीगोवर्द्धन दरसन कियो, देखे श्रीगोपाल
करि डंडोत आनन्द सों, आगे धरी रसाल ॥२६॥

वह चंदन लेके बहुरि धर्यौ, पहरायो अंग - अंग ।
सेवा सकल समाज सों सेवग राखे संग ॥२७॥

पहले व्रजबासी सब पूजते, दूध दही जु न्हवाय ।
अपनी ब्याई गाय की, छाडनि खरि खबाय ॥२८॥

बहुरयों तो गनि यहि भई, छुवन न पावे कोय ।
पूजन आई व्रज बधू, द्यौरानी जिठानी दोय ॥२९॥

एकनि जतिया दृढ गह्यो, एकनि लए न्हवाय ।
अपनी ब्याई गाय की छाड़े खीरि खवाय ॥३०॥

श्रीगोपाल तब हँसि कह्यो, मेरे हे यह खेल ।
जतिआचारे जब कथ्यो, करि ब्रजवासिन में मेल ॥३१॥

बहुरयों बारह बन किए, सब ब्रज कों सुख देखि ।
मथुरा श्रीबिश्रांतजी, केसोराय बिसेखि ॥३२॥

बहुरि चले कुरुखेत ह्वै, पहुचे श्रीहरिद्वार ।
दरसन बद्रीनाथ को, महिमा अपरंपार ॥३३॥

फिरि आए सोरों चले, कनोज की बरवार ।
आए बहुरि अजोध्या, जहाँ राम भक्ति अति गार ॥३४॥

तीरथराज प्रयाग ह्वे, कासी ह्वे गया जाहि ।
देखि मंदारन मदसूदनें, गंगासागर न्हाहि ॥३५॥

झारखंड गह्वर बडो, तहा गजन को बास ।
तातें मारग तजि चले, ले बस्ती को पास ॥३६॥

कृष्णचैतन्य बडगोडिया, सो आए उहि बाट ।
आगे ह्वे गोपालजी, निरवारे गज ठाट ॥३७॥

चलत मिले श्रीवल्लभ, पूछी तब कुसरात ।
कैसें आए पंथ तुम, कहिए सोई बात ॥३८॥

अजू बड़े - बड़े तिन में बड़े दिग्गज तें गज काल ।
तिनतें आजु गुसांई (जी) निरवारे नंदलाल ॥३९॥

अपने काज न दीजिए इतनो श्रम जाय।
यह भक्तन कों नहीं भाइहे, जो श्रम दीजे जाय ।।४०।।
यह मारग हम पूछि कें, प्रभु तुम दए बताय।
यह सुनि के आनन्द सों, रह्यो चरन लपटाय ।।४१।।
दामोदर सलिता उतरें, देखे श्रीगोपाल।
मुकता अति सुख देत है, नासा मध्य रसाल ।।४२।।
परसोतम पूरन प्रगट, देखे श्रीजगन्नाथ।
भोग राग आनन्द सूं, सेवा करी निजु हाथ ।।४३।।
कृष्ण-कृष्ण कहि चेत ही, कृष्ण चेतन सो नाम।
रहे मन आनंद मे, चरन कमल धरि ध्यान ।।४४।।
तिनकूं प्रेमामृत दियो, प्रभुजी निकट बुलाय।
इनतें प्रगट करि हे सही, श्रीवल्लभ फूल-फूल ।।४५।।
उनि श्रीवल्लभ कूं दियो, कही बात जो नाथ।
करि दंडोत आनंद सों, धरि लीनो निज माथ।।४६।।
जे-जे भाय करें सेवें, ब्रज में श्रीब्रजनाथ।
ते-ते परगट करि लिए, श्रीवल्लभ निज हाथ ।।४७।।
पायो अमृत श्रवन पुट, भक्त रहे छकि पूरि।
सबही कों सुख देत है, स्याम सु जीवन मूरि ।।४८।।
सेतबंद ह्वै के फिरे, आए अपने देस।
देखि-देखि फूले सबे ज्यों चकोर राकेस ।।४९।।
बहुरयो आग्या दई प्रभु, परिकरमा करो जाय।
मायावादी खंडिकें, भक्तें, देहु बढाय ।।५०।।
जेजे वैष्णव ग्रन्थ है, ते करियो एक ठांव।
यातें परगट होहिंगे, अधम उधारन नांव।।५१।।
जैयो पुनि बद्रिकाश्रम, करि दरसन की आस।
उद्धव मिलें सुख देंहिगे, बिरमंगल और व्यास ।।५२।।
मारग के अनुसार के, कहे सबै व्योहार।
लीजो तुमहिं उधारि कें, व्यास सूत सब सार ।।५३।।
याही अनुकम फिरि चले, ज्यों पहिलें फिर आय।
जिनि-जिनि नैं दरसन कियो, तिनहीं पकरे पाय ।।५४।।

पंडलपुर बहुरयों गए तहाँ सुनी यह बात।
माया तत वादी मिले, झगरत हैं रंग रात ॥५५॥

यह सुनिके चलि तहाँ गए, नृप कीनों सनमान।
उत उडगन पंडित भए उत उदे कीयो जनो भान ॥५६॥

वैष्णव, सुतत ले बोलना, रिषि के बचन प्रमान।
इनि उनही सुनिकें कह्यो, मारे सब के मान ॥५७॥

जै जै जै सब ही कही, नृपति भयो आनंद।
तम फूट्यो तिहुँ लोक में, निकस्यो पूरनचंद ॥५८॥

माया मत के तेज ते, भक्त रहे मुरझाय।
दिनमनि वल्लभ प्रगटे, दीन दए मुक्त ताय ॥५९॥

तब राजा बिनती करी राख्यो मेरो मान।
श्रीवल्लभ बलि जाय हों, करो कनक अस्नान ॥६०॥

सिंहासन लेकें धरयो, बैठे द्विजबर ईस।
राजा चरन पखारिके, चरणामृत राख्यो सीस ॥६१॥

सिंहासन भर भार भर, जबहि कंठ लग होय।
परमिति यह अस्नान की, जानि लेहु सब कोय ॥६२॥

करि स्नान ठाढे भए, जल ढारयो ले सीस।
व्युह सुमेर सी रासि करि, (द्विजन) दई बकसीस ॥६३॥

तब राजा बिनती करी, श्रीवल्लभ बलिजाऊँ।
बड़े बड़ाई राखि हो, कछुक कृपा करि लाऊँ ॥६४॥

खट सहस्र लीनें तबे, श्रीवल्लभ मुखन मग'य।
फूले अंग न मात नृप, बार - बार बलिजाय ॥६५॥

तिनके सब भूषन किए, पहराए श्रीविट्ठल राय।
और उनते जो बच्यो सो दीनों करत लुटाय ॥६६॥

एक मधवाचार्य हे, सन्यासी तिहि ठांव।
बाकी मनसा यह भई, वे सुनि हैं मोपें नाम ॥६७॥

उनि श्रीवल्लभ सों कह्यो, तुम मोपें दछिना लेहु।
उनि हूँ कह्यो आनंद सों, भलें कृपा करि देहु ॥६८॥

तब स्वप्न द्वार ह्वे कें कह्यो, प्रभु तुम भूलो श्रीपात।
ये आचार्य श्री आपु हैं जिनि जीते मायावाद ॥६९॥

ते जनम - जनम साधन कियो, ले मेरो गुन ग्राम।
अब तोकों फल रूप हैं, तू सुनि श्रीवल्लभ पें नाम ॥७०॥

संन्यासी चलिकें गयो, श्रीवल्लभ के ठांव।
अब आग्या ऐसे भई, तुम ही सुनावो नाम ॥७१॥

तब श्रीवल्लभ हँसि कह्यो, जानत नांहिने बात।
जो हमसूं प्रभु कहेगे, सो हम करिहैं प्रात ॥७२॥

तब आचार्य भए, आपुही श्रीगोवर्द्धन नाथ।
बचन कहे जे जो गहैं, हाथ धरयो निज माथ ॥७३॥

यह मारग है पुष्टि को, सो में समर्प्यों तोहि।
जे सरनागत आइ हैं, ते सब पहुँचे मोहि ॥७४॥

महा वाक्य सो नाम है, नैवेदन कियो साथ।
विष्णुस्वामिनी संप्रदा, तिलकु कियो निजु माथ ॥७५॥

विष्णुस्वामिनी संप्रदा, बहुत दिना भई लोप।
अब प्रगटी निजु रूप धरि दीनी दूनी ओप ॥७६॥

नाम निवेदन होत ही, बस्तु प्रताप भई जोति।
पंचबान परसाद चढि, पावत नाहीं पोति ॥७७॥

बोले बिट्ठलनाथजी हम लैहैं अवतार।
तुम पानि ग्रहन करो (जायके) लाओ जिनि बड़ी बार ॥७८॥

मेरे तो इच्छा नहीं पानि ग्रहन की राज।
काहे परगट होत हो, कहि ऐसोइ काज ॥७९॥

अब आग्या ऐसे भई, ताको बहुत बिचार।
चारि लछ बत्तिस हजार, कलि(काल)मे जीवन को उद्धार ॥८०॥

यातें परगट होत है, सुनियें संगत सार।
हम बिरकत...... रहत हैं, नाउं तुम्हारो लेत।
लोक कुटुंब सब तहाँ रहे, इहा को कन्या देत ॥८१॥

आवेगो ले आपुते, विप्र वेद की रासि।
बिनती करि कन्या देहिगो, करहु आपुनी दासि ॥८२॥

तब वाही द्विज सों कही, ता कन्या की बात।
ए मम माता होइगी, श्रीवल्लभ निजु तात ॥८३॥

यह सुनिकें आनंद सूं, आयो श्री वल्लभ पास।
करहु कृपा यह लीजिए, यह दासी हूं दास ॥८४॥

इनते परगट होहिंगे, जिनके नाम अनंत ।
तब श्रीवल्लभ बर बनें, (श्री) लछिमाजी के कंत ॥८५॥
श्रीवल्लभ प्रभु सूँ कही, सुनिए प्रान अधार ।
करि ग्रहस्त ज्यों हम किए, करैं कहा ब्योहार ॥८६॥
बोले श्रीगोपालजी, तुम गृह उपजों जाय ।
जो खरचो आनन्द में, सो सब देहु पुराय ॥८७॥
हम भंडारी तुम्हारे हितू, तुम हो सेवा जोग ।
श्रीगिरिधर लाल लड़ावहू, नाना विधि के भोग ॥८८॥
जहाँ प्रथम कलिजुग प्रगट तहाँ दियो प्रभु नाउ ।
विस्व उद्धारयो कहि कथा, दिए कृपा करि नाउ ॥८९॥
रामानंद आनंद भरयो, कहै भागवत पुराण ।
तहँ बैठे प्रभु आनि के, उनि कीनों सनमान ॥९०॥
करि ब्याख्यान स्लोक कह्यो, उनिहू कह्यो-कह्यो और ।
उनि जान्यो सोई कह्यो, और नही कहुँ ठोर ॥९१॥
बहुरि कह्यो नीके कहा, तब उन बिनती कीन ।
मोपे कही न जात है, जो प्रभु आज्ञा दीन ॥९२॥
ब्यास कही सुक मुनि कही, सूत कही जो बात ।
श्रीधर कही सो में कही, अब न कही कछु जात ॥९३॥
तब बोले प्रभु आइकें, नाना बिधि के भाय ।
विरझे भए सरनागते, सब ही पकरे पाय ॥९४॥
कनक पत्र कासी थपी, धन बाँको बलवंत ।
शंकराचार्य जो थपी, सो कीनी सतखंड ॥९५॥
दिग्गज दिग्गज मिले संन्यासी तिहिं तीर ।
गरजत वल्लभ सिंह के, भाजि गई सब भीर ॥९६॥
वादी वल्लभ बाद किय, हारे पंडित राय ।
तब सब मिलि एसें थपी, सिब कूं बूझो जाय ॥९७॥
साखी रुद्र एसें कही, तुम भूलत हो काहि ।
अगिनि रूप ये आपु हैं, ए कछू मानुस नाहि ॥९८॥
संन्यासी सब ही मिले, बिनती करी करि जोरि ।
हम भूले जानी नहीं, कृपा करो इहिं ओर ॥९९॥

तब श्रीवल्लभ हँसि कह्यो, जानत नाहिन बात।
अब तुम करो कुतूहला, बेठै भुक्तो राज ॥१००॥

गढ गंगा तट राज ही, अति पुनीत चर्नाटि।
तहाँ बसे सब जायकें, अति पुनीति की वाढि ॥१०१॥

सेव्य ठाकुर देव भट, श्रीगोवर्द्धन नाथ।
तेज पधारे सहज ही, श्रीवल्लभ के साथ ॥१०२॥

सेवा करें अनंद में, तहाँ सेवग नहीं कोय।
एक वैष्णव तहाँ रहें, तासूं गोष्ठी होय ॥१०३॥

मैं शंकराचार्य रूप धरि, माया करी विस्तार।
अब उनकूँ आज्ञा भई, उनके मत अनुसार ॥१०४॥

सेवक सब कुरुखेत के, पहले पहुँचे आय।
सेवत सब आनंद में, अपने - अपने भाय ॥१०५॥

एक दिवस नाहिनें कछू, सो लै दीजे भोग।
इन द्वारा आई जु निधि, सो सब सेवा जोग ॥१०६॥

प्रथम ही प्रकटे गोपीनाथजी, श्रीबलभद्र के रूप।
तेज तपे तिहुँ लोक में, चाहत परम अनूप ॥१०७॥

श्रीविट्ठल आज्ञा दई, हम आवेंगे आज।
आगे ह्वै कें लीजियो, कीजो मन के काज ॥१०८॥

पूछत - पूछत आइयो, एक श्रीवल्लभ ठौंव।
सेव्य श्रीठाकुर लीजियो, श्रीविट्ठलेशरायजी नाँव ॥१०९॥

संवत् पंद्रह सौ बहत्तर, नोमी पौस वदि प्रात।
शुक्रवार सुभ लग्न वृष, है सबहिन कों थान ॥११०॥

हस्त नछित्र तैतल करन, ग्रह सब नीकी ठौंत्र।
देखि मुदित वल्लभ भए, धरयौ श्रीविट्ठल नाँव ॥१११॥

कन्या चंद्र सु मिथुन गुरु, करक राहु रह्यो आनि।
उसना मंगल रवि-सुत रवि बुध सुबसु बखानि ॥११२॥

मकर केतु राजे महा ग्रह सब नीकी भाँति।
जनम पत्री त्रिभुवन तिलक, लीला लखिय न जाति ॥११३॥

ज्यों - ज्यों होत बड़े - बड़े, त्यों - त्यों बढ्यौ अनंद।
फूलें भगत चकोर सब, निकरयो पूरन चंद ॥११४॥

कासी मे संन्यासी बड़ो, ताके पढन जु जाहि ।
उन पायन लागन कर्‌यो, हूं कछु संदीपनि नाहिं ॥११५॥

सब विद्या जाकी करी, ताहि पढत कहा बेर ।
सूर्य श्रम कहा होत है, (ज्यों) उलंघन करत सुमेर ॥११६॥

बहुरि आनि त्रिबेनी बसे, श्रीयमुना के कूल ।
अडेल थान सुहावनों, दिन - दिन दूनी फूल ॥११७॥

दरसन श्रीगोपाल के फिरि - फिरि आवे जाहि ।
रहे आनि खट मास लों त्रपति भई तौ नाहि ॥११८॥

देखे बहुत बिचारि चित, जानत नाहिने ठाँव ।
जो जाने सेवा मे परिपक्व हे, ताहि सुनावे नाँव ॥११९॥

सावन असावल पच्छिता एकादसी अध रात ।
श्रीगोकुल मे प्रभु कही, श्रीवल्लभ सूं बात ॥१२०॥

जाको चित्त हम पे रहै, सो आवे तुम ठाँव ।
ताते छाँडि अचार विचार सब, ताहि सुनावें नाँव ॥१२१॥

कन्नोज उत्तम देस ते, आए श्रीद्वारिकानाथ ।
अडेल में सेवा भई, श्रीवल्लभ के साथ ॥१२२॥

खंना मना जग में जगे, थानेसुर स्यामलदास ।
तार्के श्रीनवनीत प्रिय, करने भोग विलास ॥१२३॥

अजू हम तुम्हरे रहैं, समुझि ओर ही भाय ।
चलि अचल आए तबे श्रीवल्लभ के ठायँ ॥१२४॥

श्रीआचार्यजी के बड़े पुत्र, श्रीश्री गोपीनाथ ।
सब सुनिके जो सेबते, मदनमोहनजी साथ ॥१२५॥

श्रीगोकुल में चोंतरा, कुबिजा छोंकर पास ।
तहाँ श्रीवल्लभ बैठि कें, करते कथा प्रकास ॥१२६॥

करणावल की कंद्रिका, करारे मथुरानाथ ।
प्रगटे श्रीवल्लभ सों कह्यो, लाये निज घरि साथ ॥१२७॥

आए बहुरि अडेल तें, मथुरा कीयो बास ।
जहाँ नवल गोपालजी, रमते रास बिलास ॥१२८॥

बहुरि कुँवर कहूं कुंज में, फिरते अपने चाय ।
जहाँ तहाँ लीला करें, अपने - अपने भाय ॥१२९॥

गिरि गोवर्द्धन ते उतरे आए श्री गोपाल।
मिले मीत मनभावने, दोउ बलि बल्लभलाल ॥१३०॥

नारायणदास के महावन, (श्रीजी) गोकुलचंद।
सो श्रीविट्ठल को मिले मथुरा भए अनंद ॥१३१॥

प्रथम गाउ हों तात कों, फिरि संभारिये सोय।
श्रीगोकुल के बसत ही, महा महोछा होय ॥१३२॥

संवत् सोरह से अठाईसा, शुभ नछित्र सुभ वार।
फागुन वदि सप्तमी सुभ, बसो श्रीगोकुल विस्तार ॥१३३॥

ब्रह्मचारी बेरगिया, पूजे सालिगराम।
बटुवा छोंकरि सों धर्‌यो लग्यो करन कछु काम ॥१३४॥

फिरि देखे बटुवा नहीं, ढूंढी डारहि डार।
तब ही श्रीवल्लभ पें, जाय जु (आप) करी पुकार ॥१३५॥

मेरो बटुवा हर लियो, जामे हे हरिदेव।
पानी कैसें पीजिये, बिनुही सेवा भेव ॥१३६॥

तब श्रीवल्लभ हँसि कह्यो, धोखे देखि बताय।
या छोंकर कें······धरे, बटुवा कहूँ न जाय ॥१३७॥

फिरि देखें जो आइकें, बटुवा डार ही डार।
छोंकरि जानों फरि रही, सालिगराम के भार ॥१३८॥

फिरि श्रीवल्लभ पै गयो, मेरो मोकों देउ।
श्रीवल्लभ! बलि जाय हूँ, और कृपा करि लेहु ॥१३९॥

तब श्रीवल्लभ हँसि कह्यो धोखे देखि बनाय।
आवे तो एके रह्यो, चलि लाग्यो बलि पाय ॥१४०॥

श्रीगिरिधर गोविंदजी, बालकृष्ण भरे रंग।
श्रीगोकुलनाथ रघुनाथ जी जदुनाथ स्यानघन संग ॥१४१॥

श्रीगिरिधरजी के प्रगटे मुरलीधर आधीर।
दामोदर गोपीनाथजी, राजत हैं बलबीर ॥१४२॥

सुंदर सुभग सुजान अति अंग-अंग भरि भाय ॥१४३॥

प्रगटे श्रीगोपीनाथ कें वल्लभ मथुरानाथ।
गोकुल मनि गोविन्दजी, रामकृष्ण लिए साथ ॥१४४॥

प्रगटे श्रीगोविन्द कें, कल्याणराय···· ।
अति पंडित अति ज्ञान वन्त, सूधे सबै सुभाय ॥१४५॥

आपु पढ़ें और पढावहीं सेवा परम विचित्र।
कल्याणराय के प्रगटे हरिराय सुख मित्र ॥१४६॥

कृष्णराय के सहज की, कही न परति कछु बात।
सकल मत सेवा सरस, श्रीगोपाल रँग रात ॥१४७॥

श्रीलछिमी नरसिंह के, नाना विध के भाय।
भक्त वछल प्रभु सर्वदा, खेलत में सुख पाय ॥१४८॥

बालकृष्ण के विसन की, महिमा अपरंपार।
भक्तवछल प्रिय सर्वदा, भक्तन प्राण अधार ॥१४९॥

श्रीव्रजभूखन भूखन, (जगत सत्य सील व्रत नेम।
पीतांबर गोपाल की, सेवा करें अति प्रेम ॥१५०॥

श्रीपुरुषोत्तम पूरन प्रगट, सीतलता की खानि।
व्रज अलंकार अपार छबि, जननी मन अति जानि ॥१५१॥

अति राजत द्वारकेशजी, श्रीगिरिधर सुख देत।
(श्री) कृष्णचंद्र व्रजनाथ के, प्रगटे जनके हेत ॥१५२॥

(श्री) व्रजभूखन के प्रगटें, सुध श्रीगोपाल।
सांवल श्री जदुपति चले, पीताबर लाल ॥१५३॥

श्रीवल्लभ वल्लभ जगत, कबहूँ आवत जात।
श्रीगोकुल संतत रहत, श्रीगोपाल रंग रात ॥१५४॥

तिनके श्रीगोपालजी, सूधे सबै सुभाय।
चतुर सिरोमनि गान अति, राजत विट्ठलराय ॥१५५॥

राजत विट्ठलराय गृह ग्वाल करत मनों मोद।
किलकि - किलकि खेलत हँसत, श्रीवल्लभ की गोद ॥१५६॥

श्रीरघुनाथ प्रताप बल, तिहूँ लोक के भूप।
श्रीदेवकीनंदन दिन - दिन नवल, राजत अति अनूप ॥१५७॥

जै जै जै जैदेवजी, प्रसन बदन अति हास।
श्रीद्वारिकानाथ बिराजहीं, सुख सोभा की रास ॥१५८॥

श्रीनवल कुंवर रघुनाथजी, लछिमन लीये संग।
देवकीनंदन के प्रगटे, राजत कौमल अंग ॥१५६॥

महाराज के सहज को, महिमा अपरंपार।
जैसे बालक तैसे बिरध हैं सब ही इक सार ॥१६०॥

रामचंद्र गुनरूप हैं, गोपीनाथ के साथ।
बालमुकुंद अति राजहीं मदसूदन सुखरास ॥१६१॥

श्रीमदसूदन के प्रगटे, सोभा कहिय न जाय।
प्रद्युमन मुरलीधरन के, बहुरि श्रीविट्ठलराय ॥१६२॥

श्रीघनश्याम बिराजही कनक बरन अंग-अंग।
रास बिलास कला सकल, करत भक्त को संग ॥१६३॥

तिनके श्रीव्रजपालजी, ग्वालन ही सों हेत।
अब राजत बछरारिया, दूध पतू किन लेत ॥१६४॥

श्रीगोकुल आनंद निधि, रहत सबै सुख मूल।
छबि तरंग दिन-दिन उठति, भक्तन जीवन मूल ॥१६५॥

इत उत बहुते बाग हैं, चलत कुवाँ चहूँ ओर।
कोकिल सबद सुहावनों, बोलत चात्रक मोर ॥१६६॥

अपने-अपने खरिक सब छावत हैं बहु भाँति।
साँझ समें जो बैठहीं, बछिया बछरा पाँति ॥१६७॥

घोरा बाहन गाय बहु और भैंसिन के ठाट।
रहति भीर मची सदा, चलन न पावे बाट ॥१६८॥

श्रीयमुना के पुलिन की, सोभा कहिय न जाय।
सांझ समै जो बैठहीं, बालक वृंद बनाय ॥१६६॥

अति विचित्र बीथिनि बनी, मंदिर एक ही भाँति।
जहाँ-जहाँ मन गडि रहै, तहाँ-तहाँ चलि जात ॥१७०॥

मंदिर द्वारिका नाथ को ऊँचौ यमुना (की कूल।
शृंगार करत मानो कालिंदी, चमकत हैं भुज मूल ॥१७१॥

होत संख धुनि प्रात ही उठत सबेरे लाल।
मिश्री मलाई मेलिकें, माखन बूरो खात ॥१७२॥

नैन अरुन आलस भरे, अध मूंदे छवि देत।
उठत जब ही परयंक तें, प्रिया अंक भरि लेत ॥१७३॥

देखन मंगल आरती, आरती करें व्रजबाल।
दरसन मंगल देखहीं मंगल रूप रसाल ॥१७४॥

बहुरि होत शृंगार सब, भूखन बसन बनाय।
दोरि-दोरि देखें सबे, देखत भै बड़ी बार ॥१७५॥

बहुरि होत उत्थापनें, तब की लीला अपार।
दोरि-दोरि देखें सबैं, अपने-अपने भाय ॥१७६॥

गायन के संग आवहीं, गोरज भरे अंग-अंग।
करत आरती गोपाल की, झारत हैं मानो पंक ॥१७७॥

ग्वाल भोग घैया भयो, पिवत पतूखिनि लाल।
मथि-मथि देति हैं व्रजबधू मानत मोद गुपाल ॥१७८॥

ब्यारू करि पौढे जबै, पलिका सुखद सुभाय।
बहुरि कुंवर कहुँ कुंज में, फिरते अपने चाय ॥१७९॥

तब श्रीजसुदा नंद गृह सकुच करी तिहि काल।
अब श्रीवल्लभ के गृह प्रगटि मानत मोद गुपाल ॥१८०॥

गिरिधर विट्ठलनाथ कों, जो करि जानैं दोय।
ताकी भगति न मानहीं, महापतित सो होय ॥१८१॥

गौर स्याम स्यामा गौर हैं, हरि हलधर के रूप।
प्रगटे श्रीविट्ठलनाथ कें, एक-एक तें भूप ॥१८२॥

प्रेत उधारे दोय प्रगट, जानत है सब कोय।
श्रीविट्ठलनाथ प्रताप तें, अधम उधारन होय ॥१८३॥

करुनाकरता नाम है, अन्यथा करन समर्थ।
अपनी भाँति गुपालजी दानी विट्ठलनाथ ॥१८४॥

द्राबड़ भक्त उत्पन्न हैं, गूजर पुरलो भाय।
प्रगटे विट्ठलनाथजी, दीनी बेलि बढ़ाय ॥१८५॥

सास कही कहि बोल तो ये, जानत (हैं) सिव पूजि ।
अब तें भए अनन्य सब, रहत रास रस गूंजि ॥१८६॥

पालन जे जम किंकरैं, लाग नहीं कहूँ घात ।
चित्रगुप्त कागद तज्यो, पूछत नहि कोई बात ॥१८७॥

यह लीला प्रतिदिन पढै, उठै मगन ह्वै गाय ।
ताकू श्रीगोपालजी, राखैं चरन लपटाय ॥१८८॥

इते नाम गुन रूप हैं, भए हमारी बारि ।
आगे भक्तिहु बरनियें, (श्री) वल्लभ कुल विस्तारि ॥१८९॥

श्रीद्वारकेसजी कृपा करी, लीनो हूँ अपनाय ।
श्रीवल्लभ कुल की केलि पर, 'कैसौ किसोर' बलि जाय ॥१९०॥

सूचना—उक्त 'वंशावली' के अनेक दोहे छंद की दृष्टि से दोषयुक्त हैं। यहाँ उनको असंपादित रूप में ही दिया गया है। 'सारावली' का पाठ 'वंशावली' की तुलना में एक प्रकार से, सुसंपादित है। दोनों का मिलान, इस बात को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

अनुक्रमणिका

अ. ग्रंथ

आ. पत्रिका

इ. ग्रंथकार